एम.ए. उत्तरार्द्ध

भूगोल, प्रथम प्रश्नपत्र

जलवायु विज्ञान और समुद्र विज्ञान

(CLIMATOLOGY AND OCEANOGRAPHY)

मध्यप्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय – भोपाल

MADHYA PRADESH BHOJ (OPEN) UNIVERSITY - BHOPAL

Reviewer Committee

1. Dr. Poonam Wasnik
   Assistant Professor
   Govt. Dr. Shyama Prasad Mukharjee Science and Commerce College, Bhopal (M.P.)

2. Dr. Neerja Bharadwaj
   Professor
   Govt. Hamidia College, Bhopal (M.P.)

3. Dr. Renu Vinod Sharma
   Associate Professor
   Govt. S.N.P.G. Girls (Autonomus) College, Bhopal (M.P.)

Advisory Committee

1. Dr. Jayant Sonwalkar
   Hon'ble Vice Chancellor
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)

2. Dr. L.S. Solanki
   Registrar
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)

3. Dr. Anjali Singh
   Director, Student Support
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)

4. Dr. Poonam Wasnik
   Assistant Professor
   Govt. Dr. Shyama Prasad Mukharjee Science and Commerce College, Bhopal (M.P.)

5. Dr. Neerja Bharadwaj
   Professor
   Govt. Hamidia College, Bhopal (M.P.)

6. Dr. Renu Vinod Sharma
   Associate Professor
   Govt. S.N.P.G. Girls (Autonomus) College, Bhopal (M.P.)

COURSE WRITER

Dr. Anita Agrawal, Assistant Professor, Department of Geography, Government Mahakoshal Arts and Commerce College, Jabalpur (M.P.)
Units (1-5)

Copyright © Reserved, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Registrar, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal.

Information contained in this book has been published by VIKAS® Publishing House Pvt. Ltd. and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, the Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal, Publisher and its Authors shall in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use.

Published by Registrar, MP Bhoj (Open) University, Bhopal in 2020

VIKAS®

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.

VIKAS® PUBLISHING HOUSE PVT. LTD.
E-28, Sector-8, Noida - 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 • Fax: 0120-4078999
Regd. Office: A-27, 2nd Floor, Mohan Co-operative Industrial Estate, New Delhi 1100 44
• Website: www.vikaspublishing.com • Email: helpline@vikaspublishing.com

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

जलवायु विज्ञान और समुद्र विज्ञान

Syllabi	Mapping in Book
इकाई–1 जलवायु विज्ञान की प्रकृति एवं क्षेत्र मौसम विज्ञान और जलवायु विज्ञान में संबंध मौसम विज्ञान जलवायु विज्ञान वायुमंडल का संघटन, संरचना और द्रव्यमान सूर्यतापन, पृथ्वी का ताप संतुलन, ग्रीनहाउस प्रभाव, तापमान का ऊर्ध्वाधर और क्षैतिज वितरण वायुमंडलीय गति : वायु की गति, ऊर्ध्वाधर गति और भंवर को नियंत्रित करने वाले बल, स्थानीय हवाएं, जेट स्ट्रीम, वातावरण में सामान्य परिसंचरण वायुमंडलीय नमी : आर्द्रता, वाष्पीकरण, संघनन	**इकाई 1** : जलवायु, मौसम, वायुमंडल, सूर्यतापन एवं वर्षण **(पृष्ठ 3–74)**
इकाई–2 उष्णकटिबंधीय, उच्च अक्षांशीय तथा समशीतोष्ण मौसम प्रणाली उष्णकटिबंधीय और उच्च अक्षांशीय मौसम, समशीतोष्ण मौसम वायुमंडलीय द्रव्यमान और वायुमंडलीय विक्षोभ की अवधारणा महासागरीय–वायुमंडलीय परस्पर क्रिया : एल–निनो, इनसो एवं ला–निना एल–निनो, दक्षिणी दोलन (इनसो–ENSO), ला–निना चक्रवात, मानसूनी हवाएं, काल बैसाखी, उष्णकटिबंधीय समशीतोष्ण घटनाएं चक्रवात, मानसूनी हवाएं, काल बैसाखी, उष्णकटिबंधीय समशीतोष्ण घटनाएं भारत की जलवायु और उसका नियंत्रण : पश्चिमी विक्षोभ	**इकाई 2** : विभिन्न मौसम प्रणालियां, वायुदाब, वायुमंडलीय विक्षोभ, चक्रवात **(पृष्ठ 75–140)**
इकाई–3 जलवायु वर्गीकरण : कोपेन एवं थॉर्नश्वेट कोपेन का जलवायु वर्गीकरण, थॉर्नश्वेट का जलवायु वर्गीकरण प्रमुख वैश्विक जलवायु परिवर्तन, प्रमाण, संभावित कारण एवं वैश्विक तापमान वृद्धि (ग्लोबल वार्मिंग) जलवायु परिवर्तन, जलवायु परिवर्तनों के प्रमाण, जलवायु परिवर्तन के संभावित कारण, वैश्विक तापमान वृद्धि (ग्लोबल वार्मिंग)	**इकाई 3** : जलवायु वर्गीकरण, प्रमुख वैश्विक जलवायु परिवर्तन तथा ग्लोबल वार्मिंग **(पृष्ठ 141–176)**
इकाई–4 समुद्र विज्ञान की प्रकृति एवं क्षेत्र समुद्र विज्ञान की प्रकृति, समुद्री विज्ञान का विषय क्षेत्र समुद्र विज्ञान का ऐतिहासिक विकास जल और थल का वितरण महासागरीय तलों की प्रमुख विशेषताएं महाद्वीपीय सीमाएं : पृथ्वी की संरचना, प्लेट विवर्तनिकी और समुद्री तलछट, गहरी समुद्री खाइयां (घाटियां)	**इकाई 4** : समुद्र विज्ञान : इतिहास, पृथ्वी पर भू–जल वितरण एवं महासागरीय तलों की विशेषताएं **(पृष्ठ 177–232)**

इकाई–5 सागरीय जल के भौतिक और रासायनिक गुण सागरीय एवं वायुमंडलीय परिसंचरण तंत्र में अंतर्संबंध महासागरीय सतह की धाराएं थर्मोहेलाइन लहर और ज्वार महासागरीय निक्षेप : प्रवाल भित्तियां सामुद्रिक जैविक पर्यावरण सागरीय जीवों के प्रकार जंतु प्लेंक्टन, नेक्टन समुदाय, बेंथोस पादप भविष्य हेतु संसाधनों के भंडार के रूप में महासागर	**इकाई 5** : सागरीय जल : विशेषताएं, परिसंचरण तंत्र, जैविक क्षेत्र एवं खनिज संसाधन **(पृष्ठ 233–347)**

विषय–सूची

परिचय **1–2**

इकाई 1 जलवायु, मौसम, वायुमंडल, सूर्यतापन एवं वर्षण **3–74**

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 जलवायु विज्ञान की प्रकृति एवं क्षेत्र
1.3 मौसम विज्ञान और जलवायु विज्ञान में संबंध
1.3.1 मौसम विज्ञान
1.3.2 जलवायु विज्ञान
1.4 वायुमंडल का संघटन, संरचना और द्रव्यमान
1.5 सूर्यतापन, पृथ्वी का ताप संतुलन, ग्रीनहाउस प्रभाव, तापमान का ऊर्ध्वाधर और क्षैतिज वितरण
1.6 वायुमंडलीय गति : वायु की गति, ऊर्ध्वाधर गति और भंवर को नियंत्रित करने वाले बल, स्थानीय हवाएं, जेट स्ट्रीम, वातावरण में सामान्य परिसंचरण
1.6.1 वायु की गति, ऊर्ध्वाधर गति और भंवर को नियंत्रित करने वाले बल
1.6.2 स्थानीय हवाएं, जेट स्ट्रीम, वातावरण में सामान्य परिसंचरण
1.7 वायुमंडलीय नमी : आर्द्रता, वाष्पीकरण, संघनन
1.8 वर्षा (अवक्षेपण) : विन्यास, प्रकार, अम्ल वर्षा, वर्षा का वैश्विक स्वरूप
1.9 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.10 सारांश
1.11 मुख्य शब्दावली
1.12 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.13 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 2 विभिन्न मौसम प्रणालियां, वायुदाब, वायुमंडलीय विक्षोभ, चक्रवात **75–140**

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 उष्णकटिबंधीय, उच्च अक्षांशीय तथा समशीतोष्ण मौसम प्रणाली
2.2.1 उष्णकटिबंधीय और उच्च अक्षांशीय मौसम
2.2.2 समशीतोष्ण मौसम
2.3 वायुमंडलीय द्रव्यमान और वायुमंडलीय विक्षोभ की अवधारणा
2.4 महासागरीय–वायुमंडलीय परस्पर क्रिया : एल–निनो, इनसो एवं ला–निना
2.4.1 एल–निनो
2.4.2 दक्षिणी दोलन (इनसो–ENSO)
2.4.3 ला–निना
2.5 चक्रवात, मानसूनी हवाएं, काल बैसाखी, उष्णकटिबंधीय समशीतोष्ण घटनाएं
2.5.1 चक्रवात
2.5.2 मानसूनी हवाएं
2.5.3 काल बैसाखी
2.5.4 उष्णकटिबंधीय समशीतोष्ण घटनाएं
2.6 भारत की जलवायु और उसका नियंत्रण : पश्चिमी विक्षोभ
2.7 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.8 सारांश

2.9 मुख्य शब्दावली
2.10 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.11 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 3 जलवायु वर्गीकरण, प्रमुख वैश्विक जलवायु परिवर्तन तथा ग्लोबल वार्मिंग 141—176

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 जलवायु वर्गीकरण : कोपेन एवं थॉर्नश्वेट
3.2.1 कोपेन का जलवायु वर्गीकरण
3.2.2 थॉर्नश्वेट का जलवायु वर्गीकरण
3.3 प्रमुख वैश्विक जलवायु परिवर्तन, प्रमाण, संभावित कारण एवं वैश्विक तापमान वृद्धि (ग्लोबल वार्मिंग)
3.3.1 जलवायु परिवर्तन
3.3.2 जलवायु परिवर्तनों के प्रमाण
3.3.3 जलवायु परिवर्तन के संभावित कारण
3.3.4 वैश्विक तापमान वृद्धि (ग्लोबल वार्मिंग)
3.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.5 सारांश
3.6 मुख्य शब्दावली
3.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.8 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 4 समुद्र विज्ञान : इतिहास, पृथ्वी पर भू–जल वितरण एवं महासागरीय तलों की विशेषताएं 177—232

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 समुद्र विज्ञान की प्रकृति एवं क्षेत्र
4.2.1 समुद्र विज्ञान की प्रकृति
4.2.2 समुद्री विज्ञान का विषय क्षेत्र
4.3 समुद्र विज्ञान का ऐतिहासिक विकास
4.4 जल और थल का वितरण
4.5 महासागरीय तलों की प्रमुख विशेषताएं
4.5.1 महाद्वीपीय सीमाएं : पृथ्वी की संरचना, प्लेट विवर्तनिकी और समुद्री तलछट
4.5.2 गहरी समुद्री खाइयां (घाटियां)
4.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.7 सारांश
4.8 मुख्य शब्दावली
4.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.10 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 5 सागरीय जल : विशेषताएं, परिसंचरण तंत्र, जैविक क्षेत्र एवं खनिज संसाधन 233—347

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 सागरीय जल के भौतिक और रासायनिक गुण

5.3 सागरीय एवं वायुमंडलीय परिसंचरण तंत्र में अंतर्संबंध
5.4 महासागरीय सतह की धाराएं
5.5 थर्मोहेलाइन लहर और ज्वार
5.6 महासागरीय निक्षेप : प्रवाल भित्तियां
5.7 सामुद्रिक जैविक पर्यावरण
5.8 सागरीय जीवों के प्रकार
  5.8.1 जंतु प्लेंक्टन
  5.8.2 नेक्टन समुदाय
  5.8.3 बेंथोस पादप
5.9 भविष्य हेतु संसाधनों के भंडार के रूप में महासागर
5.10 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
5.11 सारांश
5.12 मुख्य शब्दावली
5.13 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.14 सहायक पाठ्य सामग्री

परिचय

टिप्पणी

प्रस्तुत पुस्तक 'जलवायु विज्ञान और समुद्र विज्ञान' विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित एम.ए. (उत्तरार्द्ध) भूगोल के पाठ्यक्रम के अनुरूप लिखी गई है।

भूगोल एक ऐसा विज्ञान है जिसके अंतर्गत हम पृथ्वी व उससे संबंधित सभी पहलुओं का अध्ययन करते हैं। यथा– भूमि, जलवायु, समुद्र तथा मौसम की संरचना आदि। जलवायु लंबे समय के अंतराल में किसी क्षेत्र के तापमान, आर्द्रता, वायुमंडलीय दबाव, वायु प्रणाली, वर्षा और अन्य मौसम संबंधी तत्वों को निर्दिष्ट करती है। वायुमंडल की दैनिक दशाएं जो अल्पकाल में ही परिवर्तित होती रहती हैं, मौसम कहलाती हैं। अक्षांश, ऊंचाई, समुद्र से दूरी आदि ऐसे महत्वपूर्ण कारक हैं जो किसी स्थान की जलवायु को बहुत प्रभावित करते हैं। जलवायु विज्ञान मौसम की परिस्थिति पर आधारित है। यह वायुमंडलीय विज्ञान की एक शाखा है।

समुद्र विज्ञान को भौतिक भूगोल की एक महत्वपूर्ण शाखा माना जाता है। समुद्र विज्ञान में सागर व महासागर के सामान्य चित्रण का अध्ययन भौगोलिक दृष्टि से किया जाता है।

प्रस्तुत पुस्तक में जलवायु विज्ञान एवं समुद्र विज्ञान के विभिन्न पक्षों का सांगोपांग विवेचन किया गया है। प्रत्येक इकाई के प्रारंभ में विषय का विश्लेषण करने से पहले उसके निहित उद्देश्यों को स्पष्ट कर दिया गया है। इकाइयों के बीच–बीच में 'अपनी प्रगति जांचिए' कॉलम के माध्यम से विद्यार्थियों की योग्यता को परखने के लिए प्रश्न दिए गए हैं। पाठ्य सामग्री तैयार करते समय विषय में विद्यार्थियों की रुचि जगाने तथा रोचकता लाने का भरपूर प्रयास किया गया है।

अध्ययन की सुविधा के लिए संपूर्ण पुस्तक को पांच इकाइयों में समायोजित किया गया है, जिनका विवरण इस प्रकार है–

पहली इकाई में जलवायु विज्ञान, मौसम विज्ञान, वायुमंडल, सूर्यतापन एवं वर्षण जैसे तथ्यों का विश्लेषण किया गया है।

दूसरी इकाई विभिन्न मौसम प्रणालियों पर आधारित है। जिसमें उष्णकटिबंधीय, समशीतोष्ण और उच्च अक्षांशीय मौसम प्रणाली, वायुमंडलीय विक्षोभ की अवधारणा, महासागरीय–वायुमंडलीय परस्पर क्रिया, चक्रवात, मानसूनी हवाएं, भारत की जलवायु एवं पश्चिमी विक्षोभ आदि तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है।

तीसरी इकाई जलवायु के वर्गीकरण पर आधारित है। इसमें कोपेन एवं थॉर्नश्वेट का जलवायु वर्गीकरण, वैश्विक जलवायु परिवर्तन, जलवायु के प्रमाण, संभावित कारण तथा ग्लोबल वार्मिंग जैसे तथ्यों की विवेचना की गई है।

चौथी इकाई समुद्र विज्ञान पर आधारित है। इसमें समुद्र विज्ञान की प्रकृति, क्षेत्र, इतिहास, पृथ्वी पर भू–जल वितरण तथा महासागरीय तलों की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है।

पांचवीं और अंतिम इकाई में सागरीय जल की विशेषताओं, वायुमंडलीय परिसंचरण तंत्र, समुद्री जैविक पर्यावरण के क्षेत्र एवं समुद्र के खाद्य एवं खनिज संसाधनों का विश्लेषण किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक में जलवायु विज्ञान और समुद्री विज्ञान को सरल भाषा में रुचिकर ढंग से लिखा गया है। हमें पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक पाठकों की जिज्ञासा को शांत कर जलवायु एवं समुद्र विज्ञान को समझने में सहायक सिद्ध होगी।

इकाई 1 जलवायु, मौसम, वायुमंडल, सूर्यतापन एवं वर्षण

टिप्पणी

संरचना

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 जलवायु विज्ञान की प्रकृति एवं क्षेत्र
1.3 मौसम विज्ञान और जलवायु विज्ञान में संबंध
1.3.1 मौसम विज्ञान
1.3.2 जलवायु विज्ञान
1.4 वायुमंडल का संघटन, संरचना और द्रव्यमान
1.5 सूर्यतापन, पृथ्वी का ताप संतुलन, ग्रीनहाउस प्रभाव, तापमान का ऊर्ध्वाधर और क्षैतिज वितरण
1.6 वायुमंडलीय गति : वायु की गति, ऊर्ध्वाधर गति और भंवर को नियंत्रित करने वाले बल, स्थानीय हवाएं, जेट स्ट्रीम, वातावरण में सामान्य परिसंचरण
1.6.1 वायु की गति, ऊर्ध्वाधर गति और भंवर को नियंत्रित करने वाले बल
1.6.2 स्थानीय हवाएं, जेट स्ट्रीम, वातावरण में सामान्य परिसंचरण
1.7 वायुमंडलीय नमी : आर्द्रता, वाष्पीकरण, संघनन
1.8 वर्षा (अवक्षेपण) : विन्यास, प्रकार, अम्ल वर्षा, वर्षा का वैश्विक स्वरूप
1.9 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.10 सारांश
1.11 मुख्य शब्दावली
1.12 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.13 सहायक पाठ्य सामग्री

1.0 परिचय

जलवायु विज्ञान, जलवायु का अध्ययन है। वैज्ञानिक रूप से परिभाषित करने पर यह औसत समय काल के मौसम की परिस्थिति है तथा यह वायुमंडलीय विज्ञान की एक शाखा है। जलवायु की आधारभूत जानकारी को मौसम के पुर्वानुमान के पदों में एनालाग तकनीकी के प्रयोग के द्वारा व्यक्त कर सकते हैं; जैसे एल नीनो साउदर्न ऑसिलेशन (ENSO), मैडन– जुलियन ऑसिलेशन (NHI) नॉर्थ एटलांटिक ऑसिलेशन (NAO), नार्थ एन्यूलर मोड (NAM), आर्किटिक ऑसिलेशन (AO) नार्थन पासिफिन इन्डेक्स (NP) पैसिफिक डिकेडल ऑसिलेशन (PDO) तथा इंटरडिकेडल पैसिफिक ऑसिलेसन (IPO)। भविष्य की जलवायु के झुकाव के लिए मौसम के गति विज्ञान तथा जलवायु की प्रणाली के अध्ययन के द्वारा जलवायु प्रतिमान विभिन्न उद्देश्यों के लिए प्रयुक्त होते हैं।

जलवायु एक दिए गए भूभाग के लिए एक लंबे समय तक के तापमान, आर्द्रता, वायुमंडलीय दबाव, हवा, वर्षा, वायुमंडलीय कणों की संख्या तथा अन्य मौसम विज्ञान संबंधी तत्वों के आंकड़े से बनी होती है।

इस इकाई में आप जलवायु विज्ञान, मौसम विज्ञान, वायुमंडलीय गति, सूर्यतापन एवं वर्षण के बारे में अध्ययन करेंगे।

टिप्पणी

1.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- जलवायु विज्ञान एवं मौसम विज्ञान की प्रकृति एवं क्षेत्र के बारे में जान पाएंगे;
- वायुमंडल के संघटन, संरचना एवं द्रव्यमान को समझ पाएंगे;
- सूर्यतापन, पृथ्वी का संतुलन व ग्रीन हाउस के प्रभाव को जान पाएंगे;
- वायु की गति को नियंत्रित करने वाले बलों के बारे में जान पाएंगे;
- वर्षा के विन्यास, अम्ल वर्षा व वर्षा के वैश्विक स्वरूप को समझ पाएंगे।

1.2 जलवायु विज्ञान की प्रकृति एवं क्षेत्र

जलवायु विज्ञान विभिन्न मार्गों से अपनी पहुंच बनाता है। पुरालिपी जलवायु विज्ञान अभिलेखों की जांच द्वारा जैसे कि बर्फ के अन्दर के भाग का अध्ययन तथा वृक्षों के तने में बनी रेखाओं द्वारा (वृक्ष जलवायु विज्ञान) जलवायु को खोजने का प्रयास करता है। पैलियो टैम्पेसटोलोजी इन अभिलेखों के प्रयोगों की सहायता से सहस्त्र वर्षों के तूफानों की आवृति की व्याख्या करती है। समकालीन जलवायु का अध्ययन मौसम संबंधी आंकड़ों को इकट्ठा करता है जो बहुत वर्षों से जमा हैं जैसे कि- वर्षा, तापमान तथा वायुमंडलीय संयोजन के रिकार्ड। वायुमंडल तथा इसकी गतिकी का ज्ञान प्रतिमानों में भी सम्मलित होता है चाहे वह सांख्यिकीय हों या गणितीय जो विभिन्न परीक्षणों तथा जांचों के एकीकरण में सहायक होते हैं। यह ऐतिहासिक जलवायु विज्ञान का अध्ययन है जो मानव इतिहास से संबंधित है।

लंबे परिमाण, लंबे समय काल तथा जटिल प्रक्रियायें जो जलवायु को संचालित करती हैं, वे जलवायु संबंधी खोजों को कठिन बनाती हैं। जलवायु भौतिक नियमों द्वारा संचालित होती है, जिन्हें अंतर संबंधी समीकरणों द्वारा दर्शाया जा सकता है। यह समीकरण युग्मित एवं अरेखीय होते हैं। इन प्रतिमानों को बनाने के लिए अंकीय विधियों के प्रयोग द्वारा लगभग सही अनुमान प्राप्त किये जाते हैं। जलवायु कभी-कभी उदासीन प्रक्रिया के रूप में प्रतिमानित की जाती है लेकिन सामान्यत: इसे हम अनुमानों द्वारा लेते हैं नहीं तो विश्लेषण के लिए यह बहुत जटिल हो जाएगी।

जलवायु तथ्य

जलवायु संबंधी बहुत से मान्यता प्राप्त तथ्य हैं, जिनमें से कुछ के बारे में हम निम्न प्रकार से चर्चा करेंगे–

- इएनएसओ या इनसो यह Elnino या साउदर्न ऑसिलेशन को दर्शाता है। इनसो चक्र सामंजस्यपूर्ण होता है तथा साल-दर-साल समुद्री सतह के तापमान, संवहनी वर्षा, सतही हवा का दबाव तथा वायुमंडलीय प्रसार के लिए कभी-कभी बहुत शक्तिशाली होता है। जैसा कि भूमध्यवर्ती पैसिफिक समुद्र में होता है। एल नीनो तथा नीनो इनसो चक्र में विपरीत चरम अवस्था को प्रदर्शित करते हैं। फिर एल नीनो औसत से ऊपर समुद्री तापमान दर्शाता है जो आवर्ती रूप से पूर्व केंद्रीय

भूमध्यवर्ती पैसिफिक आर-पार विकसित होती है। यह इनसो चक्र की गरम प्रवस्था प्रस्तुत करती है और कभी-कभी इसे पैसिफिक गर्म प्रसंग भी कहते हैं।

टिप्पणी

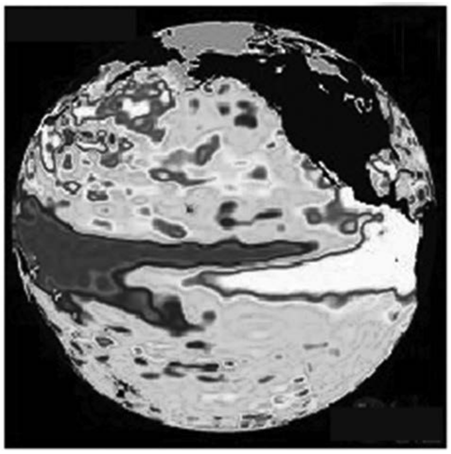

ई. एन. एस. ओ

लानीना पूर्व केंद्रीय भूमध्यवर्ती पैसिफिक के आर-पार समुद्री सतह के तापमान के शीतलन को दर्शाता है। यह इनसो चक्र की ठंडी प्रवस्था को प्रदर्शित करता है तथा कभी-कभी इसे पैसिफिक ठंडा प्रसंग भी कहते हैं।

- अनावृष्टि, जलवायु का सामान्य तथा पुनरावृत्तीय लक्षण है जो वस्तुतः सभी जलवायुमंडल में पाया जाता है। परन्तु इसके गुण में विशेष रूप से एक भू-भाग से दूसरे भू-भाग तक विविधता पायी जाती है। अनावृष्टि एक स्थायी भ्रम है जो सूखे से भिन्न है, यह कम वर्षा वाले भू-भाग तक सीमित है तथा जलवायु का एक स्थायी लक्षण है।

अनावृष्टि सामान्यतः एक मौसम या उससे अधिक समय के लिए बढ़े हुए काल के अवक्षेपण की कमी से उत्पन्न होता है। इस कमी के परिणामस्वरूप कुछ क्रियाओं, में समूहों या वातावरणीय खंडों में जल की कमी हो जाती है। अनावृष्टि को एक खास क्षेत्र में अवक्षेपण तथा इवैपोट्रांसपिरेशन (अर्थात वाष्पीकरण + वाष्पोत्सर्जन) के बीच कुछ लंबी औसत परिस्थितियों से संबंधित किया जाना चाहिए, जिस परिस्थिति से हम अक्सर सामान्य का अर्थ लगाते हैं। यह वर्षा के समय (अर्थात वर्षा के होने का मुख्य मौसम काल, वर्षा काल के शुरू होने में देरी, मुख्य फसलों की वृद्धि के चरणों का समय) तथा उसकी प्रभावकारिता (अर्थात् वर्षा की तीव्रता, वर्षा के होने की आवृति) से संबंधित होता है। अन्य जलवायु कारक जैसे उच्च तापमान, तेज हवा तथा निम्न संबंध आर्द्रता इसके साथ संसार के कई भू-भागों से जुड़े होते हैं और विशिष्ट रूप से जलवायु की उग्रता को बढ़ाते हैं।

अनावृष्टि को केवल भौतिक तथ्य या प्राकृतिक घटनाओं के रूप में नहीं देखना चाहिए। इसका असर समाज पर पड़ता है जो प्राकृतिक घटनाओं के (उम्मीद से कम अवक्षेपण जिसके परिणामस्वरूप प्राकृतिक जलवायु विविधता पायी जाती है) तथा लोगों के रहने के लिए आवश्यक पानी की पूर्ति की मांग परिणामस्वरूप होती है। इन्सान भी अक्सर अनावृष्टि के प्रभाव को बढ़ाता है। विकसित तथा विकासशील देशों में आजकल पायी जाने वाली अनावृष्टि परिणामस्वरूप आर्थिक और पर्यावरणीय प्रभाव तथा व्यक्तिगत विपत्तियां सम्पूर्ण समाज की आरक्षितता को इस 'प्राकृतिक' आपदा से जोड़ती हैं।

टिप्पणी

सूखा

भूमंडलीय उष्मीकरण

भूमंडलीय उष्मीकरण (ग्लोबल वार्मिंग) भूमंडलीय तापमानों को उत्तरोत्तर रूप से बढ़ाता है, जो गैसों के उत्सर्जन के कारण होता है तथा जो सूर्य की गरमी को पृथ्वी के वायुमंडल में आने से रोकता है (इसे ग्रीन हाउस इफेक्ट कहते हैं)। गैस प्रकृति तथा मनुष्यों द्वारा उत्पादित दोनों प्रकार की है जो भूमंडलीय उष्मोत्पादकता अंशदान करती है, वे निम्न हैं- कार्बन डाइऑक्साइड, मीथेन, नाइट्रस आक्साइड, क्लोरोकार्बन (ALFs) तथा हेला कार्बन (जो CFC का प्रतिस्थापन है)। कार्बन डाइऑक्साइड का उत्सर्जन जीवाश्म ईंधन का प्राथमिक कारण है।

ग्रीन हाउस इफेक्ट एक प्राकृतिक भूप्रक्रिया है जो हमारे ग्रह के तापमान को तथा पृथ्वी पर जीवन के लिए आधारभूत आवश्यकताओं को नियंत्रित करता है। यह वातावरण में उपस्थित कुछ निश्चित गैसों (जिन्हें ग्रीन हाउस कहते हैं क्योंकि यह निचले वायुमंडल में और उस ऊष्मा को रोकती है) के द्वारा ऊष्मा के अवशोषण और उस ऊष्मा का नीचे की ओर पुनः विकिरण का परिणाम है। जलवाष्प सबसे अधिक पायी जाने वाली ग्रीन हाउस गैस है जिसमें कार्बन डाइऑक्साइड कम मात्रा में पायी जाने वाली गैस होती है। बिना ग्रीन हाउस के पृथ्वी का तापमान 0°F (–18°C) होना चाहिए जबकि वर्तमान में यह 57° F (–14°C) है।

भूमण्लीय उष्मीकरण द्वारा हिमनदियों का पिघलना

- **जलवायु परिवर्तन:** यह एक दिए गए क्षेत्र 'औसत' मौसम में होने वाला परिवर्तन है। औसत मौसम में वे सभी विशेषताएं आती हैं जो मौसम में आती हैं जैसे तापमान और अवक्षेपण। वैश्विक जलवायु का परिवर्तन, पूरी पृथ्वी के जलवायु के परिवर्तन से संबंधित है। लम्बे समय में भूमंडलीय जलवायु परिवर्तन की दर व परिमाण में प्राकृतिक पारिस्थितिकी के लिए बहुत से निहितार्थ होते हैं।

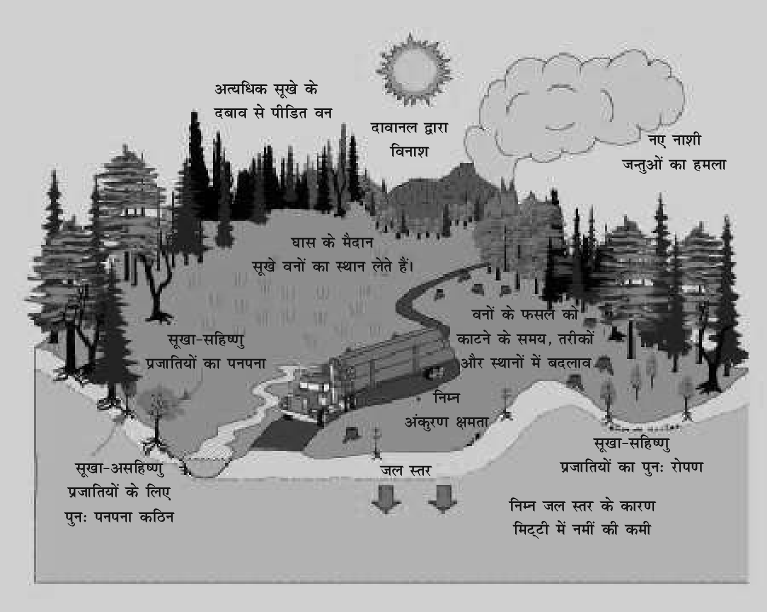

जलवायु परिवर्तन का वनों पर प्रभाव

मुख्य कारक जो जलवायु को आकार देता है वो है जलवायु दबाब। इसके अंतर्गत कुछ प्रक्रिया आती है जैसे सौर विकिरण में विविधता, पृथ्वी की कक्षा में विचलन, पहाड़ों का बनना, महाद्वीपीय गिरावट तथा ग्रीन हाउस गैसों की सान्द्रता में परिवर्तन। जलवायु परिवर्तन की प्रति पुष्टि में विविधता होती है जो आरंभिक दबाब को या तो परिवर्द्धित करती है या उसे एकदम कम कर देती है।

जलवायु प्रणाली का कुछ भाग जैसे कि समुद्र तथा पहाड़ों की चोटी पर जमी बर्फ अपने बड़े प्रमाण के साथ जलवायु दबाब के प्रति बहुत धीमी प्रतिक्रिया दर्शाते हैं। इसलिए जलवायु प्रणाली बाह्य नए दबाब के प्रति पूरी तरह प्रतिक्रिया दर्शाने में सहस्त्र वर्ष या बहुत लंबा समय लेती है।

जलवायु परिवर्तन के प्रमाण विविध स्रोतों से लिए जाते हैं जो भूतपूर्व जलवायु को दुबारा बनाने में प्रयुक्त किये जा सकते हैं। सतही तापमान का मान सहित संपूर्ण भूमंडलीय रिकार्ड 19 वीं शताब्दी के मध्य अंत से उपलब्ध है। पहले के कालों के लिए अधिकतर प्रमाण अप्रत्यक्ष है- जलवायु परिवर्तन जो प्रतिनिधित्व के परिवर्तन से निष्कासित है, सूचक जो जलवायु को परिवर्तित करते हैं जैसे कि वनस्पति परिवर्द्धन, बर्फ के अन्दर का भाग, वृक्ष जलवायु विज्ञान, समुद्री सतह में परिवर्तन तथा ग्लेशियर भूविज्ञान।

अभी बीते हुए समय में जलवायु परिवर्तन को संबंधित कृषि के उत्कृष्ट नमूने तथा व्यवस्था में परिवर्तन के द्वारा पहचाना जा सकता है। पुरातत्व विभाग के प्रमाण, इतिहास तथा ऐतिहासिक दस्तावेज बीते हुए समय में जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को दर्शाते हैं। जलवायु परिवर्तन ने विभिन्न सभ्यताओं को निम्न द्वारा प्रभावित किया है:

टिप्पणी

- ग्लेशियर
- वनस्पति
- बर्फ के अन्दर का भाग (आइस कोर)
- पराग विश्लेषण
- कीड़े मकोड़े
- समुद्री सतह में परिवर्तन

जलवायु विज्ञान की प्रकृति तथा कार्यक्षेत्र

जलवायु विज्ञान, जलवायु का वैज्ञानिक अध्ययन है। यह समय की एक लम्बी अवधि में मौसम की प्रवृति से संबंधित है। आवश्यक रूप से जलवायु विज्ञान एक वायुमंडलीय विज्ञान है जो बहुत नाम से संबंधित है पर मौसम विज्ञान से अलग है। यह वायुमंडल तथा उसके तथ्यों का अध्ययन है। आधारभूत रूप से अंतर केवल विधिविज्ञान में होता है। जहां मौसम वैज्ञानिक वायुमंडलीय प्रक्रियाओं के अध्ययन में पारंपरिक भौतिक के नियमों तथा गणितीय तकनीकों को प्रयोग में लाते हैं। जलवायु वैज्ञानिक मौसम के आंकड़ों में सूचनाओं को व्युत्पन्न करने के लिए सांख्यिकीय तकनीकों पर विश्वास करते हैं। जलवायु विज्ञान की तरह मौसम विज्ञान भी मौसम तथा जलवायु दोनों को ही अंतर्गृहीत करता है परन्तु जलवायु विज्ञान को और अधिक अर्थपूर्ण बनाने के लिए आवश्यक है कि मौसम विज्ञान के घटकों का जलवायु विज्ञान में निर्गम किया जाए। वातावरण गति वैज्ञानिक ही नहीं परंतु जटिल भी है। जलवायु विज्ञान का उद्देश्य वायुमंडल के अंदर ही प्रक्रियाओं तथा पारस्पिरिक क्रियाओं के बीच तथा पृथ्वी के सतह तथा वायुमंडल के बीच समझ को बढ़ावा देना है।

जलवायु विज्ञान का कार्यक्षेत्र बहुत विस्तृत है तथा इसे महत्वपूर्ण प्रकरणों के आधार पर या वायुमंडलीय तथ्यों के आधार पर और आगे विभाजित किया जा सकता है। अयोड (2004) ने जलवायु के छह स्थानीय उपविभागों (क्षेत्रों) की खोज की थी जो निम्न हैं–

- **क्षेत्रीय जलवायु विज्ञानः** यह एक विशिष्ट महाद्वीपीय तथा उप महाद्वीपीय क्षेत्रों के लाक्षणिक तथा अनियमित मौसम के तथ्यों का अध्ययन तथा पृथ्वी के चयनित क्षेत्रों की जलवायु की व्याख्या है।
- **संक्षिप्त जलवायु विज्ञान :** यह वायुमंडलीय प्रसार के प्रतिमानों के संदर्भ में एक क्षेत्र के मौसम तथा जलवायु का अध्ययन है। संक्षिप्त जलवायु विज्ञान इस प्रकार आवश्यक रूप से क्षेत्रीय जलवायु विज्ञान तक नई पहुंच है। संक्षिप्त जलवायु विज्ञान की व्याख्या तक पहुंचने का मार्ग, संक्षिप्त मौसम के प्रतिमानों को अलग-अलग श्रेणियों में रखता है तथा इन प्रतिमानों से जुड़ी मौसम की परिस्थितियों का सांख्यिकीय रूप से विश्लेषण करता है। यह शब्द, जो मौसम प्रणाली के समतुल्य हैं, जैसे साइक्लोन तथा एंटी साइक्लोन, को 1940 में बनाया गया था जब मिलिट्री सेवायें मौसम के प्रकार के जलवायु विज्ञान तथा इसके निहितार्थ परिवर्तन के लिए संबद्ध की गई थीं। जबकि गति वैज्ञानिक जलवायु विज्ञान कार्यक्षेत्र में विश्वस्तर का है। वहीं संक्षिप्त जलवायु विज्ञान समानता गोलार्ध संबंधी या स्थानीय मौसम से संबंधित है। ये वायुमंडलीय विस्तार तथा मौसम और एक दिए गए क्षेत्र या स्थिति द्वारा महसूस किये जाने वाले मौसम की परिस्थिति

टिप्पणी

के संयोजन पर निर्भर करता है। संक्षिप्त मौसम विज्ञान का आधारभूत तथ्य है कि यह वायुमंडलीय प्रसार को वर्गीकृत करने की क्षमता रखता है।

- **भौतिक जलवायु विज्ञानः** यह जलवायु विज्ञान का मुख्य क्षेत्र है जिसका उद्देश्य एक क्षेत्रीय मौसम की व्याख्या तथा अध्ययन, भौतिकी कारकों के पदों में करना है तथा इसमें वायुमंडल में मौसम तत्वों या प्रक्रियाओं के व्यवहार को भौतिकी सिद्धांत के पदों में खोजा जाता है। पृथ्वी तथा वायुमण्डलीय ऊर्जा तथा जल संतुलन क्षेत्रों पर दबाव है। ये मौसम की व्याख्या से संबंधित है न कि इसके प्रस्तुतीकरण से।
- **गतिकीय जलवायु विज्ञानः** यह वायुमंडलीय गतिकीय तथा ऊष्मा गतिकीय का जलवायु विज्ञान है अर्थात वायुमंडलीय प्रसार की व्याख्या तथा अध्ययन की जलवायु वैज्ञानिक पहुंच है। ये वायुमंडलीय गतियों को विभिन्न पैमानों पर, विशेष वातावरण के सामान्य प्रसार के पैमाने पर रखता है।
- **व्यावहारिक जलवायु विज्ञानः** यह जलवायु वैज्ञानिक ज्ञान का अनुप्रयोग है तथा सिद्धांत है जो मानव जाति की समस्याओं को सुलझाता है। यह पूरे संसार से मौसम विज्ञान, वायुमंडल तथा जलवायु के अध्ययन द्वारा नई तथा अत्यधिक महत्वपूर्ण विकसित जानकारी उपलब्ध कराता है। इसके अंतर्गत जलवायु प्रतिमानों, जलवायु परिवर्तन, जलवायु पूर्वानुमान, सूक्ष्म तथा मध्य जलवायु, जंगल मौसम विज्ञान, जीव मौसम विज्ञान, निर्माण मौसम विज्ञान तथा वायुमंडलीय विभिन्न समस्यायें आती हैं क्योंकि इनका संबंध जीव मंडल से है; मानवशास्त्र तथा प्राकृतिक वतिलयन या गैसीय सूक्ष्म संघटकों का प्रभाव; मौसम विज्ञान मापों के हार्डवेयर, सॉफ्टवेयर तत्वों, सुदूर संवेदन की तकनीकी तथा वर्तमान अभिरुचियों के प्रकार आते हैं, जैसे ही यह जीव मंडल में संबंध स्थापित करता है।
- **ऐतिहासिक जलवायु विज्ञानः** यह जलवायु के ऐतिहासिक परिवर्तन तथा उसके मानव इतिहास पर प्रभाव के विकास के द्वारा जलवायु के विकास का अध्ययन है। यह जलवायु विज्ञान से भिन्न है क्योंकि यह पृथ्वी के संपूर्ण इतिहास के जलवायु परिवर्तन को सम्मिलित करता है। यह अध्ययन मानव के इतिहास के समय को खोजने में सहायता करता है जब तापमान तथा अवक्षेपन वर्तमान समय से भिन्न था। इसमें प्राथमिक स्रोतों के अन्तर्गत लिखे अभिलेख आते हैं, जैसे वीर गाथायें, इतिवृत्र, मानचित्र तथा स्थानीय साहित्य, चित्रण प्रस्तुतीकरण जैसे, पेंटिंग, ड्राइंग तथा रॉक आर्ट। पुरातत्व वैज्ञानिक अभिलेख व्यवस्था के प्रमाणों, पानी तथा जमीन के उपयोग में बराबर का महत्व रखते हैं।

वननाशन तथा कृषि के द्वारा, कुछ वैज्ञानिकों ने कुछ ऐतिहासिक जलवायु परिवर्तन में मानव को जिम्मेदार ठहराया है। मानव के द्वारा आग की शुरुआत को मरुस्थलीकरण से संबद्ध किया गया है। यदि यह सत्य है तो प्राथमिक समाज भी क्षेत्रीय जलवायु पर असर दिखाता है। वननाशन, मरुस्थलीकरण, तथा धरती का खारापन संपूर्ण मानव इतिहास के जलवायु परिवर्तन में अपना योगदान देते हैं।

बहुत से अन्य उपविभाग साहित्य में दर्ज हैं। यह उदाहरण के लिए कृषि विज्ञान, जलवायु विज्ञान, जीव जलवायु विज्ञान, निर्माण जलवायु विज्ञान, शहरी जलवायु विज्ञान, सांख्यिकीय जलवायु विज्ञान इत्यादि हैं। ये सारे उप विभाग यद्यपि ऊपर दिये गए है, जो 6 विभागों के अंतर्गत आते हैं। कृषि विज्ञान, जलवायु विज्ञान, जीव विज्ञान के पहलू हैं।

टिप्पणी

जलवायु विज्ञान के उपविभाग की एक वैकल्पिक पहुंच मौसम वैज्ञानिक गति प्रणाली के पैमानों पर आधारित है। यह बहुत महत्वपूर्ण है, यद्यपि, विभिन्न वायुमंडलीय तथ्य, गृह संबंधी धाराओं से स्थानीय वायु प्रणाली तक एक अकेला सतत् मौसम प्रणाली का वर्णक्रम बनाते हैं। निम्नलिखित जलवायु विज्ञान के तीन उपविभाग जाने जा सकते हैं:

1. **स्थूल जलवायु विज्ञान:** यह विश्व के वास्तविक भागों की जलवायु के लक्षणों से तथा एक बड़ी मात्रा के वायुमंडलीय संगठनों से जो इसे बनाते हैं, संबद्ध हैं। ये माध्य वार्षिक, मौसमी तथा मासिक सांख्यिकीय विश्लेषणों तथा साथ ही साथ माध्य प्रतिमानों तथा वायुमंडलीय ऊर्जा तथा आर्द्रता को विनियम के द्वारा वैश्विक वायु पट्टी की विवेचना को ग्रहण करता है। भूभागीय स्थूल जलवायु विज्ञान वायुमंडल लंबी धारा के प्रतिमानों की लाक्षणिक व्यवस्था को तथा संक्षिप्त मौसम व्यक्तिक्रम के सामान्य व्यवहार को शामिल करता है (बैरी 1970)। जैसा कि ली (1966) ने गौर किया था कि, मौसम विज्ञानी तथ्यों के भौगोलिक वितरण कुछ हद तक उनकी सबसे से बड़ी प्रणालियों द्वारा संचालित होते हैं। इसलिए स्थूल जलवायु विज्ञान के लिए यह सत्य है कि ये केवल बड़े पैमाने पर जलवायु के प्रतिमान तथा पृथ्वी की सतह के भूगोल के बीच संबंध में संचयी सतहों के बड़े वायुमंडलीय प्रसार पर भी असर दिखाता है। यह पृथ्वी के बड़े क्षेत्रों की जलवायु के लक्षणों से तथा बड़े पैमाने पर वायुमंडलीय गति से जुड़ा होता है जो जलवायु का कारण है। पैमाने बहुत छोटे भी हो सकते हैं जैसे बाड़ का एक तरफ का भाग, पत्ती का विपरीत सिरा। सूक्ष्म पैमानों पर जलवायु में मानव की साधारण कोशिशों से प्रभावशाली संशोधन किया जा सकता है।
2. **मध्य जलवायु विज्ञान:** यह जलवायु के छोटे क्षेत्रों 10-100 किलोमीटर के बीच के क्षेत्रों, उदाहरण के लिए शहरी जलवायु का अध्ययन या स्थानीय जलवायु प्रणाली जैसे टारनिडो या बिजली का गिरना, के अध्ययन से संदर्भित है। मध्य जलवायु विज्ञान स्थूल तथा सूक्ष्म जलवायु विज्ञान के बीच स्थान ग्रहण करता है। इस प्रकार के जलवायु विज्ञान के कार्यक्षेत्र स्थूल जलवायु विज्ञान से छोटे जलवायु विज्ञान से बड़े होते हैं। परंतु ये अनिश्चित रूप से जलवायु विज्ञान का एक सामान्य क्षेत्र के लिए प्रतिनिधित्व नहीं करता है।
3. **सूक्ष्म जलवायु विज्ञान:** यह जमीन की सतह के बहुत पास या बहुत छोटे क्षेत्रों लगभग 100 कि.मी. से कम की जलवायु का अध्ययन है। सूक्ष्म जलवायु के अंतर्गत, तापमान का विवरण, हवा की निम्न अंचलों में आर्द्रता तथा हवा की उपस्थिति, वनस्पति परिवर्तन तथा सुरक्षित पट्टी का प्रभाव, शहरीकरण का संशोधित प्रभाव आते हैं। ये सूक्ष्म मौसम विज्ञान पैमाने पर मध्य भागों की स्थिति तथा स्थाई रूप से दोहराये जाने वाले तथ्यों का शोध करता है। छोटे पैमाने पर हवा की प्रसार प्रणाली में पर्वतों तथा घाटी की हवायें जमीनी-समुद्र की हवा का प्रसार तथा अधोगामी हवायें सम्मिलित हैं। स्थूल जलवायु विज्ञान बड़े पैमाने पर एक बड़े क्षेत्र की जलवायु का अध्ययन है। यद्यपि पृथ्वी का, इसकी धाराओं, नदियों तथा वायुमंडल सतत प्रदूषण स्वयं ही इस प्रकार के संशोधनों को कर देता है। जलवायु अन्य वैज्ञानिक क्षेत्रों में अत्यधिक महत्वपूर्ण हो गया है। भूगोल विज्ञानी, जल विज्ञानी, समुद्र विज्ञानी मात्रात्मक उपायों का प्रयोग हमारे वायुमंडलीय वातावरण के वायुमंडलीय पर्यावरण के प्रभाव का विश्लेषण तथा वर्णन करने के लिए करते हैं।

जलवायु वर्गीकरण प्राथमिक रूप से भूगोल के क्षेत्र में आता है। जलीय चक्र में वायुमंडल की आधारभूत भूमिका जल विज्ञान के अध्ययन का एक अनिवार्य हिस्सा है। हवा तथा पानी का मापन, हवा तथा समुद्र के बीच ऊर्जा के परिवर्तन को समझने के लिए आवश्यक होता है। जैसा कि समुद्री भूगोल के अध्ययन में जांचा जाता है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. सबसे अधिक पाई जाने वाली ग्रीन हाउस गैस निम्न में से कौन-सी है?

   (क) कार्बनडाइऑक्साइड (ख) मीथेन

   (ग) जलवाष्प (घ) नाइट्रस ऑक्साइड

2. अयोड ने जलवायु विज्ञान के कितने स्थानीय उपविभागों (क्षेत्रों) की खोज की थी?

   (क) चार (ख) छह

   (ग) सात (घ) आठ

1.3 मौसम विज्ञान और जलवायु विज्ञान में संबंध

समय की अल्प अवधि में वायुमंडल की स्थिति को मौसम कहते हैं। उदाहरण के लिए, दिन प्रति दिन और एक सप्ताह तक की अवधि, जबकि दीर्घ अवधि में वायुमंडल की औसत स्थिति जलवायु कहलाती है। घर से बाहर निकलते ही आपका सामना मौसम के अनेक पहलुओं से होता है। आर्द्रता, वायु तापमान तथा दबाव, हवा की गति और दिशा, मेघ आवरण तथा प्रकार और अवक्षेपण की मात्रा और रूप अल्पकालिक स्थितियों की वायुमंडलीय विशेषताएं हैं जिन्हें हम मौसम कहते हैं।

कहा जाता है कि ''जलवायु वह है जिसकी आप आशा करते हैं; जो आपको मिलता है वह मौसम है।'' दूसरे शब्दों में, आप जनवरी के महीने में रूस में हिमपात की आशा कर सकते हैं, लेकिन उस महीने के किसी विशेष दिन हिमपात हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है। किसी क्षेत्र अथवा देश की जलवायु समय की एक लंबी अवधि में औसत मौसम के आधार पर ज्ञात की जाती है। यदि किसी विशेष क्षेत्र में वर्ष भर में वर्षा की अपेक्षा शुष्क दिवस अधिक होते हैं तो वहां की जलवायु को शुष्क कहा जाएगा। इसी प्रकार गर्म की अपेक्षा अधिक शीत दिवसों वाले क्षेत्र की जलवायु शीत जलवायु कहलाएगी।

सूर्य अंततोगत्वा मौसम के लिए जिम्मेदार है। पृथ्वी के स्थल और जल भाग द्वारा भिन्न प्रकार से सूर्य की किरणों का अवशोषण किया जाता है (सौर विकिरण की समान मात्रा जल की अपेक्षा स्थल भाग को अधिक शीघ्रता के साथ गर्म करती है)। तापन का यह अंतर वायुमंडल के तापक्रम और दबाव में अंतर उत्पन्न करता है।

जब किसी स्थान पर हवा गर्म होती है, यह हल्की होकर वायुमंडल में ऊपर की ओर उठती है। जब हवा ठंडी होती है, तब यह भारी होकर नीचे की ओर जाती है। वायुपुंजों में दबाव के इस अंतर के कारण हवाएं चलती हैं। ये हवाएं उच्च दबाव के क्षेत्र

से निम्न दबाव के क्षेत्र की ओर चलती हैं। ऊपरी वायुमंडल में तेज गति से चलने वाली हवाएं, जिन्हें जेट वायुधारा कहा जाता है, विश्व भर में मौसम की नियंत्रक व संचालक मानी जाती हैं।

टिप्पणी

चक्रवात कही जाने वाली बृहद मौसम प्रणालियां उत्तरी गोलार्द्ध में वामावर्त (दक्षिणी गोलार्द्ध में दक्षिणावर्त) चलती हैं। उनका केंद्र न्यून दबाव क्षेत्र होने के कारण उन्हें 'न्यून' भी कहा जाता है। बादलों का बनना तथा अवक्षेपण सामान्यत: इन्हीं पद्धतियों से संबद्ध हैं। प्रतिचक्रवात अथवा 'उच्च' विपरीत दिशा में घूर्णन करते हैं तथा उच्च दबाव के क्षेत्र होते हैं। ये सामान्यत: स्वच्छ आकाश और स्थिर मौसम का निर्माण करते हैं।

1.3.1 मौसम विज्ञान

दो वायुपुंजों के बीच की सीमा को मौसमाग्र कहा जाता है। यहां हवा की गति, तापमान और आर्द्रता में होने वाले अकस्मात वायुमंडलीय अस्थिरता उत्पन्न होती है। वायुमंडल में इन कारकों में असंतुलन उत्पन्न होने के कारण पृथ्वी पर तेज हवाएं चलती हैं. वर्षा होती है. बर्फ पड़ती है तथा कभी-कभी बादल गरजते हैं और बिजली चमकती है।

आप के द्वारा महसूस किए जाने वाले मौसम को अनेक कारक प्रभावित करते हैं। इन कारकों में आपकी अक्षांश अथवा अन्य भूभौतिकी विशेषताओं के रूप में परिभाषित किया जाता है। यद्यपि जलवायु के हजारों सूक्ष्म जलवायु रूप हैं तदपि जलवायु को चार मूल रूपों में विभाजित किया जा सकता है। गर्म, नम जलवायु की विशेषता अत्यधिक वर्षा और बहुधा गहन एवं तीव्र रासायनिक ऋतुप्रभाव होते हैं, लेकिन न्यूनतम तापमान के कारण इसकी दर नाटकीय रूप से कम हो जाती है। ठंडी खुश्क जलवायु में न्यूनतम ऋतुप्रभाव के लक्षण होते हैं, लेकिन यांत्रिक ऋतुप्रभाव (उदाहरण के लिए बर्फबारी) धीमा भूदृश्य विकास उत्पन्न करती है। गर्म, शुष्क जलवायु में प्राय: गहन यांत्रिक ऋतुप्रभाव दृष्टिगोचर होते हैं (उदाहरण के लिए, तेज हवाएं, रेतीले-तूफान, आदि)।

मौसम का प्रभाव पृथ्वी की सतह पर भी पड़ता है। मौसम का प्रभाव इसकी चरम स्थितियों जैसे कि लंबे समय तक गर्मी, सर्दी, बरसात, सूखा और धुंध आदि में अधिक स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त, तूफान, और चक्रवात, बर्फीले तूफान, वर्षा और बाढ़ जैसी कम अवधि की परंतु गहन घटनाएं भी सामाजिक और भूदृश्य दोनों को नाटकीय रूप से प्रभावित करती हैं।

सार्वजनिक स्वास्थ्य और संपत्ति पर मौसम के प्रभाव को कम करने की चिंता मौसम विज्ञानियों तथा अन्य वैज्ञानिकों द्वारा बेहतर मौसम पूर्वानुमान की दिशा में किए जा रहे सतत प्रयासों हेतु एक महत्वपूर्ण प्रेरणातत्व है।

मौसम और जलवायु दोनों में होने वाले परिवर्तनों से संबंधित मौसम विज्ञान संबधी संवृत्ति का अध्ययन उथल-पुथल सिद्धांत के विकास में एक महत्वपूर्ण घटक है। उथल-पुथल सिद्धांतों का उपयोग मौसम की जटिल पद्धतियों के अध्ययन हेतु किया जाता है। इसमें यादृच्छिक, अव्यवस्थित प्रतीत होने वाली प्रक्रियाओं से नई प्रक्रियाएं जन्म लेती हैं, जो अधिक अनुमेय होती हैं।

मौसम पूर्वानुमान को प्रभावित करने वाले अधिकांश मौसम तत्वों को प्रत्यक्ष रूप से देख पाना संभव नहीं है। उनको केवल उनके द्वारा डाले गए प्रभावों से जाना जा सकता है। मौसम परिवर्तनों के अधिकांश भाग का मापन उपकरणों द्वारा किया जाता है। उदाहरण

टिप्पणी

के लिए वायु का प्रत्येक वस्तु पर महत्वपूर्ण दाब पड़ता है। समुद्र तल पर वायुमंडल का दाब लगभग 15एलबी/आईएन2 (लगभग 1 कि.ग्रा./सेमी 2) होता है। पारा वायुदाबमापी (मर्करी बैरोमीटर) वायुमंडलीय दाब मापन हेतु प्रयुक्त मानक उपकरण है। बेरोमीटर के भौतिक विज्ञान का इतिहास 1643 ईस्वी में प्रथम बार इतावली वैज्ञानिक इवानगेलिस्ता टोरिसेली (1608-1647) द्वारा किए गए परीक्षणों जितना प्राचीन है। कांच की एक बंद नली में पारे का एक कॉलम भरा जाता है। इसको उलटा कर एक पारे की डिश में डुबोया जाता है। इस प्रकार कालम का भार वायुमंडलीय दाब द्वारा संतुलित किया जाता है तथा कालम की लंबाई उस भार का माप उपलब्ध कराती है। समुद्र तल पर औसत वायुमंडल दाब 760 एमएमएचजी 1,013 होता है। ऊंचाई बढ़ने के साथ-साथ वायु घनत्व और दाब घटता जाता है और भिन्न मौसम पद्धतियों के अनुसार कम अथवा अधिक होगा। मौसम मानचित्रों पर समान दाब के बिंदु समदाब रेखाओं द्वारा निरूपित किए जाते हैं।

हवा, इसकी व्यापक परिभाषा के रूप में, पृथ्वी की सतह के सापेक्ष गतिमान वायुपुंज है। यह वायु गति प्रायः क्षैतिज होती है। तथापि, स्थानिक ऊर्ध्व वायु गति (ऊपर की ओर अथवा नीचे की ओर) भी होती है जो तूफान आदि के समय देखी जा सकती है। हवा का वर्णन गति और दिशा के दो गुणों द्वारा किया जाता है। हवा की गति का मापन एनिमोमीटर द्वारा एमआई/घंटा, नक्कट अथवा कि.मी./घंटा इकाई में किया जाता है। हवा कि दिशा का ज्ञान कंपास बियरिंग से होता है। उदाहरण के लिए दक्षिणी हवाएं दक्षिण दिशा से चलती है। धरती की सतह के निकट चलने वाली हवाओं पर चार प्रकार के बल नियंत्रण करते हैं जिससे हवाएं उच्च दाब से निम्न दाब की ओर चलती हैं। घूर्णन बल पृथ्वी के अपने अक्ष पर घूमने के कारण उत्तरी गोलाई में प्रत्येक वस्तु अपनी दायीं ओर और दक्षिणी गोलार्द्ध में अपने पथ के बायीं ओर अपवर्तित होती है। इसलिए, उत्तरी गोलार्द्ध में उच्च-दाब पद्धतियां (वायुमंडलीय विपथन क्षेत्र) दक्षिणावर्त और न्यून दाब पद्धतियां (वायुमंडलीय विपथन क्षेत्र) वामावर्त घूर्णन करती हैं। दक्षिणी गोलाई में इन घूर्णन पद्धतियों का क्रम विपरीत हो जाता है।

वायुपुंजों के उद्‌गम और प्रकारों की परिभाषा हेतु तापमान और आर्द्रता अत्यंत महत्वपूर्ण होते हैं। वायुपुंज के तापीय गुणों का निर्धारण ग्लोब पर इसकी अक्षांश-स्थिति द्वारा इसके जलवाष्प कणों की मात्रा का निर्धारण इसकी नीचे की सतह, जल अथवा थल, द्वारा किया जाता है। उदाहरण के लिए ध्रुवीय वायु ठंडी और शुष्क होती है, जबकि उष्णकटिबंधीय वायु गर्म और आर्द्र होती है। संक्षेप में, इन दो प्रकार के वायुपुंजों में होने वाले परिवर्तन अधिकांश वैश्विक मौसम गतिविधियों के जनक होते हैं। इन विपरीत वायुपुंजों के टकराव की परिणति ऊपरी अर्मि विक्षोभ के रूप में होती है। गर्म, आर्द्र उष्णकटिबंधीय हवाएं तूफानों के विनाशकारी बल स्रोत का कारण बनती हैं। मौसम केंद्रों के संपूर्ण नेटवर्क में नियमित अंतरालों पर तापमान और आर्द्रता मापी जाती है। मौसम केंद्रों में उपलब्ध मानक उपकरणों में एक शुष्क तथा एक आर्द्र बल्ब थर्मामीटर होता है तथा इन दोनों के मापांकों का उपयोग ओसांक निर्धारण हेतु किया जाता है। अधिकतम और न्यूनतम तापमान के मापन हेतु प्रयोग में लाया जाता है। वायु में सापेक्ष आर्द्रता का मापन आर्द्रतामापी द्वारा किया जाता है। पूर्ण स्वचलित केंद्रों में मौसम संबंधी सूचनाओं का मापन और संप्रेषण इलेक्ट्रानिक संवेदियों द्वारा किया जाता है।

दैनिक मौसम पूर्वानुमानों में, तापमान और आर्द्रता के अतिरिक्त, ग्रीष्म के दौरान गर्मी सूचकांक और सर्दियों में शीत सूचकांक की जानकारी दी जाती है। ये पूर्वानुमान

टिप्पणी

संकेत मानवजाति को ताप और शीत की अति से संभावित खतरों के संबंध में पूर्व चेतावनी का कार्य करते हैं। तापमान और आर्द्रता के संयोजन से ताप सूचकांक तापमान की अनुभूति का मापांक प्रस्तुत करता है। मानव स्वास्थ्य की दृष्टि से गर्मी बहुत अधिक बढ़ने का अर्थ मानव गतिविधियां अधिक थका देने वाली होने का संकेत है। इसका परिणाम गर्मी से पैदा होने वाली बीमारियों, शरीर पर दाने निकलना, अत्यधिक थकान होना या लू लगने के रूप में देखा जा सकता है। इसके विपरीत शीतकाल में हवा सर्दी हिमदग्धता अथवा शीतज्वर पर पड़ता है। उदाहरण के लिए 20 एमपीएच (32.18 किमी/घंटा) की हवा गति पर 20 डिग्री फारेनहाइट (–6.66 डिग्री से.) का तापमान –10 डिग्री फारेनहाइट (–12.2 डिग्री से.) की अनुभूति देगा। आर्द्रता वह कारक है जो न केवल मौसम गतिविधि को जन्म देता है अपितु पृथ्वी पर जीवन को संभव भी बनाता है।

जल तीन अवस्थाओं वाष्प, द्रव अथवा हिम के रूप में पाया जाता है। जल का अदृश्य गैसीय रूप जल वाष्प वायुमंडल में सदैव विद्यमान रहता है। इसकी व्याख्या वायुमंडल के आंशिक दाब के रूप में की जाती है अत: वायुदाब की भांति मापन एमएमएचजी (MMHG) में किया जाता है। जल वाष्पकण अवक्षेपण के ओस और धुंध, बादल और कोहरा तथा आर्द्र और प्रशीतित रूपों के लिए नमी की आपूर्ति करते हैं।

धूप, मेघ और अवक्षेपण वास्तव में मौसम के दिखाई देने वाले तत्व हैं। पारंपरिक रूप से मौसम का पूर्वानुमान प्रमुख रूप से मेघ प्रेक्षण पर आधारित था। मेघों का आकार, आकृति और अवस्थिति वायु संचलन और जल में वाष्पकण से द्रव अथवा हिम रूप में होने वाले परिवर्तनों के घोतक हैं। मेघों के वर्गीकरण के संबंध में प्रथम महत्वपूर्ण योगदान 1802 ईस्वी सन में अंग्रेज वैज्ञानिक ल्यूक हावर्ड द्वारा दिया गया था। ल्यूक हावर्ड के प्रेक्षणों के आधार पर मेघों को तीन वर्गों - पक्षाभ मेघ, स्तरी मेघ और कपासी मेघ में बांटा गया था। इस मूल योजना के आधार पर मेघों की आधुनिक वर्गीकरण पद्धति तैयार हुई है। इस पद्धति के अनुसार वायुमंडल का निचला भाग 10 एमआई (16 किमी) मेघों के तीन स्तरों में बांटा गया है। यह विभाजन मेघों की जल धारण अवस्थाओं के आधार पर किया गया है। निम्न मेघों में जल की बूंदें होती हैं, मध्य मेघों में जल की बूंदों तथा हिम कणों का मिश्रण होता है तथा उच्च मेघों में केवल हिम कण होते हैं। कुछ प्रकार के मेघ एक स्तर तक ही सीमित होते हैं जैसेकि निचले स्तर में स्तरी मेघ, स्तरकपासी मेघ तथा लघुकपासी, मध्य स्तर में कपासी मध्य तथा कपासी स्तरी और उच्चतर स्तर में पक्षाभ और स्तरीपक्षाभ मेघ। अन्य प्रकारों में दो स्तर हो सकते हैं नामत: स्तरी जलमेध और कपासी उत्सर्पी मेघ जो मेघों के निचले और मध्य दोनों स्तरों के साथ-साथ मध्य और उच्चतर स्तरों में कपासीपक्षाभ मेघों में पाए जाते हैं। एक तीसरा प्रकार सभी तीनों स्तरों में मौजूद हो सकता है जैसेकि विशाल कपासी संकुल मेघ तथा जलकपासी मेघ।

उनके मेघ आवरण में उष्ण एवं शीताग्र भी प्रत्यक्ष होते हैं। उष्णाग्र के प्रथम संकेत पक्षाभ तथा स्तरीपक्षाभ मेघों से प्राप्त होते हैं जिनके अनुवर्ती प्रच्छन्न स्तरीमध्य और घने स्तरीजल मेघ होते हैं जिनमें लगातार अवक्षेपण होता है। कभी-कभी स्तरी मेघों के भ्रंश भी दिखाई देते हैं। उष्णाग्र के गुजरने के बाद अवक्षेपण रुक जाता है तथा मेघ आवरण भंग हो जाता है। शीताग्र के विशिष्ट मेघ, जलकपासी मेघ होते हैं जो वायु, स्तरीजल मेघों की अस्थिरता पर निर्भर होते हैं। अवक्षेपण से हल्की बौछार से भारी बौछार भारी जलवर्षा के साथ मेघ गर्जन और आकाशीय बिजली की चमक भी हो सकती है।

अनेक बार मौसम का सार्वजनिक स्वास्थ्य पर तात्कालिक प्रभाव बवंडर, चक्रवात, बाढ़, हिमपात और बर्फीले तूफान तथा लंबे समय तक अत्यधिक गर्मी या ठंड के रूप में देखा जा सकता है। विगत वर्षों में बवंडर तथा चक्रवातों को बेहतर तरीके से समझने के लिए महत्वपूर्ण अनुसंधान प्रयास किए गए हैं। उग्र मौसम पद्धतियों के मार्ग के बेहतर पूर्वानुमान और पूर्व चेतावनियां जारी करने द्वारा मौसम के कारण होने वाली जनहानि की घटनाओं को रोकने में पर्याप्त सहायता मिली है। अब मानव स्वास्थ्य पर मौसम के अप्रत्यक्ष प्रभावों पर ध्यान केंद्रित किया जा रहा है। यह देखा गया है कि कुछ विशेष प्रकार की मौसम स्थितियों में विशेष प्रकार के कीड़े-मकोड़े बीमारी फैलने का कारण बनते हैं। ऐसी घटना 1999 में संयुक्त राज्य अमेरिका के पूर्वी क्षेत्रों में हुई थी। वहां कई सप्ताह तक सूखे और गर्मी के कारण इनसिफिलाइटिस विषाणु के वाहक मच्छरों के प्रजनन के लिए आदर्श स्थिति उत्पन्न हो गई थी। मौसम की स्थितियां प्रदूषण के प्रभाव में वृद्धि का कारण हो सकती हैं। उदाहरण के लिए कोहरे और कुहांसे में फंसे प्रदूषण गंभीर प्रकार की श्वसन समस्याएं पैदा कर सकते हैं। मौसम और पर्यावरण स्वास्थ्य के अंतरसंबंधों का मुद्दा सार्वजनिक स्वास्थ्य पर प्रतिकूल मौसम तथा जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम करने हेतु अपेक्षित सटीक पूर्वानुमान क्षमता विकास के क्रम में मौसम विज्ञान संबंधी अनुसंधान को और भी आवश्यक बना देता है।

1.3.2 जलवायु विज्ञान

जलवायु विज्ञान एक लंबे समय की स्थिति के लिए वायुमंडल या जलवायु का अध्ययन है। मौसम के घटक जो जलवायु की व्याख्या करते हैं वही घटक होते हैं जो एक क्षेत्र के लिए जलवायु के प्रकार की व्याख्या करते हैं। ताप, अवक्षेपण तथा हवा के जलवायु ही केवल ऐसे मापदण्ड नहीं हैं जो जलवायु विज्ञान में शामिल हैं; यद्यपि, इसी क्षेत्र की जलवायु को दर्शाने के लिए बहुत महत्वपूर्ण तत्व हैं। ये निम्न प्रकार के होते हैं-

- तापमान
- आर्द्रता
- सूर्य के चमकने की अवधि
- सूर्य विकिरण
- हवा का द्रव्यमान
- दबाव प्रणाली (तथा साइक्लोन पट्टी)
- समुद्री धारायें
- स्थलाकृति

तापमान

नि:संदेह तापमान एक बहुत महत्वपूर्ण जलवायु तत्त्व है। किसी क्षेत्र का तापमान अक्षांश या आने तथा जाने वाले विकिरणों के वितरण पर निर्भर करता है पर सतह की प्रकृति (जमीन या जल) पर उन्नाश तथा व्याप्त वायु पर निर्भर करता है। जलवायु विज्ञान में सामान्यत: प्रयुक्त होने वाला वायुतापमान सतह पर रिकार्ड किया गया तापमान होता है। आर्द्रता या उसकी कमी संशोधित तापमान होता है। एक क्षेत्र में नमी का अधिक होना कम तापमान के कम प्रभाव क्षेत्र को दर्शाता है। गर्म हवा में ठंडी हवा की अपेक्षा नमी बादलों और अवक्षेपनों की संभावना बढ़ जाती है। संचयन, वाष्पोत्सर्जन तथा नमी जलवायु के

अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्व हैं। यह एक विशिष्ट क्षेत्र के लिए जलवायु के प्रकार का निर्धारण करता है।

टिप्पणी

आर्द्रता

आर्द्रता को हम आपेक्षिक आर्द्रता या सूक्ष्म आर्द्रता या विशुद्ध आर्द्रता या वेब बल्व तापमान या ओस-बिंदु तापमान कह सकते हैं।

सूर्य के चमकने की अवधि

यह एकदम साफ तेज सूर्य के चमकने की अवधि होती है (जब तीखी परछाई बनती है) जिसे सनसाइन रिकार्डर द्वारा मापा जाता है, जिसमें एक पेपर की पत्ती पर जरा सी जगह में सूर्य के कणों को जलाया जाता है। सूर्य के चमकने का समयाकाल घंटा प्रति दिन या महीने में अभिव्यक्त करते हैं।

सूर्य विकिरण

सूर्य विकिरण निश्चित रूप से जलवायु का एक अत्यधिक महत्वपूर्ण तत्व है। सूर्य विकिरण सर्वप्रथम पृथ्वी की सतह को गर्म करता है जो उसके ऊपर की वायु का तापमान निर्धारित करता है। सूर्य विकिरण, वाष्पोत्सर्जन को उत्पन्न करता है जब तक कि वहां जल उपस्थित होता है। हवा को गर्म करना उसके स्थायित्व का निर्धारण करता है जो बादल के बनने तथा अवक्षेपण की क्रिया पर प्रभाव डालती है। पृथ्वी की सतह का असमान रूप से गर्म होना दबाव के स्तर को बनाता है, जिसके परिणास्वरूप हवा उत्पन्न होती है।

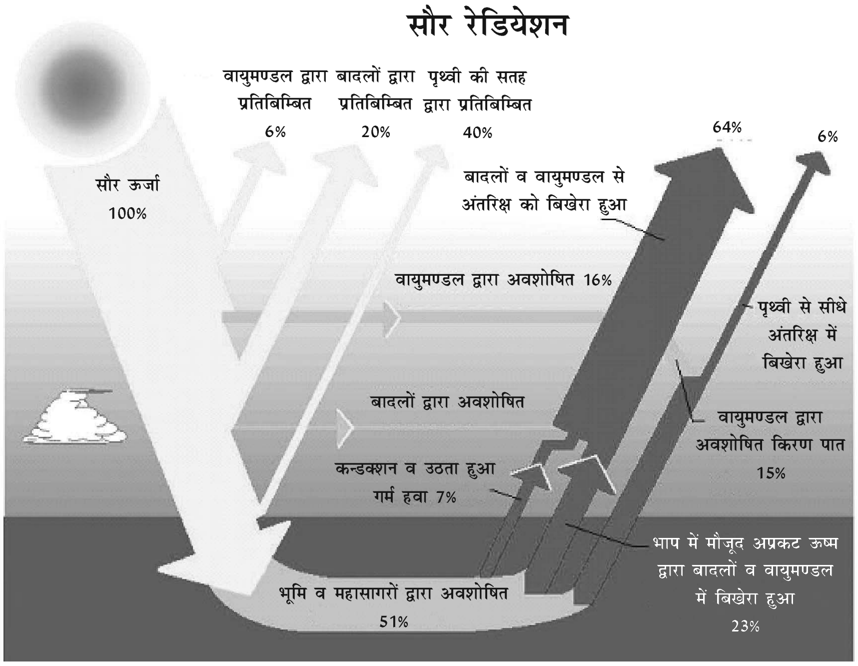

सूर्य विकिरण की प्राप्ति

हवा का द्रव्यमान

जलवायु के तत्त्वों के रूप में वायु द्रव्यमान में तापमान, आर्द्रता और स्थिरता के लक्षण होते हैं। किसी वायुमंडलीय भाग में हवा के द्रव्यमानों का स्रोत उस जगह की जलवायु

की विविधता का निर्धारण करता है। उदाहरण के लिए, मध्य अक्षांश की तूफानी जलवायु, बाउंड्री जोन में स्थित अत्यधिक विपरीत स्वभाव के हवा के द्रव्यमानों का परिणाम है, जिसे पोलर फ्रंट कहते हैं।

टिप्पणी

दबाव प्रणाली

दबाव प्रणाली, जो भिन्न जलवायु क्षेत्रों का लक्षण है, जलवायु पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालती है। सामान्यतः कम दबाव वाले स्थान नम तथा अधिक दबाव वाले स्थान सूखे होते हैं। अवक्षेपण का मौसमीकरण, विश्वीय तथा क्षेत्रीय दबाव प्रणाली की मौसमी गति से प्रभावित होता है। $10°–15°$ अक्षांश पर स्थित जलवायु एक महत्वपूर्ण नमी का अनुभव करती है तथा यह क्षेत्र सूखा होता है। इसी प्रकार, एशिया की जलवायु मानसून के कारण हवा की दिशाओं के उतार-चढ़ाव से प्रभावित होती है। दबाव का प्रभावशाली होना सूर्य विकिरण की प्राप्ति पर भी प्रभाव डालता है। उच्च दबाव से प्रभावित क्षेत्रों में बादल कम दिखते हैं इसलिए ऐसे क्षेत्रों में पर्याप्त रूप से सूर्य की किरणें पहुंचती हैं, विशेषकर निम्न अक्षांशों पर।

समुद्री धारायें

समुद्री धारायें महत्वपूर्ण रूप से किसी जलवायु के तापमान तथा अवक्षेपन को प्रभावित करती हैं। ठंडी धाराओं के आस पास की जलवायु सूखी होती है। इसका कारण यह है कि ठंडी समुद्री धारा हवा को स्थायित्व प्रदान करती है तथा अवक्षेपन एवं बादल निर्माण के लिए अवरोध उत्पन्न करती है। ठंडी समुद्री धाराओं के ऊपर बह रही हवा की ऊर्जा पानी के द्वारा अवशोषित कर ली जाती है। यही कारण है कि आसपास के तटीय क्षेत्रों का तापमान सामान्य रहता है। इसके विपरीत, गर्म समुद्री धाराओं के ऊपर बह रही हवा अस्थिरता और अवक्षेपण उत्पन्न करने में सहायक होते हैं। साथ ही, गर्म समुद्री धाराएं शीतकाल में वायु तापमान को आसपास की भूमि के तापमान से अधिक कर देती हैं। इसी कारण सर्दी में समुद्र के पास की जमीन किनारों से गर्म होती है।

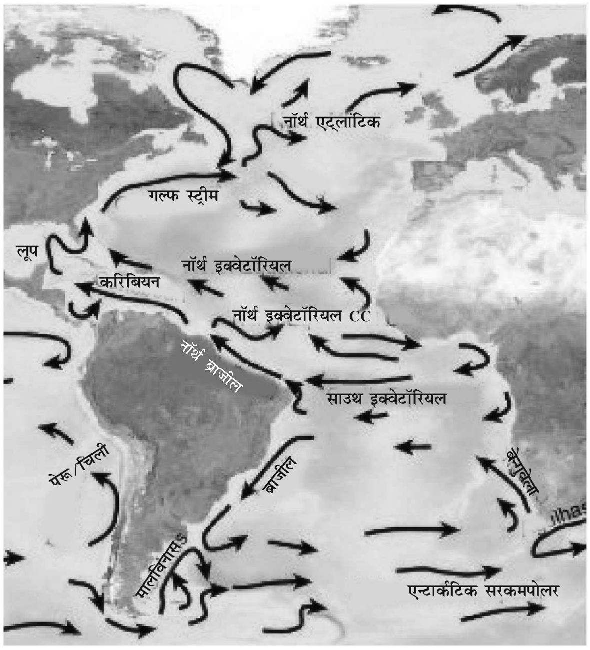

समुद्री धारायें

स्थलाकृति

स्थलाकृति जलवायु को विविध प्रकार से प्रभावित करती है। प्रसारित होने वाली वायु से पर्वतों की सहस्थिति बनने की क्रिया अवक्षेपण को प्रभावित करती है। ऐसी ढालें जो हवा की ओर रुख रखती हैं, वे पर्वतीय उठान के कारण अधित अवक्षेपण का अनुभव करती हैं। दूसरी ओर, पहाड़ की तलहटी में कम वृष्टि होती है क्योंकि यह वृष्टि छाया क्षेत्र में पड़ती है। हवा का तापमान पर्वतों की नई स्थिति तथा उनकी ढ़ालों से प्रभावित होता है। जो ढ़ालें सूर्य की ओर रुख रखती हैं वे अपेक्षाकृत गर्म होती हैं। अधिक ऊंचाई पर तापमान कम होता है। पर्वतों का जलवायु पर भी वही प्रभाव होता है जो अक्षांश का होता है। लम्बी पर्वत शृंखलाओं पर जैसे-जैसे हम ऊंचाई पर जाते हैं जलवायु के विभिन्न क्षेत्र (जोन) पाये जाते हैं।

एक खास क्षेत्र के तापमान के लक्षणों को प्रभावित करने वाले कारकों की मुख्य श्रेणी में उस जलवायु के तत्व होते हैं जो कारकों की तरह कार्य करते हैं।

जलवायु की रूपरेखा को प्रभावित करने वाले कारक

जलवायु कारक, जैसे कि उच्च तापमान, भारी अवक्षेपण तथा उच्च आर्द्रता, ये सब मिलकर एक वनस्पतीय प्रवर्धित क्षेत्र के लिए आदर्श स्थिति पैदा करते हैं। ऐसे स्थान पर हजारों प्रकार की पौधों की प्रजातियां पायी जाती हैं। इस प्रकार के क्षेत्रों के वनस्पति प्रवर्धन को हम तीन श्रेणियों में बांट सकते हैं–

- सेल्वा या वर्षा वन
- जंगल
- समुद्री किनारों का क्षेत्र

सेल्वा चौड़ी पत्तियों वाले सदाबहार पेड़ होते हैं। ये पेड़ छतरी बनाते हैं जिसके परिणामस्वरूप सूर्य की किरणें जंगल की जमीन पर नहीं पहुंच पाती हैं। सूर्य की रोशनी की कमी के कारण ऐसे क्षेत्रों में घास नहीं उगती है। यहां वनस्पति लगातार वृद्धि करती है जिसमें कोई अंतराल नहीं होता है।

इस प्रकार के वनस्पति प्रवर्धन में जानवरों का जीवन भरापूरा तथा विविध होता है। कीड़े-मकोड़े पूरे क्षेत्र को संक्रमित करते हैं, जिस संक्रमण का कोई अंत नहीं होता है। मच्छर, मकड़े, चीटे, दीमक तथा सुंदर तितलियां इन क्षेत्रों में बहुतायात में मिलते हैं। बंदर, बहुत ही धीरे चलने वाला एक प्रकार का स्तनपायी तथा चमगादड़ सामान्य रूप से पाये जाते हैं। बिल्लियां, जंगली सूअर तथा गोरिल्ला भी यहां पाये जाते हैं। नदी की धारायें पूरी तरह से मछलियों और घड़ियालों से भरी होती हैं। गेंडों का झुंड अफ्रीका में पाया जाता है।

इन क्षेत्रों में जनसंख्या बहुत कम होती है। एमाजोन बेसिन में जनसंख्या घनत्व प्रतिवर्गमील में दो लोगों से भी कम है। घाटियों तथा नदी के किनारों के क्षेत्रों में परिवहन सुविधा के साथ कुछ जनसंख्या का घनत्व पाया जाता है। ब्राजील के समुद्री किनारे का क्षेत्र, गुनिया कोस्ट तथा नाइजीरिया जनसंख्या के लिए अनुकूल परिस्थितियां हैं। लेकिन दक्षिण पूर्वी एशिया में स्थिति इससे भिन्न है। यहां इंसान जंगलों पर राज करता है इसलिए यहां जनसंख्या घनत्व किसी भी वर्षा तनों के क्षेत्र से अधिक है। आधुनिक संदर्भ में, पश्चिमीकरण की तुलना में यहां रहने वाले लोग वैज्ञानिक, तकनीकी तथा कुछ हद तक

टिप्पणी

सामाजिक रूप से विकास रेखा के बहुत नीचे हैं। यहां का जीवन अत्यन्त साधारण है तथा रहने का ढंग अवश्यकतानुसार बहुत ही सामान्य है। यहां भोजन आसानी से प्राप्त हो जाता है, इसलिए यहां के लोगों को कुछ भी संकलित करने की आवश्यकता महसूस नहीं होती। परिणामस्वरूप, किसी भी प्रकार की जिम्मेदारी को ये नहीं उठाते हैं। अफ्रीका तथा दक्षिण अमेरिका में रहने वाले लोग शिकार तथा फल-फूलों पर निर्भर करते हैं। दूसरी जगह से लाया गया कृषि विज्ञान, जिसे दक्षिण अमेरिका में मिलिया, अफ्रीका के कुछ भागों में फंग तथा इंडोनेशिया में लाडांग कहते हैं, का प्रयोग किया जाता है। 'बनाना परिवार' के सदस्य यहां उत्पन्न किये जाते हैं। इसकी पत्तियों के रेशेदार भाग, कपड़ों की बुनाई के लिए कच्चे माल की तरह प्रयोग होते हैं।

गांव नदियों के किनारे बसे होते हैं क्योंकि पानी तथा मछली दोनों ही आसानी से प्राप्त हो जाते हैं। कुछ क्षेत्रों में खेती बाड़ी बहुत कम रूप से की जाती है क्योंकि यहां लोग साल भर उगने वाली फसलों, जैसे कि नारियल, उगाये हुए पादप समूहों, आदि पर ज्यादा ध्यान देते हैं। अभ्रमणशील जीवन निर्वाह (सेडेन्टरी सबसीसटेन्स) में दक्षिण एशियाई लोगों के जीवन को सबसे अधिक प्रभावित किया है। जावा संसार का सबसे अधिक घनी आबादी वाला क्षेत्र है। यहां की मुख्य फसल चावल है।

वायुमंडलीय तापमान

वायुमंडल का तापमान विषुवत रेखा के ऊपर (अक्षांश) तथा सतह से ऊंचाई (दक्षांश) की दूरियों पर भिन्न होता है। इसे प्रभावित करने वाल अन्य कारक हैं– ऋतुएं, दिन-रात तथा मौसम। यदि तापमान की ये सारी विविधतायें विश्वीय स्तर पर औसत हो, तो वायुमंडल के लिए एक औसत तापमान का प्रतिमान निश्चित किया जा सकता है। तापमान की उर्ध्वाधर रूपरेखा (वह मार्ग जहां तापमान ऊंचाई के साथ बदलता है) वायुमंडल को चार परतों में बांटती है: क्षोभमंडल, बाह्यमंडल, समताप मंडल तथा तापमंडल।

हमारे वायुमंडल का तापमान, जीवमंडल, शिलामंडल, जलमंडल तथा वायुमंडल के अंतर्व्यवहार के विशिष्ट समुच्चयों द्वारा संचालित होता है। ऊर्जा सतत रूप से सतह तथा उसके ऊपर की वायु के बीच परिवर्तित होती रहती है तथा साथ ही साथ भूमंडल के चारों ओर प्रसारित होती है।

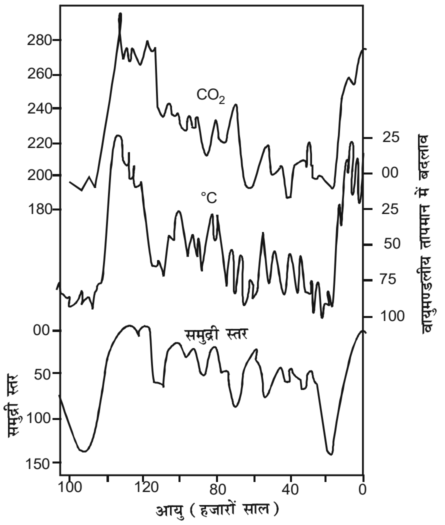

वायुमंडलीय तापमान

टिप्पणी

वायुमंडलीय परत विन्यास से हम वायुमंडल की संरचना को समझ सकते हैं। यह वायुमंडल को अनेक परतों में विभाजित करता है। हर परत के अपने विशिष्ट लक्षण होते हैं, जैसे उनके विशिष्ट तापमान तथा संरचना। वायुमंडल का द्रव्यमान लगभग 5×1018 kg. होता है, जिसका लगभग तीन-चौथाई भाग सतह से लगभग 11 किलोमीटर की दूरी के अन्दर अवस्थित होता है। ऊंचाई बढ़ने के साथ वायुमंडल पतला होने लगता है। वायुमंडल और बाह्य अंतरिक्ष के मध्य कोई निश्चित सीमा नहीं होती है। 120 किलोमीटर की ऊंचाई पर वायुमंडलीय प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखने लगते हैं। 100 कि.मी. की दूरी पर स्थित कारमन लाइन को भी वायुमंडल तथा बाह्य अंतरिक्ष के बीच सीमा रेखा के रूप में माना जा सकता है।

वायुमंडल को पांच मुख्य परतों में विभाजित किया जा सकता है। इन परतों का निर्धारण तापमान के बढ़ने या घटने के आधार पर होता है। ऊपर से नीचे की ओर ये परतें निम्न प्रकार हैं:

1. क्षोभमंडल (ट्रोपोस्फेयर)

क्षोभमंडल सतह से शुरू होकर ध्रुवों पर 7 कि.मी. तथा विषुवत रेखा पर 17 कि.मी. के बीच मौसम के कारण कुछ विविधताओं के साथ फैला होता है। क्षोभमंडल अधिकतर सतह से ऊर्जा के परिवहन द्वारा गर्म होता है, इस प्रकार औसत रूप से क्षोभमंडल का निचला भाग गर्म होता है ओर उन्नांश के साथ तापमान कम छोटा जाता है। यह ऊर्ध्वाधर मिश्रित की बढ़ावा देता है। क्षोभमंडल, वायुमंडल का लगभग 80% द्रव्यमान वहन करता है। क्षोभमंडल व समताप मंडल के बीच की सीमारेखा ट्रोपोपाउज होती है।

2. समताप मंडल (स्ट्रैटोस्फेयर)

ट्रोपोपाउज से लगभग 51 किलोमीटर ऊपर तक के क्षेत्र को समताप मंडल कहा जाता है। इस मंडल में ऊंचाई के साथ तापमान बढ़ता है, जिससे यहां विक्षोभ नहीं उत्पन्न हो पाते हैं। स्ट्रैटोपाउज, जो स्ट्रैटोस्फेयर और मेसोस्फेयर को विभाजित करती है 50-55 किलोमीटर की दूरी पर स्थिति होता है। यहां का दबाब समुद्र तल के दबाब का 1/1000 होता है।

3. मध्यमंडल (मेसोस्फेयर)

मेसोस्फेयर क्षोभमंडल से 80-85 कि.मी. तक फैला होता है। ऊंचाई के साथ तापमान मध्य से कम होता है। मध्य विराम (मेसोपाउज), जहां तापमान सबसे कम होता है, मध्यमंडल का सबसे ऊपर का भाग होता है तथा पृथ्वी का सबसे ठंडा स्थान होता है। यहां का औसत तापमान लगभग 85°C (–121°F: 188.1K) होता है। मध्यमंडल के ठंडे तापमान के कारण जलवाष्प जम जाती है और बर्फ के बादल (नाक्टीलयूसेंट बादल) बनाती है। एक प्रकार की बिजली का गिरना, जिसे हम स्प्राइट या ऐल्व्स कहते हैं, क्षोभमंडल में मीलों तक फैल जाती हैं।

4. तापमंडल (थर्मोस्फेयर)

ताप मंडल में तापमान, मध्यविराम से तापविराम तक ऊंचाई के साथ बढ़ता है, तत्पश्चात् ऊंचाई के साथ ही नियत हो जाता है। इस परत का तापमान 1500°C तक बढ़ सकता है, जबकि गैस के अणु उस तापमान पर बहुत दूर-दूर होते हैं। अंतर्राष्ट्रीय अंतिरिक्ष स्टेशन इसी कक्षा में 320–380 किमी. के बीच चक्कर लगाता है। तापमंडल का ऊपरी सिरा

व बाह्यमंडल का निचला सिरा, बाह्य आधार कहलाता है। सौर क्रियाओं के कारण इसकी ऊंचाई बदलती रहती है, जो 350-800 किमी (1,00000-2600,000 फीट) के बीच होती है।

टिप्पणी

5. बाह्य मंडल (एकसोस्फेयर)

पृथ्वी के वायुमंडल की बाहरी परत ऊपर की ओर बाह्य आधार तक फैली होती है। ये मुख्य रूप से हाइड्रोजन तथा हीलियम गैसों से बनी होती है। इस परत में कण एक दूसरे से इतनी दूर होते हैं कि सौ कि.मी. की दूरी बिना एक-दूसरे से टकराये आसानी से तय कर लेते हैं। क्योंकि कण आपस में बहुत ही कम टकराते हैं, वायुमंडल बहुत लम्बे समय तक द्रव की तरह व्यवहार नहीं करता है। ये स्वतंत्र रूप से घूमते हुए कण प्रक्षेपण विज्ञान के प्रक्षेप्य पथ का अनुमोदन करते हैं और चुम्बकीय मंडल या सौर हवाओं में अंदर तथा बाइट विस्थापित होते रहते हैं।

अन्य परतें

तापमान द्वारा निर्धारित पांच मुख्य परतों के अंतर्गत अन्य परतें भी हैं जिनका निर्धारण अन्य कारकों के आधार पर किया जाता है।

- **समताप मंडल–** समताप मंडल के अंदर ओजोन परत होती है। इस परत में ओजोन की सान्द्रता 2 से 8 भाग प्रति मिलियन होती है, जो कि निचले वायुमंडल में बहुत ज्यादा है, लेकिन वातावरण के मुख्य घटकों से फिर भी बहुत कम है। यह मुख्य रूप से समताप मंडल के निचले भाग में लगभग 15-35 कि.मी में स्थित होती है, जबकि इसकी मोटाई मौसम तथा भौगोलिक परिस्थितियों के अनुसार बदलती रहती है। हमारे वायुमंडल में लगभग 90% ओजोन समताप मंडल में पायी जाती है।
- **आयनमंडल–** यह वायुमंडल का एक भाग है तथा जो सौर विकिरण द्वारा आयानित होता है। ये 50 से 1000 कि.मी. तक फैला होता है और विशिष्ट तरीके से बाह्यमंडल तथा तापमंडल दोनों को ढकता है। यह चुम्बकीय मंडल का आंतरिक सिरा बनाता है। अपने प्रभाव के कारण इस मंडल का व्यावहारिक महत्व है उदाहरण के लिए, पृथ्वी पर रेडियो तरंगों का प्रसारण। यह प्रभामंडल के लिए जिम्मेदार होता है।
- **सममंडल व इटरमंडल–** ये वहां परिभाषित होते हैं जहां वायुमंडलीय गैसें भली प्रकार मिश्रित होती हैं। सममंडल में वायुमंडल को रासायनिक संयोजन गैसे के अणु भार पर निर्भर नहीं करता है क्योंकि गैसें विक्षोप के कारण मिश्रित होती हैं। सममंडल के अन्तर्गत, क्षोभमंडल समतापमंडल तथा मध्यमंडल आते हैं। क्षोभ विराम के ऊपर लगभग 100 किमी संयोजन उन्नवंशों के साथ विभिन्न होता है। ऐसा इसलिए होता है कि वो दूरी जिसमें कण बिना एक दूसरे से टकराये घूम सकते हैं, उस गति से जो उन्हें आपस में मिश्रित करती है, बड़ी होती है। इस प्रकार गैसें अणुभार के आधार पर परत बनाती हैं। भारी गैसें, जैसे कि ऑक्सीजन तथा नाइट्रोजन, ही केवल इटरमंडल की सतह के पास होती हैं। इटरमंडल का ऊपरी भाग लगभग पूरी तरह से हाइड्रोजन गैस का बना होता है, क्योंकि यह सबसे हल्की गैस है।

  अंतरिक्ष सीमा की परत क्षोभमंडल का भाग होता है जो पृथ्वी की सतह के बहुत पास होती है तथा मुख्य रूप से विक्षोभित विसरण के द्वारा सीधे रूप से प्रभावित

टिप्पणी

होती है। दिन के समय अंतरिक्ष सीमा की परत भली-भांति मिली होती है जबकि रात के वक्त यह बहुत कम या जाल की तरह मिली होती है। अंतरिक्ष सीमा की परत की गहराई मौसम के साफ रहने पर, तथा शांत रातों में 100 मीटर से भी कम हो सकती है जबकि सूखे क्षेत्र में दोपहर के समय यह बढ़कर 3000 मीटर तक हो सकती है।

वायुमंडल का औसत तापमान पृथ्वी की सतह पर 14°C या 15°C होता है, जो संदर्भो पर निर्भर करता है।

वायुमंडल का दाब तथा मोटाई

समुद्र तल पर औसत वायुमंडलीय दाब लगभग 1 एटीएम = 101.3 के = 17.7 पाउंड प्रति वर्ग इंच = 760 कि.ग्रा. टॉर = 29.9 पारे (Hg) का इंच होता है। कुल वायुमंडलीय द्रव्यमान 5.1480 $\times 10^{18}$ कि.ग्रा. (1.35×10^{19} कि.ग्रा.) होता है जो औसत समुद्रतल के दाब से तथा 51007.2 मेगाहेक्टर के पृथ्वी के क्षेत्रफल से सीधा निष्कर्षित किया जा सकता है। इस कमी को पृथ्वी के पर्वतीय भू-भागों द्वारा हटाया जा सकता है। वायुमंडलीय दबाब उस बिन्दु के इकाई क्षेत्र के ऊपर कुल भार होता है, जहां दबाव को मापा जाता है। इसलिए हवा का दाब, परिस्थिति व समय के अनुसार बदलता रहता है, क्योंकि पृथ्वी की सतह पर हवा की मात्रा भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न होती है। यदि ऊंचाई के साथ वायुमंडलीय घनत्व हमेशा नियत रहे, तो वायुमंडल 8.50 कि.मी की ऊंचाई पर अकस्मात् समाप्त हो जायेगा। इसके बावजूद ऊंचाई के साथ घनत्व कम हो जाता है लगभग 5.6 किमी के उन्नतांश पर लगभग 50% कम हो जाता है। इसके परिणामस्वरूप दाब की गिरावट ऊंचाई के साथ घातांकी हो जाती है। लगभग प्रत्येक 5.6 किलोमीटर पर दबाब में दो गुणकों की कमी आती है तथा प्रत्येक 7.64 किलोमीटर पर ई = 2.718 के गुणक के अनुसार दबाब में कमी आती है। लेकिन तापमान, औसत अणुभार तथा वायुमंडलीय कॉलम के गुरुत्व में परिवर्तनों के कारण प्रत्येक मंडलों में वायुमंडलीय दबाब की ऊंचाई पर निर्भरता के लिए अलग-अलग समीकरणों का उपयोग किया जाता है।

संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि ऊपर दिये गये संदर्भो में उन्नतांश के द्वारा दाब के समीकरणों को वायुमंडलीय मोटाई का अंदाजा लगाने के लिए सीधा प्रयोग किया जा सकता है। यद्यपि, निम्नलिखित प्रकाशित आंकड़े महत्वपूर्ण हैं:

- द्रव्यमान की दृष्टि से, वायुमंडल का 50 प्रतिशत भाग समुद्र तल से 5.6 किलोमीटर ऊंचाई तक व्याप्त है।
- द्रव्यमान की दृष्टि से, वायुमंडल का 90 प्रतिशत भाग समुद्र तल से 16 किलोमीटर ऊंचाई तक व्याप्त है। व्यावसायिक वायुयान 10 किलोमीटर ऊपर उड़ते हैं और माउण्ट एवरेस्ट समुद्र तल से 8,848 मीटर ऊंचा है।
- द्रव्यमान की दृष्टि से, वायुमंडल का 99.99 प्रतिशत भाग पृथ्वी तल से 100 किलोमीटर नीचे है, यद्यपि विरलित क्षेत्र में उषाएं (एरोरा) तथा अन्य वायुमंडलीय प्रभाव मौजूद रहते हैं। x–15 वायुयान ने सबसे ऊंची उड़ान (108 किलोमीटर) 1963 में भरी।

दाब

हमारा वायुमंडल अदभुत रूप से असंख्य अणुओं से बना है जो एक स्थान से दूसरे स्थान तक उछलते रहते हैं। समुद्री सतह के पास की हवा के 1 इंच में लगभग 4.4×1020 अणु

होते हैं, जो लगभग 4400 अणुओं के बराबर होते हैं। जैसे-जैसे ये अणु आस-पास घूमते हैं ये लगातार एक दूसरे को टक्कर मारते हैं या कोई भी चीज जो उनके रास्ते में आये, यहां कि हम लोग भी। अत: एक दी गई परिस्थिति के लिए वायुदाब प्रत्येक दिशा में समान होता है। समुद्री सतह पर हवा का भार लगभग 14.7 पाउंड बल सतह के प्रत्येक वर्ग इंच के लिए उत्पन्न करता है।

दाब एक वस्तु का बल है जिसके द्वारा दूसरी चीजों को अपने स्थान से खिसकाया जाता है। आपके चारों ओर स्थित हवा के संदर्भ में, यह उन सभी हवा के अणुओं को बल है जो आपके शरीर से टकराते हैं। जब आप जमीन पर खड़े होते हैं तो दाब आपके ऊपर की हवा का भार होता है जो आप पर गिरता है।

दाब की मानक एसआई इकाई पास्कल (Pa) है। लेकिन यह बहुत छोटी होती है। इसलिए वायुमंडलीय दाब के लिए KPa सबसे अधिक प्रचलित इकाई है।

मौसम के अनुप्रयोग में मानक वायुमंडलीय दाब को अक्सर 1 बार या 100 मिलीबार कहते हैं। यह मानक वायुमंडलीय दाब से सामान्य मौसम के प्रतिमानों को व्यक्त करने के लिए अपेक्षाकृत अधिक सुविधाजनक है।

वायु दबाव मापने वाले उपकरण को हम बैरोमीटर कहते हैं। वायुमंडलीय दबाव को मापने का क्रम इवेन्गलेस्टिन टरसौसी द्वारा 1643 में प्रतिपादित किया गया, जो एक साधारण प्रयोग से शरू हुआ था। अपने प्रयोग में टरसौली ने एक ट्यूब, जो कि एक सिरे से बंद थी, को पारे के कंटेनर में डाल दिया दिया। वायुमंडलीय दबाव के कारण ट्यूब में पारे का स्तर कंटेनर में पारे के स्तर से ऊंचा था। टरसौली ने अपने प्रयोगों द्वारा यह निर्धारित किया कि वायुमंडल का दबाव लगभग 30 इंच या 76 सेमी (पारे का 1 सेमी 13.3 मिली बार के बराबर होता है) होता है। उन्होंने यह भी निष्कर्ष निकाला कि पारे की ऊंचाई बाहर के मौसम की परिस्थिति के परिवर्तन से बदलती है।

जलवायु विज्ञान के अनुसार, उच्च दाब उष्ण कटिबंध क्षेत्रों पर बनता है, जो विषुवत रेखा से 20–40 डिग्री अक्षांश के बीच (हॉर्स लेटिच्युड) होता है तथा विषुवत रेखा के ऊपर की हवा के परिणामस्वरूप बनता है। जैसे-जैसे गर्म हवा ऊपर उठती है, वह ठंडी होती जाती है और अपनी नमी खोती जाती है। तत्पश्चात् यह ध्रुवों की तरफ बढ़ती है जहां से नीचे की तरफ प्रवाहित होती है और उच्च दाब का क्षेत्र बनाती है। यह हेडले सेल परिवहन का एक भाग है जिसे सबट्रापिकल रिज या सबट्रापिकल हाई कहते हैं तथा जो गर्मियों में सबसे अधिक शक्तिशाली होता है। सबट्रापिकल रिज एक गर्म तथा उच्च दाब प्रणाली है जो ऊंचाई के साथ मजबूत होते हैं। संसार के बहुत से रेगिस्तान इस उच्च दाब प्रणाली के परिणाम है।

कुछ उच्च दाब क्षेत्रों के प्रादेशिक नाम है। साइबेरियन हाई का नाम इसलिए पड़ा क्योंकि यह वर्ष के सबसे ठंडे समय में एक महीने से भी ज्यादा समय तक क्वासी स्टेशनरी अवस्था में रहता है। यह उत्तरी अमेरिका में थोड़ा सा बड़ा तथा अपने प्रतिभागों से ज्यादा स्थायी होता है। सतही हवायें नीचे की तरफ पश्चिमी प्रशान्त सागर के किनारे की तरफ त्वरित होती हैं, फलस्वरूप ठंड के मानसून की उत्पत्ति होती है। आर्कटिक उच्च दाब प्रणाली, जैसे कि साइबेरियन हाई का प्रभाव, ऊंचाई के साथ कमजोर हो जाती है। एजोर हाई का प्रभाव, जिसे बरमुडा हाई भी कहते हैं, उत्तरी एंटलांटिक सागर में साफ मौसम लाता है तथा पश्चिमी यूरोप में मध्य तथा देर से गर्मियों की उष्मा तरंगों को लाता

है। इसकी दक्षिणी परिधि में घड़ी की दिशा में प्रसार अक्सर पूर्वी तरंगों को तथा स्थानिक चक्रवात को प्रेरित करता है, जो ह्यूरीकेन मौसम में सागर की खाड़ियों के पश्चिमी भागों में सागर से भू-भागों की तरफ उत्पन्न होते हैं।

टिप्पणी

नमी

हवा की नमी से हम सभी परिचित हैं। हम इसके प्रभावों को अपनी रोजमर्रा के जीवन में देखते हैं। वायुमंडल में नमी या जल की उपस्थिति से अनेक प्रकार की भौगोलिक प्रक्रियाएं होती हैं– जैसे बादलों का निर्माण, भूस्थलाकृति को ढ़क देने वाले कोहरे का बनना तथा हवा को घनी बनाने वाली आर्द्रता की उत्पत्ति। निसंदेह रूप से, जलवाष्प हमारे पृथ्वी ग्रह के वायुमंडल के सबसे महत्वपूर्ण तत्वों में एक है।

नमी का अर्थ होता है– बहुत ही अल्प मात्रा में द्रव, विशेषकर जल, की उपस्थिति। उदाहरण के लिए, जल (आर्द्रता के रूप में), भोजन तथा विभिन्न व्यावसायिक उत्पादों में हम अल्प मात्रा में जल की उपस्थिति को देख सकते हैं।

वायुमंडल का पानी थोड़े समय के लिए या अधिक समय के लिए हमारे पास की प्रकृति में नाटकीय परिवर्तन लाता है। बड़े-बड़े तूफानों द्वारा इतना पानी एकत्रित हो सकता है कि उससे बाढ़ आ सकती है। समय के साथ लगातार बारिश अपरदन का कारण बनती है जो पृथ्वी की सतह के आाकार को ही बदल देता है।

वायुमंडल में उपस्थित जलवाष्प, रंगहीन, स्वादहीन तथा गंधहीन होती है। सामान्यतः हम इसकी उपस्थिति का एहसास इसकी पराकाष्ठा पर ही करते हैं। जब हवा जलवाष्प के साथ तेजी से गिरती है तो चिपचिपी हो जाती है। तब हम कहते हैं कि हवा बहुत आर्द्र है। अत्यधिक सूखेपन से हमारे होंठ फट जाते हैं।

नमी (माइस्चर)

वाष्पीकरण

वाष्पीकरण किसी द्रव के वाष्पोत्सर्जन का एक प्रकार है जो द्रव की सतह पर होता है। दूसरे प्रकार का वाष्पोत्सर्जन द्रव का उबलना हैं, जो द्रव के संपूर्ण द्रव्यमान पर होता है। वाष्पीकरण जल चक्र का एक भाग भी है।

जल के अणुओं का पृथ्वी की सतह को छोड़कर वायुमंडल में प्रवेश करने की प्रक्रिया वाष्पीकरण कहलाती है। वाष्पीकरण तब होता है जब जल के अणु जल के

संगठित भाग से बाहर जाते हैं। ये एक तलाब में, एक झील में, एक धारा में, यहां तक कि पानी की एक बूंद में भी, हो सकता है।

टिप्पणी

जल के अणु जैसे-जैसे वाष्पीकृत होते हैं वो अपने साथ उस वस्तु की कुछ ऊष्मा भी ले जाते हैं, जिसके द्वारा ये वाष्पीकृत हो रहे होते हैं। यह ऊष्मा जल के अणुओं में एकत्रित होती रहती है तथा जिसे हम जल की गुप्त ऊष्मा कहते हैं। इसके परिणामस्वरूप वस्तु का तापमान धीरे-धीरे कम हो जाता है। ध्यान दें कि एक गर्म दिन में आपके शरीर से क्या होता है? जैसे-जैसे तापमान बढ़ता है आपका शरीर पसीने का उत्सर्जन करता है। जैसे-जैसे पसीना वाष्पीकृत होता है यह आप के शरीर से कुछ ऊष्मा को अपने साथ ले जाता है, फलस्वरूप आपका शरीर ठंडा महसूस करता है।

वाष्पीकरण के द्वारा किसी वस्तु के ठंड होने की प्रक्रिया को वाष्पीकृत ठंडक कहते हैं। बहुत से एअरकंडीशनर वास्तव में वाष्पीकृत कूलर है और इस प्रक्रिया का फायदा उठाते हैं।

वाष्पीकरण

संघनन

संघनन एक द्रव रूप में बदलता है, तथा ठीक इसका विपरीत वाष्पीकरण होता है। जब यह परिवर्तन गैस रूप से सीधे ठोस रूप में होता है, तो इसे निक्षेपण कहते हैं।

संघनन वाष्पीकरण का उल्टा होता है। यह तब होता है जब हवा में जलवाष्प एक गैस से संघनित होकर परत के रूप में बन जाती है तथा वायुमंडल को छोड़कर पृथ्वी की सतह पर वापस आ जाती है।

सामान्यतः संघनन के होने में वायुमंडल पूर्णतया संतृप्त होता है। दूसरे शब्दों में, जब अधिकतम वाष्पदाब होता है, जो संघनन होता है।

अवक्षेपण

मौसम विज्ञान में अवक्षेपण का अर्थ है कि वायुमंडली जलवाष्प का संघनित होकर गुरुत्वाकर्षण के अंर्तगत नीचे की ओर गिरना। अवक्षेपण के मुख्य रूप हैं—वर्षा, बर्फ, ओले तथा उपलवृष्टित। यह प्रक्रिया तब होती है जब वायुमंडल का एक स्थायी भाग जलवाष्प से संतृप्त हो कर संघनित हो जाता है।

टिप्पणी

अवक्षेपण के रूप भिन्न-भिन्न होते हैं जो इस बात पर निर्भर करता है कि मौसम गर्म बादलों से या ठंडे बादलों से उत्पन्न हुआ है। गर्म बादल की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है: ये उस स्तर से ऊपर नहीं जाता जहां तापमान 32°F (0°C) है। जबकि ठंडे बादल 32°F (0°C) तापमान से नीचे वाले भागों में पाये जाते हैं निचले वायुमंडल में तापमान ऊंचाई के साथ औसत रूप से 1.8°C प्रति 1000 मी. की दर से कम होता है। ऊंचे बादल (साइरस) इसलिए सबसे ठंडे होते हैं, इतने कि जैसे उनके अंदर वर्फ हो। अवक्षेपण के बनने के लिए तापमान ही अकेला एक कारक नहीं हैं।

अवक्षेपण तब होता है जब पानी का संघनन पर्याप्त हो, इतना कि पानी की वूंदें इतनी भारी हो जायें कि वह पृथ्वी पर गिर सकें। अवक्षेपण हमारी पृथ्वी के वायुमंडल में होने वाली एक सामान्य सी प्रक्रिया है। यह अवक्षेपण सदैव बादल के रूप में प्राप्त होता है। जबकि बहुत से बादल अतक्षेपण नहीं बताते हैं। ऐसा इसलिए होता है कि अधिकतर बादलों में पायी जाने वाली पानी की बूंदें तथा बर्फ के कण बहुत ही छोटे होते हैं। वे इतने भारी नहीं होते हैं कि वो पृथ्वी की तरह पर गिर पड़ें। अधिकांश बादलों में उपस्थिति जल की बूंदें की तुलना में वर्षा की बूंदें लाखों गुणा अधिक भारी और बड़ी होती हैं। जलवाष्प संघनित होकर बर्फ के रबों और जल बूंदों का निर्माण करते हैं। उसके बाद ये विभिन्न रूपों में पृथ्वी की सतह पर गिरते हैं। अवक्षेपण के प्रत्येक रूप अपने महत्त्वपूर्ण गुणों के कारण विशिष्ट होते हैं

अवक्षेपण के मुख्य प्रकारों में वर्षा, बर्फ, उपलवृष्टि, जमी हुई वर्षा तथा ओले आते हैं।

- **वर्षा:** वर्षा हमारे वायुमंडल में अवक्षेपण का सबसे सामान्य प्रकार है। वर्षा तब होती है जब द्रव जल की बूंद पृथ्वी की सतह पर गिरती है। वर्षा के मुख्यत: दो प्रकार हैं। ये दोनों प्रकार फुहार तथा झींसी है। फुहार बहुत कम समय के लिए होती है तथा ये बड़ी, भारी बूंदों में बनती है। झींसी बहुत देर तक गिरती है तथा इसकी बूंदें छोटी-छोटी होती हैं। वर्षा या तो बर्फ के कणों के पिघलने से होती है या बहुत सी छोटी-छोटी बूंदों के एकत्रित होने से होती है।
- **बर्फ:** बर्फ तब बनती है जब जलवाष्प बिना द्रव अवस्था में आये सीधा बर्फ में परिवर्तित हो जाती हैं। इस निर्माण उस स्थिति में होता है जब बर्फ के रवों के चारों ओर पानी संघनित हो जाता है इससे बर्फ का रूपान्तर बर्फ की ट्रे (पेलेट्स) या पपड़ियों में हो जाता है। सतह पर गिरने के बाद बर्फ धरती की गर्मी के कारण पिघल जाता है। अगर पृथ्वी की सतह व्यक्ति रूप से ठंडी है, तो बर्फ का ढेर बनना शुरू हो जाता है। कुछ परिस्थितियों में, जैसे पर्वतीय क्षेत्रों में, ये बर्फ के ढेर गहराई में कई फीट के हो जाते हैं।
- **उपलवृष्टि:** उपलवृष्टि, जैसा कि नाम से विदित है, वर्षा तथा बर्फ का मिश्रण तथा साथ-ही-साथ अत्यधिक ठंडी होने की वजह से जमीं हुई गिरती बारिश की बूंदों का मिश्रण होता है। बर्फ की तरह, बारिश की बूंदें, द्रव के रूप में जमने के पहले हो जाती हैं। इसी कारण ये हल्की तथा फूली हुई नहीं होती हैं।
- **जमी हुई वर्षा/बर्फ की पतली चमकीली परत:** जमी हुई वर्षा, जिसे हम बर्फ की पतली चमकीली परत भी कहते हैं, तब बनती है जब पानी की बूंदें अत्यधिक ठंडी हो जाती हैं। ये हवा में नहीं जमती है, परन्तु जैसे ही किसी वस्तु जैसे, सड़क या कार के संपर्क में आती हैं, जम जाती हैं।

टिप्पणी

- **ओले:** ओले नमी तथा हवा के बीच विशिष्ट प्रकार का नृत्य करते दिखाई देते हैं। ये म्यूमलोनिअस बादलों के अंदर गहरे बर्फ के रवे के रूप में होते हैं जो पृथ्वी की सतह की तरफ गिरते हैं। यह जैसे ही होता है हवा के झोंके बर्फ के रवों को पकड़ कर पीछे की तरफ ऊंचाई पर बादलों में धकेलते हैं। ये जैसे ही दुबारा गिरना शुरू करते हैं, आकार में लगातार बड़े होने लगते हैं। हवा के झोंके दुबारा इन्हें पकड़ लेते हैं और ऊपर की ओर ऊंचाई पर बादलों में इन बढ़े हुए बर्फ के पत्थरों को फेंक देते हैं। यह प्रक्रिया कई बार दोहराई जाती है, जब तक कि ओले के पत्थर इतने बड़े ना हो जायें कि हवा द्वारा दुबारा फेंके जाना असंभव हो जाये, फलस्वरूप ये पृथ्वी की तरफ गिर पड़ते हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

3. समय की अल्प अवधि में वायुमंडल की स्थिति को क्या कहा जाता है?
   (क) मौसम (ख) जलवायु
   (ग) वायुपुंज (घ) इनमें से कोई नहीं
4. जलवायु को दर्शाने के लिए निम्न में से कौन-सा महत्वपूर्ण तत्व है?
   (क) तापमान (ख) आर्द्रता
   (ग) वायु द्रव्यमान (घ) ये सभी

1.4 वायुमंडल का संघटन, संरचना और द्रव्यमान

वायुमंडल के संघटन, संरचना और द्रव्यमान का विवरण निम्नानुसार प्रस्तुत किया जा सकता है:

वायुमंडल का संघटन

पृथ्वी के वायुमंडल का नीचे का भाग अनेक गैसों के मिश्रण से बना है। इस मिश्रण को वायु कहते हैं। नाइट्रोजन तथा ऑक्सीजन इस मिश्रण का प्रमुख हिस्सा हैं। वायु के आयतन में इनकी कुल मात्रा लगभग 99 प्रतिशत है। शेष एक प्रतिशत में आर्गन तथा कार्बन डाइआक्साइड प्रमुख हैं। वायुमंडल में हीलियम, हाइड्रोजन, निओन, ओजोन, क्रिप्टन और अन्य गैसों की अल्प मात्रा विद्यमान है।

वायुमंडल में इन गैसों का संघटन निम्नानुसार है:

1. नाइट्रोजन - 78 प्रतिशत
2. ऑक्सीजन - 21 प्रतिशत
3. आर्गन - लगभग 1 प्रतिशत
4. कार्बनडाईआक्साइड - 0.3 प्रतिशत
5. अन्य सभी गैस - 0.1 प्रतिशत

   अग्र तालिका में शुष्क वायुमंडल का आयतन संघटन दिया गया है।

टिप्पणी

तालिका : शुष्क वायुमंडल का आयतन संघटन

पीपीएमवी: **अंश प्रति मिलियन** आयतन (नोटः केवल आदर्श गैस हेतु **आयतन भिन्न मोल भिन्न** के बराबर है, देखें वाल्यूम (तापगतिकी))	
गैस	**आयतन**
नाइट्रोजन (N_2)	780,840 ppmv (78.084%)
आक्सीजन (O_2)	209,460 ppmv (20.946%)
आर्गन (Ar)	9,340 ppmv (0.9340%)
कार्बन डाईआक्साइड (CO_2)	390 ppmv (0.039%)
निओन (Ne)	18.18 ppmv (0.001818%)
हीलियम (He)	5.24 ppmv (0.000524%)
मीथेन (CH_4)	1.79 ppmv (0.000179%)
क्रिप्टोन (Kr)	1.14 ppmv (0.000114%)
हाइड्रोजन (H_2)	0.55 ppmv (0.000055%)
नाइट्रस आक्साइड (N_2O)	0.3 ppmv (0.00003%)
कार्बन मोनो आक्साइड (CO)	0.1 ppmv (0.00001%)
जीनोन (Xe)	0.09 ppmv (9 × 10?6%) (0.000009%)
ओजोन (O_3)	0.0 to 0.07 ppmv (0 to 7 × 10?6%)
नाइट्रोन डाईआक्साइड (NO_2)	0.02 ppmv (2 × 10?6%) (0.000002%)
आयोडीन (I_2)	0.01 ppmv (1 × 10?6%) (0.000001%)
अमोनिया (NH_3)	अत्यल्प मात्रा
उपरोक्त शुष्क वायुमंडल में शामिल नहीं:	
जल वाष्पकण (H_2O)	0.40% संपूर्ण वायुमंडल में, विशेषतः सतह पर 1% से 4% तक

वायुमंडल के निचले तल में विद्यमान अणु उनके ऊपर मौजूद गैसों द्वारा निष्पीड़ित कर दिए जाते हैं। इसके परिणास्वरूप वायुमंडल का 99 प्रतिशत भार पृथ्वी पृथ्वी की सतह से लगभग 32 किलोमीटर के दायरे में पाया जाता है। वायुमंडल का आधा भार 5. 5 किलोमीटर के भीतर है।

वायु में जल वाष्पकण सदैव मौजूद रहते हैं। ये जल वाष्पकण समुद्रों और जल अथवा स्थलीय पौधों से होने वाले वाष्पीकरण से वायु में प्रवेश करते हैं। इनकी मात्रा अवस्थिति, ऋतु और दिन के समय पर निर्भर करती है। अधिकांश जल वाष्पकण पृथ्वी की सतह के निकट पाए जाते हैं तथा ऊंचाई बढ़ने के साथ इनकी मात्रा कम होती है।

वायु में ओजोन भी पाई जाती है। ओजोन ऑक्सीजन का ही एक रूप है। ओजोन में ऑक्सीजन के सामान्य 2 के स्थान पर 3 परमाणु होते हैं। ओजोन का निर्माण वायुमंडल के ऊपरी भाग पर सूर्य की पराबैंगनी किरणें पड़ने से होता है। यह लगभग 10 से 50 किमी ऊंचाई तक के क्षेत्र में संकेद्रित होती है। यह क्षेत्र ओजोन परत कही जाती है। ओजोन इसमें 99 प्रतिशत हानिकार पराबैंगनी किरणों को सोखने की शक्ति होने के कारण अत्यंत महत्वपूर्ण गैस है। वायुमंडल में ओजोन की कमी का अर्थ पृथ्वी की सतह तक अधिक पराबैंगनी किरणों का पहुंचाना होगा। पराबैंगनी किरणों से सनबर्न, त्वचा कैंसर तथा वनस्पति नाश का खतरा बढ़ जाता है।

टिप्पणी

पृथ्वी से उत्सर्जित क्लोरोफ्लोरोकार्बन (सीएफसी) गैसों के वायुमंडल में प्रवेश से ओजोन की परत का क्षरण होता है। इन गैसों में क्लोरीन, फ्लोरीन तथा कार्बन होते हैं। सीएफसी का उपयोग एयर कंडीशनरों में कूलैंट के रूप में, इलेक्ट्रानिक पुर्जों की सफाई के लिए तथा फोम उत्पाद बनाने के लिए किया जाता है। सीएफसी में मौजूद क्लोरीन परमाणु सूर्य की किरणों की उपस्थिति में ओजोन का क्षरण करती है। 1970 के दशक के अंत में ओजोन के मापन में अंटार्कटिक के ऊपर ओजोन परत में एक छिद्र देखा गया था। तब से आज यह अधिक बड़ा और गहरा हो गया है। सन् 1990 में ओजोन में 50 प्रतिशत की कमी आ चुकी थी। अंटार्कटिका में ओजोन परत का क्षरण पृथक्तकृत जलवायु और अति उग्र शीत तथा पूर्व बसंत आगमन का परिणाम है। शीत के कारण वायुमंडल में ओजोन क्षय का कारण बनते हैं। उत्तर में चलने वाली गर्म हवाओं के ओजोन-समृद्ध वायु में प्रवेश करने पर ओजोन छिद्र भर जाते हैं। ऐसा ही एक छिद्र आर्कटिक पर बनता है। उत्तर मध्य अक्षांशों पर शीत और बंसत ओजोन मान में 1979 से 1990 तक 6 से 8 प्रतिशत की कमी आयी है। निचले अक्षांशों में अपेक्षाकृत कम कमी आयी है।

धूल, जो वायु का अन्य अंश है, में छोटे चट्टानी कण, धूल, रज, समुद्री लवण कण' आग से निकली कालिख, कारखानों के रसायन और बैक्टीरिया मौजूद होते हैं। धूल कोहरा और वर्षा के निर्माण में सहायक होती है। जल वाष्पकण धूल कणों के इर्द-गिर्द जमा होकर पानी की छोटी बूंदों के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं।

वायुमंडल की संरचना और द्रव्यमान

वैज्ञानिकों ने वायुमंडल को ताप परिवर्तन के आधार पर चार परतों में विभाजित किया है। पृथ्वी की निकटतम परत को सम तापमंडल कहा जाता है। समतापमंडल पृथ्वी की सतह से प्रारंभ होता है। इसकी मोटाई अक्षांश पर निर्भर होती है। भूमध्य रेखा पर समतापमंडल की मोटाई लगभग 18 किलोमीटर है, जबकि ध्रुवों पर यह मोटाई केवल 8 किलोमीटर है। समतापमंडल में मौजूद गैसें पृथ्वी पर जीवन के लिए अनिवार्य हैं। पृथ्वी का मौसम समतापमंडल में उत्पन्न होता है। समतापमंडल की ऊंचाई के साथ तापक्रम घटता जाता है। समतापमंडल का सबसे ऊपर का भाग समतापविराम कहलाता है। यहां तापक्रम में गिरावट रुक जाती है। ध्रुवों पर, समतापविराम का तापक्रम लगभग -55 डिग्री सेल्सियस है।

दूसरी परत को परिवर्तीमंडल कहा जाता है। यह समतापविराम से प्रारंभ होकर पृथ्वी से लगभग 50 किलोमीटर ऊंचाई तक पहुंचता है। परिवर्तीमंडल स्वच्छ एवं शुष्क है। यहां तेज, स्थिर हवाएं चलती हैं तथा मौसम में बहुत थोड़े परिवर्तन होते हैं। यहां स्थिर मौसम स्थितियां होने के कारण जेट विमान इसी क्षेत्र में उड़ाए जाते हैं। परिवर्तीमंडल का नीचे का भाग समतापविराम के समान ठंडा है। यह ऊपर की ओर परिवर्तीविराम तक गर्म होता जाता है। ओजोन द्वारा सूर्य की किरणों को सोखे जाने के कारण यहां ऊंचाई के साथ तापवृद्धि होती है। इस प्रकार ओजोनमंडल इसी परिवर्तीमंडल में स्थित होता है।

तीसरी और चौथी परतों को मध्यवर्तीमंडल और तापमंडल कहा जाता है, जिनमें तापमान में क्रमश: गिरावट और वृद्धि होती है। तापमंडल का ऊपरी भाग पृथ्वी से लगभग 500 किलोमीटर की ऊंचाई पर है। तापमंडल में मौजूद नाइट्रोजन तथा ऑक्सीजन परमाणु सौर ऊर्जा अवशोषित करते हैं जिससे तापमान में वृद्धि होती हैं।

टिप्पणी

वायु भार (पिण्ड): संकल्पना एवं वर्गीकरण

मौसम विज्ञान में, एक वायु भार इसके तापमान एवं जल वाष्प प्रकरण द्वारा परिभाषित वायु का एक छोटा आयतन है। वायु भार/ मात्राएं कई सैकड़ों एवं वर्गमीलों की दूरी को नापते हैं एवं उनके नीचे धरातल के लक्षणों को ग्रहण करते हैं। वे अक्षांश एवं उनकी महाद्वीपीय या जलीय स्रोत क्षेत्रों के अनुसार वर्गकृित किए जाते हैं। शीतलतर वायु भार ध्रुव्रीय या आर्कटिक शब्द से जाने जाते हैं। जबकि ऊष्मतर वायु भार ऊष्ण कटिबंधीय विचारे जाते हैं। महाद्वीपीय एवं उत्कृष्ट वायु भार शुष्क हैं जबकि जलीय/महासागरीय एवं मानसून वायु भार आर्द्र हैं। मौसम सीमाएं विभिन्न घनत्व विशेषताओं द्वारा वायु भार/ मात्रा को पृथक करती हैं। जब एक वायु पिण्ड अपने स्रोत क्षेत्र से एक बार गमन करता है, अन्तर्निहित वनस्पति एवं जल पिण्ड शीघ्रता से अपने चरित्र को आंशिक रूप से परिवर्तन कर देते हैं। वर्गीकरण योजनाएं एक वायु भार विशेषताओं साथ ही आंशिक परिवर्तनों का सामना करती हैं।

वायु भार का वर्गीकरण एवं अंकन पद्धति

बर्गर का वर्गीकरण वायु भार वर्गीकरण का अति विस्तरित स्वीकृत स्वरूप है, यद्यपि विश्व के दूसरे क्षेत्रों से दूसरों ने भी इस योजना का अधिक परिष्कृत रूपांतर प्रस्तुत किया है। वायुभार वर्गीकरण तीन अक्षरों को संलग्न करता है। प्रथम अक्षर c के साथ महाद्वीपीय वायु भारों (शुष्क) एवं m महासागरीय वायु भार (आर्द्रता) इसकी आर्द्रता संपति का वर्णन करता है। द्वितीय अक्षर इसके स्रोत क्षेत्र के तापीय लक्षणों का वर्णन करता है, T ऊष्ण कटिबंधीय, P ध्रुवीय, A आर्कटिक एवं अन्टार्कटिक, M मानसून के लिए, E भूमध्य रेखीय एवं S उत्कृष्ट वायु (वातावरण में महत्वपूर्ण निचली ओर संचलन द्वारा निर्मित वायु) तृतीय अक्षर वातावरण के स्थायित्व के नामित करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है। यदि वायु भार भूतल जो इसके नीचे हैं से शीतल तल है इसे K अंकित किया जाता है। यदि वायु भार भूतल से गर्मतर है जो इसके नीचे है इसे W अंकित किया जाता है।

महासागरीय उदगम का वायुभार एक निचली-स्थिति के साथ m (महासागरीय) के साथ अंकित किया जाता है, जबकि महाद्वीपीय उद्‌गम का वायु भार एक निम्रतर-स्थिति C के साथ (महाद्वीपीय) अंकित किए जाते हैं। वायु भार भी या तो आर्कटिक के रूप में (उच्च स्थिति 'A' या AA अर्न्टाकटिक वायु भारों के लिए) अंकित किया जाता है। ध्रुवीय (उच्च स्थिति-P), उष्णकटिबंधीय (उच्च स्थिति- T), या भूमध्यरेखीय (उच्च स्थिति) ये दो गुणों के सम्मुचय संयोजन में वर्णन किए जाने वाले वायु भार पर निर्भर करते हुए प्रयुक्त किए जाते हैं। उदाहरण के लिए ग्रीष्म में संयुक्त राज्यों के मरुस्थल दक्षिण पश्चिमी के ऊपर उदगम हो रहे एक वायु भार को 'CT' नामित किया जा सकता है। शीतकाल में उत्तरी साइबेरिया के ऊपर उदगम हो रहे एक वायु भार 'CA' के रूप में इंगित किया जा सकता है। एक उच्च स्थिति "S" प्रसंगवश किसी चीज के लिए लक्षित के लिए संयुक्त किया जाता था को उत्कृष्ट वायु भार कहा जाता है। यह एक रूद्धोष्म सूख रहे एवं उष्मन हो रहे ऊंचाई से घिर रहे वायु भार के रूप में सम्मानित किया जाता था। दक्षिणी एशिया में एक उच्च स्थिति 'M' (मानसून के लिए) उस क्षेत्र में ग्रीष्म मानसून व्यवस्था के अर्न्तगत एक वायु भार को लक्षित करने के लिए प्रसंगवंश प्रयोग किया जाता रहा है।

एक तृतीय अक्षर, या तो 'K' (इसके नीचे के धरातल से शीतलतर वायु भार) या 'W' (इसके नीचे के धरातल से गर्मतर वायु भार) का प्रयोग करते हुए एक वायु भार

की स्थिरता दर्शायी जा सकती है। इसका एक उदाहरण "CPK" के रूप में लक्षित, खाड़ी धारा के ऊपर बह रही एक ध्रुवीय वायु भार हो सकता है।

इन प्रतीकों का उपयोग कर रही दूसरी परिपाटी एक प्रकार से दूसरे प्रकार के रूपांतरण या आंशिक परिवर्तन का संकेत हो। उदाहरण के लिए अलास्का की खाड़ी के ऊपर बाहर बह रही एक आर्कटिक वायु भार 'CA-mpk' के रूप में दर्शाया जा सकती है। अभी तक दूसरी परिपाटी निश्चित दशाओं में वायुकारों का सरलीकरण इंगित करता है । उदाहरण के लिए केन्द्रीय संयुक्त राज्य के ऊपर मैक्सिको की खाड़ी से एक वायु भार द्वारा एक ध्रुवीय वायु भार का सर्वत्र आच्छादन 'mt/ cp' अंकन पद्धति द्वारा दर्शाया जा सकता है।

टिप्पणी

वायु भार की विशेषताएं

आर्कटिक, अन्टार्कटिक एवं ध्रुवीय वायु पिण्ड / भार शीतल हैं। आर्कटिक वायु को कोटि हिम एवं हिम-आवरणित भूतल के ऊपर विकसित हुई हैं। आर्कटिक वायु गहराई तक शीतल है, ध्रुवीय वायु भार से शीतलतर, आर्कटिक वायु ग्रीष्म में थुथली हो सकती है, और तीव्रता से आंशिक परिवर्तित होती है जैसै ही यह भूमध्य रेखा की ओर गमन करती है। ध्रुवीय वायु भार भूमि या महासागर के ऊपर उच्चतर आक्षांश के ऊपर विकसिक होते हैं। बहुत स्थिर हैं एवं साधारण्त: आर्कटिक वायु से छिछले। ध्रुवीय वायु महासागरीय के ऊपर (समुद्री) अपनी स्थिरता की हानि करता है क्योकि यह गरमतर महासागरीय जलो के ऊपर प्राप्त करता है।

उष्णकटिबंधीय एवं भूमध्यरेखीय वायु भार गरम हैं क्योकि वे निम्नतर अक्षांश पर विकसित होते हैं। वे जो भूमि के ऊपर विकसित होते हैं (महाद्वीपीय) शुष्कतर हैं एवं उनसे अधिक गरम जो महासागरों के ऊपर विकसित होते हैं, एवं उप ऊष्ण कटिबंधीय शिखर की पश्चिमी उत्तर की ओर यात्रा करते हैं। समुद्री उष्ण कटिबंधीय वायु भार कभी कभी व्यापार/ व्यवसाय वायु भार के रूप में संदर्भित किए जाते हैं। मानसून वायु भार आर्द्र एवं अस्थिर हैं। उत्कृष्ट वायुभार शुष्क हैं और विरल ही भूतल पर पहुंचते हैं, यह साधारणत: नीचे अधिक संयमी आर्द्र वायु भार के ऊपर एक गरमतर एवं शुष्कतर परत का निर्माण करते हुए जो समुद्री उष्ण कटिबंधीय वायु भार के ऊपर एक व्यापार वायु प्रतिलोभ के रूप में जाना जाता है का निर्माण करते हुए निवास करते हैं। महाद्वीपीय ध्रुवीय वायु भार (cp) के वायु भार हैं जो अपने महाद्रीपीय स्रोत क्षेत्र के कारण शीतल एवं शुष्क हैं। महाद्वीपीय वायु भार जो उत्तरी अमेरिका को आन्तरिक कनाडा के ऊपर से प्रभावित करते हैं। एक महाद्वीपीय उष्ण कटिबंधीय वायु भार एक उष्णकटिबंधीय वायु उष्णकटिबंधीय निर्जल क्षेत्रों के ऊपर निर्मित का एक प्रकार है। यह गरम है और बहुत शुष्क।

अपनी प्रगति जांचिए

5. शुष्क वायुमंडल में निम्न में से क्या शामिल नहीं है?

   (क) नाइट्रोजन (ख) हीलियम

   (ग) जल वाष्पकण (घ) हाइड्रोजन

6. वैज्ञानिकों ने वायमुंडल को ताप परिवर्तन के आधार पर कितनी पर्तो में विभाजित किया है?

   (क) दो (ख) चार

   (ग) पांच (घ) छह

1.5 सूर्यतापन, पृथ्वी का ताप संतुलन, ग्रीनहाउस प्रभाव, तापमान का ऊर्ध्वाधर और क्षैतिज वितरण

टिप्पणी

मौसम में परिवर्तन में वायु की गतिशीलता, बादलों का निर्माण और अवक्षेपण शामिल होता है। इन घटनाओं के होने के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है। यह ऊर्जा सूर्य से प्राप्त होती है। सूर्य से निकलने वाली ऊष्मा ऊर्जा वायुमंडल में तीन भिन्न तरीकों से प्रवेश करती है। ऊष्मा अंतरण का एक तरीका विकिरण का माध्यम है। अति तप्त पिंड जैसे कि सूर्य अपनी ऊर्जा का विकिरण लघु तरंगों के रूप में करते हैं। ये लघु तरंगें प्रकाश के रूप में दिखाई पड़ती हैं। अपेक्षाकृत ठंडे पिंड जैसे कि पृथ्वी अपनी ऊर्जा का विकिरण दीर्घ तरंगों के रूप में करते हैं। इन दीर्घ तरंगों को इंफ्रारेड तरंग कहा जाता है। ये दीर्घतम दृश्यमान प्रकाश तरंगों से भी दीर्घतर होती हैं जो कि रक्तवर्णी होती हैं।

ऊष्मा अंतरण की एक अन्य विधि संचारण है। इस विधि में एक पदार्थ दूसरे पदार्थ के साथ संपर्क में आने पर ऊष्मा ग्रहण करता है। स्टोव पर रखा बरतन संचारण विधि से ही ऊष्मा ग्रहण करता है। इसी प्रकार वायु उष्ण स्थल अथवा समुद्र के संपर्क में आने पर उसकी ऊष्मा ग्रहण करती है।

ऊष्मा अंतरण की तीसरी विधि संवहन है। संवहन विधि द्रवों तथा गैसों के ऊष्मा अंतरण का सर्वाधिक प्रभावी रूप है। जलते स्टेशन पर रखी पानी की केतली संवहन विधि का उदाहरण है। केतली का तल संवहन विधि से गर्म होता है। तल के निकट जल तब संचारण विधि से गर्म होता है। गर्म होने पर जल फैलता है और उसका घनत्व कम हो जाता है। ऊपर संघन ठंडा जल नीचे की ओर जाता है तथा नीचे के गर्म पानी को ऊपर धकेलता है। इस प्रकार एक स्थिर प्रवाह रूप जन्म लेता है जिसको संवहन धारा कहा जाता है। वायुमंडल में ऊष्मा एक स्थान से दूसरे स्थान को अंतरित होती है। उदाहरण के लिए, संवहन ऊष्मा खंडों से ऊष्मा को दूर धकेलता है। हवाएं ऊष्मा को उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों से मध्य अक्षांशों की ओर ले जाती हैं। क्षैतिज हवाओं द्वारा गर्म या ठंडी हवाओं का अंतरण अभिवहन कहलाता है।

पृथ्वी और वायुमंडल का ऊष्मा संतुलन

आदर्श स्थिति में पृथ्वी उतनी ही ऊर्जा विसर्जित करती है जितनी कि वह ग्रहण करती है। इस स्थिति में पृथ्वी की ऊष्मा संतुलित अवस्था में होती है। इस स्थिति में पृथ्वी का ऊष्मा बजट संतुलित अवस्था में होता है। यह ऊष्मा बजट असंतुलित होने की अवस्था में पृथ्वी धीरे-धीरे गर्म या ठंडी होने लगती है। ऊर्जा का पृथ्वी पर प्रवेश एकमात्र विकिरण विधि से होता है। अंतरिक्ष में संचारण अथवा संवहन के लिए पर्याप्त संख्या में अणु मौजूद नहीं हैं। सूर्य अपनी ऊर्जा विकिरण के माध्यम से सभी दिशाओं में प्रसारित करता है। पृथ्वी सूर्य की अपेक्षा अत्यंत छोटी होने के कारण तथा सूर्य से बहुत दूर होने के कारण सूर्य की किरणों का दो बिलियन वां भाग ग्रहण कर पाती है। सूर्य से पृथ्वी की ओर आने वाला यह विकिरण आतपन कहलाता है। कल्पना कीजिए कि सौर विकिरण की 100 इकाइयां पृथ्वी के वायुमंडल में प्रवेश करती हैं। इनमें से लगभग तीस प्रतिशत किरणें वापस अंतरिक्ष की ओर लौट जाती हैं तथा केवल 70 प्रतिशत किरणें वायुमंडल द्वारा अवशोषित की जाती हैं। ऊष्मा का यह अवशोषण सभी स्थानों पर एक समान नहीं होता है। वायुमंडल में, सूर्य विकिरण को 19 इकाइयां जल वाष्पकणों, बादलों,

ओजोन और धूल द्वारा अवशोषित की जाती हैं। सौर विकिरण की शेष 51 इकाइयां पृथ्वी की सतह द्वारा अवशोषित की जाती हैं।

पृथ्वी का ऊष्मा बजट संतुलित रखने के लिए ऊर्जा की 70 इकाइयों का प्रतिविकिरण अंतरिक्ष में इंफ्रारेड विकिरण के रूप में हो जाता है। वायुमंडल और सतह का भी ऊष्मा बजट संतुलन होता है। सौर विकिरण के रूप में अवशोषित ऊष्मा 51 इकाइयों में से 21 इकाइयों का प्रतिविकिरण इंफ्रारेड विकिरण के रूप में वापस अंतरिक्ष में हो जाता है और 30 इकाइयां शेष रह जाती हैं। ये शेष 30 इकाइयां ऊष्मा अंतरण की शेष विधियों के संचारण और संवहन के माध्यम से विमोचित होती हैं। गर्म भूमि से होने वाला संचारण वायु की सबसे निचली परत को गर्म करता है। संवहन धाराएं इस ऊष्मा को वायुमंडल तक ले जाती हैं। संचारण तथा संवहन द्वारा विमुक्त 30 इकाइयों वायुमंडल से विमुक्त 19 इकाइयों और इंफ्रारेड विकिरण द्वारा विमुक्त इकाइयों का कुल योग 70 इकाई है।

अवशोषण तथा ग्रीनहाउस प्रभाव

पृथ्वी की सतह से इंफ्रारेड तरंगों का विकिरण होता है। ये इंफ्रारेड तरंगें वायु में मौजूद जल वाष्णकणों तथा कार्बनडाईआक्साइड द्वारा अवशोषित किए जाने के कारण वायुमंडल को गर्म करती हैं। ग्रीनहाउस में, कांच की छत वायु में मौजूद जलवाष्पकणों तथा कार्बनडाईआक्साइड की तरह काम करती है। यह सूर्य के प्रकाश को भीतर आकर मिट्टी को गर्म करने देती है। तथापि यह गर्म मिट्टी से इंफ्रारेड तरंगों के विकिरण द्वारा गर्मी को बाहर नहीं जाने देती है। वैज्ञानिक सूर्य की ऊर्जा को रोकने की क्रिया को ग्रीनहाउस प्रभाव कहते हैं। इस प्रभाव को उत्पन्न करने वाली गैस ग्रीनहाउस गैस कहलाती है।

पृथ्वी के वायुमंडल का ग्रीनहाउस प्रभाव बढ़ रहा है। जीवाश्म ईंधनों जैसेकि कोयला, तेल और प्राकृतिक गैस के दहन से वायु में कार्बनडाईआक्साइड की मात्रा लगातार बढ़ रही है। वायु में कार्बनडाईआक्साइड की मात्रा समुद्री जल में घुलने अथवा हरे पौधे के प्रयोग हेतु आवश्यकता से कहीं अधिक है। वैज्ञानिकों के अनुमान के अनुसार यदि यह वृद्धि जारी रही तो अगले 100 वर्षों में वायुमंडल में कार्बनडाईआक्साइड की मात्रा लगभग दोगुनी हो जाएगी। उद्योग भी अधिक मात्रा में सीएफसीज, नाइट्रस आक्साइड तथा मीथेन उत्सर्जित कर रहे हैं जोकि ग्रीनहाउस गैसें हैं। इसके कारण वायुमंडल में बढ़ने वाली गर्मी के गंभीर परिणाम हो सकते हैं। ग्रीनलैंड तथा एंटार्कटिक के ग्लेशियर पिघलकर संपूर्ण विश्व में समुद्र जल के स्तर में वृद्धि कर सकते हैं। इन ग्लेशियरों के पिघलने से समुद्रतल ऊंचा होने पर मियामी और न्यूयार्क जैसे तटीय नगर स्थायी रूप से बाढ़ग्रस्त हो सकते हैं। इनके प्रभाव से वर्ष पद्धतियों में परिवर्तन हो सकता है तथा मरुस्थलों की अवस्थिति में परिवर्तन हो सकता है। स्पष्ट है कि इस समस्या पर गंभीरता के साथ ध्यान दिए जाने तथा अध्ययन की आवश्यकता है।

सबसे अधिक गर्म तथा सबसे ठंडी अवधियां

परिवर्तनशील आतपन दिन के समय तापमान में परिवर्तन पैदा करते हैं। मध्यान्ह के समय सूर्य की किरणें प्रखरतम होने के बावजूद दिन में मध्यान्ह के समय तापमान उच्चतम नहीं होता है। इसके बजाय दिन में उच्चतम तापमान अपरान्ह में होता है। अपरान्ह में वायुमंडल के सबसे निचले भाग को सूर्य तथा जल से ऊष्मा मिलती है जो इसके द्वारा उन्मुक्त की जाने वाली ऊष्मा से अधिक होती है। इसी प्रकार दिन का न्यूनतम तापमान सूर्योदय से ठीक पहले होता है।

उच्चतम तथा न्यूनतम तापमान के बीच अंतर तापमान रेंज कहलाता है। उदाहरण के लिए यदि किसी दिन का उच्चतम तापमान 35 डिग्री सेल्सियस और न्यूनतम तापमान 10 डिग्री सेल्सियस है तो उस दिन की तापमान रेंज 25 डिग्री सेल्सियस होगी। दैनिक तापमान रेंज परिवर्तन होती है। साफ आसमान के दिनों में यह रेंज प्राय: अधिकतम होती है। साफ आसमान दिन के समय पृथ्वी को तपने देता है। रात के समय आसमान साफ होने के कारण विकिरण की गति तीव्रतर होती है। मेघाच्छादित दिवसों की दैनिक तापमान रेंज न्यूनतम होती है। दिन के समय बादल सूर्य की ऊष्मा धरती तक नहीं पहुंचने देते, अत: वायुमंडल गर्म नहीं हो पाता है। रात के समय पृथ्वी की ऊष्मा का विकिरण नहीं हो पाता है। यह आवरण दिन की अपेक्षा रातें अधिक गर्म रखता है। दिन के उच्चतम और न्यूनतम तापमान के योग को दो से भाग देने पर दिन का औसत तापमान ज्ञात किया जाता है। इसे दैनिक औसत का उपयोग माह, वर्ष अथवा अन्य समयावधियों के लिए औसत अथवा माध्य की गणना के लिए किया जाता है।

भूमि तथा जल का तापन

समुद्रों की अपेक्षा महाद्वीपों के स्थल भाग में दैनिक और वार्षिक तापमान रेंज अधिक होती है। इसका कारण यह है कि स्थल और जल के गर्म और ठंडा होने की दर भिन्न होती हैं। स्थल की अपेक्षा जल अधिक देर से गर्म और ठंडा होता है।

निम्न चित्र में स्थल और जल के गर्म होने की प्रक्रिया दी गई है।

स्थल और जल के गर्म होने की प्रक्रिया

सूर्य की किरणें जल में कई मीटर की गहराई तक जाती हैं। स्थलीय भाग में सूर्य की किरणें पृथ्वी की ऊपरी सतह को केवल कुछ सेंटीमीटर तक गर्म करती हैं। जल एक तरल पदार्थ होने के कारण ऊष्मा का प्रसार अधिक सुगमता के साथ कर सकता है। जल का तापमान स्थल के समान डिग्री तक बढ़ाने के लिए अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है। सूर्य की ऊर्जा का एक भाग जल के वाष्पीकरण में प्रयुक्त हो जाता है। इस प्रकार जल का तापमान बढ़ाने के लिए ऊर्जा की कम मात्रा उपलब्ध होती है।

इसी प्रकार स्थल की अपेक्षा जल अधिक देर में ठंडा होता है। जल ऊष्मा का धीमा संचारक होता है। इसे ठंडा होने के लिए अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त जल की ऊष्मा अधिक गहराई तक फैलती है। एक ही अक्षांश में

टिप्पणी

अवस्थित स्थल और जल भाग के तापक्रम भिन्न होते हैं। गर्मियों में, जब सूर्य चमक रहा हो, समुद्र तट पर बालू समुद्र तल की अपेक्षा बहुत अधिक गर्म होती है। रात्रि के समय यह बालू समुद्र जल की अपेक्षा बहुत तेजी के साथ ठंडी होती है। बृहद् स्तर पर गर्मियों में महाद्वीप अपने निकटवर्ती महासागरों की अपेक्षा अधिक गर्म होते हैं। शीतऋतु में ये महाद्वीप निकटवर्ती महासागरों के मुकाबले अधिक ठंडे होते हैं।

जल के विपरीत, स्थलीय भाग में विभिन्न प्रकार के सतही पदार्थ होते हैं। इनमें से कुछ पदार्थ दूसरों की अपेक्षा सूर्य की किरणों का बेहतर अवशोषण करते हैं। हल्के रंग की मृदा की अपेक्षा काली-मृदा और पथरीले भाग अधिक मात्रा में ऊर्जा अवशोषित करते हैं। चिकनी सतहों के मुकाबले खुरदरी सतहें अधिक ऊर्जा अवशोषित करती हैं। शुष्क स्थलों का तापक्रम नम मैदान की अपेक्षा अधिक होता है। वनो की अपेक्षा घास के मैदान अधिक गर्म होते हैं। घास के मैदानों की अपेक्षा सड़क और खरंजे अधिक गर्म होते हैं। बर्फ और हिम सूर्य की किरणों को प्रत्यावर्तित करते हैं तथा ठंडे बने रहते हैं। तेजी से गर्म होने वाली सतहें प्राय: तेजी के साथ ठंडी भी होती हैं। वे दिन के समय गर्म और रात में ठंडी होती है।

तापमान और तापमापी

अणुओं की ऊर्जा का माप तापमान कहलाता है। वायु के अणुओं में जितनी अधिक ऊर्जा होगी उतनी ही अधिक गर्म महसूस होगी। तापक्रम मापन के उपकरण को तापमापी कहते हैं। साधारण तापमापी तापमान वृद्धि पर अणुओ के विलगन के सिद्धांतों पर काम करते हैं। अतएवं, अधिकांश पदार्थ गर्म किए जाने पर फैलते हैं।

चित्र : *तापमापी*

कुछ तापमापियों में पारे अथवा अल्कोहल का प्रयोग फैलने वाले पदार्थ के रूप में किया जाता है। पारे का रंग चांदी के समान होता है। अल्कोहल रंगहीन होता है अत:

इसको दृश्यमान बनाने के लिए इसमें लाल या नीला रंग मिलाया जाता है। इस द्रव पदार्थ को एक पतली नली में भरा जाता है जिसका एक सिरा बिजली के बल्ब की तरह गोल होता है। तापक्रम में वृद्धि होने पर द्रव पदार्थ पतली नली में फैल जाता है।

अल्कोहल तापमापियों की अपेक्षा पारा तापमापी अधिक सटीक होते हैं क्योंकि पारे का प्रसार अधिक समानता के साथ होता है। तथापि, –40 डिग्री सेल्सियस से कम तापमान मापन हेतु पारे का प्रयोग नहीं किया जा सकता है। पारा –40 डिग्री सेल्सियस पर जम जाता है। अल्कोहल का हिमांक –129 डिग्री सेल्सियस है।

धातु तापमापियों में भिन्न धातुओं से बनी समान लंबाई की दो पट्टियां होती हैं। इस हेतु सामान्यत: पीतल और लोहे का प्रयोग किया जाता है। इन दोनों पट्टियों को एक के ऊपर एक रखकर जोड़ा जाता है। इस प्रकार की युक्ति को द्विधातु छड़ कहते हैं। चूंकि धातुओं की प्रसार दर भिन्न होती है। अत: तापक्रम में वृद्धि होने पर छड़ मुड़ जाती है। तापक्रम कम होने पर छड़ विपरीत रूप से मुड़ती है। सामान्यत: छड़ को कुंडली रूप में रखा जाता है तथा एक सिरा बांध कर रखा जाता है। तापक्रम में परिवर्तन के साथ कुंडली कुडलित अथवा विकुंडलित होती है।

एक तापलेखी एक स्व–अभिलेखी तापमापी होता है। एक अधिकतम तापमापी तापक्रम के उच्चतम पहुंच बिंदु को दर्शाता है। बुखार नापने का तापमापी एक अधिकतम तापमापी होता है। इसमें पारे को बल्ब में वापस प्रवाहित होने से रोकने के लिए एक अत्यल्प संकीर्णन होता है। एक न्यूनतम तापमापी न्यूनतम ताप पहुंच को दर्शाता है।

तापमान स्केल

तापक्रम का मापन डिग्री में किया जाता है। दो नियत तापमानों के बीच अंतर के एक निश्चित भाग को तापमान की डिग्री कहते हैं। सामान्यत: ये अंक समुद्र तल दाब पर जल के क्वथनांक और हिम के गलनांक हेतु निर्दिष्ट तापक्रम होते हैं।

सेल्सियस स्केल पर 0 से 100 तक के अंक चिह्नित किए जाते हैं। इस प्रकार एक डिग्री सेल्सियस उनके अंतर का 1/100 वां अंश होता है। फारेनहाइट स्केल पर 32 से 212 तक के अंक चिह्नित किए जाते हैं। इस प्रकार एक डिग्री फारेनहाइट उनके अंतर (212–32=180) का 1/100 वां अंश होता है। एक डिग्री सेल्सियस का मान एक डिग्री फारेनहाइट के मान से लगभग दो गुना होता है।

सटीक रूप में

1 डिग्री सेल्सियस = 1.8 डिग्री फारेनहाइट

अथवा

1 डिग्री फारेनहाइट = 5/9 डिग्री सेल्सियस

सूर्यतापन

जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है एक दिए गए समय पर दिए गए पृष्ठ पर प्राप्त सौर विकिरण ऊर्जा का माप सूर्यतापन कहलाता है। यह दिया गया पृष्ठ एक ग्रह, ग्रह के वायुमंडल के भीतर कोई पदार्थ, वायुमंडल के बाहर सौर प्रदीप्ति के सामने कोई वस्तु जैसेकि अंतरिक्ष यान हो सकता है। पृथ्वी पर किसी दी गई अवस्थिति पर, जहां सूर्य की किरणें लम्बवत् पड़ रही हो, मापी गई सौर प्रदीप्ति को प्रत्यक्ष सूर्यतापन कहते हैं। सौर

स्थिरांक में से अवशोषण तथा प्रकीर्णन के कारण होने वाले वायुमंडलीय ह्रास को घटाकर प्राप्त शेष प्रत्यक्ष सूर्यतापन के बराबर होता है। सौर स्थिरांक प्रति यूनिट क्षेत्रफल में प्रवेश करने वाले सौर विद्युतचुंबकीय विकिरण की मात्रा होती है। जो एक खगोलीय इकाई की दूरी पर किरणों के लम्बवत् तल पर पड़ती है। सूर्य से पृथ्वी के बीच औसत दूरी खगोलीय इकाई दूरी कही जाती है। पृथ्वी के प्रति वर्ग मीटर वायुमंडल के शीर्ष पर पहुंचने वाला वार्षिक सौर विकिरण औसतन 1366 वाट होता है। सूर्य की किरणों की प्रखरता वायुमंडल से गुजरने के कारण कम हो जाती है। इस प्रकार पृथ्वी की सतह तक पहुंचने वाला सूर्यतापन एक स्वच्छ आकाश वाले दिन समुद्र तल पर सूर्य की किरणों के लम्बवत् पृष्ठ के प्रति वर्गमीटर पर लगभग 1000 वाट होता है।

वैश्विक तापमान का ऊर्ध्व और क्षैतिज विभाजन

ग्रीष्म ॠतु में कुछ लोग सूर्य की तपिश से बचने के लिए पहाड़ी स्थानों पर जाते हैं। वे जितना ऊपर जाते हैं। उतना ही अधिक ठंडा महसूस करते हैं। वैज्ञानिकों ने ऊंचाई के सापेक्ष ठंडा होने की दर का मापदंड प्रस्तुत किया है। प्रत्येक 160 मीटर की ऊंचाई पर औसतन एक डिग्री सेल्सियस तापमान कम हो जाता है। इस परिवर्तन को सामान्य ह्रास दर कहते हैं। सूर्य का विकिरण पृथ्वी की सतह द्वारा अवशोषित किए जाने के कारण पृथ्वी के सर्वाधिक निकट क्षोभमंडल सबसे अधिक गर्म होता है। पृथ्वी की सतह से ऊष्मा का अंतरण इसके ठीक ऊपर क्षोभ मंडल में ऊष्मा के संचारण विधि द्वारा होता है तथा संवहन द्वारा उसका आगे प्रसार होता है। संवहन धाराओं में ऊपर की ओर जाती हवाएं ठंडी होती जाती हैं। ऊपर जाती हवाएं अत्यधिक ऊंचाई पर निम्न दाब पर मिलने के कारण फैलती है। निम्न दाब के कारण वायु के अणु एक दूसरे से विलग होते जाते हैं। इस विलगन के कारण वे आपस में कम टकराते हैं और कम ऊर्जा उत्पन्न करते हैं। इसके परिणामस्वरूप कम ऊष्मा उत्पन्न होती है।

बादलों के बाहर, ऊपर उठती हवा प्रत्येक 100 मीटर की ऊंचाई पर 1 डिग्री सेल्सियस की दर से ठंडी होती है। जब हवाएं नीचे की ओर आती हैं इसके अणु बढ़ते दाब के कारण अधिक निकट आ जाते हैं। इससे अणुओं में ऊर्जा वृद्धि होती है। साफ वायु में प्रत्येक 100 मीटर पर तापमान में 1 डिग्री से. की वृद्धि होती है। 'स्थिरोष्म' शब्द प्रसार अथवा संपीड़न द्वारा जनित ताप परिवर्तनों को अभिव्यक्त करता है।

मेघों के बाहर ऊपर या नीचे की ओर चलती हवा के ताप परिवर्तन की दर शुष्क-स्थिरोष्म ह्रास दर कहलाती है। इसके विपरीत, ऊंचाई के साथ होने वाला औसत ताप परिवर्तन सामान्य ह्रास दर कही जाती है।

तापमान प्रतिलोमन

सामान्यत: क्षोभमंडल में ऊचाई के सापेक्ष हवा में ठंडक बढ़ती है। तथापि, कभी-कभी पृथ्वी की सतह पर वायु इसके ऊपर मौजूद हवा की अपेक्षा अधिक ठंडी हो जाती है। तापक्रम की इस प्रतिलोभ स्थिति को तापमान प्रतिलोमन कहते हैं। तापमान प्रतिलोमन स्वच्छ आकाश के दिनों में राशि के दौरान बनते हैं। ऐसी रात्रि में, सतह से होने वाले विकिरण के कारण सतह के निकट की वायु इसके ऊपर वायु की अपेक्षा ठंडी होती है। चूंकि पृथ्वी की सतह वायु की अपेक्षा अधिक तेजी से ठंडी होती है। पृथ्वी की सतह के निकट वायु सतह के साथ सम्पर्क के कारण और अधिक ठंडी हो जाती है। यह हवा कुछ सौ मीटर ऊपर ठंडी हवा के साथ मिश्रित होती है। यह निचली परत इसके ऊपर

टिप्पणी

की हवा के मुकाबले ठंडी होती है। ठंडी हवा गर्म की अपेक्षा भारी होती है। अत: प्रतिलोमन के नीचे धुआं और अन्य प्रदूषण फंस जाते हैं। यदि आकाश स्वच्छ रहता है, तो सूर्य भूमि और इसके निकटवर्ती वायुमंडल को गर्म कर देता है। निम्न-स्तरीय प्रतिलोमन को नष्ट कर सकता है अथवा इसका बनना रोक सकता है। तापमान प्रतिलोमन का उदाहरण निम्न चित्र में दिया गया है।

सामान्य पैटर्न

तापीय पैटर्न

तापमान प्रतिलोमन

ऋतुएं और सूर्य की किरणें

सूर्य की किरणें पृथ्वी की सतह पर एक समान रूप से नहीं पड़ने के कारण ऋतुओं के साथ तापक्रम में परिवर्तन होते हैं। पृथ्वी गोल है और सूर्य की किरणें पृथ्वी की सतह पर 0 से 90 डिग्री के कोण के बीच टकराती हैं। जब सूर्य ठीक सिर के ऊपर होता है तब सूर्यतापन का कोण समकोण होता है। सूर्य की किरणें ऊर्ध्व होती हैं तथा पृथ्वी की सतह यथा संभव ऊर्जा ग्रहण करती है। सूर्यतापन का कोण कम होने के साथ किरणों की ऊर्जा अधिक बड़े क्षेत्र में फैलती है। इसके अलावा वायुमंडल में सूर्यकिरणों की यात्रा दूरी में भी वृद्धि हो जाती है। पृथ्वी की सतह पर पहुंचने तक अधिकांश सूर्य किरणें अवशोषित अथवा प्रत्यावर्तित हो जाती हैं। ये दोनों कारक पृथ्वी की सतह तक पहुंचने वाली सौर ऊर्जा की मात्रा घटाते हैं।

भूमध्य रेखा के निकटवर्ती स्थानों पर साधारणत: पूरे साल सूर्य की किरणें लम्बवत टकराती हैं। इसलिए इन क्षेत्रों की जलवायु उष्ण होती है। मध्य अक्षांशों के स्थान (अधिकांश संयुक्त राज्य) ग्रीष्म काल में लगभग लम्बवत होती हैं, अत: मध्य अक्षांशी स्थानों पर शीत काल ठंडे होते हैं। ऊंचाई वाले स्थानों (उदाहरण के लिए, ध्रुवों के निकट) पर सूर्य की किरणें कभी सीधी नहीं टकराती हैं। इन क्षेत्रों में साल भर सूर्य के दर्शन दुर्लभ बने रहते हैं। ये क्षेत्र साल भर ठंडे बने रहते हैं।

टिप्पणी

वैश्विक तापक्रम का ऋतु विभाजन

एक ऋतु वर्ष का मौसम, परिस्थिति और दिवसावधि द्वारा चिह्नित भाग होता है। पृथ्वी का सूर्य के चारों ओर घूर्णन तथा इसके अक्षीय झुकाव के कारण ऋतुओं का निर्माण होता है। शीतोष्ण और ध्रुवीय क्षेत्रों में ऋतुएं पृथ्वी पर पहुंचने वाले सूर्य के प्रकाश की तीव्रता में परिवर्तनों द्वारा चिह्नित होती हैं। इन परिवर्तनों के कारण पशु, पक्षी व पौधे प्रसुप्तावस्था में चले जाते हैं अथवा देशांतर कर जाते हैं।

उत्तरी गोलार्द्ध में मई, जून तथा जुलाई माह में सूर्य की किरणें लगभग लम्बवत् अवस्था में पृथ्वी की सतह से टकराती हैं। दक्षिणी गोलार्द्ध में ऐसा नवम्बर, दिसम्बर तथा जनवरी माह में होता है। पृथ्वी के अपने अक्ष पर झुके होने के कारण ग्रीष्म काल में सूर्य ठीक सिर के ऊपर होता है। इससे सूर्य का सौर प्रवाह बढ़ जाता है। तथापि ऋतु विलम्ब के कारण उत्तरी गोलार्द्ध में जून, जुलाई तथा अगस्त माह सबसे अधिक गर्म और दिसम्बर, जनवरी और फरवरी के महीने दक्षिणी गोलार्द्ध में सबसे ज्यादा गर्म होते हैं।

शीतोष्ण और उप ध्रुवीय क्षेत्रों में, साधारणत: कलैण्डर आधारित चार ऋतुएं होती हैं। इन ऋतुओं को वसंत, ग्रीष्म, शरद और शीत ऋतु का नाम दिया गया है। तथापि पारिस्थितिकीविद् शीतोष्ण क्षेत्रों के लिए छह ऋतुओं का ऋतुचक्र मानते हैं तथा उपरोक्त चक्र में पूर्व-वसंत तथा उत्तर ग्रीष्म ऋतुओं को सम्मिलित करते हैं।

कुछ उष्ण कटिबंधों तथा उपोष्ण कटिबंधों में इस ऋतु चक्र को साधारणत: शुष्क ऋतु बनाम पावस ऋतु के रूप में बांटा जाता है, क्योकि अवक्षेपण की मात्रा में औसत तापक्रम की अपेक्षा नाटकीय परिवर्तन होते हैं। उदाहरण के लिए निकारागुआ में शुष्क ऋतु (अक्टूबर से मई) को ग्रीष्म काल और वर्षा ऋतु (अप्रैल से नवम्बर) को शीत ऋतु कहा जाता है, यद्यपि निकारागुआ उत्तरी गोलार्द्ध में अवस्थित है। अन्य उष्ण कटिबंधों में वर्ष को गर्मी, बरसात और सर्दी की तीन ऋतुओं में बांटा जाता है। विश्व के कुछ भागों में विशेष घटनाओं के आधार पर कुछ ऋतुओं का नामकरण किया गया है जैसे बवंडर की ऋतु, तूफान या चक्रवात ऋतु और दावानल ऋतु।

पृथ्वी के अपने अक्ष पर झुके होने के कारण ऋतुओं का जन्म होता है। पृथ्वी अपने अक्ष पर लगभग 23.4 डिग्री झुकी हुई है। इस प्रकार ग्रीष्म अथवा शीत ऋतु के किसी भी समय पर दुनिया का कोई न कोई भाग सूर्य की लम्बवत् किरणों को झेलता है। यह स्थिति पृथ्वी के अपनी कक्षा में घूमने के कारण परिवर्तित होती है। इसलिए किसी भी समय, चाहे ऋतु कोई भी हो, उत्तरी गोलार्द्ध तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में विपरीत ऋतुएं विद्यमान होती हैं।

पृथ्वी का अपने अक्ष पर झुकाव दिन की अवधि में परिवर्तन और वर्ष के दौरान सूर्य की ऊंचाई (दोपहर के समय सूर्य का नति कोण) में बदलाव से स्पष्ट समझा जा सकता है।

उत्तरी तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में ऋतु मौसम अंतर पृथ्वी के दीर्घवृत्ताकार भ्रमण पथ द्वारा पैदा होते हैं। पृथ्वी जनवरी माह में सूर्य के सर्वाधिक निकट और जुलाई में सूर्य से अधिकतम दूरी पर होती है। यद्यपि पृथ्वी पर ऋतु चक्र पर इसका प्रभाव अत्यल्प होता है, लेकिन यह उत्तरी गोलार्द्ध में शीत और ग्रीष्म को उल्लेखनीय रूप से मृदुल बनाता है। दक्षिणी गोलार्द्ध में इसका विपरीत प्रभाव देखा जा सकता है।

ऋतु संबंधी मौसम के उतार चढ़ाव महासागरों अथवा अन्य विशाल जलस्रोतों से निकटता, महासागरों में चलने वाली धाराओं, अल नीनो/ई एनएसओ तथा अन्य महासागरीय चक्रों तथा हवाओं पर भी निर्भर होते हैं।

टिप्पणी

शीतोष्ण तथा ध्रुवीय क्षेत्रों में, ऋतुओं में अंतर सूर्य के प्रकाश की मात्रा के आधार पर किया जाता है, जो पौधों में प्रसुप्ति और पशुओं में शीतस्वाप चक्र पैदा करता है। ये प्रभाव अक्षांश स्थिति तथा जल सामीप्य के साथ परिवर्तित होते हैं। उदाहरण के लिए, दक्षिणी ध्रुव अंटार्कटिक महाद्वीप के मध्य भाग में स्थित है और इसलिए दक्षिणी महासागरों के मृदुकरण प्रभाव से उल्लेखनीय रूप से अछूता रहता है। उत्तरी ध्रुव आर्कटिक महासागर में है और इस प्रकार इसकी तापक्रम उग्रताएं जल द्वारा प्रतिरोधित की जाती है। परिणामस्वरूप उत्तरी शीतकाल की अवधि में उत्तरी ध्रुव की अपेक्षा दक्षिणी शीतकाल में दक्षिणी ध्रुव अधिक ठंडा होता है।

एक गोलार्द्ध के ध्रुवीय तथा शीतोष्ण क्षेत्रों में ऋतु चक्र दूसरे गोलार्द्ध के ऋतुचक्र के विपरीत होता है। उत्तरी गोलार्द्ध में ग्रीष्म के समय दक्षिणी गोलार्द्ध में शीत ऋतु और इसके विपर्य-क्रम में होता है।

उष्ण कटिबंधों में सूर्य के प्रकाश में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं होता है। तथापि, अनेक क्षेत्रों (जैसे कि उत्तरी हिंद महासागर) में मानसून की वर्षा होती है तथा हवाएं चलती हैं। विगत 300 वर्ष का तापक्रम अभिलेख का अध्ययन दर्शाता है कि जलवायु- ऋतुएं और तदनुसार ऋतु वर्ष सायन वर्ष की अपेक्षा परिवर्ष द्वारा नियंत्रित किये जाते हैं।

मौसम विज्ञान की शब्दावली में कर्क संक्रांति और मकर संक्रांति (अथवा अधिकतम एवं न्यूनतम सूर्यतापन क्रमानुसार) ग्रीष्म और शीत के मध्यकाल में नहीं पड़ती हैं। ऋतु संबंधी ये घटनाएं ऋतु विलम्ब के कारण सात सप्ताह तक के बाद होती हैं। यद्यपि ऋतुओं की परिभाषा सदैव मौसम विज्ञान की शब्दावली में नहीं की जाती है।

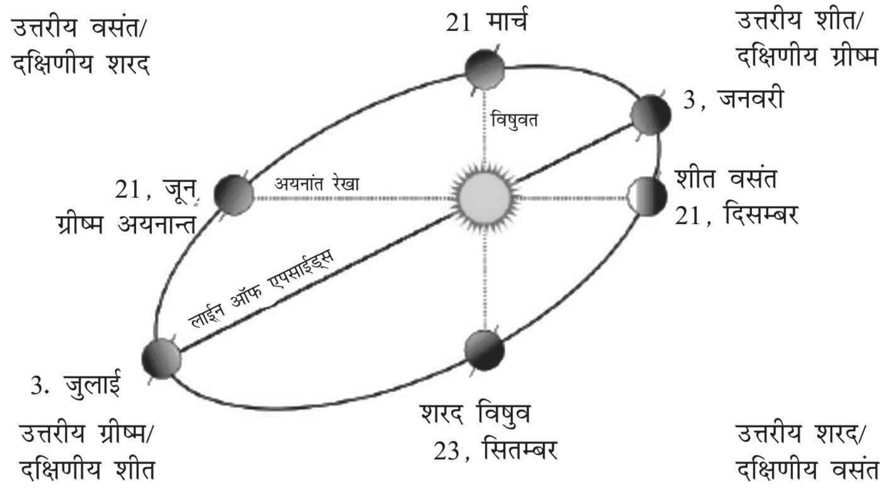

वैश्विक तापमान का ऋतु-विभाजन

पृथ्वी के अक्षीय झुकाव के मुकाबले अन्य कारकों का ऋतु ताप परिवर्तनों पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ता है। ऋतुएं पृथ्वी की दीर्घवृत्ताकार कक्षा के कारण सूर्य से इसकी दूरी में परिवर्तनों का परिणाम नहीं हैं। कक्षा संबंधी उत्केन्द्रता तापमान को प्रभावित कर

सकती है, लेकिन पृथ्वी पर यह प्रभाव बहुत कम है और अन्य कारकों की प्रतिक्रिया से और भी कम हो जाता है। अनुसंधान से पता चला है कि पृथ्वी सूर्य से अधिक दूर होने पर अपेक्षाकृत थोड़ी अधिक गर्म होती है। इसका कारण उत्तरी गोलार्द्ध में दक्षिणी गोलार्द्ध की अपेक्षा स्थल भाग की अधिकता है, जो जलीय भाग की अपेक्षा अधिक गर्म होने की प्रवृत्ति रखते हैं। तथापि, मंगल ग्रह पर प्रत्येक वर्ष उप सौर स्थिति में (सूर्य नीच का होने पर) तापक्रम में भारी परिवर्तन होते हैं तथा प्रचंड धूल भरी आंधियां चलती हैं।

आर्कटिक वृत्त के उत्तर में अथवा अंटार्कटिका वृत्त के दक्षिण में किसी भी बिंदु पर ग्रीष्म काल में ऐसा समय आता है जब सूर्य अस्त नहीं होता है और शीतकाल में ऐसा समय आता है जब सूर्य उदय नहीं होता है। उच्चतर अक्षांशों की ओर बढ़ते हुए ''मध्यरात्रि सूर्य'' और ''ध्रुवीय रात्रि'' लगातार लम्बी होती जाती हैं। उदाहरण के लिए, एलिसमियर द्वीप, कनाड़ा की उत्तरी छोर पर सैन्य और मौसम केंद्र (उत्तरी ध्रुव से लगभग 450 समुद्री मील अथवा 830 कि. मी.) में सूर्य मध्य फरवरी में क्षितिज से ऊपर चढ़ना शुरू करता है और प्रत्येक दिन ऊंचा होता जाता है। 21 मार्च तक सूर्य 12 घंटे तक दिखाई देने लगता है। तथापि मध्य फरवरी में सूर्य उदय नहीं होता है बल्कि क्षितिज पर सांध्य प्रकाश अथवा भोर प्रकाश जैसा दिखाई पड़ता है। यह प्रतिदिन बढ़ता जाता है और लगभग एक माह बाद सूर्य प्रथम बार प्रकट होता है।

21 जून के आसपास के सप्ताहों में सूर्य उच्चतम अवस्था में होता है। इस अवस्था में यह क्षितिज से नीचे कभी नहीं जाता है और लगातार दिखाई पड़ता है। संयोगवश यह मध्य नवम्बर में क्षितिज के नीचे जाना प्रारंभ होता है। तदुपरांत कुछ सप्ताहों तक केवल भोर का सा आभास होता है। 21 दिसंबर के आसपास यहां पूर्ण अंधकार छा जाता है। और फिर फरवरी में भोर का आभास पुनः प्रारंभ होता है।

अपनी प्रगति जांचिए

7. अणुओं की ऊर्जा का माप क्या कहलाता है?

(क) सूर्यतापन (ख) तापमान

(ग) आतपन (घ) इंफ्रारेड विकिरण

8. सूर्य की किरणें पृथ्वी की सतह पर कितनी डिग्री के कोण के बीच टकराती हैं?

(क) 45 डिग्री (ख) 60 डिग्री

(ग) 90 डिग्री (घ) 120 डिग्री

1.6 वायुमंडलीय गति : वायु की गति, ऊर्ध्वाधर गति और भंवर को नियंत्रित करने वाले बल, स्थानीय हवाएं, जेट स्ट्रीम, वातावरण में सामान्य परिसंचरण

वायुमंडलीय गति के अंतर्गत वायु की गति, उर्ध्वाधर गति और भंवर को नियंत्रित करने वाले बलों, स्थानीय हवाएं, जेट स्ट्रीम तथा वातावरण में सामान्य परिसंचरण आदि तथ्यों को इस प्रकार समझा जा सकता है–

1.6.1 वायु की गति, ऊर्ध्वाधर गति और भंवर को नियंत्रित करने वाले बल

टिप्पणी

भौतिक पदार्थों की भांति वायु एक भौतिक वस्तु है। इसमें वाष्प, गैसें, और धूल के कणों का मिश्रण होता है। पृथ्वी का वायुमण्डल एक विशाल वाप का इंजन की भांति कार्य करता है। जिसकी रेखांशिक ताप प्रवणता के कारण हवाओं में उर्ध्वाधर व क्षैतिजीय गति उत्पन्न होती है। ताप का गतिक ऊर्जा में परिवर्तन दो विधियों से होता है। उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों में वायु गर्म होकर ऊपर उठती है और पुनः कई अक्षांशों को पार करने के पश्चात् उपोष्ण प्रदेशों में नीचे उतरती है।

पृथ्वी के धरातल पर वायुदाब में क्षैतिज विषमताओं के कारण हवा उच्च वायुदाब क्षेत्र से निम्न वायु क्षेत्र की ओर बहती है। क्षैतिज रूप में इस गतिशील हवा को पवन कहते हैं। पवन वायुदाब की विषमताओं को संतुलित करने की दिशा में प्रकृति का प्रयास है। लगभग उर्ध्वाधर दिशा में गतिमान हवा को वायु धारा (Air current) कहते हैं। पवन और वायु धाराएं मिलकर वायुमंडल में संचार तन्त्र स्थापित करती है। वायु की उर्ध्वाधर गति को धाराएं (currents) कहते हैं। और उनके क्षैतिजीय प्रवाह को हवा (wind) कहते हैं। क्षैतिजीय गति बहुत बड़े क्षेत्रफल को प्रभावित करती है। जिसके कारण हवाएं वायु धाराओं की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण होती हैं। हवाओं की गति की दिशा तथा संतुलन के मुख्य नियंत्रक 1. वायु भार प्रवणता, 2. पृथ्वी की घूर्णन गति 3. भू–विक्षेपी अथवा भूव्यावर्ती प्रभाव, पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति द्वारा तथा अभिकेंद्रीय बल हैं।

ऊंचाई के साथ वायुभार का सतुंलन पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण प्रभाव के कारण होता है। अतः हवाएं क्षैतिजीय रूप से अधिक तीव्र और उर्ध्वाधर रूप से मंद होती हैं। और वायुदाब प्रवणता को जन्म देकर हवाओं को गतिमान करता है।

• वायु की गति को नियंत्रित करने वाले बल

वायु की गति को नियंत्रित करने वाले बल निम्न हैं–

1. दाब प्रवणता बल

किन्हीं दो स्थानों के बीच वायुदाब के अंतर को ''वायुदाब प्रवणता'' कहते हैं। चूंकि वायुदाब और तापमान में विलोम सम्बन्ध होता है। (तापमान अधिक तो वायुदाब कम, तापमान कम तो वायुदाब अधिक) अतः वायुदाब में विभिन्नता, स्थल एवं जल की सतहों के गर्म होने (Heating) एवं ठंडा होने (Cooling) की प्रक्रियाओं एवं उनकी प्रकृति तथा दरों में विभिन्नता के कारण होती है। न्यून तापमान के कारण उच्च वायुदाब एवं उच्च तापमान के कारण न्यून वायुदाब का निर्माण होता है। इसी तरह से जब समदाब रेखाएं बहुत पास–पास होती हैं तब वायुदाब प्रवणता अधिक होती है तथा समदाब रेखाएं परस्पर दूर खिंची होने पर प्रवणता कम होगी।

वायुदाब प्रवणता की दिशा अधिक से कम दाब की ओर होती है तथा इसकी दिशा समदाब रेखाओं पर लम्बवत होती है। दाब प्रवणता से ही पवन का संचार होता है। दाब तथा पवन संसार में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। पवन अधिक दाब से कम दाब की ओर चलती है। चूंकि वायुदाब तापमान (ऊष्मा) का प्रतिफल है, अतः जब दो स्थानों

के तापमान में बड़ा अंतर आता है तो तीव्र दाब प्रवणता का आविर्भाव होता है, और यदि अन्तर कम होता है, तो मन्द दाब प्रवणता बनती है। दाब प्रवणता को ''बेरोमीटर ढाल'' भी कहते हैं।

टिप्पणी

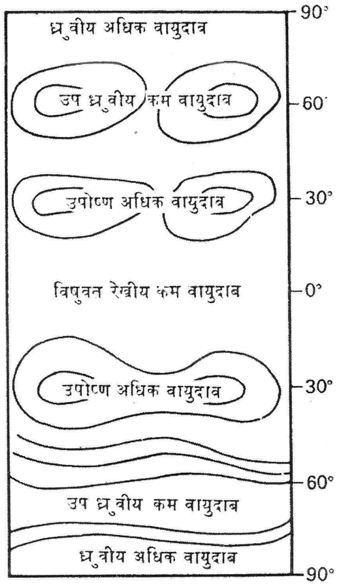

वायुदाब पेटियां (आदर्श वितरण)

वेग और प्रवाह के सम्बन्ध में दाब प्रवणता एवं वायुमण्डलीय परिसंचरण (पवन संचार air circulation) में गहरा सम्बन्ध होता है। सामान्य नियम के अनुसार वायु उच्च वायुदाब से निम्न वायुदाब की ओर प्रवाहित होती है। दूसरे शब्दों में पवन संचरण बैरोमीटर ढाल का अनुसरण करती है। वायु के प्रवाह का वेग वायुदाब की प्रवणता पर निर्भर करता है। वायुदाब प्रवणता एवं वायु वेग का सीधा सम्बन्ध होता है। दाब प्रवणता जितनी अधिक होगी वायु का वेग उतना अधिक होगा तथा दाब प्रवणता जितनी कम होगी वायु वेग उतना ही कम होगा। इसी तरह वायु संचरण की दिशा दाब प्रवणता की दिशा पर निर्भर करती है। अर्थात वायु की प्रवाह दिशा सर्वदा उच्च वायुदाब से न्यून वायुदाब प्रवणता की ओर होती है।

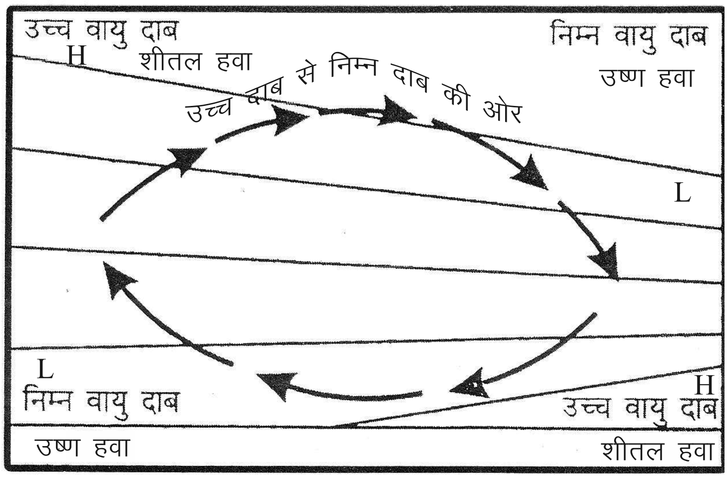

वायुदाब एवं पवन की दिशा

टिप्पणी

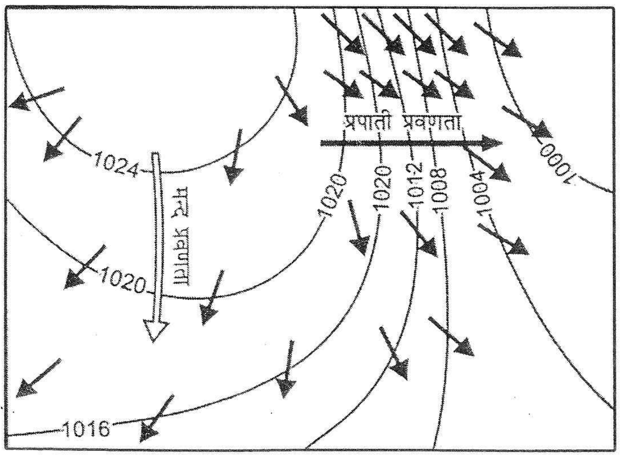

चित्र : वायुदाब प्रवणता – मंद एवं प्रतापी

इस तरह से वायुदाब प्रवणता द्वारा उत्पन्न बल को प्रवणता बल कहते हैं। यह बल किसी पवन के संचरण के लिए गतिवर्धक बल का कार्य करता है। चूंकि वायुदाब क्षैतिज एवं लम्बवत् दोनों हो सकते हैं। अतः दाब प्रवणता बल को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है– (1) क्षैतिज बल (PH), (2) लम्बवत् दाब प्रवणता बल (Pv)

क्षैतिज दाब प्रवणता बल उच्च वायुदाब से निम्न वायुदाब की ओर धरातलीय सतह पर हवाओं में क्षैतिज गति का संचार करती है। जबकि लम्बवत् दाब प्रवणता बल संवहन, तरंग के रूप में हवाओं में लम्बवत् गति अर्थात् ऊपर की ओर तथा नीचे की ओर संचार उत्पन्न करता है। अतः ऊंचाई के साथ दाब प्रवणता भी तेज होती है। चूंकि हवा का वेग दाब प्रवणता पर निर्भर करता है। अतः वायु का उपरिमुखी संचार तीव्र गति वाला होगा परन्तु पृथ्वी स्वयं अपनी धुरी पर घूमती है।

फलतः इन नियमों पर पृथ्वी की परिक्रमण गति तथा गुरुत्वाकर्षण बल का भी प्रभाव पड़ता है।

गुरुत्वाकर्षण बल नीचे की ओर काम करता है। अतः वायु के ऊपर की ओर गति में अवरोध उत्पन्न करता है। परिणामस्वरूप वायु प्रवाह का वेग मन्द पड़ जाता है।

पृथ्वी के परिक्रमण गति का प्रभाव के कारण हवाएं समभार रेखाओं को लम्बवत् न काटकर, उत्तरी गोलार्द्ध में अपनी दाईं ओर तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में अपनी बाईं ओर मुड़ जाती है। उच्च अक्षांशों में पृथ्वी का अपवहन शक्ति अधिक प्रबल होती है। जिसके कारण वायु भार प्रवणता के होने पर हवाएं उतनी तीव्र गति से नहीं चलतीं जितनी निम्न अक्षांशों चलती हैं। इसी तरह से ठंडी हवाएं अधिक घनत्व के कारण उतनी तेज नहीं चल पाती जितनी गर्म हवाएं हल्की होकर चलती हैं।

2. पृथ्वी की घूर्णन शक्ति अथवा कोरिऑलिस बल

पृथ्वी के आवर्तन के कारण उत्पन्न विक्षेपक बल जिसे कोरिऑलिस बल कहते हैं। धरातलीय सतह पर क्षैतिज रूप में प्रवाहित होने वाली पवन की दिशा प्रायः दाब प्रवणता एवं पृथ्वी के घूर्णन (rotation) द्वारा निर्धारित होती है। पृथ्वी अपने अक्ष पर पश्चिम से पूर्व दिशा में घूर्णन करती है। अतः इस घूर्णन के कारण वायु की दिशा में विक्षेप (Deflection) हो जाता है। इस प्रकार वायु की दिशा को विक्षेपित करने वाले बल को विक्षेप बल (Deflection force) कहते हैं। इस बल को एक फ्रांसीसी गणितशास्त्री

कोरिऑलिस (1792-1845 ई.) ने वायु की दिशा में विक्षेप की प्रक्रिया का सर्वप्रथम अध्ययन किया, अतः इनके नाम पर विक्षेप बल को कोरिऑलिस बल कहते हैं।

टिप्पणी

पृथ्वी की दैनिक परिभ्रमण गति के कारण वायुमण्डलीय आवरण भी उसी के साथ घूमता है। इसके फलस्वरूप उत्तरी गोलार्द्ध में हवाएं अपने दाईं ओर तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में अपनी बाईं ओर मुड़ जाती है। इसे फेरल का नियम (ferrel's law) भी कहते हैं। कोरिऑलिस बल पृथ्वी के विभिन्न अक्षांशों पर पवनों का विभिन्न मात्रा में विक्षेप करता है। भूमध्य रेखा पर कोरिऑलिस बल का प्रभाव शून्य होता है तथा ध्रुवों पर अधिकतम विक्षेप होता है।

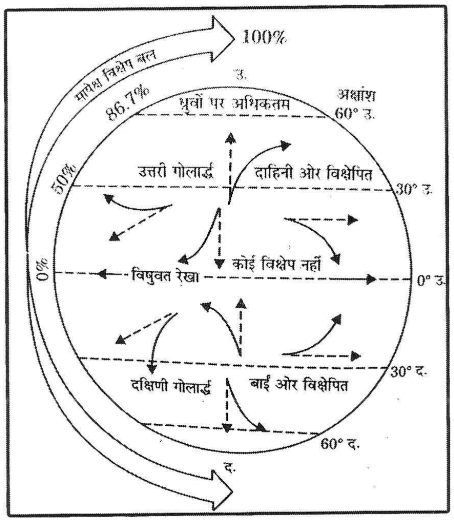

कोरिऑलिस प्रभाव द्वारा विक्षेपित बल

विक्षेपक बल– न्यूटन द्वारा प्रतिपादित गति नियम के अनुसार यदि कोई वस्तु समान वेग से एक सीधी रेखा में जा रही है तो वह उसी वेग से उसी दिशा में तब तक चलती रहेगी, जब तक कोई बाहरी बल उस पर न लगाया गया हो। वायुदाब प्रवणता बल के कारण कोई वायु–कण गतिमान होता है तब सीधी रेखा में चलते रहने की सामान्य प्रवृति विद्यमान रहती है। किन्तु पृथ्वी के आवर्तन अक्षांश और देशान्तर रेखाएं अपनी स्थिति बदल लेती हैं। जिससे पवन की दिशा में परिवर्तन हो जाता है। विक्षेपण पवन की गति पर वायुदाब प्रवणता, अक्षांश तथा वायु का घनत्व का प्रभाव पड़ता है और यह पवन वायुदाब प्रवणता का समानुपाती होता है। यह पवन अक्षांश के ज्या (since of latitude) का विलोमानुपाती होता है तथा पवन का वेग भी वायु के घनत्व का विलोमानुपाती होता है।

भू–विक्षेपी के इन्हीं सम्बन्धों को वायर्स ने व्यक्त किया, ''यह स्पष्ट है कि समदाब रेखाएं जितनी ही सघन होंगी, अक्षांश जितना ही न्यून होगा तथा वायु का घनत्व जितना ही कम होगा, भू–विक्षेपी पवन का वेग उतना ही अधिक होगा।''

कोरिऑलिस बल वायु की दिशा प्रभावित करता है, न कि उसके वेग को क्योंकि यह बल हवा की दिशा को वास्तविक मार्ग से विक्षेपित करता है। कोरिऑलिस बल का परिणाम का निर्धारण पवन वेग द्वारा किया जाता है। पवन वेग अधिक होगा तो कोरिऑलिस बल उतना ही पवन की दिशा को विक्षेपित करेगा।

टिप्पणी

भू–विक्षेपी मापन एवं पवन वेग के मापक–

1. ऋतु मानचित्र का मापक जिस पर ज्योस्ट्रॉफिक पवन मापी का प्रयोग।
2. अक्षांशीय विस्तार
3. समदाब रेखाएं
4. वायु का घनत्व
5. वायु का वेग का मापक

इस तरह धरातल की ऊंचाई के साथ भू–विक्षेपी पवन में भी परिवर्तन आ जाता है।

पवन के विक्षेप के सम्बन्ध में नियम निम्नलिखित हैं–

(क) फेरल का नियम (Ferrel Law)

फेरल के अनुसार, पृथ्वी का परिभ्रमण पश्चिम से पूर्व की ओर होने के कारण उत्तरी गोलार्द्ध में हवाएं अपनी दाहिनी ओर तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में अपनी बायीं ओर मुड़ जाती हैं। फेरल के नियम के अनुसार, ''जिस दिशा में पवन प्रवाहित हो रही हो यदि उस दिशा में मुंह करके (अथवा जिस दिशा से पवन आ रही हो उस दिशा की ओर पीठ करके) खड़े हो जाएं तो हवाएं उत्तरी गोलार्द्ध में दाहिनी ओर तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में बायीं ओर मुड़ जाती हैं।''

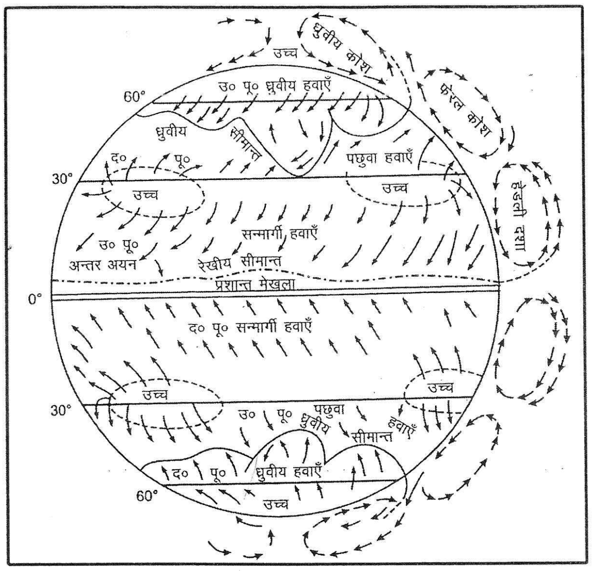

वायुदाब पेटियां एवं पवन प्रवाह

(ख) वायज बैलट का नियम (Buys Ballot's Law)

इनके अनुसार, ''जिस ओर पवन आ रही हो उस ओर मुंह करके खड़े होने पर न्यून वायुदाब उत्तरी गोलार्द्ध में बायीं ओर तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में दायीं ओर होगा।''

उन्होंने बताया कि भूमध्य रेखा पर हवाओं की दिशा पर पृथ्वी की अक्षीय गति (घूर्णन गति) का प्रभाव नगण्य होता है। इन्हीं तथ्यों के आधार पर बायज बैलट ने वायुदाब की स्थितियों से सम्बन्धित नियम का प्रतिपादन किया।

(ग) कोरिऑलिस बल का नियम (Coriolis Law)

इन्होंने फेरल के नियम को गणितीय रूप से सिद्ध किया। और पवन की दिशा या उप केन्द्री या केन्द्रोपसारी बल तथा अभिकेन्द्रीय या गुरुत्वाकर्षण बल से प्रभावित होती है। उन्होंने निम्न निष्कर्ष दिये–

1. पृथ्वी के परिभ्रमण के कारण कोई भी गतिशील वस्तु की ओर फेंक दी जाती है–यह विक्षेप बल या कोरिऑलिस बल कहलाता है।
2. प्रत्येक स्थान पर विक्षेप बल समान नहीं होता–यह विषुवत रेखा पर कम एवं ध्रुवों पर अधिक होता है।
3. उपकेन्द्री बल ''वायु की गति का वर्ग'' होता है। वायु की गति तीव्र होने पर अपकेन्द्रीय बल तीव्र होगा।
4. यदि वायु की दिशा पृथ्वी का धुरी की ओर (विषुवत रेखा से ध्रुवों की ओर) है, तो वायु की गति तथा उपकेन्द्री बल में वृद्धि होती है।

(घ) हैडले का नियम (Hadleys Law)

ग्लोब पर प्रत्येक अक्षांश का एक वृत होता है। विषुवतरेखीय वृत सबसे बड़ा होता है। तथा ध्रुवों की ओर जाने पर अक्षांशीय वृत छोटे होते जाते हैं। पृथ्वी 24 घंटे में अपनी धुरी पर घूर्णन को पूरा करती है। विषुवत रेखा पर इसकी गति सर्वाधिक और ध्रुवों पर सबसे कम होती है। निम्न अक्षांशों से जब पवन सीधी रेखा में प्रवाहित होती है तो वह निर्दिष्ट स्थान पर पहुंचने से पूर्व ही वह स्थान अक्षीय गति के कारण आगे बढ़ जाता है और पवन पीछे रह जाती है। इसके विपरीत उच्च अक्षाशों पर पवन अपने निर्दिष्ट स्थान से आगे निकल जाती है। इस प्रकार पवन अपने मार्ग में विचलित हो जाती है। इस क्रिया को विक्षेप बल कहते हैं।

3. घर्षण बल

सतह के आरपार संचालित होने से हवा को घसीटती है और सतह की ऊंचाई बढ़ने के साथ हवा की प्रबलता में कमी आती है। इस तरह से वायु के प्रवाह में धरातंल के घर्षण का भी महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। लगभग 500 मीटर की ऊंचाई तक यह शक्ति अधिक सक्रिय रहती है। तत्पश्चात इसका प्रभाव कम होने लगता है। जिसके कारण हवाओं का तिरछापन ऊंचाई के साथ–साथ घटता जाता है। उदाहरण के लिए स्थलखंड में धरातल के समीप 25^0 से 30^0 और जल की सतह पर 10^0 से 20^0 तिरछापन आ जाता है। परन्तु 500 मीटर से 1000 मीटर की ऊंचाई पर हवाएं पुनः धरातल के समान्तर हो जाती हैं। इस प्रभाव को इकमेन सर्पिल प्रभाव (Ekman Spiral effect) कहते हैं। क्योंकि इकमेन ने इस प्रभाव का अध्ययन समुद्र की धाराओं में किया था।

उपरोक्त अध्ययन से स्पष्ट होता है, कि किसी भी गतिमान वस्तु के प्रवाह वेग पर उस सतह, जिसके ऊपर वह गतिमान हो के घर्षण या अवरोध के कारण उत्पन्न बल को घर्षण बल कहते हैं। घर्षण बल हवा के विपरीत दिशा में कार्य करता है। धरातल पर उच्चावच विभिन्नताओं के कारण हवा की गति में अवरोध उत्पन्न होता है। इसलिए वह अनियमित चलती है। जहां घर्षण नहीं होता वहां पवन विक्षेपण बल तथा प्रवणता बल में संतुलन पाया जाता है। अतः पवन दिशा समदाब रेखाओं के समांतर होती है। किन्तु घर्षण के कारण पवन वेग कम हो जाता है। तथा वह समदाब रेखाओं

के समान्तर न चलकर कोण बनाती हुई चलती है। पवनें समदाब रेखाओं को न्यून कोण पर काटती हुई उच्च वायुदाब से निम्न वायुदाब की ओर तिरछी चलने लगती है।

निचले वायुमण्डल में जहां घर्षण बल प्रभावी होता है, को घर्षण परत कहते हैं। (Friction Layer) धरातलीय सतह पर घर्षण बल अधिक प्रभावी होता है तथा निचले वायुमंडल में ऊंचाई के साथ कम होता जाता है।

4. अभिकेंद्रीय बल

वृताकार मार्ग पर चलती हुई पवन के मार्ग अथवा आवर्तन के अक्ष की दिशा में कार्य करने वाला बल अभिकेंद्रीय बल कहलाता है। इस बल के कारण पवन केंद्र की ओर वक्राकार रूप में गतिशील होती है। विक्षेपण सदैव पवन के वेग तथा उसके पथ की वक्रता पर आधारित होता है। अभिकेंद्रीय शक्ति का प्रभाव गतिशील पदार्थ पर होता है जबकि गुरूत्वाकर्षण शक्ति स्थैतिक होती है। विषुवत रेखीय प्रदेशों में चक्रवात इसी शक्ति के कारण उत्पन्न होते हैं।

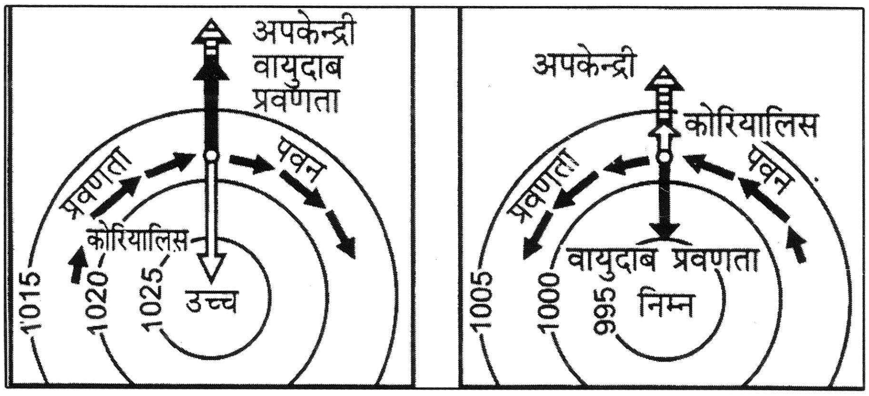

दोनों गोलार्द्ध में अभिकेंद्रीय बल के कारण पवन की दिशा प्रवणता (ग्रेडिएंट) पवन

हवाएं पृथ्वी की परिक्रमण गति, पदार्थों की केंद्रोमुखी गति तथा वायु भार प्रवणता गति—तीनों के सम्मिलित प्रयास से एक संतुलित दिशा को प्राप्त करती है।

निम्न भार प्रवणता शक्ति पृथ्वी की घूर्णन शक्ति से तीव्र होती है जिसके कारण केंद्रोमुखी गति का निर्माण होता है और हवाएं समभार रेखाओं के समांतर चलते हुए केंद्र की ओर बढ़ती हैं। इसके विपरीत उच्च भार क्रम में घूर्णन शक्ति भार प्रवणता शक्ति से अधिक होती है। जिससे हवाओं की दिशा विपरीत हो जाती है।

अभिकेंद्रीय शक्ति की मात्रा सामान्य रूप से कम होती है, परंतु इसका प्रभाव विषुवत रेखा के समीप (जहां परिभ्रमण वेग का प्रभाव शून्य होता है) चलने वाले ऊष्ण कटिबंधीय चक्रवात, भीषण, केंद्रमुखी शक्ति से प्रभावित होते हैं। संकरे शीर्ष वाले टॉरनेडो में भी अभिकेंद्रक त्वरण का प्रभाव दिखता है।

5. भू—विक्षपी हवाएं

समदाब रेखा के समांतर पथ के साथ दबाव क्षेत्र के बीच बहने वाली हवाओं को भू—स्थैतिक पवनें कहते हैं। ऊपरी क्षोभमंडल में दबाव अनुपातन शक्ति (प्रेशर गैंडिएट फोर्स) कोरिओलिस शक्ति को कम या बराबर कर देती है ताकि विक्षेपण मात्रा हवा की गतिशीलता के अनुपात में रहे।

टिप्पणी

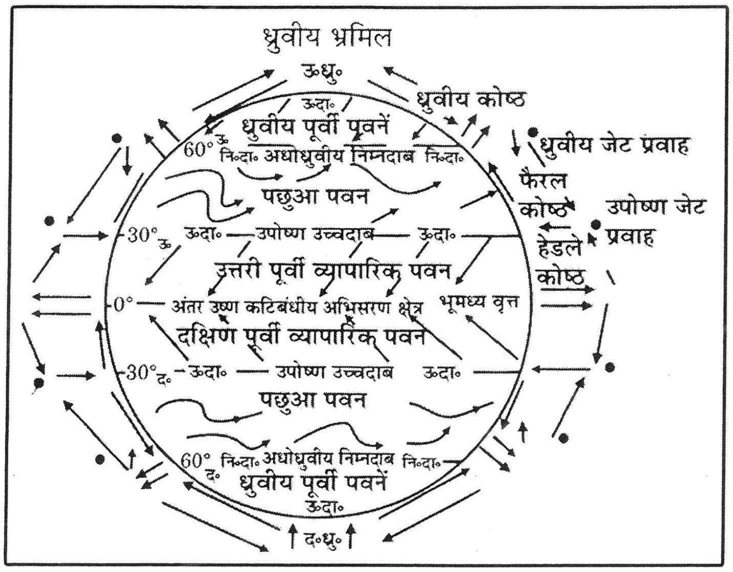

वायुमण्डल का सामान्य परिसंचरण

इस तरह से मुक्त वायुमंडल में अधिक ऊंचाई पर पृथ्वी के धरातलीय घर्षण का प्रभाव लगभग समाप्त हो जाता है। अतः हवाओं में संतुलन, दबाव शक्ति, घूर्णन शक्ति के मध्य हो जाता है। इस संतुलन शक्ति को भू–विक्षेप शक्ति कहते हैं। भू–विक्षेपी हवाएं समभार रेखाओं के समांतर चलती हैं क्योंकि उत्तरी गोलार्द्ध में उच्च वायु भार केंद्र दाहिनी ओर तथा निम्न वायु भार केंद्र बाईं ओर रहता है। इसका तात्पर्य यह है कि वायुदाब शक्ति और पृथ्वी की परिक्रमण शक्ति दोनों ही एक दूसरे के विपरीत दिशा में प्रभावित करती हैं जिससे समभार रेखाओं के समांतर चलने लगती है। ऐसी हवाओं को भूविक्षेपी हवाएं कहते हैं।

इसका समीकरण (Baorry and Chorley), 1971 के अनुसार–

$$vg = \frac{1}{2pw\sin\phi}\frac{dp}{dn}$$

जबकि $\frac{dp}{dn}$ वायु भार प्रवणता तथा vg = वायु वेग

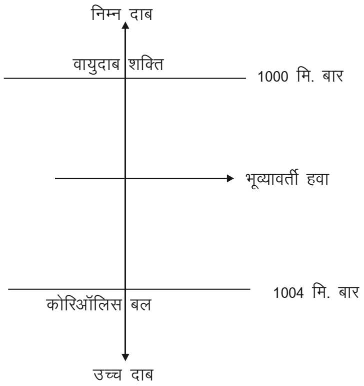

भू–विक्षेपित हवाएं एक संतुलित प्रवाह

• वायु की ऊर्ध्वाधर गति एवं भंवर

पृथ्वी के धरातल पर वायुदाब के क्षैतिज विषमताओं के कारण हवा उच्च वायुदाब से निम्न वायुदाब क्षेत्र की ओर बहती है। इस गतिशील हवा को पवन कहते हैं। लगभग ऊर्ध्वाधर दिशा में गतिमान हवा को वायु धारा (Air Current) कहते हैं। पवन तथा वायु धाराएं मिलकर वायुमंडल में संचार तंत्र स्थापित करती हैं।

वायुमंडल में वायु सदा एक ही दिशा में समान वेग से गतिशील नहीं होती, बल्कि तापमान एवं वायुदाब की दिशाओं में परिवर्तन होने के कारण वायु के प्रवाह की दिशा एवं वेग में परिवर्तन होता रहता है। इसी तरह से धरातलीय हवाएं, भू आकृतियों के घर्षण के साथ–साथ अपनी सामान्य गति, दिशा, नमी तथा ऊर्ध्वाधर प्रवाह में अनेक परिवर्तन कर देती है। धरातलीय हवाओं की गति, मुक्त वायुमंडल की हवाओं की अपेक्षा कम होती है। इसके विपरीत, उच्च वायुमंडल (500 से 1000 मीटर) में चलने वाली हवाएं, लगभग भूष्यावर्ती होती है। क्योंकि इन्हें प्रभावित करने वाले कारकों में केवल सूर्यातप–प्रवणता और पृथ्वी की घूर्णन शक्ति ही होती है। उच्च वायुमंडल की हवाएं, समदाब रेखाओं के लगभग समांतर होती हैं और समदाब रेखाएं समताप रेखाओं के समांतर होती हैं। अतः वायुदाब का वितरण कटिबंधीय, अर्थात पूर्व और पश्चिम दिशा में होता है।

वायुमंडल का सामान्य वायु संचार केवल तत्वों से प्रभावित होता है–

1. सूर्याभिताप वितरण की असमानता, ध्रुवीय प्रदेशों के वायुमंडल को शीतल तथा विषुवत रेखीय प्रदेशों के वायुमंडल को गर्म रखती है।
2. पृथ्वी की कोणिक गति और उससे संलग्न वायुमंडल का पृथ्वी के साथ–साथ पश्चिम से पूर्व घूमना दूसरा प्रमुख कारक है। वायुमंडल का परिभ्रमण संवेग पृथ्वी की परिभ्रमण गति परिभ्रमण अक्ष से वायु स्तंभ की दूरी के वर्ग के अनुपात में होता है। समान गति से घूमती हुई पृथ्वी तथा वायुमंडल के लिए परिभ्रमण संवेग सर्वदा समान रहना चाहिए। अतः यदि वायु का एक विशाल खंड अपनी स्थिति बदल देता है, तो परिक्रमण अक्ष से उसकी दूरी भी बदल जाएगी और उसका परिभ्रमण संवेग भी बदल जाएगा।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि विषुवत रेखा पर वायु का परिभ्रमण संवेग सबसे अधिक और ध्रुवों पर शून्य हो जाता है। यदि कोई वायुखंड विषुवत रेखा से ध्रुवों की ओर प्रवाहित होता है तो अधिक परिभ्रमण संवेग के कारण यह निरंतर पूर्व की ओर गतिमान होता जाएगा।

वायुमंडल में ताप एवं गति का स्थानांतरण दो प्रकार से होता है–

1. ऊर्ध्वाधर रूप से
2. क्षैतिज रूप से

1. ऊर्ध्वाधर रूप से

ऊर्ध्वाधर स्थानांतरण धाराओं के रूप में होता है। रोसबी (Rossby) के अनुसार, "उत्तरी गोलार्द्ध में रेखांशिक वायु संचार कोशिकाओं में होता है।" हवाओं का लंबवतीय प्रवाह होकर अक्षांश वृत्तीय मिलन खंडों पर ऊपर की ओर होता है तथा उपखंडीय उच्चदाब

टिप्पणी

की कोशिकाओं में तथा ध्रुवीय खंडों में ये हवाएं नीचे उतरती हैं यह क्रमीय अवस्था (Circulation System) ही भू–मंडल की हवाओं को निश्चित करती है।"

यह हवाएं धरातल से कई किलोमीटर ऊपर पृथ्वी के इर्द–गिर्द पछुआ हवाओं के अक्षांशों में वृहत ऊंचा–नीचा मार्ग अपनाती हुई पृथ्वी के अक्षीय परिभ्रमण गति के अनुरूप बनी रहती है।

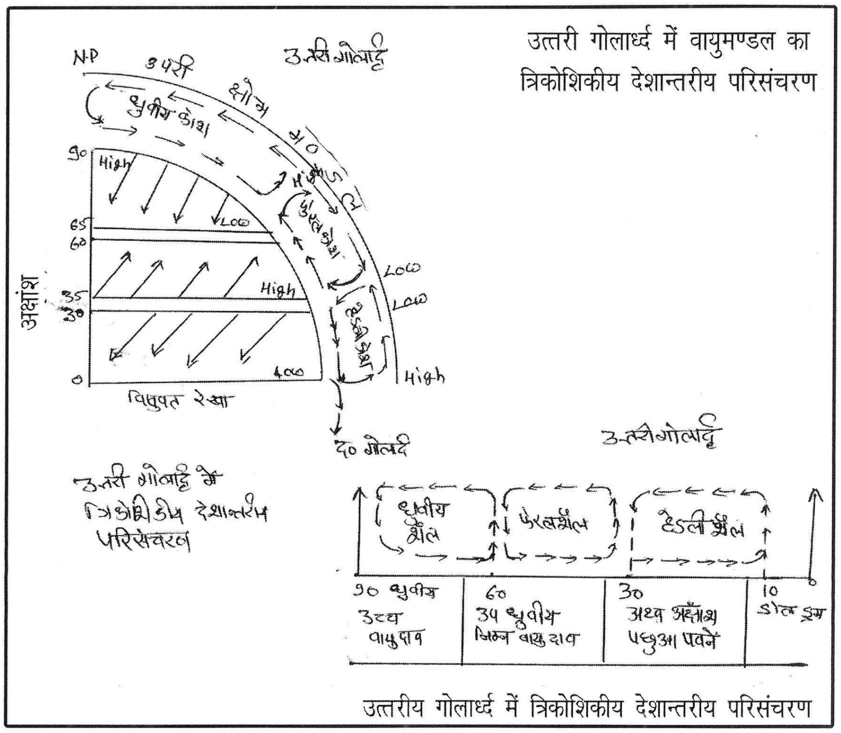

त्रिकोशकीय देशान्तरीय परिसंचरण उत्तरीय गोलार्द्ध

त्रिकोशिकीय परिसंचरण उत्तरीय गोलार्द्ध

उत्तरी गोलार्द्ध में यह हवाएं विषुवत पेटी में आती हुई चक्रवातों को जन्म देती हैं इनका वृतीय मार्ग (Curved Path) पुनः इन्हें ध्रुवों की ओर गतिमान करता है जहां ये हवाएं विपरीत गतिमान होकर प्रति चक्रवात को जन्म देती हैं। यह हवाएं रोशबी वेव (Rossby waves) के रूप में जिनकी लंबाई करीब 3000 से 6000 किलोमीटर होती है प्रतिचक्रवातों के गहन गर्त बनाती हैं। जिनका प्रभाव संपूर्ण पछुआ हवाओं के कोणों में देखा जाता है।

वायुमंडल अपने ताप तथा गति को दो प्रकार के ध्रुवों की ओर आदान–प्रदान करता है– प्रथम प्रकार का विनिमय ऊर्ध्वाधर के रूप में होता है। चित्र में उत्तरी गोलार्द्ध का रेखांशिक वायु संचार (Rossby 1941) प्रदर्शित किया गया है। जिसमें रेखांशिक कोशिकाएं हैं–

1. प्रथम कोशिका निम्न अक्षांशीय तापजन्य प्रत्यक्ष कोशिका कहलाती है, जिसे हेडली कोशिका (Hadley Cell) कहते हैं। विषुवत रेखा के समीप अत्याधिक सूर्यातप के कारण गर्म तथा हल्की हवाएं ऊपर उठती हैं। जिनका स्थान घेरने उपोषणीय क्षेत्रों से व्यापारिक पवनें आती हैं। ये पवन पृथ्वी के घूर्णन के कारण उत्तरी गोलार्द्ध में उत्तर–पूर्वी तथा दक्षिण गोलार्द्ध में दक्षिण–पूर्वी दिशा से चलती

टिप्पणी

है। ऊष्ण कटिबंधीय वायु संचार की यह व्याख्या 1735 में हेडले ने प्रस्तुत की थी। यद्यपि 1856 में फेरल ने इस पूर्वी प्रवाह का मुख्य कारण पृथ्वी का घूर्णन नहीं अपितु कोणिय संवेग का संरक्षण है क्योंकि पृथ्वी का घूर्णन प्रभाव विषुवत रेखा के समीप बहुत ही कम होता है। निम्न अक्षांशीय वायु संचार का चक्र 30° अक्षांशों के समीप निरंतर हवाओं के नीचे उतरने से पूर्ण होता है।

हैडले के अनुसार विषुवत रेखा के समीप संवाहनिक धाराएं धरातलीय ताप को उच्च वायुमंडल में ले जाती हैं और उच्च वायुमंडल से पुनः ध्रुवों की ओर विपरीत व्यापारिक हवाएं चल कर 30 डिग्री अक्षांश रेखाओं के समीप विकिरण क्रिया के द्वारा ठंडी होकर नीचे उतरती हैं जहां से धरातलीय व्यापारिक हवाएं विषुवत रेखा की ओर प्रवाहित रहती हैं।

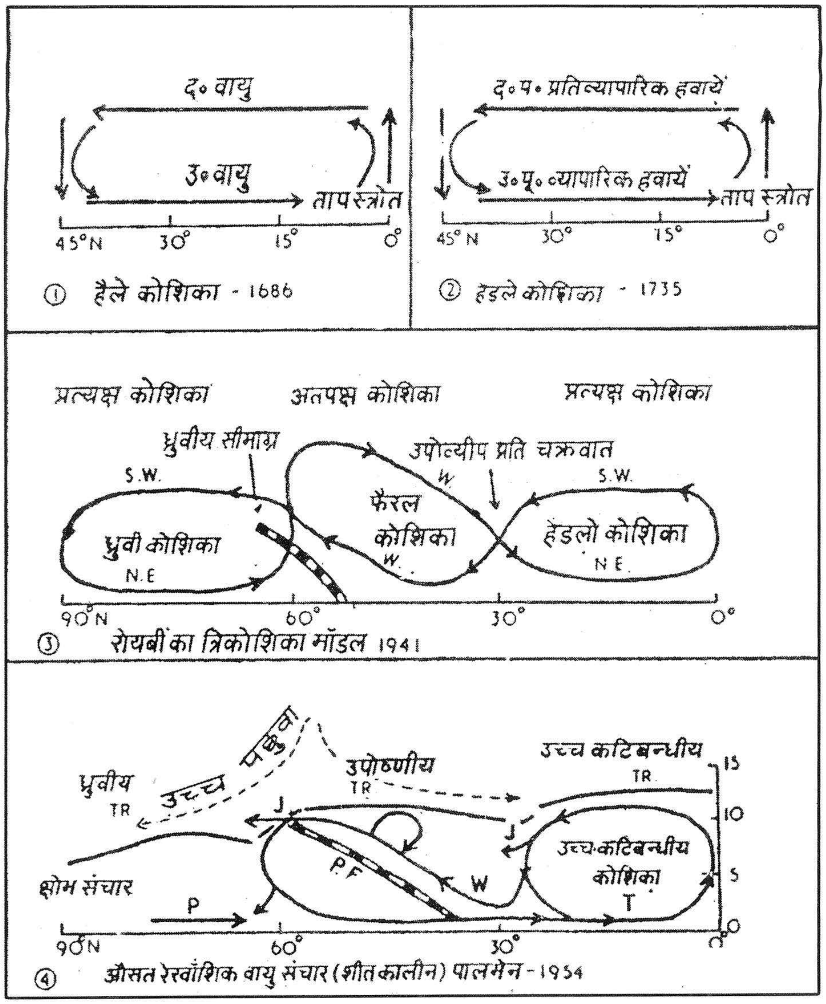

रेखांकित ऊर्ध्वाधर वायु संचार का औसत प्रवाह

रेखांशिक वायु संचार का औसत प्रवाह	जेट धाराएं (W–पछुआ हवाएं)
1. हैले कोशिका– (तापजन्य–स्थिर पृथ्वी)	T–व्यापारिक हवाएं
2. हैडले कोशिका– (तापजन्य घूमती हुई पृथ्वी)	P–ध्रुवीय हवाएं
3. रॉस्वी का त्रिकोषिका मॉडल	PF–ध्रुवीय सीमाग्र
4. पाल्मेन द्वारा प्रस्तुत विन्यास	TR–क्षोभ सीमा

टिप्पणी

किंतु वायु संचार का यह सरल क्रम, आधुनिक परिक्षणों से प्रमाणित नहीं होता क्योंकि व्यापारिक हवाएं न तो सर्वत्र स्थायी होती हैं और न ही उच्च हवाओं का ध्रुव–मुखी प्रवाह केवल उपोष्ण उच्च वायुदाब कोशिकाओं के पश्चिमी किनारों तक ही सीमित है

2. ध्रुवों के समीप अत्यंत शीतलता के कारण एक तापजन्य प्रत्यक्ष उच्च वायुदाब कोशिका का निर्माण होता है। इसका महत्व सामान्य वायु संचार पर बहुत ही कम पड़ता है। यद्यपि इनसे ध्रुवीय पूर्वी हवाएं उत्पन्न होती हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि वायुमंडलीय कोई भी वायु भार कम प्रत्यक्ष रूप से निर्मित नहीं होता क्योंकि धरातल के समीप प्रवाहित पूर्वी धाराएं पृथ्वी की परिक्रमा गति को निरंतर कम करती जाएंगी। यदि अन्य बातें समान रहे तो वायुमंडल को भी पृथ्वी के साथ पश्चिम से पूर्व को और परिक्रमण करना चाहिए।

3. मध्य अक्षांशों की वायुदाब कोशिकाओं का सूर्यातप से अप्रत्यक्ष रक्त संबंध होता है। इस कोशिका का संचार वास्तव में प्रत्यक्ष तापजन्य ध्रुवीय और विषुवत रेखीय संचार के सापेक्षिक प्रभाव से होता है।

   राशि के अनुसार ध्रुवीय तथा विषुवत रेखाएं उच्च वायु संचार के धरातल की ओर प्रवाह करने के कारण मध्य अक्षांशों में धरातल तथा उच्च वायुमंडल में पछुआ पवनें चलती हैं ।

2. क्षैतिज रूप से

आधुनिक मौसम वैज्ञानिकों के अनुसार वायुमंडल में ताप एवं गति का वहन केवल लंबवत रूप से नहीं होता बल्कि अब उच्च वायुमंडल के क्षैतिजीय प्रवाह पर अधिक बल दिया जाने लगा है।

ये कोशिकाएं लगभग स्थाई होती हैं और गर्मियों में उत्तरी गोलार्द्ध के महासागरों में उत्तर–दक्षिण की ओर लंबाकार आकृति में होती है क्योंकि इस समय स्थलखंड अत्यधिक ताप के कारण निम्न वायुदाब के केंद्र बन जाते हैं और रेखांशिक ताप प्रवणता बहुत मंद हो जाती है। जाड़ों में इन कोशिकाओं का पूर्व–पश्चिम विस्तार अर्थात कटिबंधीय विस्तार अधिक विस्तृत हो जाता है क्योंकि इस समय रेखांशिक ताप प्रवणता भी अधिक होती है और स्थलीय खंड अत्याधिक शीतलता के कारण उच्च वायुदाब के केंद्र बन जाती है। निश्चय ही धरातल का उच्च वायुमंडलीय दाब वायुदाब क्रमों का आदान–प्रदान ही वायु संचार का कारण है।

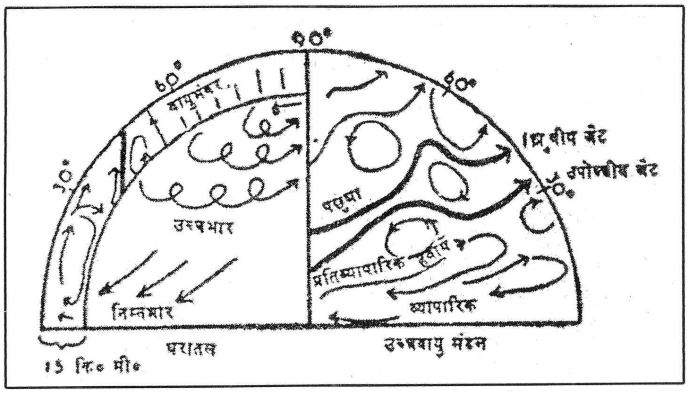

धरातलीय तथा उच्च वायुमंडलीय वायु संचार का संबंध (पालमेन, 1951)

टिप्पणी

स्टार (Star) एवं व्हाइट (White) ने परिकल्पना द्वारा प्रमाणित किया है कि मध्य अक्षांश में ताप एवं गति का ध्रुववर्ती प्रवाह क्षैतिज कोशिकाओं द्वारा होता है। ऊर्जा विनिमय का नवीन मॉडल मध्य अक्षांशों के लिए शब्द अधिक उपयुक्त है किंतु विषुवत रेखा के निकट औचित्य संदेहपूर्ण है इसलिए हैडले कोशिका मॉडल आज भी उपयुक्त माना जाता है। पालमेन (Palmen) ने इसमें संशोधन किया है। मध्य अक्षांशों में ताप प्रवणता सर्वाधिक होती है। यह ताप एवं गतिज ऊर्जा का सर्वाधिक मिश्रण भी होती है। इसी प्रदेश में उच्च वायुमंडलीय जेट धाराओं का तीव्र प्रवाह प्रवाह मिलता है।

भंवर (चक्रवात)

यह सिद्धांत प्रतिचक्रवात या उच्च वायुदाब केंद्र संसार की जलवायु को सबसे अधिक प्रभावित करते हैं। विषुवत रेखा से उठने वाली वायु धाराएं निरंतर भार कोशिकाएं पूर्वी और पश्चिमी (पछुआ) हवाओं को लगभग 30 डिग्री अक्षांश तक प्रभावित करती हैं। ये कोशिकाएं न केवल स्थाई होती हैं अपितु लंबवत रूप से एक ओर झुकी भी होती हैं और उच्च वायुमंडल तक समान क्रम में पाई जाती हैं। संभवतः उच्च वायुमंडलीय प्रतिचक्रवातीय कोशिकाओं का संबंध जेट प्रवाहों के विषुवत रेखावर्ती प्रतिचक्रवातीय कोशिकाओं का संबंध जेट प्रवाहों के विषुवत प्रतिचक्रवातीय भंवर धाराओं से है। जबकि धरातलीय निम्न वायुदाब का कोशियक्रम ताप स्रोतों का प्रभाव है।

जल के भंवर की भांति अस्थिर और परिवर्तनशील हवाओं के भंवर जिनके केंद्र में निम्न वायुदाब और केंद्र के बाहर उच्च वायुदाब होता है, चक्रवात कहलाते हैं। साधारणतः यह अर्द्धाकार होता है। इसमें न्यून वायुदाब ठीक केंद्र के समीप और केंद्र से बाहर की ओर सभी दिशाओं में वायुदाब क्रमशः बढ़ता जाता है। अतः हवाएं बाहर से अंदर केंद्र की ओर प्रवाहित होती हैं। फैरल के नियम के अनुसार हवाएं उत्तरी गोलार्द्ध में घड़ी की सुई की विपरीत दिशा (anticlockwise) और दक्षिणी गोलार्द्ध में घड़ी की सुई की दिशा में (clock wise) मुड़ जाती हैं।

1.6.2 स्थानीय हवाएं, जेट स्ट्रीम, वातावरण में सामान्य परिसंचरण

पृथ्वी पर वायुमंडलीय गति के सांख्यिकीय वर्णन, ऊर्जा के परिवहन में उसकी भूमिका तथा विभिन्न प्रकार की ऊर्जाओं के रूपान्तर, आदि ऐसे महत्वपूर्ण कारक हैं जो दबाब के वितरण को प्रभावित करते हैं। इन्हीं कारकों के द्वारा विभिन्न वायु प्रवाहों की उत्पत्ति होती है। लेकिन ये प्रवाहें घर्षण के द्वारा तितर-बितर हो जाती हैं। जहां एक ओर दैनिक तथा मौसमी स्तरों पर वातावरण में बड़े-बड़े परिवर्तन होते रहते हैं, वही दूसरी ओर, किसी निश्चित मौसम में मध्य वायु प्रवाह प्रत्येक वर्ष लगभग एक समान होती है। इस प्रकार एक लम्बे समय के लिए तथा पूरे विश्वीय वायुमंडल के लिए गतियों की उत्पत्ति कुछ हद तक इस बिप्वराव को संभाल लेती है। लम्बे समय के लिए पृथ्वी-वायुमंडल प्रणाली द्वारा अवशोषित सूर्य विकिरण तथा उत्सर्जित इन्फ्रारेड विकिरण के बीच संतुलन के लिए भी इसके संबंधित नियत तापमान के प्रमाण के रूप में भी यही सत्य है। हवा और समुद्री धाराएं (जो कि मुख्य रूप से हवा द्वारा प्रवाहित होती हैं) दोनों ऊष्मा के वितरण को प्रभावित करती हैं। अत: वायुमंडलीय तथा समुद्री सामान्य प्रसार मिलकर एक सहभागी प्रणाली बनाते हैं।

पृथ्वी-वायुमंडल प्रणाली द्वारा सूर्य विकिरणों का औसत अवशोषण ध्रुवों की तुलना में विषुवतीय क्षेत्रों में लगभग तीन गुणा अधिक होता है। इसके मुख्यत: दो कारण हैं-

- निम्न अक्षांशों पर सूर्य की विकिरणों का सीधे पहुंचना
- बादलों, बर्फो तथा हिमों (जो ऊंचे अक्षाशों पर अधिक विस्तृत रूप से पाये जाते हैं) द्वारा सूर्य विकिरणों का परावर्तन

अतः निम्न अक्षांशों (35° उत्तर- 35° दक्षिण) में औसत रूप से ऊष्मा की प्राप्ति विकिरण के माध्यम से होती है, तथा ऊंचे अक्षांश वाले क्षेत्र विकिरण के द्वारा ठंडे होते हैं। पृथ्वी की सतह उत्सर्जित ऊष्मा की तुलना में अधिक विकिरणीय ऊष्मा अवशोषित करती है, जबकि ठीक इसका विपरीत वायुमंडल के लिए सत्य होता है। इसलिए, ध्रुव की तरफ ऊष्मा आवश्यक रूप से स्थानान्तरित होती है तथा ऊपर की तरफ विकिरण के अलावा अन्य प्रक्रियाओं द्वारा होती है। पृथ्वी तथा वायुमंडल के मिलन बिंदु पर यह स्थानान्तरण ऊष्मा के वाष्पोत्सर्जन द्वारा विक्षोभित प्रवाह के रूप में पाया जता है। वायुमंडल में गुप्त ऊष्मा, जलवाष्प के संघनन के रूप में प्रवाहित होती है।

यदि केवल वायुमंडल पर विचार करें तो, संघनन द्वारा ऊष्मा की प्राप्ति तथा पृथ्वी की सतह में ऊष्मा का स्थानान्तरण निम्न उन्नतांशों पर कुल विकिरित ऊष्मा को बढ़ाता है। ऊंचे अक्षांशों में इसके विपरीत होता है। ऊष्मा का सम्योत्तरीय स्थानांतरण (मेरिडिओनल ट्रांसफर), जो ऊष्मा की प्राप्तियों और खर्चों में संतुलन स्थापित करने के लिए आवश्यक है, वायु धाराओं के द्वारा किया जाता है। इससे एक संगठित प्रवाह प्रणाली उत्पन्न होती है, जिसके लक्षण विषुवतीय और गैर-विषुवतीय क्षेत्रों में अलग-अलग होते हैं।

उत्तरी गोलार्द्ध पर विशिष्ट प्रवाह इस व्याख्या में दर्शाया गया है। ऊपरी क्षोभमंडल में दो मुख्य प्रधाराएं होती हैं, 30° उन्नतांश के पास सहस्थायी प्रधारा (सबट्रोपिकल जेट या एसटीजे) तथा ध्रुव के सामने की प्रधारा (पोलर फ्रंट जेट या पीएफजे) जो बड़े आयामों वाली लम्बी धाराओं तथा छोटी धाराओं से आच्छादित होती है तथा तूफानों की अशांति से जुड़ी होती है। धुव्रों के सामने की प्रधाराएं पूर्व दिशा में धीरे-धीरे घूमती हैं तथा छोटी धाराएं लगातार तेजी से घूमती हैं। पृथ्वी की सतह पर दोनों गोलार्धो की उत्तरी पूर्वी तथा दक्षिणी पूर्वी हवायें अंतर स्थानीय केन्द्राभिमुख क्षेत्र (इंटरट्रोपिकल कनवर्जेन्स जोन या आईटीसीजेड) पर मिलती हैं जिसकी निकटता में व्यापक रेखायें तथा जुड़े हुए बादलों के बड़े समूह एकत्रित होते हैं। अंतरस्थानीय केन्द्राभिमुख क्षेत्रों के पास पश्चिमी ओर से आने वाली तरंगें बनती हैं। अंतरस्थानीय केंद्राभिमुख क्षेत्र के संवाहित बादलों में संघनन के द्वारा उष्मा प्रवाहित होती है तथा इनमें हवा का द्रव्यमान ऊपर की ओर बढ़ाता है, जो साम्योतरीय प्रवाहों में बहता है, तथा जिनकी ऊपरी स्तर की ध्रुवीय शाखायें सहस्थानीय प्रधाराओं को उनकी ध्रुवीय सीमाओं पर उत्पन्न करती है।

सर्दी में उत्तरीय गोलार्द्ध पर योजनाबद्ध प्रवाहः गर्मी में अंतर स्थानीय केन्द्राभिमुख क्षेत्र पूरी तरह से विषुवत रेखा के उत्तर में छाया होता है। ऊपरी- स्तर की स्थानीय वायु धाराओं में पूर्वी त्वरण, पृथ्वी की अपनी अक्ष पर घूमने के कारण पैदा होता है और सहस्थानीय प्रधारा (एसटीजे) उत्पन्न करता है। उर्ध्वाधर (दायां) भाग ट्राफिक में प्रभावशाली याम्योत्तर प्रवाह दर्शाता है तथा ध्रुवीय भाग से संबंधित वायुप्रधारायें, मध्य उन्नतांशों में दर्शाता है।

अतिरिक्त स्थानीय उन्नतांशों में, प्रवाह तूफानों तथा एंटी तूफानों से प्रभावी होता है। तूफान मुख्य रूप से ध्रुवीय भाग में विकसित होता है। जहां तापीय वैमस्य ध्रुवीय तथा स्थानीय हवा के द्रव्यमान के बीच सांद्रित होता है। ठंड में, महाद्वीपों के पूर्वी किनारों से

टिप्पणी

आते ध्रुवीय हवाओं के ठंडे प्रकोप गर्म समुद्रों के ऊपर से गुजरते समय वायुमंडल में जलवाष्प तथा ऊष्मा का तीव्र स्थानान्तरण करते हैं। ये प्रकोप करते हैं जिसमें ध्रुवीय हवा, स्थानीय हवा में परिवर्तित हो जाती है। स्थानीय वायु प्रवाह सबट्रापीकल हाई के पश्चिमी भाग में ध्रुवीय हो जाता है और अतिरिक्त स्थानीय विघ्न को ऊष्मा तथा जलवाष्प उपलब्ध कराते हैं। तूफानों का लाक्षणिक प्रवाह अपने पश्चिमी भाग की तरफ ढाल के अनुसार घटती हुई गति धारण करता है तथा पूर्व की तरफ बढ़ता है जहां यह व्यापक रूप से बादल तथा अवक्षेपण का रूप धारण कर लेता है। संघनन में प्रवाहित ऊष्मा बढ़ती है तथा घटते हुए क्रम में ये ध्रुवीय हवा को संकलित करती है जो विकिरण द्वारा ऊंचे उन्नतांगों पर ठंड हो जाते हैं। जब हम अतिरिक्त ध्रुवीय भाग के क्षेत्र को देखते हैं तो पाते हैं कि ठंडी हवाओं की संयुक्त सिकुड़न तथा गर्म हवा का प्रसार स्थितिज ऊर्जा को गतिज ऊर्जा में बदलना प्रस्तुत करता है। यह प्रक्रिया ध्रुवीय धाराओं को सहेजती है। प्रवाहित ऊष्मा स्थानान्तरण की शाखायें ऊपरी तौर पर विकसित ऊष्मा के नुकसान को वायुमंडल द्वारा संतुलित करती हैं तथा ध्रुवीय रूप से विकसित ऊष्मा के उच्च उन्नताशों पर घाटे को संतुलित करती हैं।

ग्रहीय वायु

विश्वीय स्थायी दबाव पट्टी के द्वारा, जो हवा उच्च दाब से निम्न दाब पट्टी की तरफ बहती है, वह अंतरिक्षीय वायु कहलाती है। यद्यपि यह ध्यान देना महत्वपूर्ण है कि दबाव तथा हवा में मौसमी विविधतायें पायी जाती हैं।

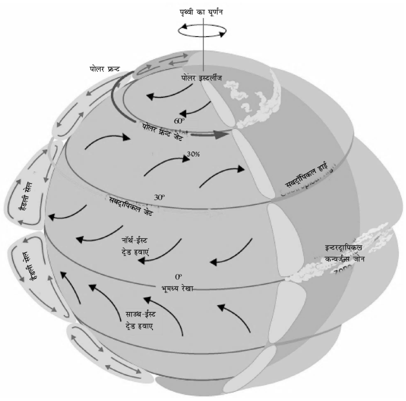

ग्रहीय हवाएं

हवायें, जो उत्तरीय गोलार्ध में सबट्रापिकल उच्च दाब पट्टी से विषुवतीय निम्न की तरफ बहती हैं, वो उत्तरी व्यावसायिक हवा कहलाती है तथा जो दक्षिणी गोलार्ध में बहती हैं वो दक्षिण पूर्वी हवायें कहलाती हैं। हवाओं का नाम हमेशा उनके आने वाली दिशाओं के नाम पर रखा जाता है। व्यावसायिक हवायें सभी अंतरिक्ष हवाओं के अपेक्षाकृत ज्यादा नियमित होती हैं। ये अधिक बल तथा एक नियत दिशा में प्रवाहित होती हैं। इनके पास नमी को धारण करने की अद्‌भुत क्षमता होती है, क्योंकि ये सब-ट्रापिकल अक्षांशों से ठंडे क्षेत्रों की ओर बहती है।

सब-ट्रापिकल उच्च दाब पट्टी से शीतोष्ण निम्न दाब पट्टी की तरफ बहने वाली हवा भिन्न रूप से पश्चिमी दिशा के अनुसार हुई होती है। कोरिलिस बल के अंतर्गत ये हवायें दक्षिणी गोलार्द्ध में दक्षिणी-पश्चिमी हवायें (साउथ वेस्टरली) बन जाती हैं। ये

उत्तरी गोलार्ध में अधिक विषम होती हैं लेकिन शीतोष्ण भूमि के पश्चिमी किनारों से विषुवतीय जल तथा हवा को लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। यहां मौसम नम तथा बादलों से घिरा होता है तथा समुद्र तूफानी तथा उग्र होते हैं।

अन्ततः उत्तरी ध्रुव से आने वाली ध्रुवीय उच्च दाब पट्टी की हवायें शीताष्ण निम्न दाब पट्टी की ओर बहती हैं। ये अत्यधिक रूप से ठंडी हवायें होती हैं जब ये टुंड्रा तथा आइसकैप क्षेत्रों से आती हैं। यह प्रक्षेपण में उत्तर की अपेक्षा अधिक नियमित होती हैं।

• मौसमी हवाएं

मौसमी हवायें हवाओं की वे गतियां होती हैं जो बड़े मानों के मौसम प्रतिमानों के परिवर्तनों में बार-बार तथा अनुमानित रूप से बहती हैं। मौसमी हवायें पूरे संसार में विभिन्न परिस्थितियों में पायी जाती हैं। किसी खास मौसमी हवा को निर्धारित किया गया नाम तथा निर्धारित भौतिक बल जिसके द्वारा वायु प्रवाहित होती है विशिष्ट भौगोलिक स्थिति पर निर्भर करता है।

एक अत्यधिक रूप से पहचानी मौसमी हवा मानसून हवायें है। यद्यपि मानसून को अकसर हम वर्ष के तूफान के नाम से जानते हैं, लेकिन वास्तव में ये मौसमी हवायें होती हैं। मानसून निम्न अन्नतांश जलवायु में वह हवा है जो मौसम के अनुसार ठंडक तथा गर्मी में अपनी दिशा बदल लेती है। मानसून साधारण रूप से ठंड में जमीन से पानी की तरफ बहता है तथा गर्मी में पानी से जमीन की तरफ बहता है। यह मानसून द्वारा प्रभावित क्षेत्रों के अवक्षेपण तथा तापमान प्रतिमानों में तीव्र परिवर्तन का कारण होता है।

• स्थानीय हवाएं

स्थानीय हवायें, विश्वीय हवाओं के तुलना में कम क्षेत्रों में बहती हैं तथा इनकी अवधि भी छोटी होती है। गर्म हवायें गर्म रेगिस्तानों के ऊपर के विस्तारित एंटी तूफानों में उत्पन्न होती है, जैसे सेंटा एना (कैलीफोर्निया), बिकफील्डर (दक्षिण-पूर्वी आस्ट्रलिया), सिरोको (मेडिटेरेनियन), हवूब (सूडान), कतामसिन (इजिप्ट) तथा हरमट्टन (पश्चिमी अफ्रीका)।

ठंडी हवायें पर्वतों से तथा अन्य बर्फ से ढके क्षेत्रों से उत्पन्न होती हैं तथा इसके अर्न्तगत मिस्ट्राल तथा बोरा आती हैं। कुछ स्थानीय हवायें, जैसे आस्ट्रेलिया की दक्षिणी वर्सटर, ठंडे प्रदेशों से जुड़ी होती हैं।

• जेट धाराएं

जेट धाराएं तेज गति से बहने वाली, पतली वायु धाराएं होती हैं जो कुछ ग्रहों के वायुमंडल (जिसमें पृथ्वी भी सम्मिलित है) में पृथ्वी पायी जाती हैं। मुख्य जेट धाराएं क्षोभविराम के पास स्थित होती हैं जो क्षोभमंडल (जहां तापमान उन्नतांक्ष के साथ कम होता है) तथा समताप मंडल (जहां तापमान अन्नतांश के साथ बढ़ता है) के बीच का संक्रमण होता है। पृथ्वी पर बड़ी जेट धाराएं पश्चिमी हवायें (जो पश्चिम से पूर्व की ओर चलती हैं) होती हैं। इनके रास्ते विशिष्ट रूप से टेढ़े-मेढ़े होते हैं। प्रधाराएं शुरू होती हैं, रुकती हैं, या उससे अधिक भागों में विभाजित होती हैं, संयुक्त होकर एकधारा बनाती हैं या विभिन्न दिशाओं में अथवा अधिकतर जेट के विपरीत दिशा में बहती हैं। सबसे अधिक शक्तिशाली जेट धारा, ध्रुवीय जेट धारा होती है जो समुद्री तल से 7-12 किमी ऊपर

टिप्पणी

बहती है तथा सबसे कमजोर सहस्थानीय जेट धाराएं 10-16 किमी पर बहती हैं। उत्तरी तथा दक्षिणी दोनों गोलार्द्धों में क्रमशः ध्रुवीय जेट धाराएं तथा सहस्थानीय जेट धाराएं पायी जाती हैं। उत्तरी ध्रुवीय जेट धाराएं एशिया और उनसे जुड़े समुद्रों के अंक्षाशों के ऊपर बहती हैं; जबकि दक्षिणी ध्रुवीय जेट धाराएं पूरे वर्ष अधिकतर अंटार्कटिका में बहती हैं।

• वातावरण में सामान्य परिसंचरण

मानसून को बड़े पैमाने पर समुद्री समीर की तरह समझा जा सकता है, जो मौसमीय गर्माहट तथा महाद्वीपीय भूमि पर एक उष्मीय निम्न के विकास के फलस्वरूप उत्पन्न होता है। ये आसपास के सागरों की तुलना में स्थलीय तापमान के मौसमीय चक्र के बड़े आयामों द्वारा बनती हैं। यह अंतरीय गर्माहट इसलिए होती है कयोंकि समुद्र की उष्मा 'मिश्रित परत' द्वारा उर्ध्वाधर रूप से मिश्रित होती है जो हवा की क्रियाओं तथा उछाल से उत्पन्न हलचल के कारण 50 मीटर गहरी हो सकती है, जबकि सतह उष्मा का संवहन धीरे-धीरे करता है, जिसका मौसमीय संकेत एक मीटर ही गहरा हो सकता है। साथ ही, द्रव जल की विशिष्ट उष्मा क्षमता महत्वपूर्ण से उन पदार्थो से ज्यादा होती है जो स्थल का निर्माण करते हैं। साथ में, इन दोनों कारकों का अर्थ है कि मौसमी चक्र में भाग लेने वाली उष्मीय क्षमता की परतें समुद्रों में स्थल की अपेक्षा अधिक विस्तारित होती हैं। इस नतीजे के साथ कि स्थल भाग के ऊपर की हवा तेजी से गर्म होती है, समुद्र के ऊपर की हवा में ऊंचे तापमान पर पहुंचती है। स्थल भाग की गर्म हवा ऊपर जाती है और निम्न दाब का क्षेत्र उत्पन्न करती है। ये जमीन की तरफ एक अपरिवर्तनशील हवा के बहाव को बनाता है, और नम हवा को समुद्र के पास लाता है। ठीक इसी प्रकार की वर्षा, पर्वतों के द्वारा, सतह के गर्म होने से, सतह की केंद्राभिमुखता, ऊंचाई पर अपसरण या सतह पर तूफान से बने बहिर्प्रवाह द्वारा नम समुद्री हवा के ऊपर उठने के कारण होती है। यद्यपि, जब नम हवा ऊपर उठती है तो निम्न दाब के प्रसार के कारण ठंडी हो जाती है, फलस्वरूप संघनन उत्पन्न करती है।

भारत की जलवायु मानसून से प्रभावित है। यहां मानसून शक्तिशाली होता है, जबकि उग्र हवायें मौसम के साथ दिशा बदल लेती हैं। मानसून हवायें ठंडे से गर्म क्षेत्रों की ओर प्रवाहित होती हैं क्योंकि ठंडी हवा, गर्म हवाओं की तुलना में अधिक स्थान घेरती हैं। सर्दी में मानसून हवा जमीन से समुद्र की ओर जाती है तथा गर्मियों में समुद्र से जमीन की ओर।

भारत में सर्दी का मौसम गर्म तथा सूखा होता है। इस समय मानसून हवायें उत्तर पूर्व से बहती हैं और अपने साथ बहुत कम नमी लाती हैं। तापमान ऊंचा होता है क्योंकि हिमालय एक रुकावट बनाता है जो ठंडी हवाओं को इस उपमहाद्वीप के ऊपर से गुजरने से रोकता है। साथ ही भारत का अधिकतर भाग उष्ण कटिबंध तथा विषुवत रेखा के बीच में आता है, इसलिए सूर्य की किरणें सीधी इसके स्थल भाग पर पड़ती हैं। भारतीय सर्दी के मौसम में तापमान 110°F तक पहुंच सकता है।

गर्मी का मानसून इस उपमहाद्वीप के ऊपर दक्षिण-पश्चिम में आता है। इसमें हवायें हिन्द महासागर से नमी को अपने साथ लाती हैं और जून से सितम्बर के बीच भारी वर्षा करती हैं। इस प्रकार की मूसलाधार बारिश के तूफान उग्र भूमि स्खलन का कारण होते हैं। मानसून की तेज बारिश में पूरे के पूरे गांव साफ हो जाते हैं। इन सब के बावजूद भारत में गर्मी के मानसून का जोरदार स्वागत किया जाता है। किसान अपनी भूमि पर खेती के

टिप्पणी

लिए वर्षा पर निर्भर होते हैं। साथ ही, भारत में बिजली जलशक्ति द्वारा उत्पन्न की जाती है, जो मानसून की बारिश द्वारा उपलब्ध होता है।

पाकिस्तान भारत से ज्यादा सूखा क्षेत्र है। भारत में गर्मी के मानसून की हवायें हिन्द महासागर से नमी लाती हैं, और पाकिस्तान इस समुद्र के दक्षिण में पड़ता है, इस कारण यहां कम वर्षा होती है। थार का रेगिस्तान भारत तथा पाकिस्तान की सीमा पर पड़ता है। यह लगभग 77,000 वर्ग मील के क्षेत्र में फैला है जो लगभग निब्रास्का का आकार है।

मानसून हवायें स्थल तथा समुद्री शीतल हवाओं की तरह होती हैं जो गर्मी तथा सर्दी में अंतरीय गर्माहट के कारण होती हैं। केवल इस बात पर भिन्न होती हैं कि एक छोटे तटीय क्षेत्र के स्थान पर, बड़े महाद्वीपीय पैमाने पर होती हैं। ये अत्यधिक रूप से एशियाई देशों में उपसिति होती हैं विशेषकर भारत, चीन, जापान तथा दक्षिण पूर्वी एशिया के उपमहाद्वीपों पर।

गर्मियों में, उत्तरी गोलार्द्ध में आंतरिक एशिया अपने चारों ओर के समुद्र से अधिक गर्म होता है। लगातार होने वाली गर्माहट, गर्म हवा को ऊपर जाने के लिए प्रेरित करती है और तीव्र निम्न दाब का क्षेत्र उत्पन्न करती है। ठीक सी समय दक्षिणी गोलार्द्ध में जो कि सर्दी का अनुभव कर रहा होता है, वहां निम्न तापमान तथा ठंडी हवायें मिलकर उच्च दाब का क्षेत्र बनाती हैं। इस प्रकार हवायें, विषुवत रेखा के आर-पार, हिन्द महासागर में खिंच जाती हैं, फलस्वरूप भारतीय उप-महाद्वीप में दक्षिण-पश्चिम मानसून के रूप में भारी वर्षा होती है।

इसका विपरीत सर्दी में होता है। उत्तरी गोलार्द्ध में एशिया का आंतरिक भाग अपने आस-पास के समुद्र की अपेक्षा कम ठंडा होता है। लगातार ठंडी तथा घनी हवा उच्च दाब का क्षेत्र बनाती है। जबकि दक्षिणी गोलार्द्ध में इस समय गर्मी होती है और गर्म हवायें ऊपर उठकर निम्न दाब का क्षेत्र बनाती हैं। एशिया के महाद्वीपों पर से हवायें हिन्द महासागर की ओर बहती हैं और उत्तरी पूर्वी मानसून लाती हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

9. किन्हीं दो स्थानों के बीच वायुदाब के अंतर को क्या कहते हैं?

   (क) वायुदाब प्रवणता　　(ख) पृथ्वी की घूर्णन गति

   (ग) भू-विक्षेपी प्रभाव　　(घ) इनमें से कोई नहीं

10. “जिस ओर हवा आ रही हो उस ओर मुंह करके खड़े होने पर न्यून वायुदाब उत्तरी गोलार्द्ध में बाईं ओर तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में दाईं ओर होगा।” यह किसका कथन है?

    (क) कोरिऑलिस　　(ख) वायज बैलट

    (ग) फेरल　　(घ) हैडले

1.7 वायुमंडलीय नमी : आर्द्रता, वाष्पीकरण, संघनन

पृथ्वी के धरातल का दो तिहाई भाग जल से घिरा है। इस विस्तृरित स्रोत से जल सतत रूप से वातावरण में वाष्पित हो रहा हैं। विविध प्रक्रियाओं द्वारा ठंडा संघनन, एवं तब फिर

टिप्पणी

अवक्षेप की विविध रूपों के रूप में पुनःभूतल पर गिरते हुए सतत रूप से वातावरण में वाष्पित हो रहा है। पृथ्वी के धरातल का शेष भूभाग विविध एवं विशाल रूप से विभिन्न भूभाग लक्षणों एवं विविध ठोस भूमि से निर्मित है। मौसम की भविष्यवाणी एवं विश्लेषण करने में भूभागों के भेदों का ज्ञान महत्वपूर्ण है। विश्व का भूभाग विशाल स्तरीय पर्वत एवं रेगिस्तान से लघु घूर्णमान चोटियों एवं घाटियों तक पृथक हैं। प्रत्येक प्रकार का भूभाग महत्वपूर्ण रूप से स्थानीय वायु प्रवाह, आर्द्रता उपलब्धता एवं परिणामित मौसम को प्रभावित करती है। वातावरण में आर्द्रता तीन अवस्थाओं में पायी जाती है जो ठोस, द्रव्य एवं गैसों के रूप में हैं। एक ठोस के रूप में यह हिम, ओलों एव बर्फ के पत्रकंदुक, कोहरा, हिम स्फटिक बादल, एवं हिम स्फटिक धुन्ध का आकार लेता है। मध्य, निम्न स्तर एवं धुन्ध सहित बादलों की रचना करते हुए एक द्रव्य के रूप में यह बारिश, फुहार, तुषार के रूप में पाई जाती है। गैसीय अवस्था में जल अदृश्य वाष्प की रचना करता है। वाष्प बादलों के उत्पादन एवं अन्य दृष्टिक मौसम संबंधी प्राकृतिक घटनाओं में वाष्प एक अत्यधिक एकल तत्व है। अवक्षेपण उत्पन्न करने के लिए जल वाष्प की उपलब्धता विशाल रूप से जीवन को अनुपोषण के लिए एक क्षेत्र की योग्यता निर्धारित करता है। महासागर वातावरण के लिए आर्द्रता के प्रारम्भिक स्रोत हैं, परन्तु झील, नदियां, दलदल, अद्रि मृदा, हिम, हिम क्षेत्र एवं वनस्पति भी इसको सुसज्जित करते हैं। वातावरण में आर्द्रता को गैसीय अवस्था में परिचय कराया जाता है। और तब एक द्रव्य या ठोस अवक्षेपण के रूप में यह वायु द्वारा इसके निर्मुक्तन से पूर्व विशाल दूरी तक वहन की जा सकती हैं।

- **आर्द्रता**

वातावरण में अधिकतम जल वाष्प महासागरों, झीलों, दलदलों एवं हिमनदी से आता है। कुछ जल वाष्प नम भूतल, पौधों की पत्तियों, एवं ज्वालामुखी विस्फोटों से आता है। जल वाष्प सम्पूर्ण क्षोभ मण्डल में संवहन-प्रवाहों एवं वायु द्वारा प्रवाहित किया जाता है। चूंकि उठता हुआ वायु प्रवाह शांत मण्डल में थमता है क्षोभ मंण्डल के ऊपर कम जल वाष्प है।

विशिष्ट आर्द्रता एवं क्षमता

जल वाष्प धारण के लिए वायु की क्षमता वायु के तापमान के उपर निर्भर करती है। उष्मतर वायु अधिकतम जल वाष्प को धारण कर सकती है। वायु में वास्तविक रूप से विद्यमान जल वाष्प की राशि को विशिष्ट आर्द्रता कहा जाता है। यह वायु के एक किलोग्राम में जल की ग्रामों में एक संख्या हैं। एक गर्भ आर्द्र गीष्म दिवस में विशिष्ट आर्द्रता प्रति किलोग्राम 20 ग्रामों के लगभग है। एक शीतल, शीतकालीन दिवस में विशिष्ट आर्द्रता 5 ग्राम प्रति किलोग्राम के लगभग है।

जब जल वाष्प धारण करने के लिए विशिष्ट आर्द्रता वायु की क्षमता की बराबरी करती है, वायु संतृप्त होती है। उदाहरण के लिए एक भत्स्य तालाब के आवरण एवं जल के धरातल के बीच वायु संतृप्त होनी निश्चित है। जल की बूंदें आवरण के निचली ओर से लटकती हैं। बूंदें दर्शाती हैं कि यद्यपि जल गरम तालाब से सतत वाष्पन में है, जल की समान राशि संतृप्त वायु से संघटन होती है। जल वाष्प धारण के लिए वायु की क्षमता 11 अंश सेल्शियस पर वायु का एक किलोग्राम लगभग 22 ग्राम धारण कर सकता है।

सापेक्ष आर्द्रता

जलवायुविज्ञानवेताओं को जानने की आवश्यकता होती है कि जल वाष्प धारण करने के लिए वायु अपनी क्षमता के कितने निकट है। यह सूचना सापेक्ष आर्द्रता है। सापेक्ष आर्द्रता

टिप्पणी

उस तापमान पर जिसे वायु धारण कर सकती है जल वाष्प की अधिकसम राशि (इसकी विशिष्ट आर्द्रता) वायु में जल वाष्प की वास्तविक राशि की तुलना करती है। सापेक्ष आर्द्रता को आमतौर पर एक प्रतिशत के रूप में व्यक्त किया जाता है। इसका गणन विशिष्ट आर्द्रता को क्षमता द्वारा विभाजन करते हुए किया जा सकता है। परिणाम 100 द्वारा गुणन एक प्रतिशत के रूप में उत्तर व्यक्त करने लिए किया जाता है। उदाहरण के लिए 26.5 अंश सेल्शियस के तापमान पर वायु की क्षमता 22 ग्राम है। यदि एक विशेष समय पर इसकी विशिष्ट आर्द्रता 11 ग्राम है इसकी सापेक्ष आर्द्रता 50 प्रतिशत है। संतृप्त वायु में सापेक्ष आर्द्रता 100% की है।

सापेक्ष आर्द्रता ज्ञात करना

सापेक्ष आर्द्रता को मापने के लिए प्रयुक्त उपकरणों को आर्द्रता मापी कहा जाता है। एक साधारण प्रकार की आर्द्रता मापी, केश आर्द्रता मापी इस सिद्धान्त पर आधारित है कि मानव केश तभी फैलता है जब यह आर्द्र है। केशों के एक बन्डल के एक छोर को नियत किया जाता है। दूसरे छोर को एक अंकक से जोड़ा जाता है। जब वायु आर्द्र है केश फैलता है एवं इंगक द्वारा इंगित पठन की आर्द्रता को परिवर्तित करता है जब वायु पुनः सूख जाती है, एक बार पुनः इंगक की स्थिति परिवर्तन करते हुए, केश एक संक्षिप्त लंबाई के लिए सिकुड़ जाता है।

आर्द्रता मापी का एक अन्य रूप साइक्रोमीटर है।यह एक सिद्धान्त पर कार्य करता है कि वाष्पन शीतलता उत्पन्न करता है। एक साइक्रोमीटर में दो प्रतिकात्मक थर्मामीटर हैं। एक तर ब्लब थर्मामीटर, में एक जल इसके बल्ब के चारो ओर लपेटा होता है। दूसरा शुष्क बल्क थर्मामीटर है। थर्मामीटर आवर्तित या कलदार हैं और इसलिए वायु दो बल्बों से गुजरते हुए प्रसारित होती है। सूखा बल्ब थर्मामीटर वायु तापमान दर्शाता है। तर बल्ब थर्मामीटर आमतौर पर एक निम्न तापमान दर्शाता है। जैसे ही जल वेट बाल्ब थर्मामीटर के पलीते से वाष्पित होता है उष्मा इसके बल्ब से ले ली जाती है। वायु का सूखातर वाष्पन तीव्रतर।एवं पठन निम्रतर।साइक्रोमीटर स्वंय दो पठन दर्शाता है। ये पठन प्रतीक देते हैं कि वायु कितनी सूखी है परन्तु सापेक्ष आर्द्रता को नहीं दर्शाते। थर्मामीटर पठन के साथ फिर भी सापेक्ष आर्द्रता एक सारणी का प्रयोग करते हुए प्राप्त की जा सकती है। सारणियों की वास्तविक प्रयोगों द्वारा गणना की जा सकती हैं।

• वाष्पीकरण

वाष्पन द्रव्य का एक वाष्पीकरण है जो केवल एक द्रव्य के धरातल पर घटित होता है। एक अन्य प्रकार का वाष्पीकरण उबलन है जो तत्काल सम्पूर्ण द्रव्य के पिण्ड पर घटित होता है। वाष्पन जल चक्रण का एक भाग भी है।

वाष्पन एक चरण संक्रमण का एक प्रकार है। यह एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा द्रव्य की अवस्था में कण स्वाभाविक रूप से गैसीय बन जाते हैं। (जैसे जल वाष्प) सामान्यतः एक द्रव्य के मद्धिम अप्रकट एक पदार्थ से जब गैस के एक महत्वपूर्ण आयतन के लिए आच्छादित किया जाता है, द्वारा देखा जा सकता है।

वाष्पीकरण एवं वाष्पन फिर भी पूर्ण रूप से एक ही प्रकार की प्रक्रियाएं नहीं हैं।

औसततः जल के एक गिलास में द्रव्य से पलायन करने के लिए पर्याप्त ऊष्मा ऊर्जा नहीं है। पर्याप्त उष्मा के साथ द्रव्य शीघ्रता से वाष्प में परिवर्तित नहीं होगा (उबलन बिन्दु को देखें), जब अणु टकराते हैं वे एक दूसरे की पृथक अंशों में वे किस प्रकार

टकराते हैं के आधार पर ऊर्जा को परिवर्तित करते हैं। कभी-कभी परिवर्तन धरातल के निकट एक अणु के लिए इतना एकतरफा है कि यह पलायन के लिए पर्याप्त ऊर्जा के साथ समाप्त हो जाता है।

टिप्पणी

द्रव्य जल के अणु सदैव संचलन में हैं। पर्याप्त ऊर्जा सहित अणु जल के धरातल से वायुमण्डल में पलायन के लिए वाष्पन कहा जाता है। साधारण तापमानों पर वाष्पन धीमा है क्योंकि कुछ अणुओं में द्रव्यों के धरातल से पलायन करने के लिए पर्याप्त ऊर्जा है। जैसे ही जल कण उष्मा ऊर्जा का अवशोषण करते हैं वे ऊपर की ओर गति करते हैं। तब अधिक कणों में जल के धरातल से पलायन करने के लिए पर्याप्त ऊर्जा है। तापमान वृद्धि के साथ वाष्पन दर वृद्धि करती है। जब जल वाष्पित होता है यह वातावरण में जल वाष्प के रूप में प्रवेश करता है।

द्रव्य जो दृष्टिगत रूप से एक दी गयी गैस में एक दिए गए तापमान पर (जैसे कक्ष तापमान पर पकाने का तेल) वाष्पित नहीं होते हैं में कण हैं जो वाष्प में बदलने के लिए आवश्यक एक कण को बार-बार ऊष्मा ऊर्जा देने के लिए एक पर्याप्त रीति में एक दूसरे के लिए ऊर्जा हस्तांतरण के लिए प्रवृत्त नहीं हैं। फिर भी ये द्रव्य वाष्पित हो रहे हैं। यह ठीक है कि प्रक्रिया अधिक मद्धिमतर है एवं इस प्रकार महत्वपूर्ण रूप से कम दृष्टिक है।

वाष्पन जल चक्र का एक आवश्यक भाग है, सौर ऊर्जा जल के वाष्पन को महासागरों, झीलों, मृदा में आर्द्रता, और जल के अन्य स्रोतों से नियंत्रित करता है।भूजल विज्ञान,वाष्पन एवं प्रस्वेदन में (जो पौधों के रंध्र में वाष्पन को संलिप्त करता है) संयुक्त रूप से वाष्प प्रस्वेदन (इवापोट्रांस्पिरेशन) कहलाता है। वाष्पन परिणामित होता है जब जल वायु के लिए अनावृत होता है एवं द्रव्य कण जल वाष्प में परिवर्तित होते हैं जो ऊपर उठते हैं और बादलों का निर्माण करते हैं।

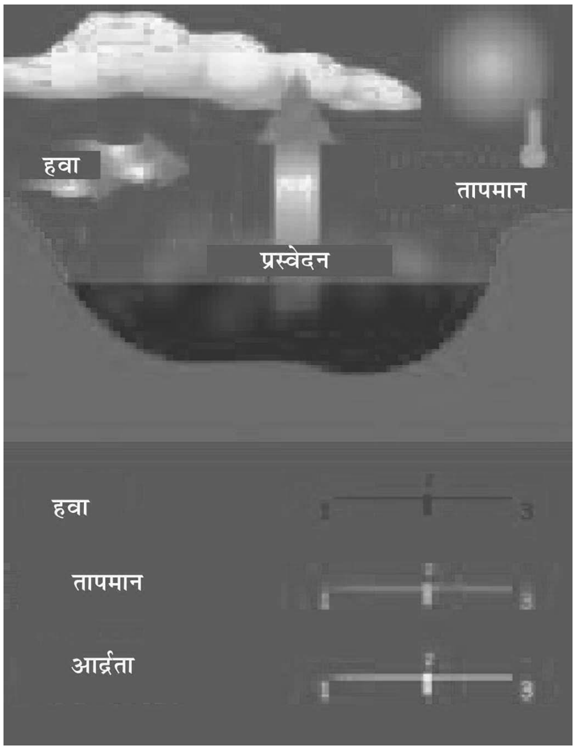

प्रस्वेदन की प्रक्रिया

- **संघनन**

संघनन जो वाष्प से द्रव्य में परिवर्तन है आमतौर पर वातावरण में किस प्रकार धारित होता है? इस उदाहरण पर विचार करें। एक धूपदार बसंत दोहपर पर वायु तापमान 15.5 अंश सेल्शियस है एवं विशिष्ट आर्द्रता 8 ग्राम है। इस तापमान पर वायु क्षमता 11 ग्राम है, इसलिए यह संतृप्त नहीं किया गया है। उस रात्रि वायु तीव्रता से शीतल होती है। जब इसका तापमान 10 अंश सेल्शियस पर पहुंचता है, इसकी क्षमता केवल 8 ग्राम है। चूंकि वायु की विशिष्ट आर्द्रता पूर्व ही 8 ग्राम है, वायु संतृप्त की गयी है।

संघनन की रचना

क्या होता है जब यदि तापमान 10 अंश सेल्शियस नीचे गिरता है? सभी जल वाष्प अपनी क्षमता से उपर संघनन करते हैं। यदि तापमान 4.5 अंश सेल्शियस तक गिरता है, वायु की क्षमता 6 ग्राम है। वायु का प्रत्येक किलोग्राम जल वाष्प का 2 ग्राम अवमुक्त करता है, जो तब संघनित होता है यदि जल वाष्प घास/तृण जैसे धरातलों पर एक द्रव्य के रूप में संघनित होता है इसे ओस कहा जाता है। जलवाष्प एक बादल या कोहरे का निर्माण करते हुए बूंदों में भी संघनित हो सकता है।

तापमान जिस पर संतृप्ति घटित होती है को ओस बिन्दु कहा जाता है। उदाहरण जो अभी दिया गया, संघनन से पूर्व ओस बिन्दु 10 अंश सेल्शियस था। ओस बिन्दु वायु में जल वाष्प की राशि पर निर्भर करते हुए उच्चतर या निम्रतर हो सकता है ।अधिक जल वाष्प के साथ प्रारम्भ करती है ओस बिन्दु उच्चतर होता है। जब वायु थोड़ी ओस बिन्दु के नीचे शीतल होती है, जल वाष्प संघनित होना प्रारभ होता है। सचमुच में, जब जल वाष्प वायु शीतल हो रही वायु में संधनित होता है, वायु तापमान एवं ओस बिन्दु इतने निकट हैं कि उन्हें समान विचार किया जाता है। उदाहरण में तापमान एवं तुषार बिन्दु साथ साथ गिरते हैं जब तक दोनों 4-5 अंश सेल्शियस बराबर हो जाते हैं।

वाष्पित हो रहे जल कण अपने परिवेश से उष्मा ऊर्जा अवशोषित करते हैं। संघनित हो रहे जल कण अपने परिवेश के लिए समान उष्मा उर्जा अवयुक्त करते हैं। इस प्रकार शीतल हो रही वायु का तापमान अधिक धीमी गति से तुषार बिन्दु पर पहंचने के बाद अधिक धीमे रूप में गिरता है।

संघनन, शीतलता एवं तुषार बिन्दु की मांग करता है

संघनित होने वाले जल वाष्प के लिए वायु को अपने तुषार बिन्दु के नीचे शीतल होना होगा। यह शीतलन चार भिन्न विधियों / मार्गों में हो सकता है। वायु निम्न चार प्रक्रियाओं द्वारा उष्मा की हानि कर सकती है।

1. एक शीतलतल धरातल से सम्पर्क करते हुए
2. उष्मा विकिरण करके
3. शीतलतल वायु के साथ मिश्रण करते हुए
4. विस्तारण करते हुए जब यह उठती हैं।

अन्तिम प्रक्रिया बादल, वर्षा या हिम उत्पन्न करने में अति महत्वपूर्ण है। यहां तक कि जब वायु अपने तुषार बिन्दु से नीचे शीतल होती है, संघनन अब घटित हो सकता है। तब वायु को ईष्टतम संतृप्त होना कहा जाता है। जल वाष्प कुछ जीव पर संघनन होने

की मांग करता है। लघुतम कण जिन पर जल वाष्प संघनित होता है संघनन न्यूक्लेई कहा जाता है। यह वहां संघनन न्यूक्लेई नहीं हैं, संघनन नहीं घट सकता है।

टिप्पणी

संघनन न्यूक्लेई आमतौर पर लवण, सल्फेट कण, या नाइट्रेड कण जैसे पदार्थ हैं। लवण वायु में प्रवेश करता है जब सुन्दर समुद्री छिड़काव वाष्पित होता है। सल्फेटस एवं नाइट्रेटस प्राकृतिक स्रोतों एवं ईंधनों के जलने से आते हैं। संघनन न्यूक्लेई इतने छोटे हैं कि धुएं की एक फूंक उनमें से लाखों को धारण कर सकती है। इसी प्रकार, जल वाष्प हिम स्फटिक निर्मित करने के लिए हिम न्यूक्लेई की मांग करता है। कुछ प्रकार के बैक्टीरिया एवं मिट्टी कण जैविक पदार्थों द्वारा गंदगी लिए हुए अच्छे हिम न्यूकलेई हैं।

तुषार एवं कोहरा सम्पर्क द्वारा

संघनन आमतौर पर तब घटता है जब वायु अपने तुषार बिंदु से नीचे शीतल होती है। यदि धरातल के साथ सम्पर्क द्वारा शीतलन होता है तो जल वाष्प उस धरातल पर प्रत्यक्ष व संघनित होता है। जल की बूंदें एक गिलास के बाहर की ओर या हिम भूतल पर, पत्रों पर एवं तृण पर और अन्य धरातलों पर निर्मित हो सकती हैं। रात्रि में ये धरातल वायु से शीतलतर हो जाते हैं क्योंकि वे अधिक तीव्रता से उष्मा को हानि करते हैं। वायु अपने तुषार बिन्दु पर पहुंचती है जहां यह शीतलतर वस्तुओं को छूती है। स्वच्छ रात्रियां अधि क शीतल एवं भारीतर तुषार दर्शाती हैं।

यदि तापमान धरातल पर 10 अंश सेल्शियस के नीचे है जल वाष्प एक ठोस के रूप में एक धरातल पर संघनन करते हैं, कोहरा कहा जाता है। जब भूतल के निकट तापमान 2 अंश सेल्शियस के नीचे गिरता है कुछ पौधों की कोशिकाओं में द्रव्य जम सकता है। यह जमाव कोशिका दीवारों को विस्फोटित करते हैं ओर पौधों को नष्ट कर देते हैं। भार देने वाला कोहरा वातावरणिक आर्द्रता द्वारा नहीं उत्पन्न होता बल्कि पौधों के स्वयं के तापमान द्वारा उत्पन्न होता है।

भूजल वित्तानीय चक्रण

जल चक्र भूतल वित्तानीय चक्र या H_2O चक्र के रूप में भी जाना जाता है, पृथ्वी के धरातल के नीचे एवं उपर या पर जल के सतत संचलन का वर्णन करता है।

जल द्रव्य वाष्प एवं हिम जल चक्र में विभिन्न स्थानों पर जल स्थिति परिवर्तन कर सकता है। यद्यपि पृथ्वी पर जल का संतुलन प्रर्याप्त रूप से समयोपरान्त सतत रहता है। एकल जल कण आ सकते हैं एवं जा सकते हैं। जल एक जलाशय से दूसरे में जैसे नदी से महासागर से वायुमण्डल में वाष्पन,संघनन, अवक्षेपण, बहाव एवं उपधरातलीय बहाव की भौतिक प्रक्रियाओं द्वारा संचलन करता है। ऐसा करने में जल विभिन्न चरणों द्रव्य, ठोस एवं गैस से गुजरता है।

भूजल वैज्ञानिक चक्र उष्मा उर्जा के विनिमय में भी संलिप्त रहता है जो तापमान परिवर्तन का नेतृत्व करता है। उदाहरण के लिए वाष्पन की प्रक्रिया में जल परिवेश से ऊर्जा प्राप्ति करता है एवं पर्यावरण को शीतल करता है। विपरीत रूप से, संघनन की प्रक्रिया में जल अपने परिवेश के लिए पर्यावरण को उष्मा प्रदान करते हुए ऊर्जा अवमुक्त करता है।

जल चक्र पर पृथ्वी पर पर्यावरण एवं जीवन के रखरखाव में महत्वपूर्ण रूप से आकृतन करता है। यहां तक कि प्रत्येक जलाशयों में जल जैसे कि एक महत्वपूर्ण भूमिका

टिप्पणी

निभाता है, जल चक्र हमारे ग्रह पर जल की उपस्थिति के लिए अतिरिक्त महत्व लाता है। एक जलाशय से दूसरे जलाशय के लिए जल स्नानान्तरण द्वारा ताजे जल से भू भरण करते हुए एवं विश्व के विभिन्न भागों में खनिजों का यातायात करते हुए जल चक्र जल को परिष्कृत करता है।

सूर्य, जो जल चक्र को नियंत्रित करता है, महासागरों एवं समुद्रों में जल को उष्मित करता है। जल वायु में जल वाष्प के रूप में वाष्पित होता है। हिम एवं बर्फ जल वाष्प में प्रत्यक्ष रूप से शुद्ध हो सकता है। वाष्प प्रस्वेदन पौधों से प्रस्वेदित जल है एवं मृदा से वाष्पित होता है। ऊपर उठता हुआ वायु प्रवाह वाष्प को वातावरण में उपर ले जाते हैं जहां शीतलतर तापमान इसको बादलों में संघनन कराने का कारण बनता है।

जल वाष्प को विश्व के चारों ओर संचलन करता है, बादल के कण टकराते, वृद्धि करते एवं अवक्षेपण के रूप में आसमान से बाहर गिरते हैं। कुछ अवक्षेपण एक हिम या ओला के के रूप में गिरते हैं और हिमनदों एवं हिमाच्छदों के रूप में जमा हो सकते हैं जो हजारों वर्षों के लिए जमे हुए जल को भण्डारित कर सकते हैं, बर्फ के टीले पिघल एवं पिघला सकते हैं एवं पिघला जल बर्फ पिघलन के रूप में वापस गिर सकते हैं जहां जल धरातल बहाव के रूप में भूतल पर प्रवाहित होता है। इस धरातल निस्राव का एक मात्र धारा बहाव संचलित जल महासागरों की ओर भूदृश्य में, घाटियों की नदियों में प्रवेश करता है। प्रवाहित एवं भूतल जल झीलों में ताजे जल के रूप में भण्डारित होते हैं।

सभी धरातल निस्राव जल नदियों में प्रवाहित नहीं होता, इसमें से अधिकतर घुसपैठ के रूप में भूतल में अवशोषित हो जाता है। कुछ जल भूतल में गहरे घुसपैठ करता है एवं जल भृत्तों में भरण हो जाता है जो ताजे जल को लम्बी अवधि के लिए भण्डारित कर देता है। कुछ घुसपैठ भूधरातल के निकट ठहरता है एवं वापस धरातल जल पिण्डों में एक भूतल जल स्राव के रूप में रिस सकता है। कुछ भूतल जल भूमि में आवरण प्राप्त करता है और ताजा जल चशमे के रूप में आता है। कुछ समय पश्चात, जल महासागरों में प्रवेश करता है, जहां हमारा जल चक्र प्रारम्भ हो जाता है।

जल चक्र

टिप्पणी

जल चक्र की विभिन्न प्रक्रियाएं

जल चक्र की विभिन्न प्रक्रियाओं को निम्न प्रकार से समझाया गया है-

अवक्षेपण

संघनित जल वाष्प जो पृथ्वी के धरातल पर गिरती है अवक्षेपण के रूप में जानी जाती है। अधिकतम अवक्षेपण वर्षा के रूप में होता है, परन्तु इसमें हिम, ओले, धुन्ध रिसाव, कच्चे ओले एवं वृष्टि सम्मिलित हैं।

छत्र अवरोधन

अवक्षेपण जो पौधों के पल्लवों द्वारा अवरोधित किया जाता है एवं अन्त में भूतल पर गिरने की अपेक्षा वापस वातावरण को वाष्पित करता है एक अवरोधन के रूप में जाना जाता है।

हिम पिघलन

हिम के पिघलने द्वारा उत्पन्न धरातल प्रवाह एक हिम पिघलन के रूप में जाना जाता है।

निस्राव

विभिन्न मार्ग जिनके द्वारा जल भूमि के आर पार संचलन करता है एक निस्राव के रूप में जाना जाता है। इसमें धरातल निस्राव एवं परनाली निस्राव दोनों सम्मिलित हैं। जैसे ही यह बहता है जल भूतल में रिस सकता है, वायु में वाष्पित हो सकता है, झीलों या जलाशयों में भण्डारित हो सकता है या कृषि या अन्य मानवीय उपयोगों के लिए निस्सारित किया जा सकता है।

घुसपैठ

भूतल धरातल से भूतल में जल के बहाव को एक घुसपैठ के रूप में जाना जाता है। एक बार घुसपैठ होने पर जल मृदा आर्द्रता या भूतल जल बन जाता है।

उपधरातल बहाव

उथले क्षेत्र एवं चट्टान भण्डारण में भूतल जल का बहाव एक उथला धरातल बहाव के रूप में जाना जाता है। उप धरातल जल धरातल में वापस लौट सकता है (जैसे एक चश्मे या पम्प किए जाने द्वारा) या अन्त में महासागरों में रिस सकता है। गुरुत्वाकर्षण या गुरुत्वाकर्षण प्रेरित दाब के अर्न्तगत जल जहां यह घुसपैठ करता है से निम्नतर अवरोहण पर मूधरातल पर वापस लौटता है।

वाष्पन

जल का रूपांतरण द्रव्य से गैस चरणों तक जैसे यह भूतल या जल पिण्डों से ऊपरी वायुमण्डल में संचलन करता है। वाष्पन के लिए ऊर्जा का प्रारम्भिक स्रोत सौर विकिरण है। वाष्पन बहुधा परोक्ष रूप से पौधों से प्रस्वेदन के रूप में संदर्भित किया जाता है।

ऊर्ध्वपतन

ठोस जल (बर्फ या हिम) से जल वाष्प में प्रत्यक्ष अवस्था परिवर्तन उर्ध्वपतन के रूप में जाना जाता है।

अभिवहन

जल की ठोस, द्रव्य या वाष्प अवस्थाओं से होकर गुजरते हुए एक अभिवहन के रूप में जाना जाता है। बिना अभिवहन के, महासागरों के ऊपर जल जो वाष्पित हुआ है भूमि पर अवक्षेपण नहीं हो सकता।

टिप्पणी

संघनन

जल का द्रव्य जल बूंदों का वायु में रूपान्तरण, बादलों एवं धुन्ध का निर्माण करते हुए संघनन के रूप में जाना जाता है।

प्रस्वेदन

पौधों एवं मृदा से वायु में जल वाष्प का अवमुक्तन प्रस्वेदन के रूप में जाना जाता है। जल वाष्प एक गैस है जिसे देखा नहीं जा सकता।

आवासीय समय

एक जलाशय का आवासीय समय भूजलीय विज्ञान चक्र के अंतर्गत एक औसत समय है जिसे एक कण उस जलाशय में व्यतीत करेगा। यह उस जलाशय की औसत आयु का एक मापन है।

तालिका : *औसत जलाशय आवासीय समय*

जलाशय	औसत आवास समय
अन्टार्कटिक	20,000 वर्ष
महासागर	3,200 वर्ष
हिमनद	20 से 100 वर्ष
मौसमीय हिम आवरण	2 से 6 माग
मृदा आर्द्रता	1 से 2 माह
भूतल जल उथला	100 से 200 वर्ष
भूतल जल गहरा	10,000
झील	50 से 700 वर्ष
नदिया	2 से 6 माह
वातावरण	9 दिवस

जलवायु पर जल चक्र का प्रभाव

जल चक्र सौर ऊर्जा से सशक्त होता है। विश्व के वाष्पन का 86% वाष्पन शीतलन द्वारा उनके तापमान को घटाते हुए महासागरों से घटित होता है। शीतलन पर वाष्पन का प्रभाव 67 डिग्री सेल्शियस (153 डिग्री एफ) का एक अधिक उच्च धरातल तापमान एवं एक अधिक गरम गृह में परिणित होगा।

जैव भूरासायनिक चक्र पर प्रभाव

जल चक्र जबकि स्वयं एक जैव भूरासायनिक चक्रण है, पृथ्वी के ऊपर एवं नीचे जल का प्रवाह अन्य जैवभूरसायनों के चक्रण का एक प्रमुख घटक है। भूमि से जल पिण्डों तक अपरदनित तलछट एवं फासफोरस के लगभग सभी परिवहन के लिए निस्राव: उत्तरदायी हैं। महासागरों की लवणता अपरदन एवं भूमि में घुले लवण के परिवहन से प्राप्त की जाती है। झीलों के सांस्कृतिक अत्यधिक वनस्पति जमाव प्रारम्भिक रूप से रासायनिक खादों में कृषिक खेतों के लिए अत्यधिकता में प्रयुक्त फासफोरस के कारण हैं एवं तब भूमि के ऊपर एवं निचली नदियो में परिवहन होता है निस्राव एवं भूतल जल प्रवाह दोनों नाइट्रोजन को भूमि से जलपिण्डों में परिवहन करते हुए महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मिस्सी सिपी नदी के मुहाने पर मृत क्षेत्र कृषिक खेतों से वहन हो रहे रासायनिक खादों से नाइट्रेट एवं मैक्सिको की खाड़ी की नदी प्रणाली में नीचे छुच्छीदार

बना दिया है। पुनःअपरदित चट्टानों एवं मृदा के परिवहन द्वारा निस्राव भी कार्बन चक्र में एक भाग अदा करता है।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

11. पृथ्वी के धरातल का कितना भाग जल से घिरा है?
    (क) एक तिहाई (ख) आधा
    (ग) दो तिहाई (घ) तीन तिहाई
12. वाष्प से द्रव्य में परिवर्तन की क्रिया को क्या कहा जाता है?
    (क) वाष्पीकरण (ख) संघनन
    (ग) आर्द्रता (घ) इनमें से कोई नहीं

1.8 वर्षा (अवक्षेपण) : विन्यास, प्रकार, अम्ल वर्षा, वर्षा का वैश्विक स्वरूप

अवक्षेपण जल के किसी रूप में वायु से पृथ्वी के धरातल पर अवतरण है। अवक्षेपण घटित होता है जब बादल की नन्ही बूंदें पर्याप्त भारी बूंदों में पृथ्वी पर गिरने के लिए विकसित होती हैं।

वर्षा की बूंदें दो विधियों से बनती हैं- गर्म बादल प्रक्रियाओं द्वारा एवं हिम प्रक्रियाओं द्वारा। गर्म बादल प्रक्रिया में, नन्ही बूंदें संघनन द्वारा निर्मित होती हैं एवं दूसरी बूंदों के साथ संयोजन द्वारा वृद्धि करती हैं। बूंदें टकरा सकती हैं क्योंकि वे विभिन्न आकार की होती हैं। बड़ी बूंदें छोटी बूंदों से अधिक तीव्रता से गिरती हैं। वे छोटी बूंदों के साथ पकड़ बनाती हैं, उनके साथ टकराती हैं एवं उन्हें पकड़ती हैं।

कुछ लघुतर बूंदें बड़ी बूंद के पीछे चूस ली जाती है एवं उस विधि से पकड़ ली जाती हैं। फिर भी दूसरी नन्ही बूंदें बड़ी बूंद से टकराकर उछल जाती हैं।

बूंदों के विभिन्न आकार क्यों होते हैं? बूंदें जो लम्बे समय तक बादल में रही हैं बढ़ने के लिए अधिक समय था, कुछ बादल की बूंदें बड़ा आकार लेना आरम्भ करती हैं क्योंकि वे एक बड़े लवण के चारों ओर निर्मित हुई हैं। फिर भी अन्य बादल की बूंदें वायु में मिश्रित हो जाती हैं जो संतृप्ति से कम हैं। बूंदें वाष्पन से सिकुड़ जाती हैं। बादल के विभिन्न भागों से वायु का मिश्रण होना या बादल की ऊंचाई से बादल की विभिन्न आकार की बूंदों को साथ ले आती हैं।

बूंदें हिम प्रक्रियाओं द्वारा भी वृद्धि करती हैं। सिवाय गरम उष्ण कटिबंधों में छिछले बादलों के लिए, बादलों की ऊपरी सतहों में तापमान हिमांक से नीचे है। हिम स्फटिक एवं अत्यधिक शीतनित बूंदें विद्यमान हैं। अत्यधिक शीतनित जल हिम से तीव्रतर वाष्पित होता है एवं यह जल वाष्प हिम स्फटिकों पर जमा हो जाता है। जब बड़े हिम स्फटिक पर्याप्त भारी हो जाते हैं, वे गिरने प्रारम्भ हो जाते हैं। तब गिर रहे स्फटिक लघुतर हिम स्फटिकों एवं जल बूंदों दोनों को अपने पथों में वृद्धि कर सकते हैं। यदि बादल के निचले भाग में तापमान हिमांक से ऊपर है, स्फटिक पिघलता है एवं उष्म बादल प्रक्रियाओं द्वारा सतत वृद्धि करता है।

• अवक्षेपण के रूप

अवक्षेपण कई रूपों में आता है। फुहार अधिक सुन्दर बूंदों को धारण करता है जो अधिक निकट है और अधिक धीमे से गिरती है। वर्षा बूंदें बड़े आकार की हैं, दूर हैं, एवं अधिक तीव्रता से गिरती हैं। एक वर्षा बूंद में एक सेन्टीमीटर के 0.25 का एक अधिकतम व्यास हो सकता है। विशालतर वर्षा बूंद निर्मित हो सकती है, परन्तु जैसे वे गिरती हैं टुकड़े-टुकड़े हो जाती हैं।

हिम आमतौर पर छह पार्श्व स्फटिकों के झुरमुट के रूप में गिरता है। झुरमुट टकराने द्वारा वृद्धि करते हैं। जब हिम के कतरे गरम वायु पर गिरते हैं, वे आंशिक रूप से चिपचिपे, तर झुण्डों में पिघलते हैं। यदि हिम खण्ड पूर्ण रूप से पिघलते हैं, वे बारिश के रूप में गिरते हैं।

किसी शीतकाल तापमान प्रतिलोमो में ऊष्म बादल हिमांक के नीचे एक तापमान सहित वायु की एक सतह के ऊपर पड़े होते हैं। जब वर्षा बूंदें हिमांक वायु द्वारा संघनित होकर गिरती हैं, वे बर्फ की गोलियों में परिवर्तित हो जाती हैं जो भूतल पर एक हिम वृष्टि के रूप में गिरती हैं। दूसरी ओर एक हिम तूफान निर्मित होता है। जब अति शीतनित वर्षा तात्कालिक रूप से जम जाती है जैसे ही यह धरातलों जो हिमांक से नीचे हैं से टकराती हैं, बर्फ की चादर या पन्नी, पार्श्व भ्रमणों में निर्मित, वृक्ष, छत एवं विद्युत लाइनों पर निर्मित होती हैं। यदि हिम पर्याप्त भारी बन जाता है, वृक्ष एवं विद्युत लाइनें बर्फ के भार के नीचे टूट सकती हैं।

ओला कपासी मेघ बादलों में निर्मित होता है। एक ओला हिंमाकित एक वर्षा बूंद या बर्फ के स्फटिकों के लघु, घने झुरमुट के रूप में आरम्भ होता है। एक ओला कमतर बर्फ कणों, द्रव्य बादल बूंदों एवं अति शीतल वर्षा बूंदों जो इस पर हिमांक होते हैं के संग्रहण द्वारा वृद्धि करते हैं। वृद्धि कर रहा ओला एक सशक्त ऊपरी बहाव द्वारा ऊंचा रखा जाता है जब तक यह अति भारी हो जाता है एवं बाहर गिर जाता है। इसके जीवन की प्रारंभिक अवस्था में ओला दूसरे में पुनः ऊंचा उठने के लिए केवल एक ऊपरी बहाव से बाहर गिर सकता है। ओले का आकार कितनी देर तक बादल में ऊंचा रखा जाता है एवं कितनी अधिक आर्द्रता यह पकड़ता है इस पर निर्भर करता है। स्पष्ट रूप से, सशक्त ऊपरी बहाव, विशालतर ओला निर्मित होना, ओले में एक प्याज जैसी परतीय संरचना है। क्योंकि यह गर्जन करने वाले बादलों के आर-पार उनकी यात्रा पर आर्द्रता एवं तापमानों के विभिन्न प्रकारों से उनके मिलन द्वारा है। ओले 5 mm जैसे छोटे एवं 140 mm जैसे बड़े हो सकते हैं।

राष्ट्रीय मौसम विभाग बारिश का विवरण एक इंच के सौवें हिस्से में देता है। वर्षावृटि, वारिश/वर्षा को गेज पुकारे जाने वाले एक यंत्र द्वारा मापा जाता है। मापन जल की गहराई जिसे वर्षा छोड़ देगी यदि यह भूतल में अवशोषित बहाव या वाष्पित नहीं हुई हो, का प्रतिनिधित्व करता है।

हिमपात इंचों एवं इंच के दसवें हिस्से में मापा जाता है। एक मापन आमतौर पर एक खुले स्थल में लिया जाता है। हिमपात की वर्षा बर्फ की एक निश्चित गहराई को पिघलाने द्वारा निर्धारित की जाती है। शुष्क बर्फ तर बर्फ के समान भार से गहरी है। औसत पर, बर्फ का 10 इंच एक इंच बारिश के समान है। यह अनुपात, फिर भी, बर्फ के 5 इंच जैसे छोटे से 30 इंच बड़े अनुपात में हो सकती है।

टिप्पणी

• **वर्षा का वैश्विक स्वरूप**

अवक्षेपण जैसे वर्षा, हिमवृष्टि, ओले या बर्फ विश्व के प्रत्येक भाग में घटित होता है। कुछ स्थानों में, एक समय पर वर्षों भर यह बरस सकता है। दूसरे स्थानों में यह लगभग प्रत्येक दिन बरस सकता है। कैलीफोर्निया में एक वर्ष बारिश का एक इंच के लगभग औसत है जबकि भारत में चेरापूंजी प्रतिवर्ष 457 इंच औसतन, वार्षिक वर्षा वृष्टि में इस प्रकार की विभिन्नता का क्या कारण है?

जब वायु पर्याप्त उच्च उठती है एवं पर्याप्त बड़ी मात्राओं में उठती है तो अवक्षेण बहुधा घटित होता है। वायु का अधिक उष्मन अधिक आर्द्रता धारण कर सकता है। वायु का उच्चतर उठना भी अधिक आर्द्रता को गिरा सकता है। इसलिए यह अनुसारित करता है कि पृथ्वी के वर्षा क्षेत्र वे होगे जहां वायु विशाल मात्राओं में बहुधा उठती है।

एक क्षेत्र में सामान्य पवनों को प्रचलित पवनें कहा जाता है। पर्वत शृंखला का पार्श्व भाग जिस ओर पवनें बहती हैं पवनाभिमुख पार्श्व भाग कहा जाता है। विद्यमान प्रमुख पवनों को एक पर्वत शृंखला की पवनाभिमुख भाग को उच्चतम ऊंचाई तक चढ़ने के लिए बाध्य किया जाता है। क्योंकि ये जैसे ही उठती हैं वायु शीतल होती है। इसकी कुछ आर्द्रता संघनित होती है और वर्षा या हिम के रूप में गिरती है। एक उदाहरण उत्तर पश्चिमी संयुक्त राज्यों में कैसकेड पवर्तों के पश्चिमी ढलान हैं।

इनमें आंधी–तूफान, प्रचंड तूफान, निम्न दाब क्षेत्र एवं सीमाएं सम्मिलित हैं। इनमें से सभी में वायु अवक्षेपण उत्पन्न करने के लिए उत्थान करती है एवं शीतल होती है।

वैश्विक पवन पट्टी द्वारा अनुकूलित क्षेत्रः प्रचलित पवनें भूमध्य रेखा के चारों ओर एक बिन्दु पर मिलती हैं। (साथ साथ आती हैं)। भूमध्य रेखा के चारों ओर अमाजन, कांगो एवं इण्डोनेशिया के उष्ण कटिबंधीय घने वन पड़ते हैं।

बहुधा वहां वर्षा नहीं होती जहां इसकी सबसे अधिक आवश्यकता होती है। प्रारंम्भ से ही लोगों को वर्षा की आवश्यकता रही हैं, उन्होंने इसे बारिश बनाने का प्रयत्न किया था, मौसम को परिवर्तन करने के एक प्रयास को मौसम का आंशिक परिवर्तन कहा जाता है।

वर्षा निर्माण की दो विधियां हैं। प्रथम विधि में, अति शीतल ठोस कार्बनडाई ऑक्साइड, या सूखे बर्फ के ढेले एक अतिशीतल बादल में गिरा दिए जाते हैं। ये बादल को इतना अधिक शीतल करते हैं कि छोटे हिम स्फटिक निर्मित होते हैं। हिम प्रक्रियाओं द्वारा स्फटिक वृद्धि करते हैं जब तक वे गिरने के लिए पर्याप्त भारी नहीं हो जाते। द्वितीय विधि में, कृत्रिम बर्फ न्यूक्लेई (आमतौर पर सिल्वर आयोडीन या लीड आयोडीन) बादल में रख दिए जाते हैं। नन्हे स्फटिक निर्मित करने के लिए धुएं के जेनेरेटरों का प्रयोग किया जाता है जो आकार में हिम स्फटिकों के बहुत अधिक समान हैं। एक बार स्फटिक निर्मित हो जाते हैं, हिम प्रक्रिया द्वारा अवक्षेपण पुनः वृद्धि करता है।

यह पता करना कठिन है कि वर्षा निर्माण कार्य करती है। चूंकि अवक्षेपण जो गिरता है प्राकृतिक रूप से गिराया जा सकता था। वर्षा होने के लिए बादलों को भी उपस्थित होना पड़ेगा।

वैज्ञानिक न केवल इसको वर्षा बनाने के लिए भागों की खोज कर रहे हैं। वे ओलों की रोकथाम का भी उपाय कर रहे हैं। अत्यधिक शीतल कोहरे से वर्षा निर्मित करने के

लिए ऐसी ही तकनीक द्वारा सफाया किया जा सकता है। इस स्थिति में बादल नन्हीं बूंदों की अधिक वृद्धि कर बाहर गिरने के लिए निर्मित करते हैं।

टिप्पणी

- **अम्लीय वर्षा**

अम्ल वर्षा एक ऐसी वर्षा है जो अम्लीय है, अर्थात इसमें बड़ी मात्रा में हाइड्रोजन पाया जाता है। अधिकतम अम्लीय वर्षा नाइट्रेटस एवं सल्फेट कणों को धारण करती है। सल्फेट सल्फर डाई–ऑक्साइड से आती है, जो ईंधनों को जलने एवं प्राकृतिक स्रोतों जैसे ज्वालामुखी से आने वाली नाइट्रेट निर्माण करने वाली गैसों एवं आटोमोबाइल से भी परिणामित होता है।

सल्फेट एवं नाइट्रेट कण संघनन न्यूकलेई का निर्माण करते हैं। जब जल उन पर संघनित होता है, वे नाइट्रिक एवं सल्फ्यूरिक एसिड उत्पन्न करते हैं, बूंदें जो भूतल पर गिरती हैं अम्लीय वर्षा के रूप में जानी जाती हैं। शुष्क सल्फेट एवं नाइट्रेट कण जो भूतल पर गिरते हैं शुष्क अम्ल जमाव के नाम से पुकारे जाते हैं। वे अम्ल बनाने के लिए भूतल जल के साथ संयोजन करते हैं। बादल की नन्हीं बूंदें जो इन न्यूक्लेई पर निर्मित होती हैं बहुत अम्लीय हैं। बादल के साथ ही अम्लीय वर्षा पर्वतीय वनों को भारी रूप से क्षति पहुंचाती हैं क्योंकि उच्च ऊंचाई वाले वन बादलों के अंर्तगत बहुधा घिर जाते हैं। न केवल मृदा ही अत्यधिक अम्लीय बन जाती है, बल्कि पत्ते भी उन पर प्रत्यक्ष रूप से गिर रहे अम्ल द्वारा क्षतिग्रस्त हो सकते हैं।

अम्लीय वर्षा झीलों एवं नदी नालों के जीवन को भी नष्ट करती है। लम्बे समय तक न्यूयार्क राज्य के एडिरोन्डेक पर्वतों में कई झीलो में मछलियां जीवित नहीं रह सकतीं क्योंकि जल अधिक अम्लीय है। शहरों में अम्लीय वर्षा चट्टान एवं कंक्रीट का स्वरूप बदल देती है एवं धातुओं, रंगों, प्लास्टिक्स एवं कागज को क्षति पहुंचाती है।

अपनी प्रगति जांचिए

13. हमारे वायुमंडल में अवक्षेपण का सबसे सामान्य प्रकार कौन–सा है?
    (क) ओले (ख) वर्षा
    (ग) बर्फ (घ) उपलवृष्टि
14. अम्लीय वर्षा किन कणों को धारण करती है?
    (क) नाइट्रेट (ख) सल्फेट
    (ग) क व ख दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं

1.9 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ग)
2. (ख)
3. (क)
4. (घ)
5. (ग)
6. (ख)

टिप्पणी

7. (ख)
8. (ग)
9. (क)
10. (ख)
11. (ग)
12. (ख)
13. (ख)
14. (ग)

1.10 सारांश

जलवायु विज्ञान, जलवायु का वैज्ञानिक अध्ययन है। यह समय की एक लम्बी अवधि में मौसम की प्रवृत्ति से संबंधित है। आवश्यक रूप से जलवायु विज्ञान एक वायुमंडलीय विज्ञान है जो बहुत नाम से संबंधित है पर मौसम विज्ञान से अलग है। यह वायुमंडल तथा उसके तथ्यों का अध्ययन है। आधारभूत रूप से अंतर केवल विधिविज्ञान में होता है। जहां मौसम वैज्ञानिक वायुमंडलीय प्रक्रियाओं के अध्ययन में पारंपरिक भौतिक के नियमों तथा गणितीय तकनीकों को प्रयोग में लाते हैं। जलवायु वैज्ञानिक मौसम के आंकड़ों में सूचनाओं को व्युत्पन्न करने के लिए सांख्यिकीय तकनीकों पर विश्वास करते हैं।

समय की अल्प अवधि में वायुमंडल की स्थिति को मौसम कहते हैं। उदाहरण के लिए, दिन प्रति दिन और एक सप्ताह तक की अवधि, जबकि दीर्घ अवधि में वायुमंडल की औसत स्थिति जलवायु कहलाती है। घर से बाहर निकलते ही आपका सामना मौसम के अनेक पहलुओं से होता है। आर्द्रता, वायु तापमान तथा दबाव, हवा की गति और दिशा, मेघ आवरण तथा प्रकार और अवक्षेपण की मात्रा और रूप अल्पकालिक स्थितियों की वायुमंडलीय विशेषताएं हैं जिन्हें हम मौसम कहते हैं।

हवा की नमी से हम सभी परिचित हैं। हम इसके प्रभावों को अपने रोजमर्रा के जीवन में देखते हैं। वायुमंडल में नमी या जल की उपस्थिति से अनेक प्रकार की भौगोलिक प्रक्रियाएं होती हैं– जैसे बादलों का निर्माण, भूस्थलाकृति को ढक देने वाले कोहरे का बनना तथा हवा को घनी बनाने वाली आर्द्रता की उत्पत्ति। निस्संदेह रूप से, जलवाष्प हमारे पृथ्वी ग्रह के वायुमंडल के सबसे महत्वपूर्ण तत्वों में एक है।

ऊष्मा अंतरण की एक अन्य विधि संचारण है। इस विधि में एक पदार्थ दूसरे पदार्थ के साथ संपर्क में आने पर ऊष्मा ग्रहण करता है। स्टोव पर रखा बरतन संचारण विधि से ही ऊष्मा ग्रहण करता है। इसी प्रकार वायु उष्ण स्थल अथवा समुद्र के संपर्क में आने पर उसकी ऊष्मा ग्रहण करती है।

भौतिक पदार्थों की भांति वायु एक भौतिक वस्तु है। इसमें वाष्प, गैसें, और धूल के कणों का मिश्रण होता है। पृथ्वी का वायुमण्डल एक विशाल वाष्प के इंजन की भांति कार्य करता है। जिसकी रेखांशिक ताप प्रवणता के कारण हवाओं में उर्ध्वाधर व क्षैतिजीय गति उत्पन्न होती है। ताप का गतिक ऊर्जा में परिवर्तन दो विधियों से होता है। उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों में वायु गर्म होकर ऊपर उठती है और पुनः कई अक्षांशों को पार करने के पश्चात् उपोष्ण प्रदेशों में नीचे उतरती है।

टिप्पणी

वातावरण में अधिकतम जल वाष्प महासागरों, झीलों, दलदलों एवं हिमनदी से आता है। कुछ जल वाष्प नम भूतल, पौधों की पत्तियों एवं ज्वालामुखी विस्फोटों से आता है। जल वाष्प सम्पूर्ण क्षोभ मण्डल में संवहन-प्रवाहों एवं वायु द्वारा प्रवाहित किया जाता है। चूंकि उठता हुआ वायु प्रवाह शांत मण्डल में थमता है। क्षोभ मण्डल के ऊपर कम जल वाष्प है।

संघनन जो वाष्प से द्रव्य में परिवर्तन है आमतौर पर वातावरण में किस प्रकार धारित होता है? इस उदाहरण पर विचार करें। एक धूपदार बसंत दोहपर पर वायु तापमान 15.5 अंश सेल्शियस है एवं विशिष्ट आर्द्रता 8 ग्राम है। इस तापमान पर वायु क्षमता 11 ग्राम है, इसलिए यह संतृप्त नहीं किया गया है। उस रात्रि वायु तीव्रता से शीतल होती है। जब इसका तापमान 10 अंश सेल्शियस पर पहुंचता है, इसकी क्षमता केवल 8 ग्राम है। चूंकि वायु की विशिष्ट आर्द्रता पूर्व ही 8 ग्राम है, वायु संतृप्त की गयी है।

1.11 मुख्य शब्दावली

- **प्रवणता :** एक चीज से धीरे-धीरे दूसरी में बदलना।
- **आतपन :**पृथ्वी द्वारा सूर्य से आने वाला सौर विकिरण।
- **जटिल :** कठिन होना।
- **आर्द्रता :** नमी, गीलापन।
- **शीतलता :** ठंडापन।
- **अवक्षेपण :** वर्षा।
- **अवशोषण :** सोखना।

1.12 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु-उत्तरीय प्रश्न

1. जलवायु विज्ञान से क्या तात्पर्य है? स्पष्ट कीजिए।
2. मौसम किसे कहते हैं? परिभाषित कीजिए।
3. वायुमंडल को कितनी पर्तों में विभाजित किया गया है?
4. ग्रीन हाउस को परिभाषित कीजिए।
5. वाष्पीकरण से आप क्या समझते हैं?

दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

1. जलवायु विज्ञान एवं मौसम विज्ञान की प्रकृति एवं क्षेत्र की विवेचना कीजिए।
2. वायुमंडल के संघटन एवं संरचना को विश्लेषित कीजिए।
3. वायु की गति को नियंत्रित करने वाले बालों की व्याख्या कीजिए।
4. सूर्यतापन व ग्रीन हाउस के प्रभाव का वर्णन कीजिए।
5. वर्षा (अवक्षेपण) व अम्लीय वर्षा के वैश्विक स्वरूप को समझाइए।

टिप्पणी

1.13 सहायक पाठ्य सामग्री

1. सिंह सविंद्र, 2020, समुद्र विज्ञान, प्रवालिका पब्लिकेशन्स, प्रयागराज।
2. नेगी बी. एस., जलवायु विज्ञान तथा समुद्र विज्ञान, केदारनाथ रामनाथ, मेरठ।
3. सिंह सविंद्र, 2020, जलवायु विज्ञान, प्रवालिका पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद।
4. लाल डी. एस. 2013, जलवायु एवं समुद्र विज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज।
5. गौतम अलका, 2017, जलवायु एवं समुद्र विज्ञान, रस्तोगी पब्लिकेशन्स, मेरठ।
6. तिवारी अनिल कुमार एवं शर्मा बी. एल., 2008, जलवायु विज्ञान के मूल तत्व, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर।
7. कुमार अमित, 2011, जलवायु विज्ञान, विश्व भारती पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
8. वर्णवाल महेश कुमार, 2016, भूगोल एक समग्र अध्ययन, कॉ समॉस पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
9. खुल्लर डी. आर., 2014, भूगोल मुख्य परीक्षा, मैक्ग्रा–हिल प्रा. लि., नई दिल्ली।
10. भारती नीरज, अली अब्बास, मैकाबुक भारत एवं विश्व का भूगोल, अरिहंत पब्लिकेशन्स (इण्डिया) लिमिटेड, मेरठ।
11. ओझा एन. एस., 2016, वैकल्पिक भूगोल, क्रोनिकल पब्लिकेशंस प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।
12. मामोरिया चतुर्भुज सिसोदिया एम.एस., जलवायु विज्ञान एवं समुद्र विज्ञान, एस. बी. पी.डी. पब्लिकेशन हाउस आगरा।
13. हुसैन माजिद, संक्षिप्त भूगोल, टाटा मैकग्रा हिल एजुकेशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।
14. कुमार संजीत, कुमार अजीत, नेट/जे.आर.एफ./सेत भूगोल, पेपर–2, अरिहंत पब्लिकेशंस इंडिया लिमिटेड नई दिल्ली।
15. चतुर्भुज मामोरिया, सिंह कोमल, 2020, भूगोल बी.ए. तृतीय वर्ष, एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन आगरा ।
16. खन्ना सी.एल., यूनिफाइड भूगोल, बी.ए. तृतीय वर्ष, शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी, इंदौर।
17. न्याती जानकीलाल खन्ना, सी.एल., यूनिफाइड भूगोल, तृतीय सेमेस्टर शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी, इंदौर।
18. गर्ग एच. एस., सिंह कोमल, 2019–20, भूगोल, NCERT एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन आगरा।
19. सिंह राजेश कुमार, 2014, विश्व का भूगोल, लुसेंट पब्लिकेशन, पटना, बिहार।
20. खुल्लर डी.आर., 1996, भूगोल, सरस्वती हाउस प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली।

इकाई 2 विभिन्न मौसम प्रणालियां, वायुदाब, वायुमंडलीय विक्षोभ, चक्रवात

संरचना

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 उष्णकटिबंधीय, उच्च अक्षांशीय तथा समशीतोष्ण मौसम प्रणाली
  2.2.1 उष्णकटिबंधीय और उच्च अक्षांशीय मौसम
  2.2.2 समशीतोष्ण मौसम
2.3 वायुमंडलीय द्रव्यमान और वायुमंडलीय विक्षोभ की अवधारणा
2.4 महासागरीय-वायुमंडलीय परस्पर क्रिया : एल-निनो, इनसो एवं ला-निना
  2.4.1 एल-निनो
  2.4.2 दक्षिणी दोलन (इनसो-ENSO)
  2.4.3 ला-निना
2.5 चक्रवात, मानसूनी हवाएं, काल बैसाखी, उष्णकटिबंधीय समशीतोष्ण घटनाएं
  2.5.1 चक्रवात
  2.5.2 मानसूनी हवाएं
  2.5.3 काल बैसाखी
  2.5.4 उष्णकटिबंधीय समशीतोष्ण घटनाएं
2.6 भारत की जलवायु और उसका नियंत्रण : पश्चिमी विक्षोभ
2.7 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.8 सारांश
2.9 मुख्य शब्दावली
2.10 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.11 सहायक पाठ्य सामग्री

2.0 परिचय

मौसम वातावरण की स्थिति है कि वह गर्म है या ठंडा, नम है या सूखा, शांत है या उग्र, साफ है या बादलों से घिरा। अधिकतर मौसम की प्रक्रियायें क्षोभमंडल में ठीक समतापमंडल के नीचे पायी जाती हैं। मौसम जहां दिन-ब-दिन के तापमान तथा अवक्षेपण क्रियाओं को दर्शाता है, वहीं जलवायु एक लम्बे समय काल के लिए वायुमंडलीय परिस्थितियां होती हैं। सामान्य रूप से मौसम का अर्थ पृथ्वी के मौसम में ही होता है।

मौसम एक स्थान से दूसरे स्थान के बीच घनत्व (तापमान तथा नमी) की विभिन्नता के कारण पाया जाता है। ये विभिन्नतायें किसी एक निश्चित स्थान पर सूर्य के कोण के कारण होती हैं, जो उष्णकटिबंधीय प्रदेशों से अक्षांसों के द्वारा भिन्न होते हैं। ध्रुवीय तथा उष्णकटिबंधीय हवाओं के बीच तीव्र तापमान का वैमनस्य प्राधाराओं को उत्पन्न करता है। मध्य-अक्षांशों की मौसम प्रणाली जैसे कि अतिरिक्त उष्णकटिबंधीय तूफान, प्राधाराओं के अस्थायी रूप से बहने के कारण बनती है। क्योंकि पृथ्वी का अक्ष इसके कक्षा की तुलना में थोड़ा झुका हुआ है, इसलिए सूर्य का प्रकाश वर्ष के विभिन्न समयों में भिन्न-भिन्न कोणों द्वारा पृथ्वी पर गिरता है। हजारों साल से, पृथ्वी की कक्षा

में परिवर्तन, पृथ्वी द्वारा प्राप्त किये जाने वाले सूर्य ऊर्जा की मात्रा पर प्रभाव डालता है जिससे कि लम्बे समय के लिए जलवायुवीय तथा वैश्विक परिवर्तन होते हैं।

इस इकाई में उष्णकटिबंधीय, समशीतोष्ण और उच्च अक्षांशीय मौसम प्रणाली, वायुमंडलीय विक्षोभ की अवधारणा, महासागरीय-वायुमंडलीय परस्पर क्रिया, चक्रवात, मानसूनी हवाएं, उष्णकटिबंधीय व समशीतोष्ण घटनाएं, भारत की जलवायु एवं पश्चिमी विक्षोभ आदि तथ्यों का अध्ययन किया गया है।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- उष्णकटिबंधीय व समशीतोष्ण मौसम प्रणाली को समझ पाएंगे;
- वायुमंडलीय विक्षोभ की अवधारणा को समझ पाएंगे;
- महासागरीय-वायुमंडलीय परस्पर क्रिया के बारे में जान पाएंगे;
- चक्रवात व मानसूनी हवाओं के बारे में जान पाएंगे;
- भारत की जलवायु और पश्चिमी विक्षोभ से परिचित हो पाएंगे।

2.2 उष्णकटिबंधीय, उच्च अक्षांशीय तथा समशीतोष्ण मौसम प्रणाली

उष्णकटिबंधीय, उच्च अक्षांशीय और समशीतोष्ण मौसम प्रणाली को क्रमशः इस प्रकार समझा जा सकता है-

2.2.1 उष्णकटिबंधीय और उच्च अक्षांशीय मौसम

उष्णकटिबंधीय जलवायु उष्ण कटिबंधों से संबंधित है। कोपेन के जलवायु वर्गीकरण में, ये एक अशुष्क जलवायु है, जिसमें पूरे 12 महीनों का मध्यमान तापमान 18°C से ऊपर (64°F) रहता है। अतिरिक्त उष्ण कटिबंधों के अलावा यहां दिन की लम्बाई में अत्यधिक विविधता पायी जाती है, इसलिए मौसम के साथ उष्णकटिबंधीय तापमान अपेक्षाकृत पूरे वर्ष सदैव नियत रहते हैं तथा मौसमीय विविधता अवक्षेपण द्वारा अत्यधिक रूप से प्रभावित होती है।

उष्णकटिबंधीय भागों के अन्तर्गत अवक्षेपण पर आधारित स्पष्ट विविधतायें होती हैं:

- **उष्णकटिबंधीय वर्षा वनों की जलवायु:** यहां पूरे बारह महीने औसत अवक्षेपण कम से कम 60 मिमी (2.4 इंच) होता है। ये जलवायु सामान्यतः विषुवत रेखा के 5°-10° के अक्षांशों के अन्तर्गत पायी जाती हैं। कुछ पूर्वी-तटीय क्षेत्रों में ये विषुवत रेखा से दूर 25° तक बढ़ जाती हैं। यह जलवायु शांत कटिबंधीय निम्न दाब प्रणाली से पूरे वर्ष प्रभावित रहती है, इसलिए यहां इसका अपना कोई भी प्राकृतिक मौसम नहीं पाया जाता है।

  उदाहरण

  o कूआलालमपुर, मलेशिया

o बेलम, ब्राजील
o हिलो, हवाई, यूनाइटेड स्टेट
o जार्जटाउन, गुआना
o ऐनेज़ोन बेसिन, ब्राजील
o कांगो बेसिन, कांगो

उष्णकटिबंधीय वर्षा वन की जलवायु

• **उष्णकटिबंधीय मानसून जलवायु:** इस प्रकार की जलवायु सामान्यत: दक्षिण एशिया तथा पश्चिमी अफ्रीका में पायी जाती है, जिसके फलस्वरूप मानसून हवाएं मौसम के अनुसार अपनी दिशा बदलती हैं। इस प्रकार की जलवायु में सबसे शुष्क महीना (जो हमेशा मकर संक्रांति के बाद या उसके आसपास उस तरफ के विषुवतीय भाग में होता है) होता है जब वर्षा 60 मिलीमीटर से कम, परन्तु 100 किलोमीटर (कुल वार्षिक अवक्षेपण (मिलीमीटर)/25) से अधिक होती है।

उदाहरण–

o कोनाक्री, गुनिया
o चटगांव, बांग्लादेश
o मिआमी, फ्लोरिडा, यूनाइटेड स्टेट
o केर्न्स आस्ट्रेलिया

उष्णकटिबंधीय जलवायु के कुछ अतिरिक्त लक्षण निम्न प्रकार से हैं:

(क) **स्थिति:** वो क्षेत्र जो उष्णकटिबंधीय जलवायु का अनुभव करते हैं वो विषुवत रेखा के 10° से 25° उत्तर तथा दक्षिण में स्थित होते हैं। इन क्षेत्रों के उदाहरणों के अन्तर्गत भारत, थाईलैंड, मियान्मार, दक्षिणी चीन, फिलीपीन्स के कुछ भाग तथा उत्तरी आस्ट्रेलिया के कुछ भाग आते हैं।

(ख) **तापमान:** विषुवतीय जलवायु के समान, उष्णकटिबंधीय मानसून में भी उच्च औसत वार्षिक तापमान तथा एक छोटी वार्षिक तापमान की श्रेणी पायी जाती है। लेकिन इसका औसत वार्षिक तापमान इसकी स्थिति के कारण विषुवतीय क्षेत्र से कम होता है।

दैनिक तापमान शृंखला के लिए, ये नम से सूखे मौसम में भिन्न होता है। व्यापक रूप से बादलों की उपस्थिति के कारण नम मौसम में तापमान कम होता है, गर्मियों में मौसम साफ रहता है इसलिए तापमान की शृंखला बढ़ जाती है।

(ग) **अवक्षेपणः** एक मानसून जलवायु में विषुवतीय क्षेत्र के समान ऊंचा कुल वार्षिक अवक्षेपण होता है, जबकि विभिन्नता दोनों प्रकार की जलवायु में यह है कि मानसून जलवायु में अवक्षेपण मौसम के अनुसार होता है।

उदाहरण के लिए, मुम्बई में शुष्क मौसम अक्टूबर से मई तथा नम मौसम जून से सितम्बर होता है। इसलिए मुम्बई में रहने वाले अधिक वर्षा के लिए नम मौसम पर निर्भर करते हैं।

मुम्बई में ऋतु परिवर्तन अनुभव किया जाता है?

अक्टूबर से फरवरी में मध्य एशिया के आंतरिक क्षेत्रों में उच्च दाब तथा निम्न तापमान पाया जाता है। हवाएं जिनके अंदर बहुत कम या नहीं के बराबर नमी होती है वे सतह पर उत्तरी-पूर्वी दिशा में चलती हैं। इसलिए जब ये ठंडी तथा शुष्क उत्तर-पर्वूी मानसून हवाएं निम्न दाब क्षेत्रों की ओर, जैसे कि मुम्बई, बहती हैं तो अपने साथ बहुत कम वर्षा लाती हैं। हवाओं की दिशा जून में बदलती है और एशिया के आंतरिक भाग निम्न दाब क्षेत्र में बदल जाते हैं। इसलिए अब हवाएं क्षेत्र में दक्षिण-पश्चिम मानसून हवाओं की तरह बहती हैं। जब ये हवाएं समुद्र के ऊपर से गुजरती हैं तो अपने साथ बहुत सी नमी को ले आती हैं तथा ये गर्म भी होती हैं। इसलिए ये मुम्बई जैसे क्षेत्रों में वर्षा लाती हैं और नम मौसम शुरू हो जाता है।

मुम्बई में इस नम मौसम में अत्यधिक रूप से वर्षा होती है तथा किसान अपनी फसलों की बोआई शुरू कर देते हैं।

अत्यधिक वर्षा के साथ-साथ, इस समय तापमान भी गिर जाता है, इसलिए मुम्बई सबसे ज्यादा गर्म मई में होता है, ठीक वर्षा का मौसम शुरू होने के पहले। इसलिये मार्च तथा मई के बीच मुम्बई में बिल्कुल भी मानसून हवाएं नहीं चलतीं, अतः मुम्बई शुष्क महीनों का अनुभव करता है जिसे अन्तर्मानसून समय कहते हैं।

उष्णकटिबंधीय मानसून जलवायु

उष्णकटिबंधीय नम तथा शुष्क या सवाना जलवायुः ये जलवायु शुष्क मौसम की घोषणा करती है, जिसमें सबसे शुष्क महीने में अवक्षेपण 60 मिमी से कम तथा 100 - कुल वार्षिक अवक्षेपण (मिमी)/25, से भी कम होता हो।

उदाहरण

- मुम्बई, भारत
- जकार्ता, इंडोनेशिया
- रिओ डी जेनेरियो, ब्राजील
- पोर्ट-अउ-प्रिस, हाइटी

यह ध्यान देने योग्य है कि उष्ण कटिबंधों के अन्तर्गत आने वाले बहुत से स्थानों में उष्णकटिबंधीय जलवायु नहीं पायी जाती है। उदाहरण के लिए: सहारा रेगिस्तान, उष्ण कटिबंधों के साथ पर्वतों की चोटियां, उदाहरण, माउंट केन्या ठंडा हो सकता है।

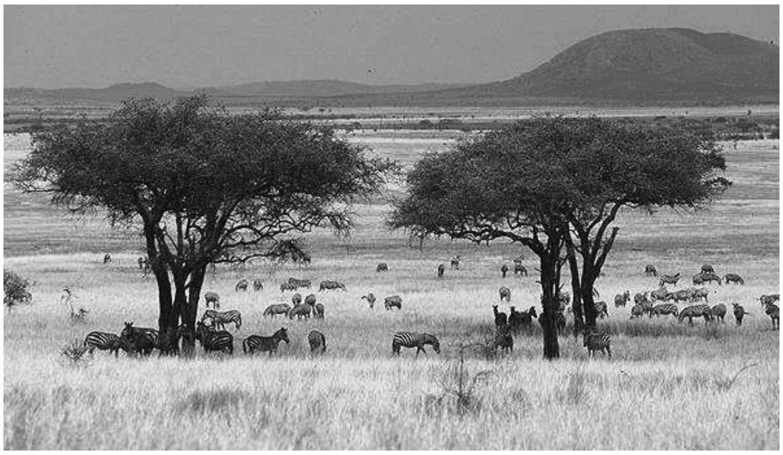

उष्णकटिबंधीय नम तथा शुष्क या सवाना की जलवायु

विषुवतीय जलवायुः विषुवतीय जलवायु के निम्नलिखित लक्षण हैं:

(क) **स्थितिः** विषुवतीय जलवायु मुख्य रूप से विषुवत रेखा के 10° उत्तर से 10° दक्षिण के बीच स्थित होती हैं। इस प्रदेश में स्थित कुछ क्षेत्र इस प्रकार हैं: सिंगापुर, मलेशिया, इंडोनेशिया तथा दक्षिण ऐनेज़ॉन अमरिका में एमाजोन की खाड़ी।

(ख) **तापमानः** विषुवतीय जलवायु में पाये जाने वाले क्षेत्रों का उच्च औसत वार्षिक तापमान बहुत छोटे वार्षिक तापमान की श्रेणी का होता है। यद्यपि इन क्षेत्रों में, वार्षिक तापमान की दर की अपेक्षा प्रतिदिन के तापमान की दर ऊंची होती है। ये ऊंचे तापमान इन क्षेत्रों की स्थिति के कारण होते हैं, क्योंकि ये क्षेत्र पूरे वर्ष एक समान ऊष्मा को प्राप्त करते हैं।

(ग) **अवक्षेपणः** ऊंचे तापमान तथा अत्यधिक आर्द्रता के कारण ये क्षेत्र उच्च कुल वार्षिक अवक्षेपण प्राप्त करते हैं, जो पूरे वर्ष एक समान से वितरित होता है।

इन क्षेत्रों में उच्च आपेक्षिक आर्द्रता नियत रहती है क्योंकि अधिक तापमान के कारण वाष्पोत्सर्जन की दर अधिक होती है। अधिक आर्द्रता के फलस्वरूप संवहित वर्षा बनती है तथा जलवाष्पों के संघनन द्वारा ओस बनती है।

विषुवतीय जलवायु

उच्च अक्षांशीय मौसम

उच्च अक्षांशीय मौसम प्रणाली के अंतर्गत ध्रुवीय जलवायु के क्षेत्र गर्म ग्रीष्म ऋतु से रहित होते हैं (विशेष रूप से पूरे वर्ष किसी भी महीने का औसत तापमान 10°C या उससे अधिक नहीं होता)। ध्रुवीय जलवायु से घिरे क्षेत्र पृथ्वी का 20 प्रतिशत भाग आच्छादित करते हैं। गर्मियों में सूर्य पूरे चौबीस घंटे चमकता है जबकि सर्दी में सूर्य बिल्कुल भी दिखाई नहीं देता है। ध्रुवीय जलवायु के परिणाम बिना पेड़ों के टूंड्रा, ग्लेशियर या स्थायी या अर्धस्थायी बर्फ की परतें हैं।

पृथ्वी पर अंटार्कटिका ही एक ऐसा महाद्वीप है जहां उच्चतम ध्रुवीय जलवायु पहले से प्रभावशाली है। ग्रीनलैंड, आइसलैंड के कुछ तटीय क्षेत्रों में भी उच्चतम EF ध्रुवीय जलवायु पायी जाती है। ग्रीनलैंड के तटीय क्षेत्र जहां स्थायी रूप से बर्फ की चादरें नहीं होतीं वहां केवल कम टूंड्रा (ET) जलवायु पायी जाती है। यूरोपीय स्थलीय भागों के पूर्व उत्तरीय भाग, स्कैन्डीनाबिया के उच्च उत्तर पूर्वी तट से बिअरिंग स्ट्रेट का पूर्वोत्तरी भाग, उत्तरी साइबेरिया का एक बड़ा भाग तथा उत्तरी आइसलैंड भागों में भी टूंड्रा जलवायु पायी जाती है। उत्तरी कनाडा का बड़ा क्षेत्र तथा उत्तरी अलास्का में टूंड्रा जलवायु पायी जाती है, जो कनाडा के उत्तरी भगों में आइसकैप जलवायु में बदल जाते हैं। दक्षिणोत्तरी दक्षिण अमेरिका (टिआरा, डेल क्यूगो, जहां संयुक्त ड्रेक पैसेज होता है) तथा ऐसे उपअंटार्टिका आइसलैंड जैसे दक्षिणी शेटलैंड आइसलैंड तथा फाकलैंड आइसलैंड में ET थोड़ी ऊष्मीय श्रेणी की टूंड्रा जलवायु पायी जाती है जिसमें कोई भी महीना 10°C से ज्यादा गर्म नहीं होता। ये उप अंटार्कटिका निम्न स्थल अधिक विषुवतीय होते हैं। आर्कटिक बेसिन के तटीय टूंड्रा की अपेक्षा संसार के दूसरे भागों में, बहुत से पर्वतों पर की जलवायु में किसी भी महीने का औसत तापमान 10°C या उससे ऊंचा नहीं पाया जाता है और इस ऊंचाई के कारण ही इसे अल्पाइन जलवायु कहते हैं।

ध्रुवीय जलवायु

ध्रुवीय जलवायु - केस स्टडीः अंटार्कटिका जलवायु

अंटार्कटिका की स्थिति एक दक्षिणोत्तरी महाद्वीप के रूप में मौसम तथा जलवायु के संदर्भ में एक अनोखी परिस्थिति को प्रस्तुत करती है। अंटार्कटिका की ध्रुवीय जलवायु की सीमा रेखा जिसका तापमान 50°F (10°C) होता है, सबसे गर्म महीने के लिए होती है जो सतह के ग्लोब का 12 प्रतिशत भाग होती है, अर्थात् एक क्षेत्र जो आर्कटिक से दोगुना बड़ा है।

अंदरूनी हिस्सों में अंटार्कटिका प्रायद्वीप की सुदूर उत्तरी चोटियां को छोड़कर इसमें सारा अंटार्कटिका महाद्वीप सम्मिलित है। इसके आंतरिक भागों में, अत्यधिक कम तापमान होता है, जिसमें कितने ही महीने में पूर्णतया अंधकार व्याप्त होता है। तेज चलती हवाएं तथा बहती हुई बर्फ पूरी तरह से जीवन को असंभव बना देती हैं। अंटार्कटिका प्रायद्वीप पर तापमान हल्का होता है, जबकि बर्फ के तूफान तथा आंधी वाली हवाएं कुछ दिनों या हफ्तों के अंत तक चलती रहती हैं, का अधिकतर भाग बर्फ के एक क्षेत्र द्वारा आच्छादित रहता है जो इस पर पड़ने वाले सूर्य विकिरण का 75% भाग परावर्तित कर देता है। सर्दी का तापमान भी अक्षांशों से प्रभावित होता है, जिसके कारण ऊंचाई पर स्थित अंटार्कटिका क्षेत्रों में सर्दी में सूर्य की किरणों की कमी रहती है। वास्तव में सबसे ठंडा तापमान सामान्यतः अंतिम अगस्त के आसपास होता है जब सूर्य की किरणें वापस जाती हैं।

तीन आधारभूत जलवायुवीय क्षेत्र जो अंटार्कटिका में प्रमुख हैं: आंतरिक भाग, तटीय क्षेत्र तथा अंटार्कटिका प्रायद्वीप।

आंतरिक भागः अंटार्कटिका के आंतरिक भागों में अधिकतर सूर्य की किरणें अप्रत्यक्ष रूप से पड़ती हैं, जो इसे अत्यधिक ठंडा बनाती हैं। शरद ऋतु में लम्बे समय के लिए सर्दी में जरा सी भी धूप की रोशनी नहीं पड़ती है। इसके आंतरिक भागों का उन्नतांश बहुत ऊंचा होता है जो इसके बहुत ठंडे तापमान में ठंड की बढ़ोत्तरी करता है।

चूंकि अंटार्कटिका का आंतरिक भाग एक स्थलीय भाग है और समुद्र से बहुत दूर है इसलिए यहां पानी बिल्कुल गर्म नहीं होता। ये आंतरिक भाग अत्यधिक ठंड तथा हल्की बर्फ द्वारा लाक्षणिक हैं। बर्फीले तूफान अक्सर यहां पाये जाते हैं, जब हवा पहले से जमी बर्फ को एक जगह से दूसरी जगह ले जाती है। उत्तरी गोलार्द्ध की गर्मी के मौसम में लगभग लगातार दिन की रोशनी होती है तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में सर्दियों के समय पूरे वक्त अंधेरा होता है। ध्रुवीय पठारों पर तापमान सौर आगत, अक्षांश तथा ऊंचाई द्वारा नियंत्रित होता है। यहां वार्षिक औसत तापमान –50°C (–58°F) होता है। सर्दी का तापमान

जल्दी ही गिर जाता है। गर्मी का समयकाल बहुत कम मध्य दिसम्बर से मध्य जनवरी तक होता है। यद्यपि तापमान –30°C (–22°F) तक पहुंच सकता है। तापमान में ये थोड़ी सी बढ़ोत्तरी सौर विकिरण के कारण होती है। एक छोटी ताजी बर्फ का संगठित रूप सर्दियों की शुरुआत करता है।

यहां पठारों का एक सामान्य लक्षण तापमान का उल्टा क्रम है। ये तापमान का उल्टा क्रम तब पाया जाता है जब अत्यधिक रूप से ठंडी, घनी हवा सतह के पास होती है तथा उससे कुछ दूरी पर गर्म तापमान होता है। ये उल्टे क्रम 300 फीट मोटे होते हैं लेकिन उस छोटी दूरी के लिए तापमान विभिन्नता 50°F तक हो सकती है। इन उल्टे क्रमों की तीव्रता सर्दी में तब अधिक होती है जब हवाएं हल्की होती हैं और कुछ ही बादल पाये जाते हैं।

तटीय क्षेत्र

अंटार्कटिका महाद्वीप के तटीय क्षेत्रों में कुछ हल्का तापमान तथा कुछ ऊंची अवक्षेपण दर पायी जाती है, जो मुख्यत: बर्फ के रूप में होते हैं। वार्षिक अवक्षेपण मात्रा की दर 20 से 40 इंच (500 से अधिक 1000 मिमी) होती है। समुद्र में, तटीय तापमानों पर समतापीय प्रभाव रहता है। गर्मी में तापमान तटीय तथा 9°C (48°F) तक ऊंचा हो सकता है। सर्दी में आने वाला सूर्य विकिरण कम होता है, समुद्री बर्फ बढ़ जाती है जो तटों पर ठंडक के कारण होती है। अंटार्कटिका प्रायद्वीप के अपवाद के साथ तटीय तापमान –40 से –50°C (–40° से –58°F) तक गिर सकता है। यहां वार्षिक मध्यमान तापमान –15° से –10°C होता है।

इन तटीय क्षेत्रों में अधिकतर अवक्षेपण बर्फ के रूप में गिरता है लेकिन यह बहुत अधिक होता है जो स्थिति के ऊपर निर्भर करता है। अधिकतर अवक्षेपण चक्रवातीय तूफानों से प्राप्त होता है जो समुद्रों के आंतरिक भागों में घूम जाते हैं। जब ये चक्रवातीय तूफान अपने आसपास के समुद्री भागों से नमी ले आते हैं तो यहां भारी बर्फवारी पायी जाती है। ये अंदर के भागों में आयी नमी जम कर बर्फ की तरह एकत्रित हो जाती हैं। जो क्षेत्र बहुत ही ज्यादा उत्तर में हैं वहां गर्मियों में लम्बे समय तक सूर्य की रोशनी पड़ती है तथा सूर्योदय तथा सूर्यास्त बाकी के महीनों में पाया जाता है।

अंटार्कटिका प्रायद्वीप

अंटार्कटिका प्रायद्वीप बांकी के महाद्वीप की अपेक्षा सुदूर उत्तर में स्थित है तथा तटीय क्षेत्रों की अपेक्षा गर्म तथा नम मौसम से पहचाना जाता है, जिसमें तापमान सामान्यत: हिमांक बिन्दु के तापमान से ऊपर होता है। बहुत सी परिस्थितियों में विशेषकर उत्तरी सिरे पर वर्षा वक्र की तरह सामान्य है। यहां का जीवन महाद्वीप के अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक व्यापक है। पथरीले किनारों पर पक्षी तथा समुद्री स्तनधारी घोंसले बनाते हैं और प्रजनन करते हैं, जबकि अंदर की भूमि पर थोड़ी बहुत वनस्पतियां मिलती हैं जो मुख्यत: घास, लाइकन तथा शैवाल होती हैं। हालांकि प्रायद्वीप महाद्वीप की सबसे शक्तिशाली हवा तथा तीव्र तूफानों का सामना करते हैं। संपोषित पश्चिमोवर्ती आंधी प्रायद्वीप पर एक हफ्ते या कुछ दिनों तक रहती हैं जो हड्डी को कंपा देने वाली ठंड तथा पर्वतीय समुद्रों की उत्पत्ति करती हैं।

आर्कटिक: मानचित्र में आर्कटिक लाल रंग की रेखा 10°C की समताप रेखा की ओर संकेत करती है तथा सफेद रंग का क्षेत्र 1975 की तरह ग्रीष्म ऋतु में औसत निम्नतम समुद्री बर्फ की बढ़त को दर्शाता है।

आर्कटिक का कुछ भाग पूरे वर्ष बर्फ से ढका होता है। आर्कटिक का पूरा भाग लम्बे समय के लिए बर्फ के किसी भी रूप में स्थल भाग को ढंके रखता है। जनवरी का औसत तापमान –40°C से 0°C (–40°F से +32°F) होता है तथा सर्दी का तापमान, आर्कटिक के बड़े भागों पर –50°C तक नीचे गिर सकता है। जुलाई का औसत तापमान –10° से +10°C के बीच होता है, तथा ग्रीष्म ऋतु में कुछ क्षेत्रों में ये 30°C (86°F) में गर्मियों में होता है।

आर्कटिक के समुद्र बहुत ही कम स्थलीय भागों से घिरे होते हैं, इस प्रकार अधिकतर आर्कटिक की जलवायु औसत समुद्री जल जैसे औसत दर्जे की होती है जिसका तापमान कभी भी –2°C (28°F) से नीचे नहीं होता। सर्दी में ये अपेक्षाकृत गर्म पानी ध्रुवीय बर्फ के टुकड़ों से ढक जाता है जो उत्तरी ध्रुव से लाये जाते हैं जोकि उत्तरी गोलार्द्ध का सबसे बड़ा क्षेत्र है। यही कारण है कि आर्कटिक से बहुत ज्यादा ठंडा है। गर्मियों में आसपास उपस्थित पानी के कारण तटीय क्षेत्र थोड़े गरम होते हैं, जैसा कि ठीक समतापी क्षेत्रों में तटीय जलवायु के कारण होता है।

2.2.2 समशीतोष्ण मौसम

समशीतोष्ण दोनों गोलार्द्धों में 23.5° अक्षांशों से 66.5° अक्षांशों के बीच फैला है। उत्तर में उत्तरी ध्रुव वृत दक्षिणी में दक्षिणी ध्रुव वृत। इस कटिबंध में सूर्य 24 घंटे में निकलता और डूबता है। किंतु इसके किसी स्थान पर सूर्य बिल्कुल सिर पर नहीं चमकता। गर्मी में दिन लंबे और सूर्य की ऊंचाई अधिक होती है। किंतु सर्दी में दिन छोटे और सूर्य की ऊंचाई बहुत कम होती है। अत: साल भर सूर्य से प्राप्त होने वाली गर्मी में कमी-बेशी होती रहती है। इस कटिबंध में जाड़े और गर्मी के तापमान में तापांतर अधिक होता है। यहां कम से कम 8 महीने ऐसे होते हैं जब तापमान 68 फारेनहाइट से भी कम रहता है। जाड़े और गर्मी के अतिरिक्त यहां वसंत और पतझड़ की दो ऋतुएं और होती हैं। पृथ्वी का सबसे अधिक भाग इसी कटिबंध में स्थित है। इस क्षेत्र की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यहां गर्मी और सर्दी के मौसम के तापमान में अधिक अंतर नहीं हो पाता। समुद्र तटीय भागों में गर्म धारा के कारण तापमान कुछ ऊंचे रहते हैं और समुद्र तटों को शीतकाल में जमने नहीं देते। कनाडा तथा साइबेरिया के अधिकांश भाग हिमाच्छादित रहते हैं।

यहां 4 से 11 माह तक तापमान 10 डिग्री सेल्सियस से 20 डिग्री सेल्सियस के मध्य रहता है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. निम्न में से कौन-सी जलवायु सामान्यत: दक्षिण एशिया तथा पश्चिमी अफ्रीका में पाई जाती है?

   (क) विषुवतीय जलवायु (ख) उष्णकटिबंधीय जलवायु

   (ग) ध्रुवीय जलवायु (घ) इनमें से कोई नहीं

2. अंटार्कटिका के आंतरिक भागों में सूर्य की किरणें किस रूप में पड़ती हैं?

   (क) अप्रत्यक्ष रूप में (ख) प्रत्यक्ष रूप में

   (ग) क व ख दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं

टिप्पणी

2.3 वायुमंडलीय द्रव्यमान और वायुमंडलीय विक्षोभ की अवधारणा

हमारे वायुमंडल में विद्यमान बलों की पहचान हम आसानी से कर लेते हैं। हमें इन बलों की पहचान अपनी इन्द्रियों की संवेदन शक्ति से होती है। हम घर से बाहर निकलते ही शीघ्र ही समझ सकते हैं कि बाहर का अनुमानित तापमान कितना है। हमें ठंड, सामान्य अथवा गर्मी का अहसास हो जाता है। इसी प्रकार हम हवा का अनुमान भी लगा लेते हैं। पेड़ पौधों के लहराते आगे पीछे झूलते पत्तों व शाखाओं को देख हवा चलने का पता लग जाता है। इसी प्रकार आर्द्रता की पहचान भी हो जाती है। लेकिन दाब के मामले में ऐसा नहीं होता है।

वायुमंडल के भीतर मौजूद वस्तुओं पर उसके द्वारा डाले जा रहे दबाव या बल की मात्रा वायुमंडलीय दाब कही जाती है। दाब जितना अधिक होगा उतना ही अधिक मजबूत यह बल होगा। दूसरे शब्दों में वायुमंडलीय दाब जीवों, पौधों, चट्टानों, और पृथ्वी की सतह को उतना ही अधिक दबाएगा।

जब वायुमंडल अधिक शक्ति के साथ दबाता है तब हम उसको उच्च दबाव कहते हैं। जब वायुमंडल कम शक्ति के साथ दबाव डालता है तब उसको न्यून दबाव कहा जाता है।

आपके आसपास इस समय किस प्रकार का दबाव मौजूद है? क्या आपके क्षेत्र में उच्च दबाव है या न्यून दबाव है? आप तापक्रम, नमी और हवाओं की तरह दबाव का पता अपनी इंद्रियों के माध्यम से नहीं लगा सकते हैं।

चूंकि इंद्रियों के माध्यम से दबाव को पहचानना या समझना अत्यंत कठिन है, इसलिए हम यह कल्पना कर लेते हैं कि यह अधिक महत्वपूर्ण नहीं है। यह धारणा पूर्णतया असत्य है। दबाव अत्यंत महत्वपूर्ण होता है तथा मौसम पर नाटकीय प्रभाव डालता है।

- **वायुमंडलीय द्रव्यमान (दाब)**

भिन्न क्षेत्रों में दाब का अन्तर होने से हवाएं चलती हैं। ये हवाएं भिन्न दाब क्षेत्रों में दाब को संतुलित करने का प्रयास करती हैं। वायु के चलने को हवा कहते हैं। दाब के अंतर से भिन्न स्थानों के तापमानों में अंतर पैदा होता है। हवा और तापमान मिलकर हमारे परिवेशी भूदृश्य को परिवर्तित कर सकते हैं। हवाओं के चलने से एक स्थान की मिट्टी, धूल तथा अन्य कण उड़कर दूसरे स्थान पर जा सकते हैं दीर्घकाल में ये हवाएं किसी स्थान का भूदृश्य बदल सकती है। तापमान भी किसी क्षेत्र के भूदृश्य को अल्प और दीर्घावधि में प्रभावित करने की क्षमता रखता है।

वायुमंडल दाब क्यों डालता है?

हमारे आसपास प्रत्येक चीज छोटे कणों से मिलकर बनी है। ये छोटे कण अणु कहलाते हैं। इनमें स्वयं आपका शरीर भी सम्मलित है। ठोस पदार्थ जैसे कि चट्टान में ये अणु आपस में अति सघन रूप से जुड़े होते हैं और इनमें अधिक गतिशीलता नहीं होती है। इस कारण इन ठोस पदार्थों के आकार में परिवर्तन नहीं होता है। तरल पदार्थ जैसे कि जल भी अणुओं से मिलकर बना है, लेकिन जल के अणु आपस में ठोस पदार्थ जैसी सघनता के साथ जुड़े नहीं होते हैं। वे यद्यपि आपस में जुड़े रहते हैं किंतु उनमें एक सीमा

तक गतिशीलता विद्यमान होती है। हमारे वायुमंडल में मौजूद गैसों की भांति गैस के अणु आपस में जुड़े नहीं होते हैं। वे पूर्ण गतिशीलता के साथ आपस में टकराने एवं द्रवों और ठोसों से टकराने के लिए स्वतंत्र होते हैं।

वायुमंडल में मौजूद ये अणु सभी दिशाओं में गतिशीलता के साथ सभी पदार्थों और हमारे शरीर से टकराते हैं और दबाव पैदा करते हैं। यह दबाव सर्वव्यापक होता है। इसका अर्थ यह है कि हमारे ऊपर दबाव केवल ऊपर, नीचे, दाएं या बाएं से नहीं बल्कि सभी ओर से पड़ता है।

वायुमंडल द्वारा समुद्रतल पर लगभग 14.7 पौंड प्रति वर्ग इंच का दबाव उत्पन्न किया जाता है। यह लगभग एक किलोग्राम प्रति वर्ग सेंटीमीटर होता है। इस प्रकार समुद्र तल पर किसी वस्तु के प्रत्येक वर्ग इंच को सभी दिशाओं से 14.7 पौंड के दाब बल द्वारा धकेला जाता है।

तथापि, हम वायुमंडल में चलते फिरते समय इस वायुमंडलीय दाब से अनभिज्ञ होते हैं। हम इस वायुमंडलीय दाब को अनुभव नहीं कर पाते क्योंकि हमारा शरीर विभिन्न प्रकार की गैसों से निर्मित होता है, जो स्वयं उतने ही दाब पर होती हैं। दूसरें शब्दों में हमारे शरीर में मौजूद गैसें उसी दबाव बल के साथ बाहर को धक्का देती हैं।

दाब और घनत्व

चूंकि सभी वस्तएं अणुओं से मिलकर बनी हैं, अतः उनके अणुओं की सघनता का पता लगाना संभव है। इस सघनता को घनत्व कहते हैं। किसी वस्तु के अणु जितनी सघनता के साथ जुड़े होते हैं वह उस वस्तु का घनत्व कहा जाता है। किसी ठोस पदार्थ को हम कहीं भी रख दें उसका घनत्व समान बना रहता है। तरल पदार्थ के घनत्व में स्थानांतरण के कारण अत्यल्प परिवर्तन होता है। तथापि स्थानांतरण से गैसों के घनत्व में लगभग अपरिमित परिवर्तन होता है।

किसी गैस को जितना स्थान दिया जाता है वह उस पूरे स्थान में फैल जाती है। इस प्रकार यदि हम किसी गैस को एक पात्र से निकालकर उसके ठीक दोगुने आकार के पात्र में रख दिया जाए तो वह गैस उस पूरे पात्र में फैल जाएगी। गैस में विद्यमान अणुओं की संख्या वही रहेगी किंतु वे अणु दोगुने आकार के पूरे पात्र में फैल जाएंगे। इसे दूसरे शब्दों में इस प्रकार कहा जा सकता है कि पहले पात्र से दूसरे पात्र में स्थानांतरण किए जाने पर गैस के अणुओं के बीच दूरी बढ़कर दोगुनी हो जाएगी।

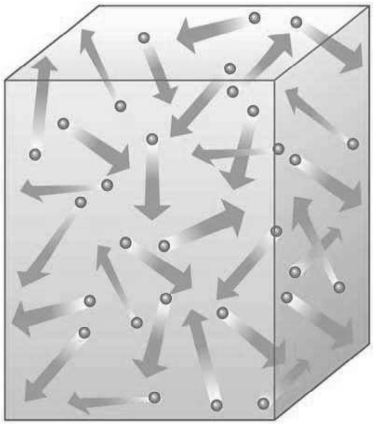

गैस पात्र में अणुओं का घनत्व

दाब और तापक्रम

अणुओं को ऊष्मा ऊर्जा प्रदान किए जाने पर वे अधिक गतिशील हो जाते हैं। इन अणुओं के अपने आसपास की वस्तुओं से टकराने के कारण अधिक दाब उत्पन्न होता है। इस प्रकार किसी विशेष स्थान पर तापक्रम वृद्धि किए जाने पर वहां मौजूद दाब में आनुपातिक वृद्धि हो जाएगी।

किंतु ऐसा सदैव नहीं होता है। कई बार तापक्रम बढ़ने के बावजूद वायुमंडल दबाव में कमी आती है। क्या आप जानते हैं ऐसा क्यों होता है? तथ्यात्मक रूप से तापक्रम बढ़ने पर वायुमंडल फैलता है और उसका घनत्व कम हो जाता है। यद्यपि व्यक्तिगत रूप से अणु एक दूसरे पर अधिक दाब निर्मित करते हैं लेकिन घनत्व में कमी से न्यून दाब की स्थिति उत्पन्न होती है।

- **वायुमंडलीय विक्षोभ**

हवाओं के चलने का क्या कारण होता है? क्या किसी गुफा में बैठे राक्षस द्वारा अपने जन्मदिन की मोमबत्तियां बुझाने के लिए फूंक मारे जाने के कारण ऐसा होता है कि कोई अन्य बल यह कार्य करता है? आप अनुमान लगा चुके होंगे कि कोई अन्य बल यह कार्य करता है।

हवा का बहाव

पृथ्वी के वातावरण में एक स्थल से दूसरे स्थल तक वायु संचलन दाब में भिन्नता के कारण उत्पन्न होता है। यह समान दाब बनाने का प्रयत्न करने वाला वातावरण है।

एक कप जल पर विचार कीजिए। जब आप मेज पर एक जल के कप के ऊपरी भाग को नीचे की ओर पलटते हैं क्या होता है? जब तक जल बर्फ के एक ठोस पिण्ड में नहीं जम जाता, जल एक कीचड़ में बाहर की ओर प्रवाहित होगा। कप को हटा लेने के बाद इस द्रव्य जल को वापस कप के आकार में बनाए रखना असम्भव है। यह इसलिए है कि दीवार को जल में पकड़े बिना, द्रव्य की प्राकृतिक प्रतिक्रिया का जितना संभव हो बाहर की ओर बहना है।

द्रव्यों की असमान गैसें अव्यवस्था की अवस्था में पहुंच जाती हैं। द्रव्य यथासम्भव बाहर की ओर फैलाव बनाए रखते हैं। उन्हें अन्दर पकड़ने वाली दीवारों के बिना, एक

गैस सदैव के लिए बाहर की ओर सतत बहाव बनाए रखेगी, या जब तक वे दूसरे बलों में परिवर्तित नहीं हो जाती।

पृथ्वी पर गैसों को पकड़ने वाली एक मात्र क्रिया कर रहा बल गुरुत्वाकर्षण है। इस प्रकार हमारे वातावरण की गैसें बाहर की ओर प्रवाहित होने का प्रयत्न करते हैं जब तक वे भूमण्डल के चारों ओर समान रूप से घने हैं। हम इस संतुलन को समस्थिति कहते हैं। ये गैसें समस्थिति की इस अवस्था में कई खरब वर्ष पहले पहुंचनी चाहिए थीं। इसलिए चीजें अभी तक आज के आर पार क्यों प्रवाहित हो रही हैं? महत्वपूर्ण बल अभी तक कार्य पर हैं, जो वातावरण को सतत स्थिर बनाए रखने के योग्य बनाए रखते हैं। पृथ्वी के वातावरण को स्थिर बनाए रखने की असमर्थता के लिए प्रमुख उत्तरदायी बल सूर्य द्वारा एक भाग की तुलना में वातावरण के दूसरे भाग का असमान ऊष्मन है। क्योंकि दाब को समान करने के एक प्रयत्न में संचलन कर रही पृथ्वी के वातावरण की गैसों द्वारा वायु उत्पन्न होती है। यह स्वीकार करने के लिए वास्तविक प्रतीत होता है कि वायु उच्च दाब के छेत्र से निम्न दाब के छेत्रो की ओर बाहर की ओर प्रवाहित होगी। एक परिपूर्ण विश्व में अन्य प्रभावो से मुक्त यह वास्तव में एक स्थिति होगी। फिर भी कभी कभी दूसरे अन्य कारक वायु को भिन्न रूप से प्रभावित इस अपेक्षित पद्धति से भी हो सकते हैं। तीन अन्य महत्वपूर्ण कारक दिशा को प्रभावित करते हैं जिसमें वायु प्रवाहित हो रही हो। ये कारक दाब प्रवणक, घूर्णन (कोरियोलिस) प्रभाव एवं घर्षण हैं।

दाब प्रवणता

एक प्रवणक बहुत सी कुछ अन्य वस्तु के लिए मद्दिम परिवर्तन है एवं सफेद रंगों पर विचार किए जाने द्वारा इसके आशय को सरलता से समझा जा सकता है। उनके बीच में एक प्रवणक निर्मित करने के लिए,हम काले रंग से आरम्भ करते हैं। धीरे से रंग चित्र के आर पार काले से गहरा भूरे रंग में परिवर्तित होता है। भूरा मद्दिम से मद्दिम हो जाता है जब तक अन्तिम रूप से यह सफेद में परिवर्तित हो जाता है।

दाब प्रवणक एक उच्च दाब के साथ प्रारम्भ होता है। धीरे से वातावरण द्वारा प्रयासित दाब कम से कम होता है, जब तक यह बहुत निम्न है। जैसे ही हम क्षेत्र से दूर आगे प्रस्थान करते हैं जहां उच्च दाब का केन्द्र स्थित है, हम उस दाब प्रवणक से निम्न दाब पर पहुंचते हुए भ्रमण करते हैं।

वायु वातावरण की गैसों द्वारा उत्पन्न होती जैसे कि दाब को समान करने के एक प्रयत्न में वे एक स्थान से दूसरे स्थान तक प्रस्थान करते हैं। इस प्रकार वायु एक उच्च दाब स्थल से निम्नतर दाब की ओर बहुधा बहती है। दूसरे कारकों से मुक्त यह सदैव इस तरीके से आचरण करेगा।

ग्रहीय और स्थानिक हवाएं

ग्रहीय हवाएं समान गति एवं दिशा पर सम्पूर्ण ग्रह के आर-पार बहती हैं। इनमें से कुछ हवाएं उच्च वायुमण्डल में हैं और धरती पर अनुभव नहीं की जा सकतीं। स्थानीय हवाएं एक छोटे क्षेत्रफल के ऊपर बहती हैं एवं ग्रहीय हवाओं के असमान वे अपनी गति एवं दिशा बार-बार परिवर्तित कर सकती हैं। इन हवाओं को धरती पर महसूस किया जा सकता है। ये स्थानीय दशाओं एवं स्थानीय तापमान परिवर्तनों द्वारा प्रभावित हो सकती हैं।

2.4 महासागरीय-वायुमंडलीय परस्पर क्रिया : एल-निनो, इनसो एवं ला-निना

टिप्पणी

समुद्र तथा वायुमंडल सतत रूप से एक-दूसरे से अंतर्व्यवहार करते हैं, विशेषकर ऊर्जा के स्थानान्तरण में। उदाहरण के लिए, गर्म समुद्र के वाष्पोत्सर्जन की प्रक्रिया द्वारा वायुमंडल की गुप्त ऊष्मा जलवाष्प में परिवर्तित हो जाती है, तथा ऊंचाई पर जाने पर ये वाष्प संघनित होकर वर्षा करती है। फलस्वरूप गुप्त ऊष्मा दुबारा प्राप्त हो जाती है। साथ ही, सतही हवाएं समुद्री धाराओं को घुमाती हैं, जिनमें गर्म हवाएं ध्रुव की ओर तथा ठंडी हवाएं विषुवत रेखा की ओर जाती हैं। चूंकि मौसम की परिस्थिति, समुद्र की अपेक्षा ज्यादा तीव्र गति से परिवर्तित होती है, वायुमंडल तथा समुद्र एक दूसरे से लगातार प्रतिक्रिया करते हैं।

समुद्र वायुमंडल दोलन, समुद्र-वायुमंडल की प्रतिक्रियायें हैं जो एक समय से दूसरे में अचानक बदल जाती हैं। वर्तमान में, पांच मुख्य समुद्र-वायुमंडल दोलनों को पहचाना गया है: उत्तरी अटलांटिक, आर्कटिक, पैसेफिक डिकेडल, एल-निनो दक्षिणी तथा एंटार्टिक पोलर वेव। इनमें से प्रत्येक एक दूसरे से अन्तर्व्यवहार करते हैं तथा इनके आपस के अंतर्व्यवहार एक प्रभावशाली प्रभाव पैदा करते हैं।

2.4.1 एल-निनो

'एल-निनो' एक स्पेनिश शब्द है जिसका अर्थ है 'एक लड़का' यही नाम बाद में पेरू के एक मछुआरे द्वारा 'चाइल्ड क्राइस्ट' दिया गया था क्योंकि इसका प्रभाव सर्वप्रथम क्रिसमस के आस-पास महसूस किया था। ये पैसेफिक समुद्र की आवृत्तीय रूप से गर्म होना है जो मौसम पर अत्याधिक प्रभाव डालता है। एल-निनो के महत्वपूर्ण कारण, तीव्रता तथा इसकी उम्र भलीभांति नहीं समझी जा सकती है। गर्म एल-निनो विशिष्ट रूप से 8-10 महीनों के होते हैं।

एल-निनो वास्तव में एक मछुआरे द्वारा संदर्भित की गई पेरू तथा यूकेडोर के किनारों के पास पैसेफिक समुद्र की गर्म धारायें हैं जो आवृत्तीय रूप से क्रिसमस के आस-पास बनती हैं और कुछ महीनों तक रहती हैं। आज के वर्तमान समय में हम इसी नाम को पैसेफिक समुद्र के सतही जल के एक बड़े पैमाने के पानी के गर्म होने की प्रक्रिया के लिए प्रयुक्त करते हैं जो प्रत्येक 3-6 वर्षों में होता है तथा 9-12 महीनों बाद खत्म हो जाता है। लेकिन ये 18 महीने तक भी रह सकता है और विश्वस्तर पर मौसम पर नाटकीय प्रभाव डालता है।

एल-निनो का प्रभाव अनियंत्रित रूप से होता है। इसकी शक्ति को सतह-वायुमंडलीय दाब की विसंगति तथा सतह और समुद्र के सतही तापमान की विसंगतियों द्वारा अनुमानित की जाती है। एल-निनो प्रक्रिया नाटकीय रूप से संसार के बहुत से भागों में नाटकीय प्रभाव उत्पन्न करती है। इसलिए यह महत्वपूर्ण है कि इसके प्रकटीकरण का अनुमान लगाया जाये। विभिन्न जलवायु, प्रतिमान, मौसम के भविष्य कथन के प्रतिमान तथा सांख्यिकीय प्रतिमान एल-निनो को अंतर्वार्षिक जलवायु विभिन्नता के एक भाग के लिए अनुमानित करते हैं। एल-निनो को अनुमानित करना 1980 में संभव हुआ था जब कंप्यूटरों की क्षमता अत्यधिक जटिल बड़े पैमाने के समुद्र-वायुमंडल अंतर्व्यवहार को समझने में समर्थ हुई थी।

एल-निनो समुद्री तापमान तथा वायुमंडलीय परिस्थितियों के लिए उष्णकटिबंधीय पैसेफिक में एक परिवर्तन है जो पूरे संसार में मौसम को भंग करता है। यह जलवायुयीय तथ्यों का दुबारा ठीक से नहीं समझ पाता और प्रारंभिक रूप से ये दक्षिणी अमेरिका के पैसेफिक किनारे को प्रभावित करता है लेकिन नाटकीय रूप से पूरे संसार के मौसम को प्रभावित करता है।

सामान्यत: ट्रेड हवाएं पैसेफिक के ऊपर, पश्चिम की तरफ बहती हैं जो दक्षिणी अमेरिकी किनारों से गर्म सतही जल को आस्ट्रेलिया तथा फिलीपीन्स की ओर ढकेलती हैं। पेरू के समुद्री किनारों पर पानी ठंडा तथा पोषक तत्वों से भरपूर है प्राथमिक उत्पादकता का पूरा समर्थन करता है तथा जलीय वातावरण तथा मुख्य महलगाहों में विविधता उत्पन्न करता है। एल-निनो के समय में ट्रेड हवाएं केन्द्र तथा पश्चिमी पैसेफिक में शांत होती हैं। यह गर्म हवाओं को सतह से मिलाता है जो ऊपर आते हुए ठंडे पानी को महत्वपूर्ण रूप से नीचे कर देता है फलस्वरूप पोषक तत्व उत्पन्न होते हैं। इसके द्वार शैवाल तथा अन्य समुद्री जीवन जैसे की मछली इतयादि खत्म हो जाते हैं और बहुत से समुद्री पक्षियों के लिए भुखमरी की स्थिति आ जाती है। इसे एल-निनो प्रभाव कहते हैं जो विश्वीय स्तर पर मौसम प्रतिमानों पर बुरा प्रभाव डालने के लिए भी उत्तरदायी है।

एल-निनो के प्रभाव द्वारा तबाही के अन्तर्गत 1983 में इंडोनेशिया में तबाही, सूखे के कारण आस्ट्रेलिया में लगी झाड़ियों की आग, कैलीफोर्निया में वर्षा के तूफान, पेरू के किनारों पर महलगाहों की तबाही इत्यादि आते हैं। 1982/83 के बीच लगभग 2000 लोगों की जानें विश्व स्तर पर गई थीं और 12 बिलियन डालर का लगभग नुकसान हुआ था।

1997/98 के तथ्यों का प्रभाव भी बहुत ही विध्वंस था। बाढ़ ने अमेरिका को प्रभावित किया था, चीन में तूफान ने तबाही मचायी तथा दक्षिण पूर्वी एशिया और ब्राजील के जंगलों में आग द्वारा तबाही आयी। इंडोनेशिया ने सबसे बुरा सूखा पिछले 50 सालों में देखा तथा मैक्सिको को गुडालाजारा शहर में पहली बार सन् 1980 में बर्फ दिखाई पड़ी। हिन्द महासागर में मानसून हवाओं की गति में भारी तब्दीली आई।

एल-निनो के लक्षण

एल-निनो घटना तब शुरू हुई जब ट्रेड हवाएं, जो वाकर प्रवाह का भाग हैं, बहुत से महीनों के लिए गलत साबित हुईं। केल्विन तरंगों का एक क्रम-जो अपेक्षाकृत गर्म सतही पानी की तरंगें होती हैं तथा जो कुछ सेमी ऊंची और लगभग 100 किमी में फैली हुई थीं-उन्होंने उष्ण कटिबंध की विषुवत रेखा के साथ पार किया और दक्षिणी अमेरिका के पास एक गर्म पानी का स्रोत बनाया, जहां तापमान ऊंचाई के कारण सामान्यत: ठंडा होता है। हवाओं का कमजोर होना, जुड़वां चक्रवात की उत्पत्ति कर सकता है जो भविष्य के एल-निनो का दूसरा संकेत है। पैसेफिक सागर एक ऊष्मा का स्रोत है जो विश्वीय हवा के प्रतिमानों को आगे बढ़ाता है। परिणामस्वरूप विश्वीय पैमाने पर इसके तापमान परिवर्तित होते हैं और मौसमों को एक के बाद एक करके बदलते हैं। वर्षा पश्चिमी पैसेफिक से अमेरिका की तरफ खिसक गई जबकि इंडोनेशिया तथा इंडिया सूखे क्षेत्र होते जा रहे हैं।

जैकब बेजरकन ने 1969 में ENSO को समझने में सहायता की इस सुझाव द्वारा कि पूर्वी पैसेफिक में विसंगति रूप से गर्म धब्बे पूर्व-पश्चिम तापमान की विभिन्नता को कमजोर कर सकते हैं तथा तितर-बितर हुई ट्रेड हवाएं गर्म जल को पश्चिम की तरफ

ढकेल देती है। फलस्वरूप पश्चिम में पूर्व से ज्यादा गर्म जल की मात्रा एकत्रित हो जायेगी। इसके लिए बहुत सी क्रियाविधियां रखी गईं जिनके द्वारा विषुवतीय पैसेफिक सतही जल की गर्मी को बनाये रखा जा सकता है, जो बाद में एल-निनो घटना द्वारा निचली गहराइयों में फैलायी जा सकती हैं। परिणामस्वरूप प्राप्त ठंडे क्षेत्र कोई और घटना के होने के पहले इस गर्माहट का बहुत से वर्षों के लिए पुनःपूरण कर सकते हैं।

निम्न चित्र सामान्य स्थिति तथा एल-निनो की स्थिति के बीच विभिन्नता दर्शाता है।

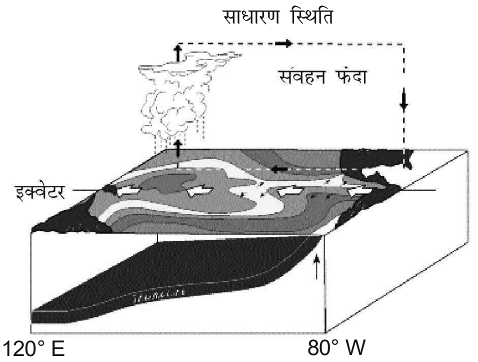

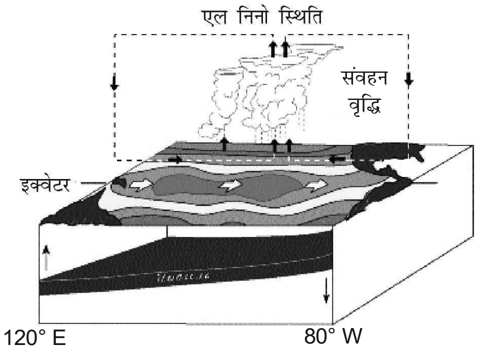

सामान्य तथा एल-निनो स्थितियां

जबकि एल-निनो का ये एक सीधा कारण नहीं है, मैडन-जूलियन दोलन या MJO, वर्षा की विसंगतियों को, पूर्व की ओर विश्वीय उष्ण कटिबंध के चारों ओर 30-60 दिनों के चक्र में प्रसारित करता है तथा एल-निनो तथा ला-निना के विकास व तीव्रता की गति को विभिन्न प्रकार से प्रभावित करते हैं। उदाहरण के लिए, MJO के बीच पश्चिमी प्रवाह कम दाब के क्षेत्र को उत्प्रेरित करता है जो विषुवत रेखा के उत्तर तथा दक्षिण में चक्रवातीय प्रवाह का कारण बनते हैं। जब ये प्रवाह अत्यधिक तीव्र हो जाते हैं तो पश्चिमी हवाएं विषुवतीय पैसेफिक के अंदर बढ़ती हैं तथा पूर्व की ओर खिसक जाती हैं, जो एल-निनो के विकास में एक भूमिका निभाती है। मैडन-जूलियन क्रिया पूर्ववर्ती-प्रसरित समुद्री केल्विन तरंगों को भी उत्पन्न कर सकती हैं, जो बाद में एक विकसित एल-निनो से प्रभावित होकर धनात्मक प्रतिपुष्टि लूप को प्रमुख बनाती हैं।

2.4.2 दक्षिणी दोलन (इनसो ENSO)

दक्षिणी दोलन या इनसो (ENSO) एक प्रतिभाषित आवर्ती जलवायु प्रतिमान है जो औसत रूप से प्रत्येक पांच साल पर उष्णकटिबंधीय पैसेफिक सागर पर पाया जाता है। यह उष्णकटिबंधीय पूर्वी पैसेफिक सागर के सतह के तापमान की विविधता द्वारा पहचाना

जाता है, जो गर्म या ठंडी, तथा जो क्रमशः एल-निनो या ला-निना अथवा वायु के सतही दाब उष्णकटिबंधीय पैसेफिक सागर में वायु के सतही दाब या दक्षिणी दोलन के रूप में जाने जाते हैं। दो विविधतायें युग्मित होती हैं-गर्म समुद्री भाग, एल-निनो जो पश्चिमी पैसेफिक में हवा के उच्च सतही दाब से संबंधित हैं, तथा ठंडा भाग, ला-निना, जो पश्चिमी पैसेफिक में हवा के निम्न सतही दाब से संबंधित है। यह क्रियाविधि जो दोलनों का कारण है, अब भी अध्ययन के अन्तर्गत है।

इनसो (ENSO) संसार के बहुत से क्षेत्रों में मौसम की पराकाष्ठा जैसे बाढ़, सूखा तथा अन्य मौसमीय बाधाओं का कारण है। विकसित देश कृषि तथा मछली पालने के कार्य पर निर्भर करते हैं, विशेषकर वो देश जो पैसेफिक सागर के किनारे बसते हैं अत्यधिक रूप से प्रभावित होते हैं। लोकप्रिय उपयोगों में, एल-निनो-दक्षिणी दोलनों को हम केवल एल-निनो ही कहते हैं। एल-निनो का स्पेनिश भाषा में अर्थ है, 'लड़का' जो 'जीसस के बच्चे' के लिए संदर्भित है क्योंकि पैसेफिक में आवर्ती रूप से गरम होने की प्रक्रिया दक्षिणी अमेरिका के पास सामान्यतः क्रिसमस के आस-पास ही देखी गई थी।

एल-निनो को पैसेफिक समुद्र के सतही तापमान में लम्बी विभिन्नताओं द्वारा परिभाषित करते हैं जब इसकी तुलना औसत मानों से की जाती है। गर्म या ठंडे होने की मान्यताप्राप्त परिभाषा लगभग 0.5°C (0.9°F) है जो पूर्वी केन्द्रीय उष्णकटिबंधीय पैसेफिक सागर का औसत है। विशिष्ट रूप से यह विसंगति 2-7 साल के अनियमित अंतरालों में होती है और 9 महीने से 2 वर्षों में समाप्त होती है। जब यह गर्म होने की या ठंडे होने की प्रक्रिया केवल 7से 9 महीनों के लिए पायी जाती है तो इसे 'एल-निनो/ला-निना स्थिति' के रूप में वर्गीकृत करते हैं, तथा जब ये केवल 5 से 7 महीने के लिए होती है तो इसे 'एल-निनो/ला-निना प्रकरण' के रूप में वर्गीकृत करते हैं।

एल-निनो का पहला संकेत इस प्रकार है:

- हिन्द महासागर, इंडोनेशिया तथा आस्ट्रेलिया पर सतही दाब का बढ़ना।
- ताहिटी तथा केन्द्रीय व पूर्वी पैसेफिक सागर के बाकी बचे भागों पर वायुदाब का गिरना।
- दक्षिणी पैसेफिक में ट्रेड हवाओं का कमजोर पड़ना।
- पेरू के पास गर्म हवाओं का बढ़ना, जो उत्तरी पेरू के रेगिस्तानों में वर्षा का कारण है।
- पश्चिमी पैसेफिक तथा हिन्द महासागर से पूर्वी पैसेफिक तक गर्म पानी का फैलाव, जो अपने साथ वर्षा को ले जाता है। फलस्वरूप पश्चिमी पैसेफिक में अधिक सूखा पड़ता है और पूर्वी पैसेफिक जो सामान्यतः सूखे होते हैं, वहां बारिश होती है।

एल-निनो का गर्म पोषक तत्वों से रहित जल, विषुवतीय धाराओं में अपने पूर्ववर्ती मार्ग से गर्म होता है, जो हम्बोल्ड धारा के ठंडे, पोषण तत्वों से भरपूर सतही जल को बदल देता है। जब एल-निनो स्थिति कई महीनों तक रहती है तो समुद्र के गर्म होने की प्रक्रिया तथा पूर्वी ट्रेड हवाओं में कमी, ठंडे पोषक तत्वों से भरपूर गहरे पानी के प्रवाह को सीमित करती है तथा इसका असर स्थानीय मछली पकड़ने के व्यवसाय पर पड़ता है जो एक अंतर्राष्ट्रीय बाजार के लिए अत्यधिक गंभीर हो सकता है।

इनसो (ENSO) तथा विश्वव्यापी गर्माहट की प्रक्रिया

अंतिम बहुत से दशकों में एल-निनो की घटनाओं की संख्या बढ़ी है तथा ला-निना की घटनायें कम हुई हैं। प्रश्न यह उठता है कि यह एक अनियमित उतार-चढ़ाव है या विश्वव्यापी गर्माहट की दिशा में विश्वीय जलवायु में परिवर्तन का परिणाम या उस प्रक्रिया के लिए विविधता का सामान्य उदाहरण है।

ऐतिहासिक आंकड़ों के अध्ययन यह दर्शाते हैं कि वर्तमान में होने वाली एल-निनो विविधता अत्यधिक रूप से विश्वव्यापी गर्म होने की प्रक्रिया से जुड़ी हुई है। उदाहरण के लिए, दशकीय विविधताओं में धनात्मक प्रभावों को कम कर दिया जाये, और इनसो व्यवहार में संभावित रूप से उपस्थित माना जाये तो प्रेक्षित आंकड़ों में इनसो विविधता के आयाम बढ़ जाते हैं लगभग 60 प्रतिशत तक, जितने कि पिछले 50 वर्षों में नहीं बढ़े।

यह अभी निश्चित नहीं है कि इनसो में भविष्य में क्या परिवर्तन होगा क्योंकि विभिन्न प्रतिमान भिन्न-भिन्न अनुमान लगाते हैं। यह भी हो सकता है कि अक्सर आने वाले तथा शक्तिशाली एल-निनो घटनाओं के प्रेक्षित तथ्य, विश्वव्यापी गर्म होने की प्रक्रिया के केवल आरंभिक चरणों में पायी जाये तत्पश्चात् (उदाहरण के लिए, समुद्र की निचली परत के गर्म होने के बाद) एल-निनो पहले से ज्यादा कमजोर हो जाये। ऐसा भी हो सकता है कि स्थायी तथा अस्थायी बल तथ्यों को प्रभावित करें जो परिणामत: एक दूसरे के लिए क्षतिपूर्ति करें। इन प्रश्नों का सही जवाब पाने के लिए अभी और खोजों की आवश्यकता है, लेकिन वर्तमान परिणाम पूर्णतया इन नाटकीय परिवर्तनों की संभावना को नहीं छोड़ सकते।

इनसो (ENSO) का भारतीय उपमहाद्वीप पर प्रभाव

अन्य वैश्विक तथ्यों के साथ एक और तथ्य जो एल-निनो दक्षिणी दोलनों (ENSO) से जुड़ा है वो एशिया का मानसून है। मानसून का प्रत्येक वर्ष चले जाना उष्णकटिबंधीय वर्षा के प्रतिमानों से जुड़ा है जो इनसो का भाग है। मानसूनों के अंतिम भागों की प्रतिबिम्बित झलकियां झंझावातों के रूप में जमालपुर, उत्तरी बांग्लादेश, 90.5°E, 25.0° N, 31 अगस्त, 1985 को दिखाई पड़ी थीं। ये निचले दाएं से ऊपरी बाएं तक दक्षिणी पश्चिमी बांग्लादेश के ऊपर बंगाल की खाड़ी तथा भारत के उत्तरी दक्षिणी समुद्री किनारों पर दिखाई पड़ी थीं। इसका प्रमाण ब्रह्मपुत्र नदी के धंसी गांव तथा उसकी शाखाओं में आयी बाढ़ है। जो बंगाल की खाड़ी की ओर बह गयी थी। जमालपुर खासी की पहाड़ियों के दक्षिण पश्चिम में स्थित है जो उत्तर-पूर्वी भारत के मेघालय प्रदेश का अधिकतर भाग बनाते हैं। भौगोलिक मानचित्रावली विशिष्ट रूप से खासी की पहाड़ियों के अवक्षेपण को दर्शाते हैं जो वार्षिक रूप से 3000-5000 मिमी (120-195 इंच) के बीच है तथा जो उन्नयन पर निर्भर करता है। यद्यपि खासी की पहाड़ियों के अधिकतर क्षेत्रों में वार्षिक वर्षा की मात्रा इस क्रम की ऊपरी सीमा से बढ़ी हुई होती है। जैसे शिलांग के पठार पर चेरापूंजी (उन्नयन 1312 मी 94306 फीट), जहां मानसून तथा पर्वतोत्पत्ति का प्रभाव मिलकर 11, 420 मिमी (1450 इंच) वार्षिक रूप से वर्षा करते हैं। इस अवक्षेपण का लगभग 9700 मिमी (382 इंच) मानसून के समय आखिरी मई से मध्य सितम्बर तक वर्षा के रूप में गिरता है। कभी-कभी जून तथा जुलाई में वर्षा की मासिक मात्रा 2500 मिमी (98 इंच) तक पहुंच जाती है।

लेटिन अमेरिका में प्रभाव

बहुत सालों तक पेरू के समुद्री किनारों पर रहने वालों ने पूर्वी पैसिफिक सागर का एक अजीब सा गुण देखा कि उसका पानी उनके घरों तक पहुंच जाता था। उष्ण कटिबंध का यह क्षेत्र आज भी अपेक्षित रूप से ठंडे पानी का है जहां संसार के उत्पादक मछलीगाह तथा चिड़ियों की बहुत बड़ी संख्या पायी जाती है। प्रत्येक वर्ष के पहले महीने में दक्षिण से आने वाली गर्म धारा सामान्यत: ठंडे पानी को संशोधित करती थी। लेकिन प्रत्येक कुछ सालों से पानी का इस प्रकार गर्म होना पहले शुरू होने लगा (दिसम्बर से) जो पहले से शक्तिशाली तथा एक से दो वर्षों तक चलने वाला था। अब शुष्क भूमि पर मूसलाधारा वर्षा होने लगी, जिसे देखने वालों ने कहा, "मरुस्थल, बगीचे में बदल गया"। गर्म पानी दक्षिण की ओर बहने लगा जो अपने साथ पानी के सांप, केले तथा नारियल को विषुवतीय वर्षा वनों से ले आया। यद्यपि, समान धारा ने गहरे व ठंडे पानी को बंद कर दिया जो समुद्री जीवन के लिए अत्यधिक आवश्यक था।

इसे एल-निनो या जीसस का बच्चा कहते हैं क्योंकि सर्वप्रथम ये दिसम्बर के महीने में दिखाई पड़ा था। कुछ लोगों का मानना है कि यह प्रभाव पेरू के केवल पिछले भागों में एक संकीर्ण पट्टी के रूप में पाया गया, लेकिन अब इसे बड़े पैमाने पर समुद्र को गरमाने के काम से जाना जाता है जो उष्णकटिबंधीय पैसेफिक के अधिकतर क्षेत्रों पर प्रभाव डालती है। एल-निनो तथा उसके भागों ला-निना से जुड़े मौसमीय प्रभाव पूर्वी अमेरिका के पूरे पैसेफिक किनारों तथा उसके आगे भी दिखाई देते हैं।

एल-निनो सामान्यत: वायुमंडलीय प्रवाह के एक परिवर्तन द्वारा जुड़ा है जिसे दक्षिणीय दोलन कहते हैं। इनसो (एल-निनो-दक्षिणी दोलन) एक साथ पूरे संसार के मौसम तथा जलवायु में अंतरवार्षिक विविधता के मुख्य स्त्रोतों में से एक है। 25 वर्ष पहले ही यह माना जा चुका था कि इनसो के समुद्री तथा वायुमंडलीय भाग आपस में अत्याधिक शक्तिशाली रूप से जुड़े हैं, इसलिए वैज्ञानिक इनसो को और गहराई से समझने के लिए इसी दिशा में प्रयास कर रहे थे। जलवायु भविष्यज्ञाताओं ने पहली बार एल-निनो तथा ला-निना घटनाओं के पहले होने का अनुमान एक महीने पहले ही लगा लिया परन्तु अब भी इसके बारे में और जानना बाकी है।

इनसो (ENSO) का प्रसार तथा परिमाण

इनसो का यह वायुमंडलीय भाग था–दक्षिणी दोलन या इनसो–जिसने वैज्ञानिकों का ध्यान सर्वप्रथम आकर्षित किया। सर गिलबर्ट वाकर ने इसका विस्तारपूर्वक वर्णन किया था और इसे इनसो नाम दिया था। अन्य उच्च तथा निम्न दाब के स्थायी प्रतिमान, उत्तरी पैसेफिक तथा उत्तरी एटलांटिक में पहले ही ज्ञात किये जा चुके थे इसलिए इसे इनसो में दक्षिणी कहा गया।

इनसो का स्पष्ट संकेत सतही हवा के दबाव के व्युत्क्रमानुपाती संबंध द्वारा दो स्थानों पर देखने को मिलता है: पहला डारविन, आस्ट्रेलिया पर तथा दूसरा वाहिती के दक्षिण पैसेफिक द्वीप पर। एक स्थान पर उच दाब लगभग हमेशा ही निम्न दाब के साथ समवर्ती होता है और सका उल्टा भी होता है। ये प्रतिमान हमेशा कुछ वर्षों बाद बदलते रहते हैं। ये खड़ी धाराओं को प्रदर्शित करता है अर्थात् एक वायु द्रव्यमान उष्ण कटिबंध तथा सह उष्ण कटिबंधों में अन्तर्राष्ट्रीय डेट लाइन के ऊपर तथा नीचे समान रूप से दोलन करता है।

टिप्पणी

दक्षिणी दोलन को प्रसिद्ध मौसमविज्ञानी जैकब वेजरकन ने 1969 में बढ़ाया था। उन्होंने ध्यान दिया कि ट्रेड हवाएं उष्णकटिबंधीय पैसेफिक पर पूर्व से पश्चिम की ओर बहती हैं। उन्होंने इस लूप के पूरा करने के लिए एक सिद्धांत दिया कि हवाएं पश्चिमी पैसेफिक के ऊपर उठती हैं, और उच्च उन्नतांशों पर पूर्व में पीछे की ओर बहती हैं। तत्पश्चात् पूर्वी पैसेफिक पर गिर जाती हैं। वेजरकन ने इसे वाकर प्रवाह (सर गिलबर्ट की इज्जतअफजाई के लिए) कहा, वो पहले थे जिसने पहचाना कि एल-निनो तथा ला-निना के समुद्री परिवर्तन अभीष्ट रूप से जुड़े हुए हैं।

स्थायी रूप से उपस्थित रहने वाली ट्रेड हवाएं इनसो प्रक्रिया की कुंजी है। इनके दो मुख्य प्रभाव निम्न हैं:

- **पश्चिमी पैसेफिक की ओर ढकेला गया पानी:** फिलीपीन्स में समुद्री पानी का स्तर सामान्यत: लगभग 60 सेमी (23 इंच) होता है जो पनामा के दक्षिणी किनारे के समुद्र स्तर से ऊंचा है।
- **पश्चिम की ओर बहने वाले पानी को हमेशा सतह के पास तथा थोड़ा गर्म रखना:** यह पानी के गंतव्य स्थान को दर्शाता है जो पश्चिमी पैसेफिक-पृथ्वी का सबसे ज्यादा गर्म समुद्री सतह है। सामान्यत: इस ताल के कुछ भाग का तापमान 28°C (82°F) होता है जो कभी-कीाी 31°C (89°F) हो जाता है।

पश्चिमी पैसेफिक में गर्म सतही जल जैसे ही एकत्रित होता है, यह ऊष्मीय ढाल, जो कि एक सीमा है, सतही जल को गहरे ठंडे पानी से मिलाने की है, को नीचे ढकेलने की कोशिश करता है यह ऊष्मीय ढाल सामान्यत: पूर्वी पैसेफिक में 40 मीटर (130 फीट) गहरी होती है लेकिन 100 से 200 मीटर (330-660 फीट) तक पश्चिम में गहरी हो सकती है। मध्य तापमान के अक्षांस-गहराई का क्रम (विषुवतीय पैसेफिक समुद्र में दिसम्बर 1996 तथा अप्रैल, अगस्त तथा दिसम्बर 1997 के लिए) चित्रित करता है। यह समय 1997-78 के एल-निनो घटनाओं के शुरुआत तथा तीव्रता से संबंधित है। यह स्पष्ट रूप से प्रमाणित है कि यह बहुत गर्म पानी का सामान्य गठजोड़ है तथा ऊष्मीय ढाल का गर्त दिसम्बर 1996 में पश्चिमी पैसेफिक में 1997-98 के एल-निनो घटनाओं के समय साथ ही पूर्व की ओर सामान्य तापमान का गर्म होना कम क्षेत्र द्वारा हुआ था। यह ध्यान देने योग्य है कि दिसम्बर 1997 में पूर्वी पैसेफिक में अत्यधिक रूप से गर्म जल आच्छादित हो गया था जो विषुवतीय दक्षिणी अमेरिका के पैसेफिक तटीय जल के पहुंचने का संकेत है। कोई भी इस बात की भलीभांति कल्पना कर सकता है कि हम असामान्य रूप से गर्म पानी की उपस्थिति अत्यधिक रूप से ठंडे गहरे पानी के ऊपर आने में तथा जीवन के लिए आवश्यक पोषक तत्वों को समुद्री खाद्यान्न कड़ी के आधार तक पहुंचने में बाधा डालती है।

समुद्री सतह से तापमान (SST) की सजीवता, 1992 मार्च की परिस्थितियों से, 1997 दिसम्बर की स्थितियों द्वारा विसंगत होती है और पैसेफिक सागर में 1997-98 के एल-निनो की आरंभिक स्थितियों की कल्पना करती है तथा इस घटना काल में विषुवतीय गर्म पानी के गठजोड़ के पूर्वी दिशा में जाने की त्रिविमीय चित्र प्रस्तुत करता है। (1997-98 एल-निनो SST सजीवता, 1.7 M बाइट, MPEG व्यवस्था, टिम स्किएटिन के द्वारा प्रतिपादित NCAR साइंटिफिक कम्प्यूटिंग डिवीजन, विसुअलाइजेशन लैब) इंडोनेशिया के चारों ओर तथा अन्य पश्चिमी-पैसिफिक द्वीपसमूहों में स्थायी रूप से रहने वाली समुद्री ऊष्मा के कारण, अक्स झंझावात आते हैं तथा कोई-कोई स्थान पृथ्वी के

भारी वर्षा वाले क्षेत्र हैं। वर्षा, वाकर प्रवाह के द्वारा उत्पन्न हवाओं की ऊपरी दिशाओं में गति से प्रभावित होती है। SSTS का वितरण बढ़ी हुई वर्षा, वाकर प्रवाह तथा संयोजित ट्रेड हवाओं को आगे की ओर ठेलता है जिसके फलस्वरूप ये समुद्री धाराओं तथा SSTS के वितरण के लिए जिम्मेदार होता है। वायुमंडल समुद्र से ठेलता है तथा समुद्र वायुमंडल को आगे को ढेलता है, ये एक पूर्णतया संयोगिक व्यवहार है। इस प्रकार के संयोजन का उदाहरण पाया जाता है जब सामान्य से अधिक वर्षा दिसम्बर-जनवरी-फरवरी 1982-83 के शक्तिशाली एल-निनो के समयकाल में विषुवत रेखा तथा अन्तर्राष्ट्रीय डेट लाइन पर केन्द्रित हुई थी। यह आवर्धित वर्षा एल-निनो के समय विसंगत रूप से गर्म SST के परिणामस्वरूप होती है, तथा इस उदाहरण में सामान्य से 4-6 मिनी प्रतिदनि (लगभग 0.2 इंच प्रति दिन) अधिक के हिसाब से अवक्षेपण होता है। (एक 1982-83 एल-निनो SST सजीवता (1.2 M बाइट, MPEG व्यवस्था, टिन स्कैटिन के द्वारा प्रतिपादित NCAR साइन्टिफिक कम्प्यूटिंग डिवीजन विसुअलाइजेशन लैब) उपलब्ध करायी थी जिसने पैसेफिक सागर के SST की विसंगतियों का चित्रण अक्टूबर 1981 से अगस्त 1985 की परिस्थितियों द्वारा किया था।)

इनसो का विस्तृत विश्लेषण

डारविन पर समुद्री-स्वर का दाब 50 से संकेत की तरह प्रयुक्त होता है, तथा विस्तार के द्वारा, यह दक्षिणी दोलन (ENSO) की बड़ी घटनाओं के भूतकाल का मार्गदर्शन भी करता है। बीती हुई शताब्दी की डारविन की दाब विसंगतियों, अल्पकालीय प्रभावों को खत्म करने के लिए सभाट या चिकनी होती है। एल-निनो घटनाओं की संयोजित, डारविन के समुद्री सतही दाब ही धनात्मक विसंगतियों, ला-निना की ऋणात्मक विसंगति होती है।

- एल-निनो तथा ला-निना घटनायें एक के बाद एक करके प्रत्येक तीन से सात साल पर आती हैं।
- घटनाओं की शक्ति, दाब की विसंगति द्वारा आंकी जाती है जो घटना-दर-घटना भिन्न होती है। इस रिकार्ड में सबसे अधिक शक्तिशाली एल-निनो 1982-83 तथा 1997-98 में पाया गया था। (1982-83 के प्रभाव के अन्तर्गत इस सहस्राब्दी में पूरे दक्षिण-पश्चिम यूनाइटेड स्टेट का मूसलाधारा बारिश के साथ तूफान तथा ऑस्ट्रेलिया की अत्यधिक बुरी सूखे की स्थिति आती हैं)
- कभी-कभी एल-निनो तथा ला-निना अपने भागों द्वारा ही अलग नहीं होते परन्तु जबकि स्थिति सामान्य होती है।

कुछ अन्य प्रमाण यह बताते हैं कि ENSO एक प्रतिभाषित आवृत्तीय है जबकि ये अत्यधिक विविधतापूर्ण तथ्य है। कभी-कभी एल-निनो द्वारा उत्पन्न गर्म पानी पैसेफिक के पार पूरे मार्ग में बहता है। 1997-98 की घटना ने पेरू के पास सतही जल का तापमान 5°C (9°F) बढ़ा दिया था। 1986-87 की अत्यधिक कमजोर घटनाओं में गर्म पानी केवल पूर्व की ओर बहा था जो मध्य पैसेफिक (170°W के पास) से दूर है तथा तापमान औसत रूप से बहुत कम 1°C (1.8°F) बढ़ा था। आज भी कुछ उदाहरणों में, गर्म विसंगतियां सर्वप्रथम पेरू के तटों से दूर बनती हैं तत्पश्चात् पश्चिम की ओर बढ़ती हुई पहले से स्थित गर्म पानी के स्रोतों में मिल जाती हैं।

बेर्जकन इसकी व्याख्या करने में असमर्थ थे कि क्यों SO प्रतिकूल हो जाता है या इनसो गर्म से ठंडी स्थिति में परिवर्तित हो जाता है (एल-निनो से ला-निना) ये आज भी

तीव्र खोज का विषय बना हुआ है। जबकि एक इनसो घटना के शुरू हो जाने पर वायुमंडल तथा समुद्र एक अच्छी ताल-मेल के साथ क्रिया करते हैं, लेकिन फिर भी कुछ गुप्त प्रश्न आज भी उपस्थित हैं: क्या चीज है जो इस प्रणाली को समाप्त करती है? वायुमंडल-समुद्र-प्रणाली में क्या वास्तव में एक स्वयं निर्मित चक्र उपस्थित है? अन्य प्रभावों की क्या भूमिका है?

इनसो के कम्प्यूटर प्रतिमानों के प्रयोग द्वारा संपादित कार्य यह संकेत देते हैं कि पूरे उष्णकटिबंधीय सागरों में ऊष्मा का संकलन एक महत्वपूर्ण कारक है। स्पष्ट रूप से, ला-निना के समयकाल में जब वर्षा तथा आच्छादित बादल कम होते हैं, तो बढ़ी हुई सूर्य की तीव्रता समुद्रों को गरम कर देती है, विशेष रूप से पश्चिमी-पैसेफिक गर्म समुद्रों को। एल-निनो के समय, ऊष्मा उष्ण कटिबंध से ऊंचे अक्षांशों पर समुद्री धाराओं के साथ स्थानान्तरित होती है, साथ में कुछ ऊष्मा, वाष्पोत्सर्जन द्वारा वायुमंडल में चली जाती है। विश्वीय तापमान का औसत ऊष्मा के इस आगत को एक शक्तिशाली इनसो घटनाओं के बाद के महीनों में तापमान को 0.3°C (0.5°F) तक बढ़ा कर परिवर्तित करता है। इस प्रकार, उष्णकटिबंधीय पैसेफिक सागर एल-निनो के समय ऊष्मा का ह्रास करते हैं तथा ला-निना के समय ऊष्मा को अर्जित करते हैं।

क्या यह एक समय की लम्बाई है जो ऊष्मा के द्वारा समुद्र का पुनःपूरण करती है जो इनसो घटनाओं के शुरू तथा समाप्त होने की व्याख्या करता है? कुछ प्रतिमानों ने इस दिशा में कार्य किया है। यद्यपि उष्ण कटिबंधों के बाहर की परिस्थितियां भी बहुत महत्वपूर्ण हैं। दक्षिणी पैसेफिक समुद्र पर का वायुमंडलीय परिवर्तन, इनसो परिवर्तन को दो या तीन मौसम के लिए आगे बढ़ाता है। कुछ अध्ययन एल-निनो की शुरुआत से संबंधित हैं-एशिया में बर्फबारी की विसंगतियों के लिए तथा दक्षिण-पूर्वी एशिया के मानसून के लिए। समुद्री तरंगों की हलचल, जो उष्ण कटिबंध तथा सह उष्ण कटिबंध पैसेफिक क्षेत्रों के पार मार्ग तय करती हैं, तो समुद्री बेसिन से दूर की सीमाओं को परावर्तित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। मैडेन-जूलियन दोलन, जो वायुमंडल में 40-50 पिनों के समयकाल में बनते हैं, के विशिष्ट रूप से पश्चिम की ओर से आने वाली हवाओं को पश्चिमी उष्णकटिबंधीय पैसेफिक में मिलाने में अपना योगदान देते हैं तथा एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जबकि अनियमित मौसम का शोर एक संयुग्मित प्रणाली में घटनाओं का आरंभ करता है जो एक एल-निनो या ला-निना की शुरुआत करता है। जबकि ऐसे बहुत से तरीके हैं जिनके द्वारा एक इनसो घटना को शुरू किया जा सकता है। यहां तक कि, प्रणाली का इनसो घटना की तरफ बढ़ने का अनुमान बढ़ती हुई सफलता के द्वारा लगाया जा सकता है।

2.4.3 ला-निना

ला-निना एक युग्मित समुद्र-वायुमंडल तथ्य है जो बड़े एल-निनो दक्षिणी दोलनों के जलवायु प्रतिमानों के भाग का एक दूसरा हिस्सा है। ला-निना के समय पर, विषुवतीय पूर्वी केन्द्रीय पैसिफिक समुद्र के पार का समुद्री सतही तापमान सामान्य से 3-5 डिग्री सेल्सियस कम हो जाता है। यूनाइटेड स्टेट में एक ला-निना का प्रकरण कम से कम 5 महीनों की ला-निना परिस्थितियों के समय को परिभाषित करता है। 'ला-निना' नाम स्पेनिश भाषा से उत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है 'लड़की' जो एल-निनों के अर्थ 'लड़का' से मिलता-जुलता है।

ला-निना को कभी-कभी औपचारिक रूप से 'प्रतिरोधी एल-निनो' कहा जाता है अर्थात् एल-निनो का विपरीत, जहां कप वाला उच्च समुद्री सतही तापमान में कम से कम 0.5°C का विलयन करता है तथा इसका प्रभाव उस एल-निनो से उल्टा होता है। एल-निनो चिलियन तथा आस्ट्रेलियन दोनों के मौसम पर तबाही मचाने वाले असर के कारण प्रसिद्ध है। ला-निना अक्सर एक शक्तिशाली एल-निनो से पहले आता है।

ला-निना का प्रभाव

ला-निना अधिकतर एल-निनो के विपरीत प्रभाव डालता है। उदाहरण के लिए, एल-निनो मध्य पश्चिमी U.S. में नम मौसम उपस्थित करेगा, जबकि ला-निना विशेष रूप से सूखा मौसम इस क्षेत्र में लायेगा।

ला-निना एल-निनो की प्रक्रिया को अपनाता है। कभी-कभी इसे 'एल-विजो' या एक ठंडी घटना भी कहते हैं। ला-निना पैसेफिक समुद्र के पानी को ठंडा करता है।

ये सामान्यत: विषुवतीय पैसेफिक में ठंडे समुद्री तापमान द्वारा पहचाना जाता है जो ला-निनो में गर्म समुद्री तापमानों को विषुवतीय पैसेफिक में दर्शाते हैं। विशिष्ट रूप से ला-निना, एल-निनो का आधा होता है। विश्वीय जलवायु तथा समुद्री तापमानों में ला-निना का प्रभाव, एल-निनो से एकदम विपरीत है। यूनाइटेड स्टेट में ला-निना वर्ष काल में दक्षिण-पूर्व में सर्दी का तापमान सामान्य से गर्म तथा उत्तर-पश्चिम में सामान्य से ठंडा होता है।

बर्फ तथा वारिश सामान्यत: पश्चिमी किनारे पर तथा असामान्य रूप से अलास्का में अनुभव की जाती हैं। इस समय पर अटलांटिक में उग्र तूफान सामान्य से अधिक संख्या में आते हैं।

एल-निनो तथा ला-निना पृथ्वी की अत्यधिक शक्तिशाली प्रक्रियायें हैं और आधे से भी ज्यादा ग्रह की जलवायु को बदलती रहती हैं।

गुल्फ किनारों पर के समुदाय अब भी कैटरीना ह्यूरीकेन तथा वर्तमान में आये चक्रवातों को याद करते हैं जो सन् 2007 के तूफान से ज्यादा हिंसक थी। नेशनल ओशीनोग्राफिक तथा एटमासफोरिक एडमिनिस्ट्रेशन क्लाइमेट प्रिडिक्शन सेन्टर से 27 फरवरी को ये घोषणा की कि कमजोर एल-निनो खत्म हो गया है तथा वाष्पीय ला-निना के लिए परिस्थितियां अनुकूल हैं।

ला-निना जो विशेष रूप से हर तीन से पांच साल के बीच में आता है और 9 से 12 महीनों के बीच कहीं भी खत्म हो जाता है तथा पूर्व से ट्रेड हवाएं गर्म सहती जल को पश्चिमी पैसेफिक की तरफ ढकेल देती हैं। इस प्रकार की परिस्थितियां शक्तिशाली ऊपरी सतही हवओं को बनने से रोकती हैं जो अटलान्टा बेसिन में ह्यूरीकेन के विकास को काटता है और इसे कम विध्वंसकारी बनाता है। क्लाइमेट प्रिडिक्शन सेंटर ऑफिशियल के अनुसार ला-निना के समय पर मौसम प्रणाली द्वारा गहरे उष्ण कटिबंधों द्वारा अधिक तूफान आते हैं। अर्थात् यह प्रणाली बड़े ह्यूरीकेन बनाती हैं जो यूनाइटेड स्टे, विशेषकर टेक्सास से फ्लोरिडा तथा उत्तर से कैलिफोर्निया तक गुल्फ किनारों के लिए विध्वंसकारी है।

लाडमिआना तथा मिसीसीपी की प्रजातियों के लिए किसी भी चीज से ज्यादा अच्छी खबर यह है कि उन्होंने कैटरीना ह्यूरीकेन के बाद अपना जन जीवन व्यवस्थित

करना शुरू कर दिया है। ठीक इसी प्रकार अल्बामा, जार्जिया तथा क्लोरिडा के समुदायों ने भी पिछले महीने के भीषण बवंडरों के बाद अपनी जीवन शैली व्यवस्थित करना शुरू कर दिया है।

एल-निनो, जो इन सर्दियों में प्रभावशाली था, वो ला-निना का एकदम विपरीत है। एल-निनो एक गर्म जलधारा है जो प्रत्येक 3 से 7 वर्ष पर पूर्वी पैसेफिक समुद्र में उत्पन्न होती है और पूरे विश्व के मौसम को प्रभावित करती है। एल-निनो के अंतर्गत, कमजोर ट्रेड हवाएं गर्म सतही जल को पैसेफिक में पूर्व की ओर जाने के लिए प्रेरित करती है। इससे समुद्री किनारों के क्षेत्र में ज्यादा वर्षा होती है तथा ये शक्तिशाली ऊपरी-स्तर की हवाओं को उत्पन्न करती है जो एटलांटिक बेसिन में बनने वाले ह्यूरीकेन को काट सकती है।

मिआमी में नेशनल वेदर सर्विस के अनुसार किसी भी चीज को छीनना तूफान को एक तरफ खींचने की प्रवृत्ति है। इसी कारण NOAA का भविष्यकथन विशेष रूप से लाउसिआना, मिसीसीपी, अल्माबा तथा फ्लोरिडा के लिए एक खराब समाचार है। ये क्षेत्र ह्यूरीकेन के अत्यधिक प्रभावित क्षेत्र हैं। ला-निना इस प्रकार की तूफान की विध्वंसकारी हवाओं को रोकता है।

1999 में ह्यूरीकेन के मौसम में जो ला-निना द्वारा आये थे, उनमें से रिकार्डो के आधार पर 8 ह्यूरीकेन थे तथा 5, चौथी श्रेणी के ह्यूरीकेन थे।

एल-निनो की गर्म धारायें दक्षिण की ओर यूक्रेडोर तथा पेरू के समुद्री किनारों पर जनवरी से मार्च के बीच बहती है। यह स्थानीय मछली पकड़ने के धंधे को खत्म करती है जब समुद्री तापमान बहुत गिर जाता है।

कुछ सालों से यद्यपि तापमान लगातार बढ़ा हुआ है। यह विसंगति जो हर दो से सात साल पर आती है, पहली बार 1972 में पायी गयी, जब पैसेफिक सागर के सतही जल लगातार गर्म रहा तथा जिसने पेरू के मछलीगाहों को पूरी तरह से नष्ट कर दिया।

1960 में एक स्कैनडिनेबियन वैज्ञानिक, जैकब बेजर्कन ने, पहली बार विसंगतीय सतही तापमान की घटनाओं तथा दक्षिणी दोलनों के मध्य जोड़ स्थापित किया, जो हिन्द महासागर तथा पैसेफिक सागर के मध्य वायुमंडलीय दाब की विश्वीय झूला-पट्टी है।

दक्षिण दोलन सर्वप्रथम 1924 में गिलबर्ट वाकर द्वारा खोजा गया। ये भारतीय मौसम विभाग सेवाओं के पहले डाइरेक्टर जनरल थे, इसकी खोज उन्होंने तब की जब ये मानसून की विविधताओं का अध्ययन कर रहे थे। उन्होंने देखा कि जब पैसेफिक सागर में दबाव ऊंचा होता है तो हिन्द महासागर में आस्ट्रेलिया से अफ्रीका तक दाब क्षेत्र कम हो जाता है। जैसा कि दाब वर्षा के होने के व्युत्क्रमानुपाती है, उन्होंने इससे अनुमान लगाया कि हिन्दमहासागर में दबाव के कम होने से मानसून में बढ़ोतरी होगी।

चार दाब के पैमाने जो साउदर्न आसीलेशन इन्डक्स (SOI) से संबंधित हैं—आवश्यक रूप से समुद्री-सतह के दबाव की विभिन्नतायें जो दक्षिणी-केन्द्रीय पैसेफिक में ताहिटी में तथा आस्ट्रेलिया के डार्विन में पायी जाती हैं—तथा जो मानसून के लिए महत्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध कराती हैं। अंतरीय रूप से जमीन तथा पानी का गर्म होना दो प्रकार के प्रवाहित सेलों की उत्पत्ति करता है, जिन्हें क्रमशः वाकर तथा हेडले सेल कहते हैं, तथा जो मानसून के क्रियाकलापों पर अपना आधिपत्य जमाते हैं। वॉकर सेल की बढ़ता

हुआ क्रम इंडोनेशिया पर स्थित हैं, जहां संवहन तथा भारी मात्रा में अवक्षेपण के कारण एक ऊष्मा का स्रोत उत्पन्न हो गया है। इसका घटता हुआ क्रम उत्तरी-पश्चिमी भारत, पाकिस्तान तथा पश्चिमी एशिया पर स्थित है।

टिप्पणी

कभी-कभी यद्यपि एल-निनो के पहले, वाकर सेल पूर्वी तथा न्यूगुनिया के क्षत्रों के बीच तथा अन्तर्राष्ट्रीय डेटलाइन पर अपने स्थान से खिसक जाती है। डारविन पर समुद्र का सतही तापमान बढ़ जाता है फलस्वरूप डेटलाइन के पास का सतही जल थोड़ा गर्म हो जाता है। SOI में ऋणात्मक विकास एल-निनो का साथ ही खराब मानसूर का संकेत देता है जबकि धनात्मक संकेत अच्छे मानसून की भविष्यवाणी करते हैं।

पूर्व की ओर नमी के पोषण की क्रिया विधि द्वारा भारतीय महाद्वीप, इंडोनेशिया तथा अन्य क्षेत्रों में वर्षा का स्तर कम हुआ है। एक एल-निनो का एक वर्ष अपरिवर्तनीय रहना उस वर्ष सूखे का संकेत होता है जबकि साथ के वर्षों में भारी वर्षा की घोषणा की जाती है।

सन् 2008 एक अत्यधिक क्रियाशील एटलांटिक ह्यूरीकेन का मौसम माना जाता है। ऐसा इसलिए कि इस वर्ष सबसे ज्यादा बड़े ह्यूरीकेन विकसित हुए। VS नेशनल ह्यूरीकेन सेंटर ने इसे 2008 का एटलांटिक ह्यूरीकेन सीजन घोषित किया। इस वर्ष मौसम के भविष्यकथानकों ने लगभग 16 ज्ञात तूफानों का पता लगाया। जिसमें से 8 ह्यूरीकेन की शक्ति तक पहुंचने वाले तूफान थे और पांच श्रेणी-3 के या बड़े ह्यूरीकेन थे। कुल ज्ञात तूफानों के पदों में ये मौसम चौथा सबसे अधिक क्रियाशील वर्ष था।

एक औसत वर्ष ने 11 ज्ञात तूफानों का अनुभव किया था और इस प्रकार सन् 2008 के ह्यूरीकेन मौसम को सबसे ज्यादा क्रियाशील वर्ष रिकार्ड किया गया था, ऐसा 64 साल पहले हुआ था।

ह्यूरीकेन सबसे ज्यादा नाविकों को प्रभावित करता है जो तूफान के क्षेत्र में रहते हैं। अत्यधिक रूप से उनकी नावों को, जो या तो समुद्र में होती हैं या किनारे पर लंगर द्वारा बंधी होती हैं, नुकसान पहुंचाता है। बहुत सी पूर्व चेतावनियां होती हैं जिसके द्वारा नाविक अपनी नाव की सुरक्षा कर सकते हैं। NOAA के कलाइमेट प्रिडिक्शन सेंटर में अपनी एक प्रेस विज्ञप्ति में इसकी खोज के बारे में ह्यूरीकेन भविष्यवक्ता गेरी बेल, पी.एचडी. ने कहा कि, "यह ह्यूरीकेन मौसम का वर्ष, वर्तमान क्रियाशील ह्यूरीकेन युग को सतत कर रहा है तथा पिछले 14 वर्षों में ये सामान्य से ऊपर क्रियाशीलता का दसवां मौसम है।"

अपनी प्रगति जांचिए

3. वायुमंडल द्वारा समुद्रतल पर लगभग कितने पौंड वर्ग इंच का दबाव उत्पन्न किया जाता है?

   (क) 12.2 पौंड (ख) 12.5 पौंड

   (ग) 12.7 पौंड (घ) 12.10 पौंड

4. पेरू के मछुआरे द्वारा 'चाइल्ड क्राइस्ट' नाम निम्न में से किसको दिया गया?

   (क) ला-निना (ख) एल-निनो

   (ग) इनसो (घ) इनमें से कोई नहीं

2.5 चक्रवात, मानसूनी हवाएं, काल बैसाखी, उष्णकटिबंधीय समशीतोष्ण घटनाएं

टिप्पणी

चक्रवात, मानसूनी हवाएं, काल बैसाखी तथा उष्णकटिबंधीय घटनाओं को क्रमशः इस प्रकार समझा जा सकता है-

2.5.1 चक्रवात

एक चक्रीय तूफान या चक्रवात, बंद तथा वृत्तीय गति का क्षेत्र है जो पृथ्वी के घूमने की दिशा में घूमता है। ये सामान्यतः अंदर की ओर घूमती हवाओं द्वारा पहचाना जाता है पृथ्वी के उत्तरी गोलार्द्ध में घड़ी की सुइयों की दिशा के प्रतिकूल तथा दक्षिण गोलार्द्ध में घड़ी की सुइयों की दिशा के अनुकूल घूमती हैं। अधिकतर बड़े पैमाने पर पाये जाने वाले चक्रीय तूफानों का प्रवाह, निम्न वायुमंडलीय दाब पर केन्द्रित होता है। सबसे बड़ी निम्न दाब प्रणाली, ठंडे-कुंडलीय ध्रुवीय चक्रीय तूफान तथा अतिरिक्त उष्णकटिबंधीय चक्रीय तूफान हैं जो संक्षिप्त पैमाने पर स्थित होते हैं। गर्म कुंडली चक्रीय तूफान जैसे उष्णकटिबंधीय चक्रीय तूफान, मध्य चक्रीय तूफान तथा ध्रुवीय निम्न छोटे मध्य पैमाने पर स्थित होते हैं। सह उष्णकटिबंधीय चक्रीय तूफान मध्यम आकार के होते हैं। ऊंचे स्तर के चक्रीय तूफान सतही निम्न के बिना रह सकते हैं तथा उष्णकटिबंधीय उच्च क्षोभमंडलिक गर्तों के आधार के रूप में उत्तरी गोलार्द्ध में गर्मियों के मौसम के लिये जाते हैं। चक्रीय तूफान, पृथ्वी के अलावा अन्य ग्रहों जैसे मार्स तथा नेपच्यून पर भी देखे जा सकते हैं।

चक्रवातीय उत्पत्ति, चक्रगत के बनने तथा उसकी तीव्रता की व्याख्या करती है। अतिरिक्त उष्णकटिबंधीय चक्रवात, बढ़े हुए मध्य अक्षांसों के तापीय वैमष्य, जिन्हें वैरोक्लीनिक क्षेत्र कहते हैं, उसमें तरंगों का निर्माण करते हैं। ये क्षेत्र सिकुड़ कर मौसम के अग्र बनाते हैं जो चक्रीय प्रवाह की तरह व तीव्र होते हैं। बाद में अपने जीवनकाल में चक्रवात, ठंडी प्रवाह प्रणाली की तरह अवरुद्ध हो जाता है। एक चक्रवातीय पथ अपने 2 से 6 दिन के जीवनकाल में सह उष्णकटिबंधीय तथा कैन्सर के सतत प्रवाह द्वारा मार्गदर्शित होता है। निम्न चित्र एक चक्रवात का बनना दर्शा रहा है।

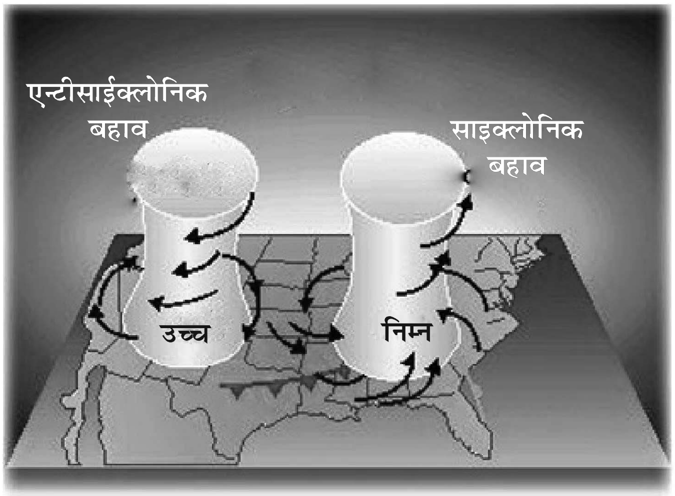

चक्रवातीय उत्पत्ति (साइक्लोजेनेसिस)

टिप्पणी

मौसमाग्र विभिन्न घनत्वों के दो वायु द्रव्यमानों को अलग करते हैं तथा स्पष्ट रूप से मौसमी तथ्यों से जुड़े होते हैं। एक अग्र द्वारा अलग किये गये वायु द्रव्यमान तापमान या घनत्व में भिन्न होते हैं। शक्तिशाली ठंडे अग्र तीव्र मौसम तथा बिजली कड़कने के साथ तूफानों की संकीर्ण पट्टियां दर्शाते हैं और समय-समय पर आंधी के रूप में उत्पन्न होते हैं। ये पश्चिम के प्रवाह केन्द्र को बनाते हैं तथा सामान्यतः पश्चिम से पूर्व की ओर बहते हैं। गर्म अग्र चक्रीय केन्द्र का पूर्व भाग बनाते हैं और सामान्यतः परत के रूप में अवक्षेपण तथा कोहरा उत्पन्न करते हैं। यह चक्रीय पथ के आगे ध्रुवों की तरफ बढ़ते हैं। अवरुद्ध अग्र, चक्रवातीय जीवनकाल में चक्रवात के केन्द्र में बाद में बनते हैं तथा अक्सर तूफान के केन्द्र के चारों ओर लिपटे रहते हैं।

उष्णकटिबंधीय चक्रवातीय उत्पत्ति, उष्णकटिबंध चक्रवात के विकास की व्याख्या करते हैं। उष्णकटिबंधीय चक्रवात महत्वपूर्ण बिजली की चमक के साथ तूफानी क्रियाओं तथा गर्म कुंडलियों द्वारा व्युत्पन्न गुप्त ऊष्मा द्वारा बनता है। चक्रगत सही परिस्थितियों के अन्तर्गत अतिरिक्त उष्णकटिबंधीय, सह उष्णकटिबंधीय तथा उष्णकटिबंधीय कालों से संक्रमित होता है। मध्य चक्रवात एक गर्म कुंडली के रूप में चक्रवात, स्थल पर बनाता है और बवंडर की उत्पत्ति करता है। मध्य चक्रवात द्वारा पानी की फुआरें भी बनती हैं परन्तु अक्सर ये ऊंचे स्थायीकरण तथा निम्न ऊर्ध्वाधर हवा के शिअर वाले वातावरण से विकसित होती हैं।

कुछ संरचनात्मक लक्षण सभी प्रकार के चक्रवातों के लिए मान्य होते हैं। जैसे कि ये निम्न दाब के क्षेत्र होते हैं, उनके निम्न वायुमंडलीय दाब के क्षेत्रों का केन्द्र उस क्षेत्र में परिपक्व उष्णकटिबंधीय चक्रवता के रूप में जाना जाता है। केन्द्र के पास, दाब के ढाल का बल (बाहरी चक्रवात के दाब की तुलना में चक्रवात के केन्द्र पर दाब) तथा कोरोलिस बल एक अनुमानित संतुलन में रहते हैं या चक्रवात स्वयं ही दाब की विभिन्नता के परिणामस्वरूप नष्ट हो जाते हैं। कोरोलिस प्रभाव के कारण उत्तरी गोलार्द्ध में एक बड़े चक्रवात की हवाएं घड़ी की सुई के प्रतिकूल दिशा में बहती हैं तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में घड़ी की सुई की दिशा में बहती हैं। (एक विपरीत चक्रवात इससे अलग, उत्तरी गोलार्द्ध में घड़ी की सुई की दिशा में तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में घड़ी की सुई की विपरीत दिशा में होता है।)

चक्रवातीय उत्पत्ति, वायुमंडल (निम्न दाब क्षेत्र) में चक्रवातीय प्रवाहों का विकास है। चक्रवातीय उत्पत्ति विभिन्न प्रक्रियाओं को एक साथ ढंकने वाला पद है, जिसमें सभी के परिणामस्वरूप चक्रवात का विकास होता है। ये विभिन्न पैमानों सूक्ष्म पैमाने से संक्षिप्त पैमाने तक पर पाया जा सकता है। अतिरिक्त उष्णकटिबंधीय चक्रवात मौसम अग्रों के साथ तरंग बनाते हैं जो अपने जीवनकाल में अवरुद्ध होने से पहले ठंडे कुंडलीय चक्रवात बनाते हैं। उष्णकटिबंधीय चक्रवात महत्वपूर्ण बिजली की कड़क के साथ तूफान तथा गर्म कुंडली द्वारा प्रवाहित गुप्त ऊष्मा द्वारा बनता है। मध्यमदर्जीय चक्रवात एक गर्म कुंडली के चक्रवात की तरह स्थल पर बनता है और बवंडर पैदा करता है। मध्यवर्तीय चक्रवात फुहारें भी बनाता है परन्तु ये फुआरें अक्सर वातावरण के उच्च अस्थायीकरण द्वारा विकसित होती हैं। चक्रवातीय उत्पत्ति, चक्रीय गति से भिन्न होती है तथा एक अचक्रवाती (उच्च पा. प्रणाली) के समतुल्य के साथ होती है, जो उच्च दाब क्षेत्र को बनाने से संबद्ध होता है।

टिप्पणी

सतही निम्न के पास रचना के विभिन्न प्रकार होते हैं। स्थलाकृति विज्ञान, एक सतही निम्न को बनाता है जब घना निम्न स्तर उच्च दाब प्रणाली पूर्व में उत्तर दक्षिणी पहाड़ों की रुकावटें बनाती है। मध्यदर्जीय संवहन प्रणाली सतही निम्न को निाती है जो आरंभ में गर्म कुंडलियां होती हैं। ये हलचल तरंगों की तरह रचनायें अग्र के साथ बना सकती हैं तथा निम्न शीर्षों पर स्थित हो जाते हैं। परिभाषा के द्वारा, निम्न के चारों ओर का प्रवाह चक्रीय होता है। यह घूर्णित प्रवाह ध्रुवीय हवा को पश्चिम में विषुवत रेखा की ओर ठंडे अग्रों द्वारा ले जाता है तथा गर्म हवा ध्रुवीय निम्न को गर्म अग्र के साथ ढकेलता है। सामान्यत: गर्म अग्रों की तुलना में ठंडे अग्र तेजी से चलते हैं और उच्च घनत्व वाले वायु द्रव्यमानों के धीमे अपरदन द्वारा इसके साथ पकड़े जाते हैं। ये उच्च घनत्व वाले वायु द्रव्यमान चक्रवात के आगे तथा उनके पीछे तैरते हुए उच्च घनत्व के वायु द्रव्यमानों के कारण स्थित होते हैं। इस बिंदु पर अवरुद्ध अग्र बनते हैं जहां गर्म हवा का द्रव्यमान ऊपर की ओर गर्म हवा के गर्त की ऊंचाई पर ढकेले जाते हैं, जिसे खुरपी भी कहते हैं।

उष्णकटिबंधीय चक्रवात ऊपर उठती हवा में उपस्थित नमी के संघनन द्वारा उत्सर्जित ऊर्जा से बनते हैं जो गर्म समुद्री जल के ऊपर धनात्मक प्रतिपुष्टि का कारण होते हैं। उष्णकटिबंधीय चक्रवात उत्पत्ति एक तकनीकी शब्द है जो वायुमंडल में उष्णकटिबंधीय चक्रवात के विकास की व्याख्या करता है। उष्णकटिबंधीय चक्रवात उत्पत्ति की क्रियाविधि उनसे स्पष्ट रूप से भिन्न होती है जिनके द्वारा मध्यवर्ती अक्षांश की चक्रवात उत्पत्ति पायी जाती है। उष्णकटिबंधीय चक्रवात उत्पत्ति अनुकूलित वायुमंडलीय वातावरण में महत्वपूर्ण संवहन के द्वारा एक गर्म कुंडलीय चक्रवात के विकास को संग्रहित करता है।

उष्णकटिबंधीय चक्रवात उत्पत्ति के लिए 6 मुख्य आवश्यकतायें हैं : समुचित गर्म समुद्र का सतही तापमान, वायुमंडलीय अस्थिरता, क्षोभमंडल में निम्न से मध्य स्तर तक ऊंची आर्द्रता, एक निम्न दाब केन्द्र को विकसित करने के लिए समुचित कोरोलिस बल, पूर्व निर्धारित निम्न स्तर फोकस या हलचल तथा निम्न उर्ध्वाधर हवा की कैंची औसत रूप से उष्ण कटिबंध तूफान की तीव्रता में 86 उष्ण कटिबंध चक्रवात पूरे संसार में प्रतिवर्ष बनते हैं जिनमें से 97 तूफान/बवंडर की शक्ति के बराबर तथा 20 तीव्र उष्णकटिबंधीय चक्रवात होते हैं।

मुख्यत: 6 प्रकार के चक्रवात होते हैं :

- **ध्रुवीय चक्रवात :** एक ध्रुवीय, सह-ध्रुवीय या आर्कटिक चक्रवात (जिसे ध्रुवीय भंवर भी कहते हैं) निम्न दाब का एक बड़ा क्षेत्र होता है, जो सर्दियों में शक्तिशाली व गर्मियों में कमजोर होता है। ध्रुवीय चक्रवात, एक निम्न दाब की मौसम प्रणाली है जो सामान्यत: 11000 किमी (620 mi) से 2000 किमी (1200 mk) तक फैली होती है, जिसमें हवा उत्तरी गोलार्द्ध में घड़ी की सुई की दिशा में प्रवाहित होती है। उत्तरी गोलार्द्ध में ध्रुवीय चक्रवात के औसत रूप से दो केन्द्र होते हैं। पहला केन्द्र बाफिन आइसलैंड के पास तथा दूसरा उत्तर पूर्वी साइबेरिया की तरफ स्थित है। दक्षिणी गोलार्द्ध मे ये 160 पश्चिमी उन्नतांश के पास रोज आइस शेल्फ के पास स्थित होना चाहती है। जब ध्रुवीय भंवर बहुत तीव्र होते हैं तो ये पश्चिमी दिशा में पृथ्वी की सतह की ओर बहते हैं। जब ध्रुवीय चक्रवात कमजोर होता है तो महत्वपूर्ण ठंडे प्रकोप पाये जाते हैं। निम्न चित्र ध्रुवीय तथा अतिरिक्त ध्रुवीय चक्रवातों को दर्शा रहा है।

टिप्पणी

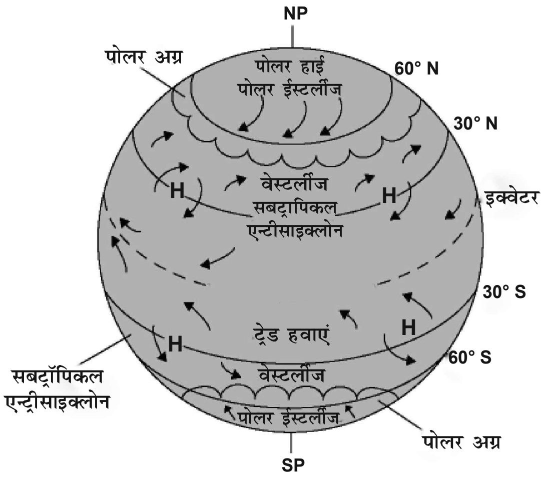

ध्रुवीय तथा अतिरिक्त ध्रुवीय चक्रवात

- **ध्रुवीय निम्न :** एक ध्रुवीय निम्न, कम-परिमाण की अल्पकालीन वायुमंडलीय निम्न दाब प्रणाली (दबाव) होती है जो उत्तरी तथा दक्षिणी दोनों गोलार्धों में मुख्य ध्रुवीय अग्र के ध्रुवीय समुद्री क्षेत्र के ऊपर पाया जाता है। इस प्रणाली की सामान्य रूप से 1000 किमी (620 mi) से कम क्षैतिज लम्बाई का परिमाण होता है जो दो दिन से ज्यादा नहीं टिकता है। ये मध्यवर्ती पैमाने की मौसम प्रणाली का भाग है। ध्रुवीय निम्न को परंपरागत मौसम की रिपोर्ट द्वारा पहचानना कठिन होता है तथा ये उच्च अक्षांशीय संक्रियाओं (जैसे कि, नौपरिवहन तथा गैस तथा तेल के प्लेटफार्म) के लिए खतरा होता है। ध्रुवीय निम्न को हम अन्य दूसरे शब्दों से सभी संदर्भित कर सकते हैं जैसे ध्रुवीय मध्यवर्ती भंवर, आर्कटिक ह्यूरीकेन (तूफान), आर्कटिक निम्न तथा ठंडी हवा का दबाव। आजकल यह शब्द अत्याधिक प्रबल प्रणालियों के लिए आरक्षित है। जिनकी सतही हवाएं कम से कम 17 मीटर/सेकेंड होती हैं। ध्रुवीय निम्न के कुछ उदाहरण निम्न चित्र में दिखाये गये हैं।

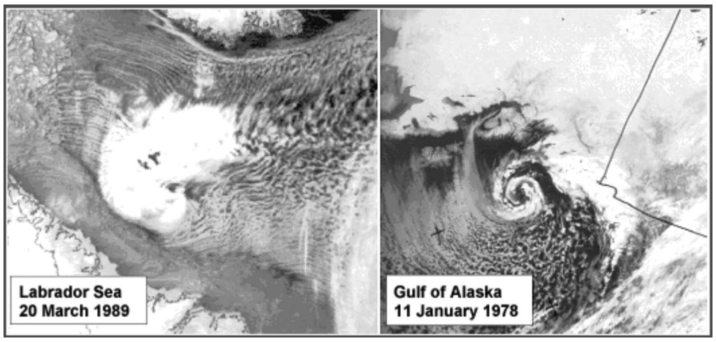

ध्रुवीय निम्न

- **अतिरिक्त गर्म चक्रवात :** एक अतिरिक्त गर्म चक्रवात, संक्षिप्त पैमान का निम्न दाब मौसम प्रणाली होती है जिसके ना ही उष्णकटिबंधीय और ना ही ध्रुवीय लक्षण होते हैं। अग्रों से तथा क्षैतिज ढालों से तापमान तथा ओसांक में जुड़े होने के कारण इन्हें 'वरोक्लीनिक जोन' कहते हैं। निम्न चित्र अतिरिक्त गर्म चक्रवात के विकास के चरण दर्शा रहा है।

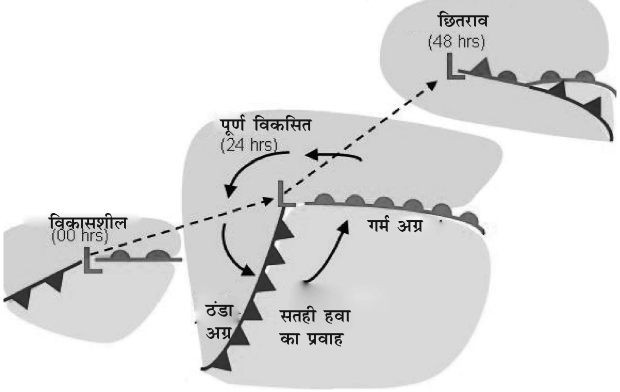

अतिरिक्त गर्म चक्रवात के विकास के चरण

व्याख्या करने वाले ने 'अतिरिक्त गर्म' को इस सत्य से जोड़ा है कि इस प्रकार के चक्रवात, सामान्यत: ग्रह के मध्यम अक्षांशों में उष्ण कटिबंध के बाहर पाये जाते हैं। ये प्रणालियां, मध्य अक्षांश चक्रवात द्वारा भी व्याख्यित की जाती है। इसका कारण इनके 'बनने का क्षेत्र' या 'विगत गर्म चक्रवात' हैं, जहां अतिरिक्त गर्म संक्रमण पाये जाते हैं तथा जो अक्सर मौसम के भविष्य कथानकों तथा सामान्य लोगों द्वारा 'दबाब' या 'निम्न' नाम से जाने जाते हैं। ये प्रतिदिन होने वाली प्रक्रियायं हैं जो अचक्रवात के साथ पृथ्वी पर मौसम को ठेलते हैं।

जबकि अतिरिक्त गर्म चक्रवात लगभग हमेशा वेरोक्लीनिक रूप से वर्गीकृत किये जाते हैं, क्योंकि ये पश्चिम की ओर जाने वाली तापमान के भाग तथा ओसांकों की ढाल के साथ बनते हैं। ये कभी-कभी पने जीवनकाल में वैरोट्रापिक हो जाते हैं, जब तापमान का वितरण चक्रवात के चारों ओर उसके परिधि के साथ स्पष्ट रूप से एक समान होता है। एक अत्यन्त गर्म चक्रवात, सह उष्णकटिबंधीय चक्रवात में बदल सकता है और वहां एक गर्म चक्रवात बना होता है, यदि ये गर्म पानी के ऊपर रहे और केन्द्रीय संवहन विकसित करे, जो इसकी कुंडली को गर्म करें।

- **सह उष्णकटिबंधीय चक्रवात :** यह एक मौसम प्रणाली है। जिसके कुछ लक्षण उष्णकटिबंधीय चक्रवात के हैं तथा कुछ अतिरिक्त गर्म चक्रवातों के। यह विषुवत रेखा तथा 50th समानान्तर के मध्य बनता है। बहुत पहले लगभग 1950 में मौसम वैज्ञानिकों को यह ज्ञात नहीं था कि इसके लक्षण उष्णकटिबंधीय चक्रवात के हैं या अतिरिक्त गर्म चक्रवात के तथा चक्रवात के संकर की व्याख्या के लिए वो तथाकथित उष्णकटिबंधीय चक्रवात या अर्ध-उष्णकटिबंधीय चक्रवात आदि शब्दों का प्रयोग करते थे। 1972 में, नेशनल ह्यूरीकेन सेन्टर ने औपचारिक रूप से चक्रवात की इस श्रेणी को पहचाना। सह उष्णकटिबंधीय चक्रवातों के नाम औपचारिक रूप से उष्णकटिबंधीय चक्रवातों की सूची में सन् 2002 में अटलांटिक बेसिन में रखे गये। इनके पास क्लिष्टि उष्णकटिबंधीय चक्रवात की अपेक्षा अधिकतम समर्थित वायु के प्रतिमान हैं। जो केन्द्र से दूर स्थित होते हैं तथा कमजोर से औसत तापमानों के बीच स्थित होते हैं।

चूंकि ये आरंभिक रूप से अतिरिक्त गर्म चक्रवातों के बने होते हैं जिनका ठंडा तापमान उष्ण कटिबंध के तापमान से ऊंचा होता है, तथा समुद्री सतह का आवश्यक तापमान गर्म चक्रवातों से तीन डिग्री सेल्सियस या पांच डिग्री फारेनहाइट

कम होता है तथा लगभग 22°C पर पाया जाता है। इसका अर्थ यह है कि सह उष्णकटिबंधीय चक्रवात तूफान के मौसम की पारम्परिक सीमा से बाहर बनते हैं। जबकि सह उष्णकटिबंधीय तूफान में तूफानी हवाएं कम होती हैं, फिर भी ये प्रकृति में गर्म अपनी गर्म कुंडली की तरह होते हैं।

- **गर्म चक्रवात :** एक गर्म चक्रवात तूफान की एक प्रणाली है, जो निम्न दाब केन्द्र तथा असंख्य तड़ित झंझाओं द्वारा लाक्षणिक होते हैं तथा तेज हवा तथा बाढ़ लाने वाली वर्षा उत्पन्न करते हैं। गर्म चक्रवात उत्सर्जित ऊष्मा से बनते हैं, जब नम हवाएं ऊपर उठती हैं और फलस्वरूप नम हवा में उपस्थित जल वाष्पों को संघनित करती हैं। इन्हें ईंधन अन्य चक्रवाती हवा के तूफानों की तुलना में भिन्न ऊष्मीय क्रिया प्रणाली द्वारा प्राप्त होता है जैसे कि उत्तर-पूर्वीय, यूरोपीयन हवा के तूफान, तथा ध्रुवीय निम्न, जो वर्गीकरण के अन्तर्गत 'गर्म कुंडली' की तूफान प्रणाली बनाते हैं। निम्न चित्र गर्म चक्रवात के बनने की क्रिया को दर्शाता है।

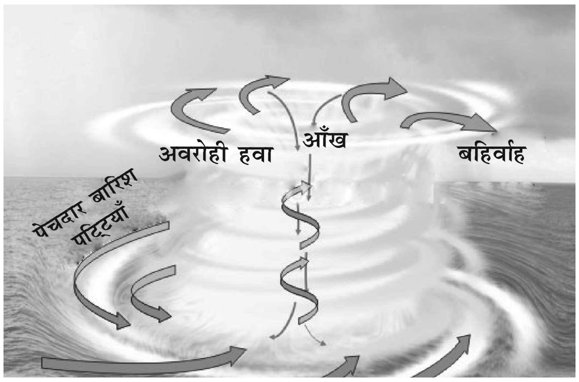

गर्म चक्रवात के बनने की क्रिया प्रणाली

इन प्रणालियों में 'अत्यन्त गर्म' शब्द दोनों के भौगोलिक उत्पत्ति को दर्शाता है, जो लगभग विशेष रूप से गोलार्द्ध के उष्णकटिबंधीय प्रदेशों में बनते हैं तथा इनकी समुद्री रचना विन्यास उष्णकटिबंधीय वायु द्रव्यमान होते हैं। 'चक्रवात' शब्द इस प्रकार के तूफानों की चक्रवातीय प्रकृति को संदर्भित करता है जिसका घड़ी की सुई के प्रतिकूल घूर्णन उत्तरी गोलार्द्ध में तथा घड़ी की सुई की दिशा में घूर्णन दक्षिण गोलार्द्ध में होता है। अपनी स्थिति तथा शक्ति के अनुसार गर्म चक्रवात के अन्य नाम भी होते हैं, जैसे तूफान, बवंडर, उष्णकटिबंधीय तूफान, चक्रीय तूफान या साधारण रूप से चक्रवात। सामान्यतः एक उष्णकटिबंधीय तूफान एटलांटिक बेसिन में को ह्यूरीकेन से संबोधित करते हैं (प्राचीन केन्द्रीय अमेरिका के हवा के देवता ह्यूरीकान के नाम पर) तथा पैसिफिक में साइक्लोन के नाम से। जबकि गर्म चक्रवर्ती अत्याधिक शक्तिशाली हवा तथा मूसलाधार वर्षा उत्पन्न करते हैं, यह ऊंची लहरों तथा तहस-नहस करने वाले तूफानी उफान को भी उत्पन्न करने में समर्थ होते हैं। ये गर्म पानी के विशालकाय पिंडों पर विकसित होते हैं, और स्थल के ऊपर से गुजरते समय अपनी शक्ति खो देते हैं। यही कारण है कि उष्णकटिबंधीय तूफानों से समुद्री किनारों के क्षेत्रों को अत्यधिक नुकसान पहुंचता है जबकि और अंदर के भाग तेज हवाओं से अपेक्षाकृत अधिक सुरक्षित होते हैं। भारी मात्रा में वर्षा स्थल के अंदर के भागों में बाढ़ की स्थिति उत्पन्न कर देती है जबकि समुद्री किनारों पर तूफान के उफान व्यापक रूप से लगभग 40 किमी

टिप्पणी

(20 mi) तक नुकसान पहुंचाते हैं। जबकि इंसानी जनसंख्या पर इनका प्रभाव सर्वनाशी होता है। उष्णकटिबंधीय तूफान सूखे की स्थिति भी उत्पन्न करते हैं। ये उष्ण कटिबंधों से ऊष्मा तथा ऊर्जा दूर ले जाते हैं और इन्हें समतापी अक्षांशों की ओर परिवर्तित कर देते हैं, जो इन्हें विश्वीय वायुमंडलीय प्रवाह की क्रिया प्रणाली का महत्वपूर्ण भाग बनाता है। फलस्वरूप उष्णकटिबंधीय तूफान, पृथ्वी के वायुमंडल में संतुलन बनाये रखते हैं।

बहुत से उष्णकटिबंधीय चक्रवात तब विकसित होते हैं जब एक सप्ताह तक चलने वाली वायुमंडलीय हलचल की स्थिति वायुमंडल के अनुकूल हो। जब अन्य प्रकार के चक्रवात उष्णकटिबंधीय लक्षणों को ग्रहण कर लेते हैं तो अन्य तरह के चक्रवात बनते हैं। उष्णकटिबंधीय प्रणाली तब परिचालित हवाओं द्वारा क्षोभमंडल की तरफ बढ़ जाती हैं। यदि स्थिति अब भी अनुकूल होती है तो उष्णकटिबंधीय हलचल तीव्र हो जाती है और एक आई (आंकत) का विकास करती है। वर्णक्रम के दूसरे सिरे पर, यदि स्थिति प्रणाली के इर्द-गिर्द छिन्न-भिन्न हो जाती है या उष्णकटिबंधीय चक्रवात लम्बे समय तक समुद्र में रहने के पश्चात् भूमि पर पहुंचता है तो प्रणाली कमजोर पड़ जाती है और अचानक से विलुप्त हो जाती है। एक उष्णकटिबंधीय चक्रवात, अतिरिक्त उष्णकटिबंधीय चक्रवात बन सकता है यदि यह उच्च अक्षांशों की ओर घूम जाये, ऐसा तभी होगा जब इसका ऊर्जा स्त्रोत, ऊर्जा उत्सर्जन से बदल जायें। यह ऊर्जा उत्सर्जन वायु द्रव्यमानों के तापमान में विभिन्नता द्वारा उत्पन्न संघनन से होता है। एक संक्रियान्तिव दृष्टबिंदु के द्वारा हम कह सकते हैं कि एक उष्णकटिबंधीय चक्रवात सामान्यत: अपने अतिरिक्त उष्णकटिबंधीय संक्रमण के दौरान सह उष्णकटिबंधीय नहीं होता है।

- **मध्यवर्ती चक्रवात :** एक मध्यवर्ती चक्रवात एक संवाहित तूफान के अंदर, हवा का भंवर होता है, जो लगभग 2.0 किमी (12 mi) से 10 किमी (6.2 mi) व्यास का होता है। इसमें हवा ऊपर उठती है और एक ऊर्ध्वाधर अक्ष के चारों ओर, सामान्यत: उत्तरी तथा दक्षिणी गोलार्द्ध दोनों में समान दिशा में निम्न दाब प्रणाली की तरह, घूमती है। जब ये चक्रवाती होते हैं तो नम होते हैं अर्थात् गंभीर झंझावात के अन्तर्गत ये स्थानीय निम्न दाब के क्षेत्रों से जुड़े होते हैं। जैसे तूफान शक्तिशाली सतही हवाएं तथा ओलों को उत्पन्न करती हैं। मध्यवर्ती चक्रवात अधिकतर ऊपरी प्रारूपों के साथ पाये जाते हैं और बवंडर का निर्माण करते हैं। लगभग 1700 मध्यवर्ती चक्रवात यूनाइटेड स्टेट के पास वार्षिक रूप से बनते हैं, परन्तु केवल आधे ही बवंडर उत्पन्न करते हैं। चक्रवात पृथ्वी के लिए विशिष्ट नहीं हैं। चक्रवाती तूफान बृहस्पति ग्रह पर सामान्य रूप से नेपच्यून के छोटे गहरे धब्बे की तरह पाये जाते हैं। इनको 'जादूगर की आंख' भी कहते हैं जो बड़े गहरे धब्बों के व्यास का लगभग एक तिहाई होती हैं। इसे 'जादूगर की आंख' इसलिए कहते हैं क्योंकि ये आंख की तरह दिखाई देती है। इस प्रकार का प्रकटीकरण, जादूगर की आंख के मध्य में उपस्थित सफेद बादलों द्वारा होता है। मार्स (बुध ग्रह) पर भी चक्रवाती तूफान पाये जाते हैं। बृहस्पति ग्रह पर पाये जाने वाले तूफानों को हम गलत धारणा के तहत ह्यूरीकेन या चक्रीय तूफान का नाम देते हैं, जबकि अपरिशुद्धता के अनुसार बृहस्पति ग्रह का बड़ा लाल धब्बा एक प्रतिवर्ती प्रक्रिया के फलस्वरूप बनता है।

बवंडर

बवंडर (जिसे चक्रवात या तूफान कहते हैं) एक उग्र, खतरनाक तथा हवा का घूमता हुआ कॉलम है जो पृथ्वी की सतह तथा क्यूमोलोनिम्बस बादलों, कुछ स्थितियों में क्यूमूलस बादल के आधार के, संपर्क में रहता है। बवंडर कई प्रकार के तथा कई आकार के होते हैं, लेकिन विशेष रूप से ये संघनन कुप्पी की तरह होते हैं जिसका पतला सिरा पृथ्वी की सतह को छूता है तथा जो अक्सर झाड़-झंखाड़ तथा धूल के बादलों से घिरा होता है। ज्यादातर बवंडरों में हवा की गति 110 मील प्रति घंटा (177 किमी/घंटा) से कम होती है जिसमें हवा 250 फीट (80 मीटर) ऊंची होती है तथा विलुप्त होने से पहले कुछ मीलों (बहुत से किमी) का सफर तय करती है। सबसे अधिक हवा की गति की पराकाष्ठा 300 मीटर/घंटा (480 किमी/घंटा) है जो 2 मील (3 किमी) से ज्यादा की दूरी तय करती है और जमीन पर दर्जनों मील तक फैली होती है। निम्न चित्र एक बवंडर को दर्शाता है।

बवंडर

विभिन्न प्रकार के बवंडरों के अन्तर्गत भूस्खलन, बहु भंवरीय बवंडर तथा परनाले आते हैं। परनाले कुंडली के रूप में कुप्पी के आकार की हवा की धाराओं द्वारा पहचाने जाते हैं जो बड़े क्यूमूलस या क्यूमूलो निम्बस बादलों से जुड़े होते हैं। ये सामान्यत: महाकक्षीय बवंडरों की तरह वर्गीकृत किये जाते हैं जो जलीय पिंडों के ऊपर विकसित होते हैं। इनके हवा के घुमावदार कालम विषुवत रेखा के पास उष्णकटिबंधीय प्रदेश में विकसित होते हैं तथा उच्च अक्षांशों पर कम साधारण होते हैं। प्रकृति में उपस्थित अन्य बवंडरों की तरह के प्रतिमानों के अन्तर्गत, गस्टनाडो, डस्ट डेविल, फायव विहल्र तथा स्टीम डेविल आते हैं।

बवंडर एंटार्टिका को छोड़कर प्रत्येक महाद्वीप पर दिखायी देते हैं। यद्यपि बवंडर संसार में अधिक संख्या में यूनाइटेड स्टेट के टारनेडो एली क्षेत्र में मिलते हैं। जबकि उत्तरी अमेरिका में ये कहीं भी मिल सकते हैं। ये कभी-कभी दक्षिण-केन्द्रीय तथा पूर्वी एशिया में, फिलीपीन्स में, उत्तरी तथा पूर्वी केन्द्रीय दक्षिण अमेरिका, दक्षिणी अफ्रीका, उत्तरी पश्चिमी तथा दक्षिणी पूर्वी यूरोप, पश्चिमी तथा दक्षिण पूर्वी आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैंड में पाये जाते हैं। बवंडरों को उनके आने के पहले के समय या उनके उस वक्त पाये जाने की पहचान पल्स-डाप्लर रेडार के प्रयोग द्वारा की जाती है जो उनके वेग के प्रतिमानों तथा परावर्तित आंकड़ों के द्वारा की जाती है। जैसे-हुक इको या तूफान के संकेतों के प्रयासों द्वारा।

बवंडरों की शक्ति की दर ज्ञात करने के लिए विभिन्न पैमानों का प्रयोग किया जाता है। क्यूजिता पैमाना बवंडर से हुए नुकसान की दर बताता है, तथा कुछ देशों में इसे अधतनित क्यूजिता पैमाने से बदला गया है। एक F0 या EF 5 का बवंडर, एक कमजोर श्रेणी में आता है, और केवल पेड़ों को नुकसान पहुंचाता है, लेकिन जीवन निर्वाह की संरचनाओं को कोई नुकसान नहीं पहुंचाता है। एक F5 या EF 5 बवंडर जो शक्तिशाली होता है, वह इमारतों को उनकी जड़ों से उखाड़ देता है और गगनचुंबी इमारतों की रूपरेखा या बनावट को बुरी तरह से बिगाड़ देता है। इसी प्रकार TORRO पैमाने की दर TO, जो एक अत्यधिक कमजोर बवंडर है, T11 तक है जो कि सबसे अधिक शक्तिशाली ज्ञात बवंडर है। डाप्लर रडार डाटा, फोटोग्रामिट्री तथा जमीन के भंवर प्रतिमान की तीव्रता के निर्धारण तथा दरों का विश्लेषण कर सकते हैं।

बवंडर के लक्षण

बवंडर के कुछ लक्षण निम्न प्रकार हैं:

माप तथा आकार

एक विभाजित करने वाला बवंडर लगभग एक मील चौड़ा होता है। इसने बवंडर विंगर तथा ओकलाहोमा को बुरी तरह से प्रभावित किया था। अधिकतर बवंडर संकरी कुप्पी की तरह होते हैं जो कुछ सौ यार्ड (मीटर) तक फैले होते हैं, तथा नीचे की तरफ जमीन के पास झाड़-झंखाड़ के बादल होते हैं। बवंडर वर्षा या धूल द्वारा पूरी तरह से धुंधला होता है। ये बवंडर विशेषरूप से खतरनाक होते हैं, यहां तक कि मौसम विज्ञानी अपने अनुभवों द्वारा बताते हैं कि इन्हें नहीं देखना चाहिये। बवंडर बहुत प्रकार के तथा विभिन्न आकार के बनते हैं।

छोटे तथा अपेक्षाकृत कम शक्तिशाली बवंडर एक छोटे धूल के भंवर जैसे जमीन पर दिखाई दे सकते हैं। जबकि यदि इनसे जुड़ी सतही हवा की गति 40 मीटर/घंटा (64 किमी/घंटा) हो, तो इसकी संघनित कुप्पी जमीन पर पूरी तरह से नहीं फैलती है। ऐसा बवंडर जो लगभग बेलनाकार तथा अपेक्षाकृत कम ऊंचाई का होता है, तो इसे कभी-कभी 'स्टोवपाइप' बवंडर कहे हैं। बड़े तथा एक भंवरीय बवंडर जो खेमे जैसे बड़े तथा विभाजित करने वाले होते हैं और पृथ्वी से चिपके रहते हैं उन्हें 'वेजेस बवंडर' या 'वेजेस' कहते हैं। 'स्टावपाइप' बवंडर का वर्गीकरण इस प्रकार के बवंडरों के लिए भी प्रयुक्त होता है, यदि ये उस खाके में सही बैठते हैं। एक वेज इतना बड़ा हो सकता है कि बादल के एक गहरे टुकड़े की तरह दिखाई देता है तथा इतना चौड़ा जितनी जमीन से उस बादल के टुकड़े की दूरी। यहां तक कि तूफान को देखने वाले अपने अनुभवों से बताते हैं कि दूर से एक बड़े नीचे की तरफ लटके बादल व वेज बवंडर में कोई विभिन्नता पता नहीं चलती है। बहुत से, लेकिन सारे बवंडर वेज नहीं होते हैं। एक रस्सी जैसा बवंडर अपनी तितर-बितर अवस्था में भी पतली रस्सियों जैसा दिखाई देता है जो अक्सर मुड़ा हुआ होता है। ऐसे बवंडर को 'रोपिंग आउट' या 'रोप टारनेडो' कहते हैं। जब ये रस्सी की तरह हो जाते हैं तो इनकी कुप्पी की लम्बाई बढ़ जाती है जो हवा को कुप्पी के अंदर खींचती है, ऐसा हवा के कोणीय संवेग के संरक्षण द्वारा होता है। बहुभंवरीय बवंडर, एक समान केन्द्र के चारों ओर घूमते हुए ढेर सारे भंवरों का परिवार होता है जो पूरी तरह से धूल तथा अन्य मलवे के संघनन द्वारा धुंधला होकर एक कीप की तरह दिखाई देता है।

यूनाइटेड स्टेट में, बवंडर औसतन लगभग 500 मील (150 मीटर) के होते हैं तथा ये जमीन पर 5 मील (8 किमी) तक फैले होते हैं, जोकि बवंडर का बहुत बड़ा आकार है। कमजोर बवंडर या शक्तिशाली होने के बावजूद तितर-बितर हुए बवंडर बहुत संकीर्ण होते हैं तथा कभी-कभी केवल कुछ मील तथा मीटर के ही होते हैं। एक बवंडर द्वारा तहस-नहस हुआ रास्ता 7 फीट (2 मीटर) लम्बा होता है। इसके विपरीत वर्णक्रम के अंत में वेज बवंडर का नष्ट हुआ मार्ग एक मील (1.6 किमी) चौड़ा या उससे ज्यादा हो सकता है। एक बवंडर जिसने हेलम, नेबार्सका को मई 22, 2004 में बुरी तरह प्रभावित किया था, वह लगभग जमीन पर 2-5 मील (4 किमी) चौड़ा था।

प्रकटीकरण

बवंडर विभिन्न रंगों के हो सकते हैं, यह उस वातावरण पर निर्भर करता है कि जिसमें ये बनते हैं। जो सूखे वातावरण में बनते हैं तो बहुत कम दिखाई देते हैं। केवल कीप के आधार पर मलबों के भंवर के रूप में दिखाई देते हैं। बवंडर की संघनित कीप जिसके अंदर कोई भी मलबा या केवल जरा सा मलबा होता है को ग्रे से सफेद रंग के देखे जा सकते हैं। पानी के पिंडों के ऊपर से परनाले की तरह जब ये गुजरते हैं तो एकदम सफेद या नीले रंग के दिखाई पड़ते हैं। बवंडर की कीप यदि बहुत धीमी गति से चलती है तो अपने आस-पास के धूल तथा मलबे को निगलती हुई चलती है। इस प्रकार के बवंडर गहरे रंग के होते हैं और सामान्यत: मलबे का रंग दर्शाते हैं। ग्रेट प्लेन के बवंडर लाल रंग के होते हैं क्योंकि वहां की मिट्टी लाल रंग की है। इसी प्रकार पर्वतीय इलाकों के बवंडर, बर्फ से ढके क्षेत्रों से गुजरते हैं, इसलिए सफेद रंग के दिखाई देते हैं।

वाउरिका तथा ओकलाहोमा बवंडरों की तस्वीर 30 मई, 1976 में एक ही फोटोग्राफर द्वारा ली गई। ऊपर वाले चित्र में बवंडर सूर्य की रोशनी से चमकता हुआ दिखाई दे रहा है इसलिए इसकी कीप नीले रंग की दिखाई दे रही है। नीचे के चित्र में कैमरा विपरीत दिशा में फोकस कर रहा है, इसमें सूर्य बवंडर के पीछे है, जो इसे गहरे रंग का दिखा रहा है। प्रकाश की स्थिति बवंडरों के प्रकटीकरण के लिए मुख्य कारक होती है। एक बवंडर जो पीछे से प्रकाशित (जब सूर्य उसके पीछे होता है) होता है तो वो गहरे रंग का दिखाई देता है। इसी बवंडर को हम सूर्य की सामने की रोशनी में देखें तो ये ग्रे या चमकीले सफेद रंग का दिखाई देगा। बवंडर, जो सूर्यास्त के समय दिखाई देते हैं वो विभिन्न रंगों के पीले, नारंगी या गुलाबी दिखाई देते हैं।

मुख्य झंझावात की हवा द्वारा फेंकी गई धूल, भारी वर्षा तथा ओले और रात्रि का अंधकार इन सारे कारकों द्वारा बवंडरों की दृश्यता कम हो जाती है। इन परिस्थितियों में पाये जाने वाले बवंडर विशेष रूप से खतरनाक होते हैं, क्योंकि केवल रडार द्वारा मौसम के प्रेक्षण या बवंडरों के पहुंचने की आवाज ही इस प्रकार के तूफान के मार्ग के लिए चेतावनी होती है। बहुत से महत्वपूर्ण बवंडर तूफान के ऊपर बनते हैं जो वर्षा रहित होते हैं, और इसे दिखाई देने योग्य बनाते हैं। बहुत से बवंडर दिन में भी दिखाई देते हैं जब चमकीले सूर्य की रोशनी इन भारी बवंडरों को झेंपती चली जाती है। रात में आने वाले बवंडर, लगातार चमकने वाली बिजली के कारण जलते-बुझते दिखाई देते हैं।

बवंडर की डॉप्लर ऑन व्हील मोबाइल रेडार से लिया गया चित्र तथा आंखों देखी बातों के द्वारा यह प्रमाणित है कि अधिकतर बवंडरों में साक, तथा शांत केन्द्र होता है जिसमें अत्यधिक कम दबा क्षेत्र होता है। जैसे कि गर्म चक्रवात होते हैं। इसका यह क्षेत्र

साफ हो सकता है (जहां केवल धूल की संभावना हो) तथा जिसमें अपेक्षाकृत हल्की हवाएं होती हैं तथा ये बहुत गहरे रंग का हो सकता है, क्योंकि बवंडर के बाहर की तरफ मलबों के भंवर होते हैं जो सूर्य की रोशनी को रोक लेते हैं। बिजली की चमक उनके लिए उस रोशनी का स्रोत है जो ये कहते हैं कि उन्होंने बवंडर के अंदर देखा है।

घूर्णन

बवंडर सामान्यत: चक्रवातीय दिशा में (उत्तरी गोलार्द्ध में घड़ी की सुई के विपरीत दिशा में तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में घड़ी की सुई के अनुकूल दिशा में) घूमते हैं। जबकि बड़े पैमाने के तूफान कोरोलिस प्रभाव के कारण सदैव चक्रवातीय दिशा में घूमते हैं। झंझावात तथा छोटे बवंडरों पर कारोलिस प्रभाव लागू नहीं होता है, ये अपने बड़े रोसबी संख्याओं द्वारा संकेतित किये जाते हैं। सुपरसेल तथा बवंडर चक्रवातीय रूप अंकीय अनुकृतियों में घूमते हैं जहां कोरोलिस प्रभाव नगण्य होता है। निम्न स्तरीय मध्यवर्ती चक्रवात तथा बवंडर सुपरसेल तथा संबंधित वातावरण के अंतर्गत होने वाली जटिल प्रक्रियाओं के आभारी होते हैं।

लगभग 1 प्रतिशत बवंडर उत्तरी गोलार्द्ध में चक्रवाती दिशा की विपरीत दिशा में घूमते हैं। विशिष्ट रूप से लैंड स्पाट तथा गस्टनाडोड कमजोर होने के कारण चक्रवाती दिशा के विपरीत घूमते हैं। कुछ संदर्भों में चक्रवाती दिशा के विपरीत घूमने वाले बवंडर, एक अचक्रवाती सुपरसेल के मध्यवर्ती वृतांतों के साथ एक संयोजन बनाते हैं, जैसा कि एक क्लिष्ट चक्रवर्ती बवंडर या उसके जैसा ही बवंडर, अचक्रवाती भंवर एक सुपरसेल के अंतर्गत एक संयोजन बनाता है।

ध्वनि तथा भूकंप विज्ञान

बवंडर ध्वनिक वर्णक्रम में अधिक ध्वनि उत्सर्जित करता है तथा ये ध्वनियां ढेर सारी क्रियाविधियों द्वारा उत्पन्न होती हैं। बवंडरों की बहुत-सी ध्वनियां हर समय आती रहती हैं, उनके बहुत सी ध्वनियों से हम परिचित होते हैं जैसे-मालवाहक ट्रेन की आवाज, गिरते हुए झरने की आवाज, एक पास से गुजरते जेट इंजन की आवाज या इन सबकी मिश्रित आवाज। बहुत से बवंडरों की आवाज दूरी से सुनाई नहीं पड़ती है। सुनाई पड़ने वाली ध्वनियों की प्रकृति तथा सत्रावसान दूरी, वायुमंडलीय परिस्थिति तथा स्थलाकृति विज्ञान पर निर्भर करता है।

बवंडरीय भंवरों तथा उपद्रवी भंवरीय तरंगों की हवा सतह तथा मलबों का हवा के बहाव का अंतर्व्यवहार, ध्वनि को उत्पन्न करने में मदद करता है। कीप के बादल भी ध्वनि को उत्पन्न करते हैं। कीप के बादल तथा छोटे बवंडर (सीटी की ध्वनि, घोड़े के हिनहिनाने की ध्वनि, या एक जलते हुए बल्व के चारों ओर मंडराते हुए कीड़ों की ध्वनि या एक अनियन्त्रित ध्वनि, जिसे शोर कह सकते हैं), निकालते हैं। चूंकि बहुत से बवंडर केवल पास आने पर ही सुनाई पड़ते हैं, फिर भी ध्वनि का बवंडर को विश्वास योग्य चेतावनी नहीं माना जा सकता तथा कोई भी शक्तिशाली, वीभत्स आवाज जो ओलों या सतत झंझावात के कारण होती है वो भी चिंघाड़ वाली ध्वनि उत्पन्न करती है।

अर्थ सिस्टम रिसर्च लैबोरेटरी इंफ्रासाउंड प्रोग्राम के द्वारा बवंडरों में आधारभूत ध्वनियों की उत्पत्ति की व्याख्या बवंडरों के सुनने योग्य संरचनाओं को बनाती हैं।

सुनने योग्य ध्वनियों की तरह, बवंडरों की ध्वनियों को भी अलग किया जा सकता है। उनके निम्न आवृत्तीय ध्वनि के दूरी पर स्थित सत्रावसान द्वारा बवंडर के अनुमानों तथा पहचानने के उपकरणों के लिए तथा साथ में बवंडर की संरचना, उसकी गतिकीय तथा बनने की प्रक्रिया को समझने के लिए लगातार प्रयास किये जा रहे हैं।

विद्युत चुम्बकीय, बिजली तथा अन्य प्रभाव

बवंडर विद्युत चुम्बकीय वर्णक्रम उत्सर्जित करते हैं, जिनमें S कोटिक तथा E फील्ड प्रभाव पहचाना जा चुका है। ये बवंडर तथा बिजली के प्रतिमानों के बीच सहयोगिता प्रदर्शित करते हैं। बवंडर के भीतर अन्य तूफानों की तुलना में अधिक बिजली नहीं होती है और कुछ बवंडर बिजली उत्पन्न ही नहीं करते हैं। ये क्सर होता है और नहीं भी होता कि संपूर्ण जमीन से बादल तक की बिजली के चमकने की प्रक्रिया, बवंडर के सतह पर पहुंचने से कम हो जाती है और वापस दुबारा आधारसेवा के स्तर पर आ जाती है जब बवंडर ऊपर की ओर उठता है, बहुत से उदाहरणों में, बवंडर तथा झंझावात दोनों घनात्मक ध्रुवीयता (CG) की निरावोरीता को बढ़ाते हैं। विद्युत चुम्बकीयता तथा बिजली दोनों ही वह नहीं कर सकते जो बवंडर करता है (बवंडर आधारभूत रूप से एक ऊष्मागतिकीय प्रक्रिया है) जबकि ये तूफान तथा वातावरण दोनों ही को समान प्रभावित होता है।

दीप्त को पहले हम वाह्य प्रकाश के स्त्रोतों जैसे कि बिजली, शहर की रोशनी, टूटी हुई लाइनों (तारों) से बिजली की चमक से जानते थे। हवा के संदर्भ में बवंडर भी वायुमंडलीय घटकों में परिवर्तन दर्शाता है जैसे कि तापमान, नमी तथा दाब। उदाहरण के लिए, 24 जून, 2003 में, मैनचैस्टर, दक्षिणी डकोटा के पास एक जांच के द्वारा 100 mbar (hPa) (Hg में 2.95) दबाव का कम होना पाया गया। भंवर के पहुंचने तक दाब में निरन्तर कमी आती गयी और भंवर के जाने के पहले दाब के मान की बढ़त के पूर्व में 850 mbar (25.10 Hg में) गिर गया। फलस्वरूप एक V के आकार का दाब क्षेत्र बन गया। बवंडर की तुरत की समीपता के कारण तापमान कम होने लगता है तथा नमी के घटक बढ़ने लगते हैं।

रडार

आजकल सभी विकासशील देशों में मौसम के रडार का जाल पाया जाता है जो मौसमी हस्ताक्षरों को विशेषकर बवंडर को पहचानने की मुख्य विधि है। यूनाइटेड स्टेट तथा कुछ अन्य देशों में डाप्लर मौसमी रडार स्टेशन प्रयुक्त होते हैं। ये उपकरण तूफान में हवा का वेग तथा उसकी रेडियल दिशा (रडार की ओर या उससे दूर) को मापते हैं। जब तूफान रडार से दूर होता है तो तूफान के अन्तर्गत आने वाले ऊंचे क्षेत्र दिखाई पड़ते हैं जबकि नीचे के महत्वपूर्ण क्षेत्रों को नहीं देखा जा सकता। आंकड़ों के प्रस्ताव रडार से दूरी के साथ कम होते हैं। कुछ मौसमीय परिस्थितियां ठीक प्रकार से रडार के द्वारा नहीं पहचानी जा सकतीं क्योंकि बवंडरों का विकास रडार द्वारा स्कैन होने व आंकड़ों को जांचने के पूर्व ही हो जाता है। पृथ्वी पर अत्यधिक जनसंख्या घनत्व वाले क्षेत्र भी आपरेशनल इन्वारेनमेंटल सैटलाइट (GOES) द्वारा नहीं देखे जा सकते, ये सब बवंडर तूफानों को बढ़ाने में सहायक होते हैं।

मौसमीय रडार

2.5.2 मानसूनी हवाएं

मानसून परंपरागत रूप से मौसम की प्रतिकूल हवाएं होती हैं जो अवक्षेपण के संबंधित परिवर्तनों से जुड़ी होती हैं, लेकिन अब ये जमीन तथा समुद्र के असमान रूप से गर्म होने की प्रक्रिया, वायुमंडलीय प्रवाह तथा अवक्षेपण के द्वारा मोसम के परिवर्तन की व्याख्या करने में प्रयुक्त होती हैं जो स्थल तथा समुद्र के असमान रूप से गर्म होने की प्रक्रिया द्वारा उत्पन्न होते हैं। सामान्यतः मानसून का अर्थ हम मौसमीय परिवर्तन के प्रतिमानों के रूप में वर्षा काल से लगाते हैं, जबकि तकनीकी रूप से इसमें सूखा काल भी होता है। निम्न चित्र गर्मी तथा सर्दी की मानसून हवाओं को दर्शाता है।

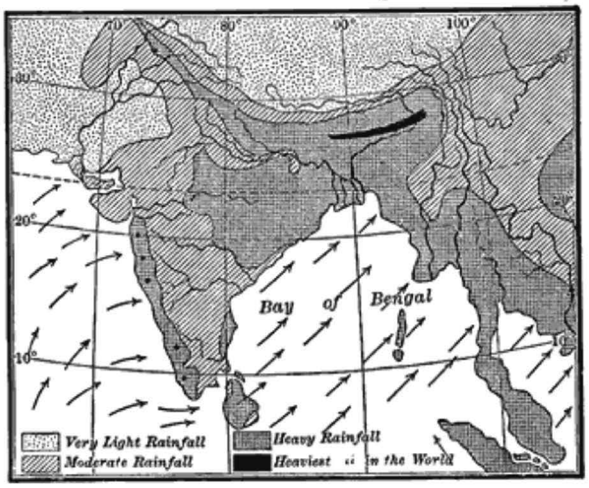

ग्रीष्मकालीन मानसून हवाएं

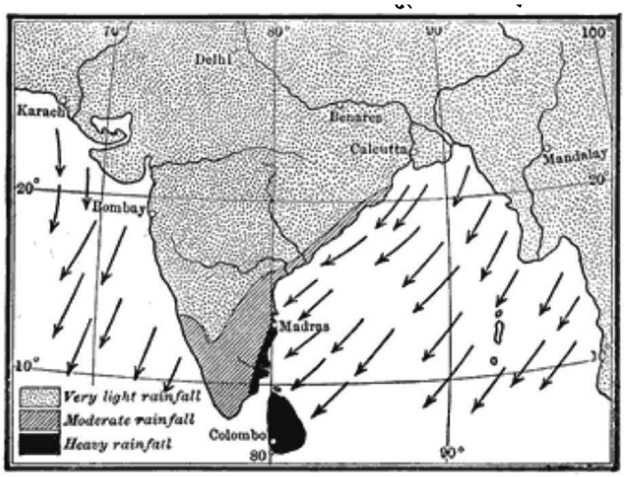

शीतकालीन मानसून हवाएं

गर्मी तथा सर्दी की मानसून हवाएं

मानसून परिचालन: मानसून शब्द एक अरेबिक शब्द से उत्पन्न हुआ जिसका अर्थ 'मौसम' है। मानसून हवाएं दैत्याकार समुद्र तथा स्थल की शीतल हवाएं होती हैं, जो मौसमीय परिवर्तन के परिचालन द्वारा उत्पन्न होती हैं। एक बहुत ही दिलचस्प प्रश्न है जिसे कोई भी पूछ सकता है, तथा जो जलवायु परिवर्तन से संबंधित है कि क्या विश्वव्यापी गर्माहट क्षेत्रीय परिचालन का समर्थ करती है या मानसून परिचालन।

यह समझने के लिए मानसून परिचालन किस प्रकार कार्य करता है, सर्वप्रथम हम ये जानेंगे कि समीर (ब्रीज) क्या है, जो उन लोगों के लिए परिचित है जो तटीय क्षेत्रों के निवासी हैं। यह एक कोमल हवा है जो समुद्री हवा को अंदर स्थल की तरफ प्रवाहित करके गर्मी में तेज गर्म दिनों में राहत पहुंचाती है। दिन के आखिरी चरणों में समुद्री समीर समाप्त हो जाता है और कभी-कभी रात में हवा विपरीत हो जाती है तथा स्थलीय समीर को उत्पन्न करती है। समुद्री तथा स्थल समीर, समुद्र तथा स्थल की सतह का ऊष्मीय क्षमता में विभिन्नता के कारण उत्पन्न होती है। दिन के समय, जब सूर्य समुद तथा भूमि दोनों पर चकमता है तो भूमि, समुद्र की अपेक्षा जल्दी गर्म हो जाती है। फलस्वरूप भूमि पर नीचे की हवा भी गर्म होकर फैल जाती है और अपने चारों ओर के वायु द्रव्यमानों से हल्की हो जाती है। हल्की होने के कारण ये ऊपर की ओर उठ जाती हैं। हवा परिधि से अंदर आती है और इसे बदल देती है, तटीय स्थानों पर इस प्रकार अंदर आने वाली हवाओं का स्रोत समुद्र हो सकता है।

जमीन तथा समुद्र के असमान रूप से गर्म होने का एक कारण निश्चित है: पत्थर या मिट्टी की अपेक्षा जल की ऊष्मीय क्षमता का अधिक होना-जो पंचतत्वों में से एक है। लेकिन असमान रूप से गर्म होने का दूसरा कारण है कि दोनों अत्यधिक रूप से गूढ़ तथा विशिष्ट ऊष्मा से अधिक महत्वपूर्ण हैं। समुद्री सतह जो रोजमर्रा के गर्म होने से संबंधित है, वह जमीन की तुलना में अधिक सघन होती है। सूर्य की रोशनी समुद्री सतह को भेदती है, और जल के अंदर प्रकाश 10 मीटर से अधिक सघन परतों द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है। मिट्टी की परत की मोटाई, जो सूर्य के द्वारा गर्म होती है वह 10 सेमी. की होती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि जमीन की सतह, प्रभावकारी रूप से समुद्र की सतह से 10 गुना विरल होती है यदि हम ऊष्मीय भोजन के संदर्भ में बात करें।

गर्मी का मानसून, दैत्याकार समुद्री समीर होता है जहां गर्मी का मौसम दिन के समय के अनुरूप होता है। गर्मी का मानसून अपने साथ समुद्र से नमी लाता है, जब जमीन की ऊष्मा हवा में समुद्र से आती है। इस प्रकार मानसून के साथ बारिश होती है। सर्दी का मानसून, इसके विपरीत सूखे की स्थिति उत्पन्न करता है। (दक्षिणी कैलीफोर्निया में 'सेंटा एना' हवाएं सर्दी के मानसून की क्रियाओं से संबंधित हैं)। सबसे अधिक मानसून प्रतिमान उष्ण कटिबंधों में होते हैं, जिसका भारतीय मानसून एक अद्वितीय उदाहरण है। ये मौसमीय हवाएं मानसून प्रणाली के अन्तर्गत पूर्वी अफ्रीका, अरब, भारत तथा अरब सागर पर फैली होती हैं। मानसून की कम क्रियाशीलता उत्तरी अमेरिका में पायी जाती है, इनमें दक्षिण–पश्चिम से आने वाली हवाएं कैलीफोर्निया धारा तथा कैलीफोर्निया की खाड़ी से आती हैं तथा मध्य पश्चिम से आने वाली हवा, मैक्सिको की खाड़ी से आती है।

भारत का गर्मी का मानसून और हिमालय के तराई के क्षेत्र निम्न दाब के बनाने वाले क्षेत्र हैं जो गर्मियों में एशिया के ऊंचे भागों (चीन तथा तिब्बत) में जल्दी बन जाता है। बसंत तथा गर्मी की ऋतु में जब दिन का सूर्य उत्तर में पहुंचता है तो परिणामात्मक रूप से बना निम्न दाब का क्षेत्र भी उत्तर में पहुंच जाता है। इस प्रकार दक्षिण पश्चिमी मानसूनी हवाएं मई के अंत में सबसे पहले श्रीलंका में आती हैं, तथा हिमालय के तराई के क्षेत्रों में जुलाई तक पहुंचती हैं। यहां यें मानसूनीय हवाएं संसार में कहीं भी हुई वर्षा की तुलना में बहुतायत में वर्षा करती हैं। इस क्षेत्र में सर्दी का मानसून आवश्यक रूप से पूर्वी ट्रेड हवाओं के प्रतिमान से अस्पष्ट होता है, जो इस क्षेत्र के लिए सामान्य है। ये हवाएं अरब सागर के तटीय क्षेत्र में पाकिस्तान के पिछला भाग तथा उत्तरी पश्चिमी भारत में शक्तिशाली रूप से मिलावट उत्पन्न करती हैं।

मानसून तथा जलवायु परिवर्तन

अब हम अपने क्षेत्रीय परिचालन तथा मानसून हवाओं के बीच स्पर्धा से संबंधित प्रश्न पर दुबारा आते हैं। कौन विश्वव्यापी रूप से गर्म होने की प्रक्रिया द्वारा समर्थित होगा? यदि पूरी तरह से देखा जाये तो विश्वव्यापी रूप से गर्म होने की प्रक्रिया, जमीन की परिस्थिति की अपेक्षा, समुद्र की परिस्थिति में बहुत धीरे–धीरे परिवर्तन लाती है, जो कि तपने की प्रतिक्रिया की दर में विभिन्नता के कारण होता है तथा जो समुद्री समीर की संकल्पना से परिचित होता है। इसलिए हम गर्मी में गर्मी के मानसून को शक्तिशाली रूप से गर्म होकर आवर्धित होने की उम्मीद करते हैं। साथ ही, हवा में नमी का ज्यादा उपस्थित होना, जो गर्म समुद्र से खींची जाती है, अधिक बारिश की उत्पत्ति करता है। इसके विपरीत सर्दी में हमें कम विभिन्नता की उम्मीद करनी चाहिये क्योंकि जमीन जैसी पहले ठंडी थी वैसी ही ठंडी रहती है। इसलिए सर्दी में मानसून कमजोर हो जाता है।

अफ्रीकी महाद्वीप पर मानसून का प्रभाव

मानसून का अर्थ है वे हवाएं जो मौसम के अनुसार अपनी दिशा बदल लेती हैं। मानसून की परिस्थितियां पूरे संसार में पायी जाती हैं, परन्तु सबसे अधिक ये एशिया क्षेत्र में मिलता है। गर्मी के दिनों में, एशिया महाद्वीप अपने चारों ओर के समुद्र की अपेक्षा जल्दी गर्म हो जाता है क्योंकि जमीन तथा पानी दोनों गर्म गर्मी के कारण गर्म हो जाते हैं। गर्म सतह निम्न दाब का एक बड़ा क्षेत्र उत्तर केन्द्रीय एशिया पर उत्पन्न करती है तथा जिसका थोड़ा सा भाग भारत में पड़ता है। यह पैसेफिक तथा हिन्द महासागर से नमीयुक्त हवा को समुद्री तट से स्थल भाग पर ले आती हैं। इन जलवाष्पों के स्थल पर आते ही गर्म सतह पर

संवहन उत्पन्न हो जाता है तथा केन्द्राभिमुखता के कारण एक निम्न दाब का क्षेत्र उत्पन्न हो जाता है, फलस्वरूप ये जलवाष्प बड़े-बड़े पहाड़ों जैसे हिमालय की ओर ऊपर उठते हैं और गीले मानसून के मौसम की भारी वर्षा उत्पन्न करते हैं। सर्दी के समय, यह स्थिति बिलकुल इसके विपरीत होती है। महाद्वीपों के जल्दी ठंडे हो जाने के कारण अब उत्तरी केन्द्रीय एशिया पर उच्च दाब का एक बड़ा क्षेत्र बन जाता है, जिसे हम साइबेरियन हाई कहते हैं तथा जिसका थोड़ा भाग भारत के भूभागों के ऊपर भी रहता है। इस समय, महाद्वीप की सूखी, ठंडी हवा समुद्र की तरफ चली जाने लगती है, फलस्वरूप शुष्क मानसून का मौसम उत्पन्न हो जाता है।

मानसून की परिस्थितियां पूर्व-केन्द्रीय एशिया में भी पायी जाती हैं। यह क्षेत्र मौसमीय अवक्षेपण का अनुभव करता है जो विश्वव्यापी दाब पट्टी के प्रत्यावर्ती प्रभाव के द्वारा उत्पन्न होता है। सूर्य के तीव्र मौसम में ITCZ अंदर की ओर स्थानांतरित हो जाता है और अपने साथ गर्म तथा नम हवा लाता है, जो अवक्षेपण को उत्साहित करती है। सूर्य की कम गर्मी के मौसम में ITCZ बाहर की ओर स्थानांतरित हो जाता है फलस्वरूप सह उष्णकटिबंधीय हाई के घटते हुए क्रम की गति का प्रभाव क्षेत्र को प्रबल रूप से प्रभावित करता है।

यूनाइटेड स्टेट का दक्षिण पश्चिमी रेगिस्तान गर्मियों में छद्म-मानसून का अनुभव करता है। बर्ष के इस समय सतह की तीव्र रूप से गर्म हो जाना रेगिस्तान में ऊष्मीय निम्न उत्पन्न करता है। यह निम्न क्षेत्र में घूम-घूम कर नम हवा को प्रभावित करता है। केन्द्राभिमुखता के कारण ऊपर की ओर चली जाती है या पर्वत्तोत्पत्ति के कारण ऊंचे उठकर अवक्षेपण की उत्पत्ति करती है। सर्दी के समय, रेगिस्तान की सतह के ठंडे होने के कारण यह निम्न छिन्न-भिन्न हो जाता है और शुष्क परिस्थिति को ले आता है।

हवाओं के प्रकार

पृथ्वी की सतह पर, कुछ हवाएं लगातार रूप से एक निश्चित दिशा में पूरे साल बहती रहती हैं। इन्हें 'व्याप्त हवाएं' कहते हैं। इन्हें स्थायी या भूमंडलीय हवाएं भी कहते हैं। कुछ हवाएं एक मौसम में एक ओर तथा दूसरे मौसम में दूसरी ओर बहती हैं। इन्हें 'आवर्ती हवाएं' कहते हैं। इस प्रकार स्थानीय हवाएं, संसार के विभिन्न भागों में पायी जाती हैं। निम्न चित्र विभिन्न प्रकार की हवाओं को दर्शाता है।

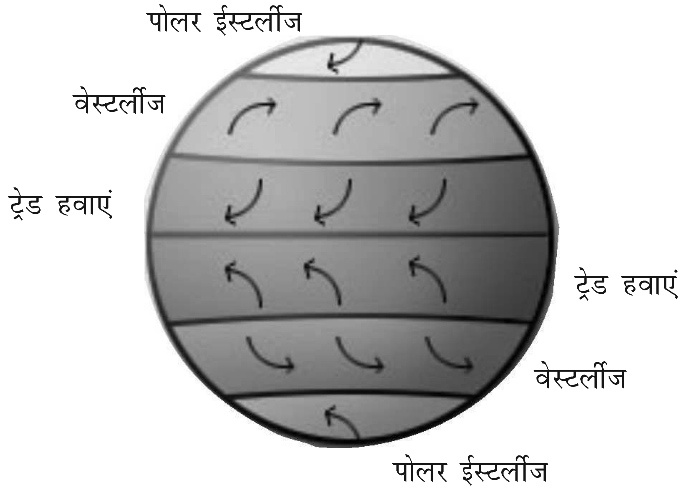

विभिन्न प्रकार की हवाएं

भूमंडलीय या स्थायी हवाएं

संसार की भूमंडलीय हवाओं की प्रणाली, उच्च तथा निम्न दाब पट्टियों का साथ देती हैं। हम जानते हैं कि, हवाएं उच्च दाब केन्द्र से निम्न दाब केन्द्र की ओर बहती हैं। पृथ्वी काअपने अक्ष के चारों ओर घूमना, इन हवाओं की दिशाओं को नियमित करता है (कोरोलिस बल के द्वारा)। इन हवाओं की दिशा में केरल के नियम के अनुसार होता है। दो प्रकार की हवाएं, ट्रेड तथा पश्चिमवर्ती, संसार की मुख्य भूमंडलीय हवाएं हैं।

ट्रेड हवाएं

उत्तर तथा दक्षिण के शांत भूमध्यरेखीय विषयक पट्टी की ट्रेड हवाएं होती हैं, जो अनुमानित रूप से 5° तथा 30° उत्तर से दक्षिण के बीच के क्षेत्र को आच्छादित करती हैं। दूसरे शब्दों में, ये विषुवत रेखा के दोनों ओर 30°N से 30°S अक्षांशों के बीच लगभग पूरे क्षेत्र को आच्छादित करती हैं। ट्रेड हवाएं उच्च दाब की सह उष्णकटिबंधीय पट्टी से निम्न दाब की भूमध्यरेखीय विषयक पट्टी से बनी दाब की ढाल का परिणाम होती हैं। उत्तरी गोलार्द्ध में ये विषुवत रेखा की ओर चलती हैं तथा पृथ्वी के अपने अक्ष पर घूमने के कारण ये विचलित होकर दक्षिण की तरफ बहने लगती हैं। इस प्रकार, चूंकि व्याप्त हवाएं उत्तर से दक्षिण की ओर बढ़ती हैं, इसलिए इन्हें 'उत्तर-दक्षिण ट्रेड' कहते हैं। दक्षिणी गोलार्द्ध में हवा का विचलन बांयी ओर हो जाता है, जो 'दक्षिण-पूर्व ट्रेड' का कारण है।

निम्न चित्र विभिन्न ट्रेड हवाओं के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्रों को दर्शाता है।

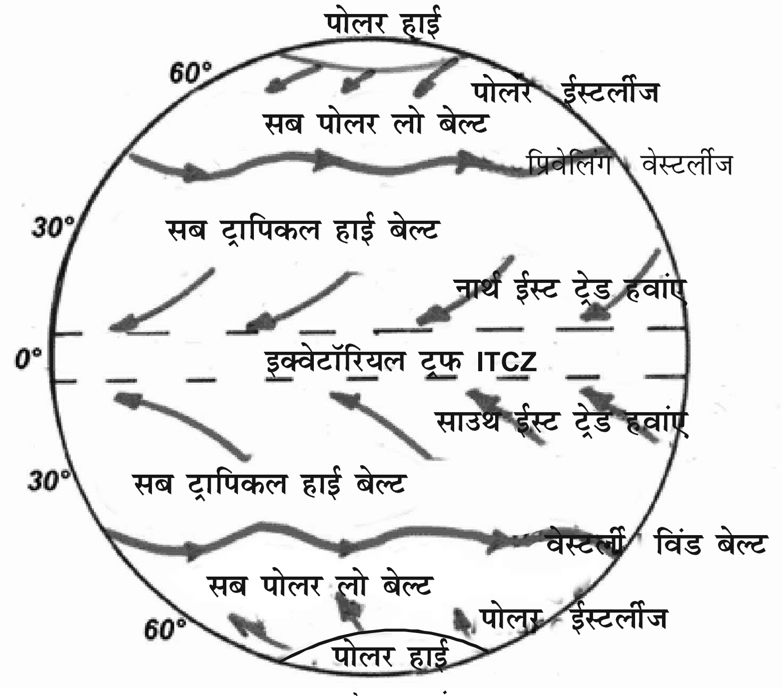

ट्रेड हवाएं

टिप्पणी

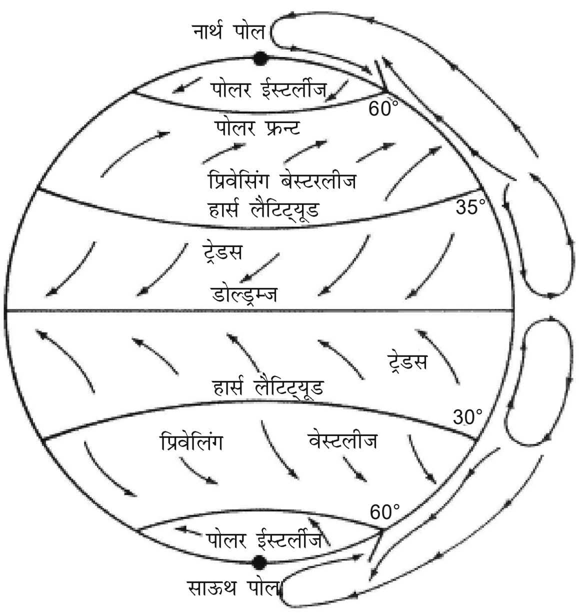

विभिन्न ट्रेड हवाओं के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्र

ट्रेड हवाएं अपनी अपरिवर्तनशीलता तथा स्थायित्व के कारण जानी जाती हैं। लेकिन शांत कटिबंधीय प्रणाली तथा ट्रेड मौसम के अनुसार उत्तर से दक्षिण स्थानान्तरित हो जाते हैं, ऐसा अक्षांशो के भिन्न अक्षांशो के कारण होता है। ट्रेड भली भांति पैसेफिक तथा एटलांटिक सागरों में विकसित होते हैं, जबकि हिन्द महासागर में नहीं, ऐसा एक बड़े एशियन स्थलीय क्षेत्र के पास में उपस्थित होने के कारण होता है। इनका नाम 'ट्रेडो' एक लैटिन शब्द है जिसका अर्थ है अपरिवर्तित रूप से एक नियत दिश में बहना, इसलिए इनका नाम ट्रेड हवाएं रखा गया है। इन हवाओं के गर्म सह उष्णकटिबंधीय अक्षांशों से गर्म उष्ण कटिबंधों की ओर प्रवाहित होने से, इनकी जलवाष्पों या नमी को संकलित करने की क्षमता बढ़ जाती है। ये उष्ण कटिबंधों के अन्तर्गत आने वाले महाद्वीपों के तटीय क्षेत्रों पर भारी वर्षा करती हैं। क्योंकि ये तटों की ओर बहती हैं। महाद्वीपों के पश्चिमी तटीय क्षेत्रों में ये कोई भी वर्षा नहीं करतीं। ऐसा इसलिए होता है कि ये यहां ये तट से दूर जाती हैं या तटीय किनारों के ठीक समानान्तर बहती हैं।

इस प्रकार उष्ण कटिबंधों के पश्चिमी क्षेत्र शुष्क तथा नीरस होते हैं। सहारा का महान रेगिस्तान, कालाहारी, एटाकामा तथा आस्ट्रेलिया का बड़ा रेगिस्तान ये सभी महाद्वीपों की पश्चिमी किनारों पर स्थित हैं, जो उष्णकटिबंधीय अक्षांशों के अन्तर्गत आता है।

पछुआ हवाएं

पछुआ हवाएं 35° से 60° उत्तर तथा दक्षिणी अक्षांशों के बीच, सह उष्णकटिबंधीय उच्च दाब पट्टी से सह-ध्रुवीय निम्न दाब पट्टी की ओर बहती हैं। हम जानते हैं कि, उच्च दाब पट्टी, इन बाहर जाने वाली हवाओं के लिए अवसरण का क्षेत्र होता है। उत्तरी गोलार्द्ध में ये पछुआ हवाएं दक्षिण-पश्चिम से उत्तर-पूर्व की ओर बहती हैं तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-पूर्व की ओर।

ये पश्चिमी तटों की तटोन्मुख (तट की ओर) जाने वाली हवाएं हैं तथा पूर्वी तटों पर ये तट से दूर हो जाती हैं। तटोन्मुख हवाएं अपने साथ वर्षा लाती हैं जबकि तट के दूर जाने वाली हवाएं ऐसा नहीं कर पाती हैं। ये हवाएं ट्रेड हवाओं की तरह, शक्ति तथा

दिशा में स्थिर नहीं रह पाती हैं। ये अक्सर तूफानी तथा विविध हो जाती हैं जबकि इनकी मुख्य दिशा सदैव पश्चिम से पूर्व होती है। लेकिन सामान्यतः ये पश्चिम दिशा से आती हैं, इसलिए इन्हें पछुआ हवाएं (पश्चिम से आने वाली) कहते हैं। इन्हें 'ट्रेड हवओं का विपरीत' भी कहते हैं, क्योंकि इनकी गति, ट्रेड हवाओं से विपरीत दिशा में होती है।

उत्तरी गोलार्द्ध में, स्थलीय भागों के कारण पछुआ हवाएं प्रचुर मात्रा में छिन्न-भिन्न हो जाती हैं। लेकिन दक्षिणी गोलार्द्ध में 40°S से 60°S के बीच, पछुआ हवाएं अत्यधिक रूप से शक्तिशाली तथा स्थायी होती हैं क्योंकि इनकी इस पट्टी में समुद्र का विस्तार अत्यधिक रूप से होता है। ये बूढ़े हो चुके नाविकों को, 'रोरिंग फोर्टीस' (दहाड़ता यालीमवां), फ्यूरिअस (चिल्लाता सान्तां) नाम देती है। पुराने दिनों में, पछुआ हवाओं के विपरीत दिशा में तैरती हुई नावों को अत्यधिक खतरे का सामना करना पड़ता था। यह एक झगड़े की बात है कि समतापी क्षेत्रों के सभी पश्चिमी तटीय क्षेत्रों में, पछुआ हवाएं पूरे वर्ष गर्मी तथा बारिश लाती हैं। लेकिन वो क्षेत्र जो भूमध्य-सागरीय जैसे क्षेत्र में पड़ते हैं, वहां बारिश केवल सर्दी के मौसम में होती है। उस समय पर, दिसम्बर में, यूरोप तथा कैलीफोर्निया (USA) के भूमध्य-सागरीय क्षेत्र, पछुआ हवाओं के प्रभाव में आते हैं और वहां वर्षा होती है। दक्षिणी गोलार्द्ध में, इसी महीने में भूमध्य सागरीय क्षेत्रों (केन्द्रीय चिली, दक्षिण अफ्रीका, दक्षिण पश्चिम आस्ट्रेलिया के तटीय क्षेत्र) में बिलकुल वर्षा नहीं होती है क्योंकि यहां से पछुआ हवाएं स्थानान्तरित हो चुकी होती हैं। जून में दक्षिणी महाद्वीपों के भूमध्य-सागरीय भाग पछुआ हवाओं से प्रभावित होते हैं और वर्षा प्राप्त करते हैं। उस समय पर उत्तरी गोलार्द्ध के भूमध्य-सागरीय प्रदेशों में वर्षा नहीं होती, क्योंकि वहां से पछुआ हवाओं का प्रभाव समाप्त हो चुका होता है।

ध्रुवीय हवाएं

आर्कटिक तथा एटलांटिक अक्षांशों में बहने वली हवाएं, ध्रुवीय हवाएं कहलाती हैं। इन्हें 'ध्रुवीय पुरवैया' भी कहा जाता है क्योंकि ये ध्रुवीय उच्च दाब के केन्द्र से सह-ध्रुवीय निम्न दाब की पट्टियों की ओर बहती हैं। उत्तरी गोलार्द्ध में सामान्यतः ये उत्तर से पूर्व की ओर बहती हैं, इसलिए इन्हें उत्तर-पूर्व ध्रुवीय हवाएं कहते हैं, तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में ये दक्षिण-पूर्व की ओर बहती हैं, इसलिए इन्हें दक्षिणी-पूर्व ध्रुवीय हवाएं कहते हैं। चूंकि ये हवाएं बर्फ से आच्छादित स्थानों से चलती हैं, इसलिए ये अत्यधिक रूप से ठंडी होती हैं। दक्षिणी गोलार्द्ध में, उत्तरी गोलार्द्ध की अपेक्षा ज्यादा नियमित होती हैं।

आवर्ती हवाएं

स्थल तथा समुद्र के समीर, मानसून हवाएं, ये सभी आवर्ती प्रकार की हवाएं होती हैं। ये दोनों ही स्थल तथा समुद्र के असमान रूप से गर्म होने के कारण बनती हैं। स्थल तथा समुद्र समीर प्रतिदिन उपस्थित होते हैं, जबकि मानसून हवाओं का पाया जाना मौसमीय होता है।

समुद्री समीर

दिन के समय, जमीन के ज्यादा गर्म हो जाने से उसके आस-पास हवा ऊपर उठ जाती है, और इस प्रकार एक निम्न दाब का क्षेत्र उत्पन्न हो जाता है। समुद्र से आने वाली ठंडी तथा भारी हवा इस रिक्त स्थान को ग्रहण कर लेती है। समुद्री समीर की शक्ति तटीय क्षेत्र तथा उस प्रदेश के स्थलाकृति विज्ञान पर निर्भर करती है।

स्थल समीर

रात के समय, जमीन समुद्र की अपेक्षा जल्दी ठंडी हो जाती है, इस प्रकार समुद्र पर एक निम्न दाब का क्षेत्र उत्पन्न हो जाता है। जमीन से ठंडी तथा भारी हवा इस रिक्त स्थान पर जगह ले लेती है। स्थल तथा जल के गर्म होने के वैमस्य का सामान्य प्रभाव, तटीय क्षेत्रों की अपेक्षा महाद्वीपों के केन्द्र में, ठंडी सर्दी तथा गर्म गर्मी के मौसम को उत्पन्न करता है।

दक्षिण पश्चिम मानसून

पूर्व निर्धारित तिथियों तथा व्यापक हवाओं की धारायें, भारत में दक्षिण-पश्चिम गर्मी का मानसून होती हैं। दक्षिण पश्चिम मानसून जून से सितम्बर के मध्य पाया जाता है। उत्तरी तथा केन्द्रीय भारतीय उपमहाद्वीप के थार रेगिस्तान तथा उससे जुड़े क्षेत्र गर्मी में अत्यधिक रूप से गर्म हो जाते हैं, जिसके कारण उत्तरी तथा केन्द्रीय भारतीय उपमहाद्वीप में एक निम्न दाब का क्षेत्र उत्पन्न हो जाता है। इस खाली स्थान को भरने के लिए हिन्द महासगर से नमीयुक्त हवाएं तेजी से इस उपमहाद्वीप की ओर बढ़ती हैं। ये हवाएं जो नमी से भरपूर होती हैं हिमालय की ओर जाती हैं और उपमहाद्वीप की ओर तूफानी हवाएं उत्पन्न करती हैं। हिमालय एक दीवार की तरह इनका रास्ता केन्द्रीय एशिया के लिए रोक देता है और इन्हें और ऊपर जाने के लिए मजबूर करता है। इस प्रकार ऊंचे उन्नतांशों पर जाने के कारण तापमान कम हो जाता है और अवक्षेपण उत्पन्न होता है। इस उपमहाद्वीप के कुछ क्षेत्र लगभग 10,000 मिमी (390 इंच) वर्षा प्राप्त करते हैं।

2.5.3 काल बैसाखी

काल बैसाखी मानसून पूर्व में होने वाली बौछारें होती हैं। ग्रीष्म ऋतु में मार्च से मई के तीन महीनों की अवधि में उत्तर एवं उत्तर पूर्वी भारत में भयानक मेघ गर्जना, आकाशीय बिजली गिरना और तेज वर्षाओं का चलना एक मौसमी घटना है, जिसे पश्चिम बंगाल में काल बैसाखी और ओडिसा में नॉरवेस्टर (Narwester) कहा जाता है। काल बैसाखी का प्रभाव बिहार, झारखंड, पश्चिम बंगाल और ओडिसा में देखने को मिलता है।

उत्पत्ति के कारण : अप्रैल व मई के महीनों में सूर्य कर्क रेखा के निकट चमकने के कारण तापमान बहुत तेजी से बढ़ने लगता है। इस समय संपूर्ण उत्तरी एवं पश्चिमी भारत में उच्च तापमान एवं निम्न वायुदाब की दशाएं विकसित होती जाती हैं। तापमान 43 डिग्री से 45 डिग्री सेंटीग्रेट पहुंच जाता है। तापमान में तेजी से वृद्धि के कारण तेज हवाएं उत्पन्न हो जाती हैं जिससे पवनों की दिशा एवं मार्ग में बहुत महत्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं। और इस समय निकटवर्ती स्थलों और समुद्रों में स्थानीय पवनें चलने लगती हैं। उत्तरी भारत में दिन में पवनें तेज रहती हैं जबकि रात्रि को यही पवनें शिथिल पड़कर अनिश्चित दिशा में बहने लगती हैं। उत्तर भारत में इन गर्म पवनों को लू (Loo) कहते हैं। ये पवनें मैदानों में असाधारण गर्मी पड़ने के कारण चलती हैं। जब इन शुष्क पवनों में आर्द्र पवनें मिलती हैं तो भीषण तूफान तथा आंधियां चलती हैं। इनका वेग 100 से 130 कि.मी. प्रतिघंटा होता है। इसमें ओलावृष्टि, कभी-कभी तेज वर्षा भी होती है। आंधियों में धूल के कण मिले होने के कारण दृश्यता (Visibility) प्राय: कम हो जाती है।

टिप्पणी

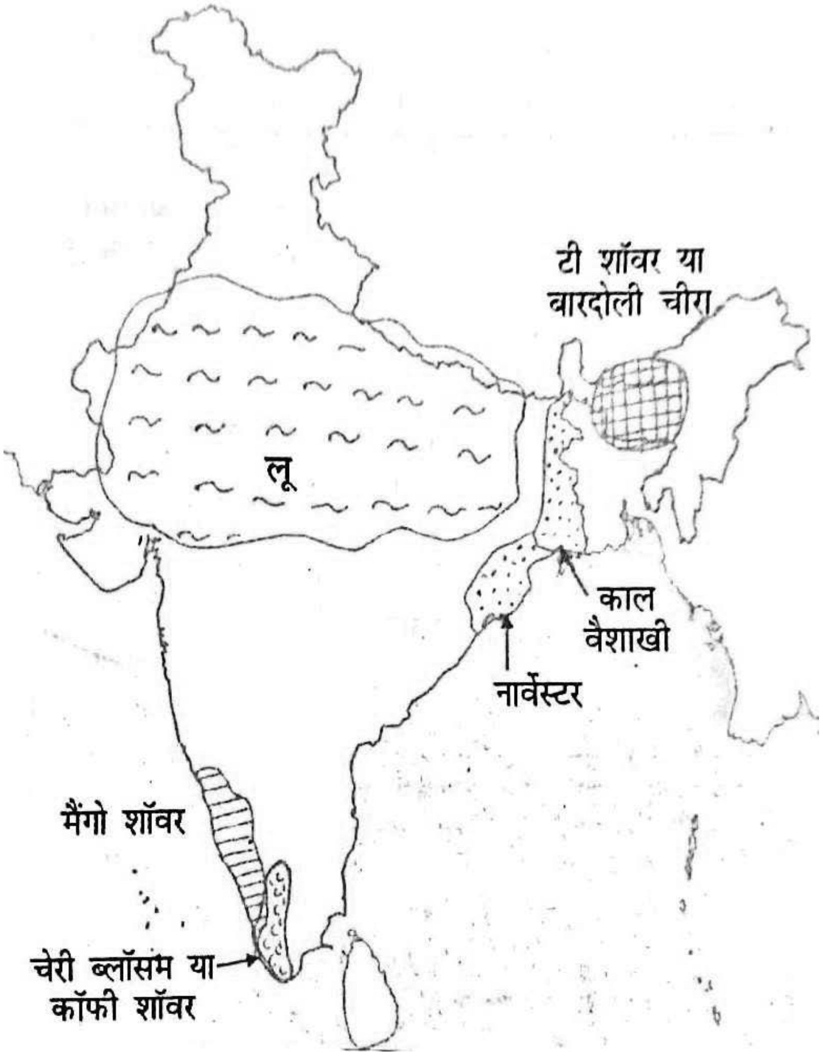

ताप की अधिकता के कारण ये हवाएं गर्म होकर ऊपर की ओर उठती है और अध:स्तर के ऊपरी भाग में पहुंच कर जब ये हवाएं ठंडी हवाओं से मिलती हैं तब ऐसी दशाएं उत्पन्न हो जाती हैं और बादलों का निर्माण करती हैं। जंगल के वन तूफानों को ही पूर्वी भारत में काल बैसाखी कहते हैं। ये हवाएं बहुत ही विंध्वसकारी होती हैं। कभी इनसे तेज वर्षा होती है। दक्षिण भारत में इसे आम्र वर्षा (Mango Showers) कहा जाता है। केरल और कर्नाटक के तटीय भागों में इस वर्षा को चेरीब्लशम या कॉफी वर्षा (Chery Blassom of Coffee shower) कहते हैं। ओडिसा में नॉर्वेस्टर, असम के मैदानों में तीव्र झंझावात को काल वर्षा को बारदोली हीड़ा कहते हैं।

प्रभाव : पूर्व मानसून मौसम में असम, पश्चिम बंगाल और पूर्वोत्तर भारत के साथ-साथ बांग्लादेश के कई इलाकों में चाय या चावल और जूट जैसी फसलों के लिए इस बारिश से फायदा होता है। इस वर्षा का आर्थिक महत्व दक्षिण की अपेक्षा उत्तर-पूर्वी भारत में अधिक है क्योंकि यहां चाय बागानों में नवीन पत्तियों का पनपना इसी वर्षा के बाद होता है। देश के शेष भागों में वर्षा का प्राय: अभाव रहता है। इस वर्षा को वसंत ऋतु की तूफानी वर्षा (Spring Storm Showers) भी कहते हैं।

हानि : काल बैसाखी का मतलब है वैसाख के महीने में आने वाली आपदा। यह आपदा बिहार, उड़ीसा और पश्चिम बंगाल सहित पूर्वोत्तर भारत के कई राज्यों में कई बार व्यापक

रूप से जनहानि होती है। हवा की रफ्तार तेज होने पर सैकड़ों पेड़ जड़ से उखड़ जाते हैं, कमजोर मकान नष्ट हो जाते हैं।

2.5.4 उष्णकटिबंधीय समशीतोष्ण घटनाएं

टिप्पणी

यह भूमध्य रेखा से दोनों ओर 23 1/2° उत्तर एवं दक्षिण में आयन व्रतों (tropics) में यह कटिबंध सीमित है। सूर्य की किरणें कर्क (कर्क 23 1/2° उत्तर) एवं मकर 23 1/2° दक्षिण रेखाओं पर वर्ष में दो बार लंबवत पड़ती है। सूर्य के उत्तरायण तथा दक्षिणायन होने की स्थिति में क्रम शाह उत्तरी एवं दक्षिणी गोलार्द्ध में अधिकतम तापमान पाए जाते हैं। यहां तापमान हिमांक बिंदु कभी नहीं पहुंच पाते हैं। इस कटिबंध में सभी से सभी क्षेत्र और एक ही स्थान के सभी भाग बराबर सूर्य से गर्मी पाते हैं। कर्क और मकर रेखाओं के बीच के स्थान सूर्य की सीधी किरणें पड़ने के कारण तापमान अधिक होता है। यहां पर जाड़ों और गर्मी के तापमान में अधिक तापांतर नहीं होता किंतु रात और दिन के तापमान में तापांतर अधिक होता है। यहां का तापमान 65 डिग्री फारेनहाइट से नीचे नहीं जाता है। इस कटिबंध में भूमध्य रेखा से दूर होने पर जाड़े और गर्मी के तापमान में तापांतर अधिक होने लगता है। यहां वर्ष भर ऊंचा तापमान रहता है। 18 डिग्री सेल्सियस से नीचे कभी नहीं होता।

- ग्रीष्म ऋतु में दिन की अवधि 14 घंटे होती है तथा शीत ऋतु में रात्रि की अवधि 14 घंटे होती है।
- उत्तरी गोलार्द्ध में जुलाई तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में जनवरी में सूर्य की किरणें लंबवत होने पर ग्रीष्म ऋतु होती है। वर्ष में एक बार उच्चतम तथा एक बार न्यूनतम तापमान होते हैं। न्यूनतम तापमान 65°F तथा उच्चतम तापमान मरुस्थल में 120°F से अधिक होता है।

  मरुस्थलों में रात्रि के तापमान 40°F तक गिर जाता है।

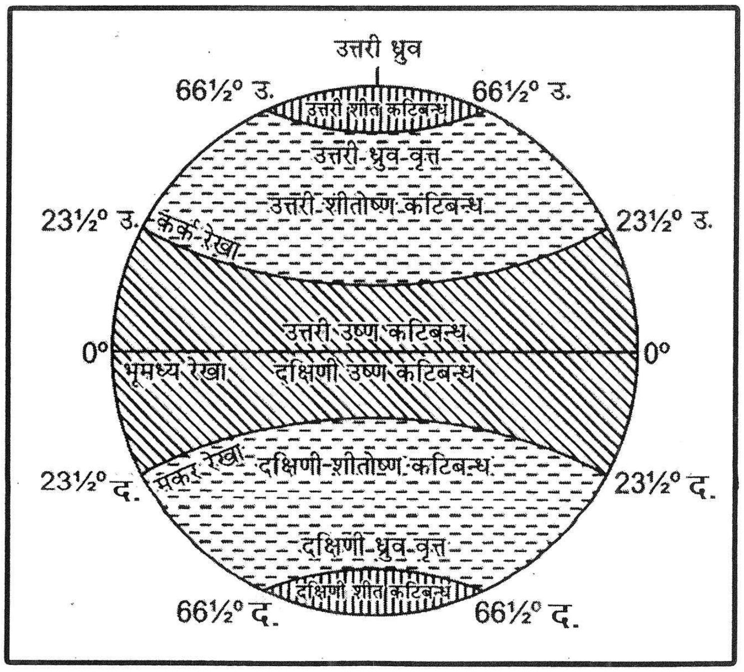

चित्र : पृथ्वी के ताप कटिबंध

उष्णकटिबंधीय क्षेत्र– संसार का लगभग 50% भाग 30° उत्तर और दक्षिण अक्षांशों के मध्य स्थित है। जिसमें विश्व की एक तिहाई जनसंख्या स्थित है। उष्णकटिबंधीय जलवायु की अक्षांशीय सीमा मौसम के साथ–साथ बदलती रहती है। जिसके कारण हम कर्क और मकर रेखा के भाग को ही उष्ण कटिबंध नहीं कह सकते हैं। उदाहरण के लिए दक्षिण और पूर्वी एशिया में ग्रीष्मकालीन मानसून का प्रभाव 30 डिग्री उत्तरी अक्षांश रेखा तक स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है तथा गर्मी के अंतिम महीनों में और शरद कालीन उष्णकटिबंधीय चक्रवात 45 डिग्री उत्तरी अक्षांश रेखा तक (जापान और पूर्वी चीन) के भाग को प्रभावित करते हैं। इसके विपरीत, पश्चिमी अफ्रीका तथा ब्राजील में मानसूनी प्रभाव 20 डिग्री उत्तर तक ही सीमित रहता है।

उष्णकटिबंधीय सीमाएं मौसम के ही साथ ध्रुवों की ओर प्रसारित नहीं होतीं, अपितु उपोष्ण उच्च वायु भार केंद्रों अथवा कोशिकाओं में, निरंतर समशीतोष्ण है तथा उष्ण कटिबंधीय चक्रवातों का आदान–प्रदान भी होता है। अतः उष्ण कटिबंधीय वायुमंडल कोई एक निश्चित इकाई नहीं है।

उष्णकटिबंधीय जलवायु परिघटना की सामान्य दशा

उष्णकटिबंधीय जलवायु परिघटना को दो अवस्थाओं में बांटा जा सकता है– प्रथम काल– प्रथम विश्वयुद्ध तथा दूसरा काल– 1940 से लेकर आज तक का।

1. **प्रथम काल**– प्रथम विश्वयुद्ध के पूर्व का माना जाता है। इसमें हवाओं तथा वायु राशियों का क्रम, क्रिया विधि तथा व्यवस्था शीतोष्ण कटिबंधों की अपेक्षा कम जटिल समझा जाता था। इस धारणा के अनुसार उष्णकटिबंधीय चक्रवातों तथा तूफानों का दैनिक क्रम तथा संवाहनिक वर्षा का दोपहर के बाद कम दिखाई देता है।

   1920 तथा 1940 में उष्णकटिबंधीय मौसम का वैज्ञानिक अध्ययन शुरू हो गया।

   मध्य अक्षांशीय प्रदेशों की भांति उष्णकटिबंधीय चक्रवर्ती अध्ययन भी किया जाए जाने लगा। उष्णकटिबंधीय वायु राशियां में तापीय एवं वायुदाब प्रवणता बहुत ही कम पाई जाती है। यद्यपि टाइफून और हरिकेन इसके अपवाद हैं। यद्यपि उनका सामर्थक तथा क्षेत्रीय प्रभाव इतना कम रहता है कि उसे सामान्य मौसम नियंत्रण के अंतर्गत नहीं माना जाता। वायु भार प्रवणता कम रहती है साथ ही पृथ्वी की घूर्णन शक्ति शून्य होती है जिसके कारण विक्षेपी बल का संतुलन विधि को ध्यान नहीं दिया गया।

2. **द्वितीय काल**– द्वितीय काल का प्रारंभ 1940 से लेकर आज तक माना जाता है। इस काल में उष्ण कटिबंधीय महाद्वीप तथा महासागरों नवीन वैज्ञानिक वेदशालाओं की स्थापना की गई। इससे यह निष्कर्ष निकला कि उष्णकटिबंधीय प्रदेशों में भी मौसम परिवर्तन अत्याधिक जटिल तथा नित्य होते हैं। इन मौसमी परिवर्तन का प्रभाव जलवायु पर पड़ता है।

   - सूक्ष्म रूप का मौसम यांत्रिक प्रभाव से उष्ण कटिबंधीय वायु राशियों में अत्याधिक विक्षोभ तथा गति उत्पन्न हो सकता है और उष्णकटिबंधीय चक्रवातों की रचना तथा जन्म शीतोष्ण प्रदेशों की अपेक्षा अधिक जटिल है।

- ऋतु वैज्ञानिकों के अनुसार व्यापारिक हवाएं भी अनियमित हैं। शांत कटिबंध अपने समस्त उपासी मेघ, संवाहनिक प्रवाह, अस्थिर हवाओं तथा अत्याधिक वर्षा के साथ न केवल उत्तर–दक्षिण कारण केवल तापीय संवाहन धारा को मानते थे। संभवतः तथा जलखंड की अधिकता के कारण इस कल्पित धारणा का कारण था।

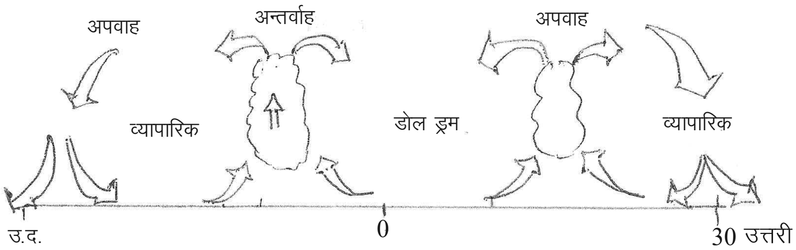

हेडले शैल का सरल मॉडल
वायु उपवास, अंतरवा, ओप्पो तलन मनोमिलन, डोलड्रम

इस कल्पित धारणा के अनुसार, उष्णकटिबंधीय मौसम की सामान्य रचना व्यापारिक हवाओं, मानसूनी हवाओं तथा कटिबंधीय सागरीय वायु राशियों से निर्मित मानी जाती है। इस वायु राशि का सृजन उपोषणीय उच्च वायु भार केंद्रों में निरंतर वायु अवतलन से होता है। जो महासागरों के पूर्वी किनारों से जल लेकर समान गति सामान्य दिशा में पश्चिम से विषुवत रेखा की ओर चलती है। यह हवाएं 600 से 800 मीटर के बीच निरंतर उतरती हुई हवाओं के कारण व्युत्क्रमणता रहती हैं। जिस तल के नीचे हवाएं नाम तथा मेघों से युक्त रहती है। कुछ क्षेत्रों को छोड़कर (जैसे दक्षिण–पूर्वी मंडागारकर) अन्यत्र में उच्च वायु भार कोशिकाएं गर्म तथा शुष्क रहती हैं।

विषुवत रेखीय महासागरों के ऊपर अर्थात डोल ड्रम प्रदेश में हवाएं मंद गति से चलती हैं किंतु अस्थिर होती हैं, नम एवं गर्म होती हैं तथा संवाहनिक प्रभाव होता है।

सूर्याताप प्राप्ति में भी उष्णकटिबंधीय प्रदेश अधिक जटिल नहीं होते। दिन रात की अवधि लगभग वर्ष भर समान होती है। सूर्य विकिरण का कोण हमेशा लंबवत रहता है। मौसमी परिवर्तन बहुत कम होते हैं सभी उष्णकटिबंधीय प्रदेशों में स्थल और जल समीरों का बल्कि पूर्व और पश्चिम कि और भी स्थानांतरित होते रहते हैं।

उष्णकटिबंधीय विक्षोभ – इन प्रदेशों की समानता तथा स्थिरता निम्न विक्षोभों से प्रभावित होती है–

1. उष्णकटिबंधीय चक्रवात (हरिकेन व टाइफून) व्यापारिक हवाओं के गर्भ में तथा डोलड्रम के दोनों ओर होता है।
2. लहर विक्षोभों का जन्म मध्य प्रशांत महासागर में समुद्र तल के समीप होता है।
3. शुद्ध रूप से व्यापारिक हवाएं महासागरों के बहुत थोड़े भाग को घेरती हैं जबकि प्रति व्यापारिक हवाएं लगभग अनुपस्थित रहती हैं।
   - प्रति व्यापारिक हवाएं वास्तव में अत्याधिक ऊंचाई में चलने वाली उष्णकटिबंधीय पश्चिमी हवाएं हैं जिनके द्वारा विषुवत रेखीय प्रदेशों का ताप उपोष्ण प्रदेशों की ओर ले जाया जाता है ।

- यह व्यापारिक हवाओं के विपरीत दिशा में चलती है अर्थात दक्षिण–पश्चिम और उत्तर–पश्चिम से दक्षिण–पूर्व और उत्तर–पूर्व की ओर चलती है।
- उनकी दिशा और गति ध्रुवों की ओर बदल जाती है।
- उष्णकटिबंधीय महासागरों के पश्चिमी भागों में ये क्षीण होकर चक्रवातों या लहरी विक्षोभ का रूप ले लेते हैं।
- उपोष्ण प्रति चक्रवात के पूर्वी किनारों में ही व्यापारिक हवाएं स्थाई और सन्मार्गी होती हैं।
- कहीं–कहीं व्यापारिक हवाएं अधोमंडल की ऊंचाई तक चलने लगती हैं और प्रति व्यापारिक हवाएं अधोमंडल से भी ऊपर खिसक जाती हैं।

4. उष्णकटिबंधीय प्रदेशों में अनुरेखीय क्रम के कारण भी अनियमितता आ जाती है। इसके अंतर्गत अन्तर उष्णकटिबंधीय सीमाग्र सम्मिलित किए जाते हैं। उत्तर तथा दक्षिण से आने वाली व्यापारिक हवाओं की सीमा है। जब उत्तरी पूर्वी व्यापारिक तक दक्षिणी पूर्वी व्यापारी हवाएं एक दूसरे के संपर्क में आती है तब डोलड्रम प्रदेश के दोनों और इस समय सीमाग्र का निर्माण होता है। परंतु कुछ भागों को छोड़कर यह सीमाग्र बहुत अधिक स्पष्ट नहीं होता और इसके द्वारा मौसम परिवर्तन भी अधिक नहीं होते ।

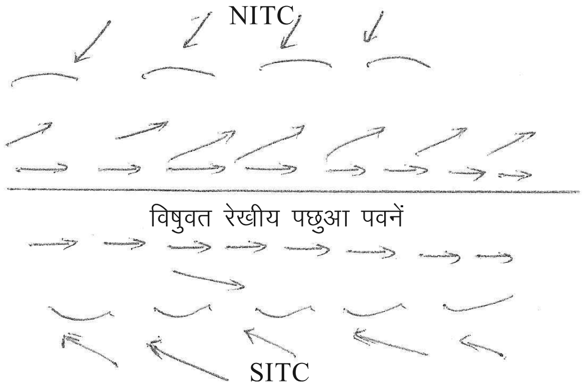

अंतरा उष्णकटिबंधीय अभिसरण

- पश्चिमी अफ्रीका तथा दक्षिणी एशिया के विशाल भूखंडों में इन सीमाग्र में उग्र अंतर देखा जाता है।
- गर्म शुष्क महाद्वीपीय ऊष्ण कटिबंधीय वायु नम एवं शीतल विषुवत रेखीय वायु के संपर्क में आती है।
- रेखांकित क्रमों में दो वायु विभिन्न राशियां अवसरित होती हैं।
- पूर्वी उत्तरी प्रशांत महासागर में 60 डिग्री से 160 डिग्री पूर्वी देशांतर पर व्यापारिक हवाएं तथा मानसूनी हवाएं एक दूसरे के संपर्क में आती हैं, जिससे दो अर्द्ध स्थायी अनंत स्पर्शी सीमाओं का निर्माण होता है।
- इसी सीमा में लहर विक्षोभ सबसे अधिक सक्रिय रहते हैं।

5. विषुवत रेखीय पश्चिमी हवाएं अथवा मानसून उष्णकटिबंधीय मौसम को प्रभावित करते हैं। फ्लेचर (Fletcher, 1945) विषुवत रेखीय पश्चिमी हवाओं की स्थिति,

उत्तरी उष्णकटिबंधीय अभिसरण सीमा (N.I.T.C.) तथा दक्षिणी अंतर ऊष्णकटिबंधीय सीमा (S.I.T.C.) के मध्य मानते हैं। जर्मन वैज्ञानिक फ्लोन (1951 Flohn) के अनुसार ये हवाएं पश्चिमी अफ्रीका से लेकर हिंद महासागर तथा पश्चिमी प्रशांत महासागर तक 120 डिग्री देशांतर तक फैली हैं। इनके अनुसार मौसमी हवाएं जैसे एशियाई मानसून हवाएं, उष्णकटिबंधीय पश्चिमी हवाओं के प्रधान कारण हैं। इसका विशद अध्ययन भारत की मानसूनी जलवायु में किया गया है।

अपनी प्रगति जांचिए

5. मुख्यतः चक्रवात कितने प्रकार के होते हैं?

(क) तीन	(ख) चार
(ग) छह	(घ) आठ

6. जो हवाएं एक मौसम में एक ओर तथा दूसरे मौसम में दूसरी ओर बहती हैं, उन्हें क्या कहते हैं?

(क) व्याप्त हवाएं	(ख) आवर्ती हवाएं
(ग) ट्रेड हवाएं	(घ) ध्रुवीय हवाएं

2.6 भारत की जलवायु और उसका नियंत्रण : पश्चिमी विक्षोभ

भारत की जलवायु मानसूनी प्रकार की है। मानसून शब्द की उत्पत्ति अरबी भाषा के शब्द 'मौसिम' से हुई है, जिसका तात्पर्य हवाओं की दिशा में मौसमी परिवर्तन से है। डॉ. एच. जी. डोबी के अनुसार, ''मानसून दो परस्पर विरोधी मौसम वाली जलवायु है। जिसमें ग्रीष्म काल में दक्षिणी पश्चिमी हवाएं और शीतकाल में उत्तरी पूर्वी हवाएं चला करती हैं। यह हवाएं बड़े पैमाने पर समुद्री एवं स्थलीय हवाएं हैं। पवनों का उत्क्रमण मानसूनी जलवायु का मूल सिद्धांत है।'' देश की भौगोलिक विशालता व उसकी स्थिति ने यहां जलवायु संबंधी विभिन्नताएं पैदा कर दी हैं। कर्क रेखा भारत के मध्य से गुजरती है। अतः कर्क रेखा के उत्तर में शीतोष्ण कटिबंध तथा दूसरा उसके दक्षिण में उष्णकटिबंधीय स्थित है। फिर भी यहां उष्ण कटिबंधीय मानसून की विशेषता रखता है। क्योंकि हिमालय का प्रभावशाली मौसम अवरोध के रूप में कार्य करता है। अतः यहां की जलवायु पर उष्णकटिबंधीय हवाओं का प्रभाव पड़ता है। भारत के उत्तर पश्चिम में थार के मरुस्थल का विस्तार होने से वर्षभर 25 सेंटीमीटर से कम वर्षा होती है। जबकि उत्तर पूर्वी भाग में खासी की पहाड़ियों में स्थित मौसिन राम एवं चेरापूंजी में 1000 सेंटीमीटर से अधिक होती है। इसी तरह कश्मीर के द्रास में न्यूनतम तापमान –9 डिग्री सेंटीग्रेड तथा लेह में –45 डिग्री सेंटीग्रेड तक पहुंच जाता है। जबकि राजस्थान के गंगानगर में 52 डिग्री सेंटीग्रेड तापमान अंकित किया जा चुका है। इसी प्रकार कोच्चि एवं तिरुवंतपुरम तापमान 23 डिग्री से 27 डिग्री सेंटीग्रेड तक ही होता है। जबकि पंजाब व पश्चिम राजस्थान के आंतरिक भागों में वार्षिक तापांतर 6 से आठ गुना रहता है। अतः स्पष्ट है कि भारत की जलवायु में विषमता पाई जाती है।

भारत की जलवायु को प्रभावित करने वाले कारक– किसी भी स्थान की जलवायु को प्रभावित करने वाले अनेक कारक होते हैं। भारत की जलवायु भी अनेक कारकों से नियंत्रित होती है, जिन्हें दो वर्गों में बांटा जा सकता है।

1. स्थिति और उच्चावच संबंधी कारक
2. वायुदाब एवं पवन संबंधी कारक

1. स्थिति और उच्चावच संबंधी कारक

- कर्क रेखा भारत को लगभग 2 भागों में बांटती है। कर्क रेखा से दक्षिण के भाग में विषुवत रेखा से निकटता के कारण वर्षभर उच्च तापमान तथा कम दैनिक और वार्षिक तापान्तर पाया जाता है। जबकि उत्तरी भागों में इसके विपरीत विषम जलवायु और दैनिक एवं वार्षिक तापांतर अधिक पाया जाता है।
- समुद्र तट से दूरी के कारण भारत के आंतरिक क्षेत्रों में विषम जलवायु जबकि समुद्र तटीय प्रदेशों में सम जलवायु पाई जाती है।
- हिमालय व उसकी पर्वत श्रेणियां भारत को एशिया से अलग करती हैं और शीतकाल में मध्य एशिया से आने वाली अत्याधिक ठंडी और शुष्क पवनों से भारत की रक्षा करती है ये पर्वत श्रेणियां दक्षिण पश्चिमी मानसूनी पवनों के सामने अवरोधक के रूप में खड़ी है और वर्षादायिनी पवनों को रोक देती है। ताकि वह भारत की उत्तरी सीमाओं को पार न कर सके। इस प्रकार हिमालय की श्रेणियां जलवायु विभाजक का कार्य करती है ।
- भारत का भौतिक स्वरूप उच्चावच तापमान, वायुदाब पवनों की गति, पवनों की दिशा, वर्षा की मात्रा उसके वितरण आदि को प्रभावित करती है।
- भारत के उत्तर में हिमालय पर्वत आर्द्रयुक्त मानसूनी पवनों को रोककर संपूर्ण उत्तरी भारत में वर्षा करता है।
- मेघालय पठार में पहाड़ियों की आकृति कीपनुमा होने के कारण यह क्षेत्र मानसूनी पवनों द्वारा विश्व के सर्वाधिक वर्षा वाले क्षेत्र के अंतर्गत आता है।
- अरावली पर्वत मानसूनी पवनों की दिशा के समांतर स्थित होने के कारण मानसूनी पवनों को रोक नहीं पाता, जिसके कारण राजस्थान का एक विस्तृत भाग मरूस्थल हो गया।
- पश्चिमी घाट तथा अशोक पवनाभिमुख ढाल अधिक वर्षा प्राप्त करते हैं जबकि इसी दौरान पश्चिमी घाट के साथ लगा दक्षिणी पठार पवनविमुखी (Leeward Slope) स्थिति के कारण कम वर्षा प्राप्त करता है।
- प्रायद्वीपीय भारत अरब सागर, हिंद महासागर तथा बंगाल की खाड़ी में से पूर्णतः घिरा हुआ है। इसलिए भारत के समुद्र तटीय प्रदेशों की जलवायु सम रहती है जबकि जो प्रदेश देश के आंतरिक भागों में स्थित है, वहां समुद्र से दूरी होने के कारण जलवायु विषम पाई जाती है।
- ऊंचाई के साथ–साथ तापमान घटता जाता है विरल वायु के कारण पर्वतीय प्रदेशों में मैदानों की तुलना में अधिक ठंडे होते हैं। उदाहरण के लिए आगरा

और दार्जलिंग एक ही अक्षांश पर अवस्थित है तथापि अपेक्षाकृत अधिक ऊंचाई पर स्थित होने के कारण दार्जिलिंग का तापमान आगरा के तापमान की तुलना में कई काफी कम है।

2. **वायुदाब एवं पवन संबंधी कारक** : वायुदाब एवं पवन संबंधित निम्नलिखित कारक है–

- मानसूनी हवाएं – ग्रीष्मकालीन दक्षिण पश्चिमी हवाएं स्थल से समुद्र की ओर चलती हैं एवं संपूर्ण भारत में वर्षा करती हैं।
- शीतकालीन– उत्तर पूर्वी मानसूनी हवाएं स्थल से समुद्र की ओर चलती है और वर्षा करने में असमर्थ होती हैं। बंगाल की खाड़ी से कुछ जलवाष्प प्राप्त करने के पश्चात शीतकालीन हवाएं तमिलनाडु से तट पर वर्षा करती हैं। अक्षांश के पास प्रायद्वीपीय भारत के ऊपर चलती हैं। यह दक्षिण–पश्चिम मानसून पवनों को अचानक आने में सहायता देती हैं।
- पश्चिमी विक्षोभ तथा उष्णकटिबंधीय चक्रवात– भारतीय उपमहाद्वीप में पश्चिमी जेठ प्रवाह के साथ भूमध्य सागरीय प्रदेश से पश्चिमी विक्षोभ आते हैं। ये देश के उत्तरी मैदानी भागों में पश्चिमी हिमाचल प्रदेश की शीतकालीन मौसम संबंधित दशाओं को प्रभावित करते हैं।
- उष्णकटिबंधीय चक्रवात अधिकांशतः बंगाल की खाड़ी में ही उत्पन्न होते हैं। इन चक्रवातों की तीव्रता तथा दिशा दक्षिण पश्चिम मानसून काल में भारत के अधिकांश भाग में तथा पीछे हटते मानसून की ऋतु पूर्वी तटीय भागों को प्रभावित करती है।
- कुछ चक्रवात अरब सागर में भी उत्पन्न होते हैं।

  एल–निनो प्रभाव– एल–निनो एक गर्म समुद्री धारा है जो अचानक दक्षिण अमेरिका के पेरू तट से कुछ दूरी पर दिसंबर के माह में उत्पन्न होती है। भारत में मौसमी दशाएं एल–निनो से भी प्रभावित होती है। यह एल–निनो विश्व के उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में विस्तृत बाढ़ और सूखे के लिए उत्तरदायी हैं।

  कभी–कभी यह अधिक तीव्र होने पर यह समुद्र के ऊपर 10 डिग्री से. तक तापमान को बढ़ा देती है।
- ऊपरी वायु परिसंचरण – भारत में मानसून के अचानक विस्फोट का एक अन्य कारण भारतीय भूभाग के ऊपर वायु परिसंचरण होता है जिससे वायु में परिवर्तन होता है। ऊपरी वायु तंत्र में बहने वाली जेट वायु धाराएं भारतीय जलवायु को प्रभावित करती हैं।
- पश्चिम जेट वायु धारा– शीतकाल में समुद्र से लगभग 8 किलोमीटर की ऊंचाई पर पश्चिमी जेट वायु धारा अधिक तीव्र गति से समशीतोष्ण कटिबंध के ऊपर चलती है। यह जेट वायु धारा हिमालय की श्रेणियों द्वारा दो भागों में विभाजित हो जाती है। इस जेट वायु धारा की उत्तरी शाखा उत्तरी सिरे के सहारे चलती है और दक्षिण शाखा हिमालय श्रेणियों के दक्षिण में 25 डिग्री उत्तरी अक्षांश के उत्तर–पूर्व की ओर चलती है और यह शाखा भारत के शीतकालीन मौसमी दशाओं को प्रभावित करती है। जिससे शीतकालीन वर्षा, कभी–कभी ओले और हिमपात होता है।

यह जेट वायु धारा भूमध्य सागरीय प्रदेशों से पश्चिमी विक्षोभों को भारतीय उपमहाद्वीप लाने के लिए उत्तरदायी है। इससे संपूर्ण उत्तरी मैदान में शीत लहरें चलती हैं।

- पूर्वी जेट वायु धारा– ग्रीष्म काल में सूर्य के उत्तरी गोलार्द्ध में आभासी गति के कारण ऊपरी वायु परिसंचरण में परिवर्तन हो जाता है। पश्चिमी जेट वायु धारा के स्थान पर पूर्वी जेट वायु धारा चलने लगती है, जो तिब्बत के पठार के गर्म होने से उत्पन्न होती है। इसके परिणामस्वरूप पूर्वी ठंडी जेट वायुधारा विकसित होती है जो 15 डिग्री उत्तरी में मानसून हवाएं भी प्रभावित होती हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि 1987 में भारत में भयंकर सूखा एल–निनो का ही परिणाम था।
- दक्षिणी दोलन– दक्षिणी दोलन मौसम विज्ञान से संबंधित वायुदाब में होने वाले परिवर्तन का प्रतिरूप है जो हिंद महासागर और प्रशांत महासागर में मध्य प्रायः उत्पन्न होता है।

  जब वायुदाब प्रशांत महासागर क्षेत्र पर अधिक होता है एवं हिंद महासागर में कम तो भारत में दक्षिणी पश्चिमी मानसून अधिक शक्तिशाली होता है। इसके विपरीत अन्य परिस्थितियों में मानसून कमजोर होता है– एल–निनो तथा दक्षिणी दोलन के संयुक्त प्रभाव को इनसो (ENSO) कहते हैं।

भारत की ऋतुएं

भारत की जलवायु उष्ण कटिबंधीय मानसूनी है। अधिकांश वर्षा केवल जून से सितंबर के मध्य होती है। भारत में अधिकांश वर्षा पर्वतीय प्रकार की होती है। भारतीय मौसम विभाग ने भारत की वार्षिक जलवायु की अवस्थाओं के आधार पर वर्ष को 4 ऋतुओं (SEASONS) में बांटा है– (1) शीत ऋतु (2) ग्रीष्म ऋतु (3) वर्षा ऋतु एवं (4) शरद ऋतु।

1. **शीत ऋतु (Winter Season)–** यह ऋतु नवंबर के मध्य में शुरू होती है (उत्तर भारत) में और मार्च में समाप्त हो जाती है। इस ऋतु का सबसे बड़ा ठंडा महीना जनवरी होता है।

   तापमान – शीत ऋतु में तापमान सामान्य रूप उत्तर से दक्षिण की ओर बढ़ता जाता है। समताप रेखाएं लगभग अक्षांशों के समांतर पाई जाती हैं। उत्तरी भारत में अधिकांश भागों में औसत दैनिक तापमान 21°C से नीचे रहता है और अनेक क्षेत्रों में रात्रि का तापमान हिमांक से भी नीचे गिर जाता है एवं दक्षिणी भारत में 22°C से ऊपर ही रहता है।

   उत्तरी पश्चिमी भाग तापमान का निम्न वायुदाब पाया जाता है। इसके कारण उत्तर पश्चिमी वायुदाब के क्षेत्र की ओर चलती है। शीत ऋतु सामान्यतः शुष्क होती है। शीतकालीन मानसूनी हवाएं स्थल से समुद्र की ओर चलने के कारण शुष्क होती हैं।

   यह वर्षा भारत में रबी की फसल के लिए अधिक महत्वपूर्ण है।

   इसी ऋतु में दक्षिण में लौटते हुए मानसून से वर्षा होती है।

2. **ग्रीष्म ऋतु (Summer Season)**– ग्रीष्म ऋतु की प्रमुख विशेषता कमजोर हवा तथा शुष्कता है। यह ऋतु मार्च से जून तक होती है।

   तापमान– जून में सूर्य की किरणें कर्क रेखा पर लंबवत पड़ती हैं। मार्च माह में तापमान बढ़ना प्रारंभ हो जाता है और मई माह में उत्तरी भारत का तापमान 41 से 42°C तक पहुंच जाता है। परंतु समुद्र के समकारी प्रभाव के कारण दक्षिणी भारत में उत्तरी भारत की तरह ग्रीष्म ऋतु का प्रभाव नहीं पड़ता। यहां पर तापमान 26° से 30° तक रहता है।

   वायुदाब तथा पवनें– संपूर्ण देश में तापमान अधिक होने के कारण वायुदाब कम रहता है। मार्च से मई तक वायु उत्तर–पश्चिम भारत में अधिक तापमान के कारण स्थानीय रूप से बहुत ही शुष्क एवं उष्ण हवाएं चलती हैं। जिन्हें स्थानीय भाषा में लू (Loo) कहते हैं। जब कभी इन हवाओं के साथ आद्र हवाएं मिलती हैं तो भीषण आंधियां एवं तूफान आते हैं जिनसे वर्षा एवं ओले पड़ते हैं।

   पश्चिम बंगाल में इन्हें काल बैसाखी (Norwester) कहते हैं। असम में बारदोली हीड़ा कहते हैं। इनसे प्राप्त वर्षा चाय और धान की फसल हेतु लाभदायक होती है। दक्षिण भारत में इस वर्षा को आम्र वर्षा (Mango Showers) कहते हैं जहां इसे कहवा की फसल को लाभ मिलता है, उसे केरल और कर्नाटक में चेरी ब्लॉसम (Cherry Blossom) कहते हैं।

3. **वर्षा ऋतु (Rainy Season)**– यह ऋतु 15 जून से 15 सितंबर तक रहती है। इस ऋतु के समय उत्तर पश्चिम भारत तथा पाकिस्तान में निम्न दाब का क्षेत्र बन जाता है, जिसे मानसून गर्त के नाम से जाना जाता है।

   तापमान – मानसून की वर्षा होने के साथ ही तापमान में कमी आने लगती है। दक्षिणी भारत में जून का तापमान मई के तापमान की अपेक्षा –3 डिग्री से 6 डिग्री सेल्सियस कम होता है। उत्तर पश्चिम भारत में जुलाई माह में 2 डिग्री से 3 डिग्री सेल्सियस तापमान की कमी हो जाती है ।

   वायुदाब तथा पवनें– उत्तरी भारत में तापमान अधिक होने के कारण वायुदाब कम होता है, इसके विपरीत दक्षिणी भारत में तापमान कम होने के कारण वायुदाब अधिक होता है। सामान्यतः इस ऋतु में दक्षिण पश्चिम मानसून अंडमान निकोबार में 20 मई के केरल के मालाबार तट पर 1 से 5 जून कोलकाता एवं मुंबई में 10 से 14 जून, दिल्ली पंजाब एवं हरियाणा में 25 से 30 जून एवं सुदूर पश्चिम भाग में 1 जुलाई एवं असम में 5 जून तक पहुंचता है।

4. **शरद ऋतु (The Cool Season)**– यह ऋतु मध्य सितंबर से शुरू मध्य नवंबर में समाप्त हो जाती है। मध्य सितंबर में दक्षिण पश्चिम मानसून पवनें उत्तर पश्चिम भारत से लौटना शुरू कर देते हैं। इसलिए इसे मानसून प्रत्यावर्तन (Monsoon Retreat) अर्थात मानसून के लौटने की ऋतु भी कहते हैं। देश के सुदरू दक्षिणी भागों में मानसून के लौटने का क्रम दिसंबर तक जारी रहता है। ग्रीष्मकालीन मानसून प्रस्फोट (Monsoon Burst) के विपरीत मानसून का प्रत्यावर्तन क्रमिक होता है।

   इस ऋतु में बंगाल की खाड़ी में तीव्र चक्रवाती तूफान विकसित होते हैं जो उत्पत्ति के पश्चात पश्चिम की ओर बढ़ते हैं। यह चक्रवात पूर्वी तट पर पर्याप्त वर्षा लाते हैं।

वायुदाब तथा हवाएं लौटने के साथ ही उत्तर–पश्चिम भारत का निम्न वायुदाब क्षेत्र समाप्त होने लगता है और बंगाल की खाड़ी की ओर बढ़ने लगता है तथा पवनों की दिशा दक्षिण पश्चिम से उत्तर पूर्व में परिवर्तित होने लगती है तथा चक्रवातों के स्थान पर प्रतिचक्रवात ले लेते हैं।

भारत में वर्षा का वितरण (Distribution of Rain)

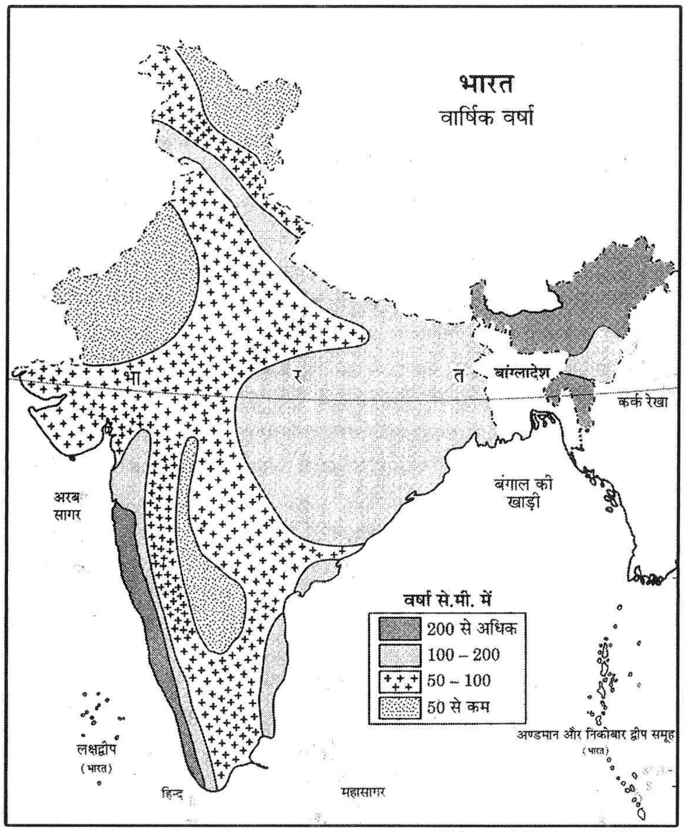

भारत : वार्षिक वर्षा

भारत में लगभग 70 प्रतिशत वर्षा दक्षिण पश्चिम मानसून से होती है। यह वर्षा जून से सितंबर के मध्य 4 माह के दौरान होती है। भारत के 12% क्षेत्र में 60 cm से कम वर्षा होती है। भारत के 8% क्षेत्र में 25° cm से भी अधिक वर्षा होती है। भारत की औसत वर्षा 125 सेमी. सेंटीमीटर है। भारत की अधिकांश वर्षा पर्वतीय प्रकार की होती है।

स्टांप (L. Dudley Stamp) ने वर्षा को मात्रा आधार पर निम्नलिखित क्षेत्रों में बांटा है–

1. **अत्याधिक वर्षा वाले क्षेत्र (areas of very high rainball)**– इन क्षेत्रों में 200 से.मी. से अधिक वर्षा होती है। प्रमुख क्षेत्र पश्चिम घाट, पश्चिमी ढाल, हिमालय के दक्षिणावर्ती तलहटी में उत्तर प्रदेश, प. बंगाल, असम, नागालैण्ड, अरूणाचल प्रदेश, बिहार, मणिपुर आदि।
2. **अधिक वर्षा वाले क्षेत्र (Areas of High Rainfall)**– 100 से 200 से. मी. वार्षिक वर्षा होती है। प्रमुख क्षेत्र पश्चिम घाट के पूर्वी ढाल, भारत के अधिकांश उत्तरी मैदान, उड़ीसा, बिहार, झारखण्ड, आन्ध्रप्रदेश, मध्य प्रदेश, असम घाटी आदि।

3. **न्यून वर्षा वाले क्षेत्र (Area of Low Rainfall)**– 50 से 100 से. मी. वर्षा वाले क्षेत्र आते हैं। इनमे मुख्यतः गुजरात, मध्य प्रदेश, पंजाब, हरियाणा आदि।
4. **न्यूनतम वर्षा वाले क्षेत्र (Areas of very low Rainfall)**– ये भारत के शुष्क भाग हैं। यहां 50 से.मी. से कम वर्षा होती है। मुख्य क्षेत्र गुजरात, सौराष्ट्र, राजस्थान है।

भारतीय मानसून

भारत में वार्षिक जलवायु की दो अवस्थायें हैं– 1. दक्षिण–पश्चिम मानसून (South west msnsoon) 2. उत्तर पूर्वी मानसून (North West Monsoon)

1. दक्षिण–पश्चिम मानसून को दो भागो में बांटा जाता है–

(i) अरब सागर शाखा (ii) बंगाल की खाड़ी की शाखा

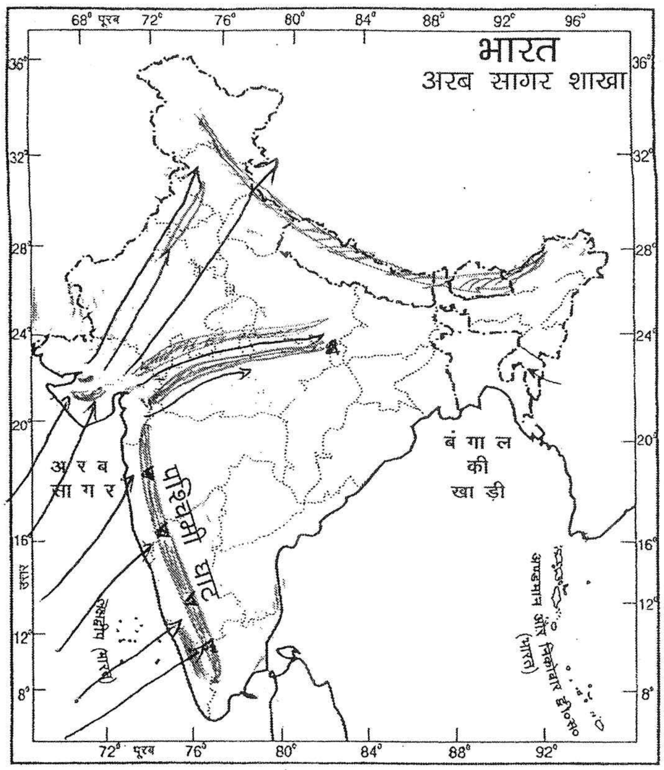

चित्र : भारतीय जलवायु – अरब सागर शाखा

1. अरब सागर शाखा– अरब सागर शाखा द्वारा भारत के पश्चिमी तट, पश्चिमी घाट, महाराष्ट्र, गुजरात, एवं मध्य प्रदेश में कुछ हिस्सों में वर्षा होती है। उत्तर पश्चिम भारत में यह शाखा बंगाल की खाड़ी की शाखा से मिल जाती है।

- अरब सागर शाखा द्वारा पश्चिमी घाट पर्वत के पश्चिमी ढालों पर तटिय भाग की तुलना में अधिक वर्षा होती है।
- अरब सागरीय शाखा फेरल के नियमानुसार उत्तरी गोलार्द्ध में दक्षिण–पश्चिम से उत्तर पूर्व में प्रवाहित होकर पश्चिमी घाट पर्वत से टकराती है। इनसे टकराने के फलस्वरूप जलवाष्प युक्त हवाएं अचानक ऊपर उठती हैं। और पर्वतीय भाग पर वर्षा कर देती है।

टिप्पणी

- कुछ हवाएं पश्चिमी घाट से टकराकर वर्षा कर देती हैं और कुछ हवाएं वृहद जल विभाजक को पार कर पूर्व में उतर कर वर्षा नहीं करती हैं। जिसके कारण हवाओं के उतरने के फलस्वरूप बढ़ते दबाव के कारण एडिया बैतिक दर से ताप वृद्धि होती है। यहां औसत वर्षा 40 से 60 सेमी. होती है। कम वर्षा होने के कारण इसे वृष्टि छाया प्रदेश कहते हैं।
- कुछ हवाएं पश्चिमी घाट के विभिन्न दर्रों (सिन्कोता गैप) पाल घाट, तिनिया घाट, अगुम्ब्रे घाट, भोर घाट, थाल घाट, में घुसकर पठार में वर्षा करती हैं।
- अरब सागरीय मानसून शाखा की उत्तरी शाखा नर्मदा और ताप्ती की घाटियों से होकर गुजरात, मध्य प्रदेश तथा पश्चिमी बिहार तक पहुंच जाती है।
- अरब सागरीय मानसून की उत्तरी शाखा गुजरात कच्छ की खाड़ी तथा राजस्थान को पार करती हुई बिना वर्षा किए सीधे हिमालय से टकराकर जम्मू कश्मीर, हिमाचल प्रदेश के पर्वतीय ढालों में वर्षा करती है।
- अवराली का विस्तार इन हवाओं के सामान्तर है। अतः इन हवाओं की अपेक्षा आर्द्रत राजस्थान के गर्म मरूस्थल से होकर गुजरते समय मरूस्थल से उठने वाली गर्म संवहन तरगों के कारण कम हो जाती है। फलस्वरूप राजस्थान शुष्क रह जाता है और यहां 40 से.मी. से भी कम वर्षा होती है।
- अरब सागर पर निर्मित आई. टी. सी. जेट के सहारे उष्णकटिबन्धीय चक्रवात बनते हैं जो अपने अक्ष पर घड़ी की सुई के विपरीत घूमते हुए अपनी कक्षा पर पूर्ण से पश्चिम चलते हैं। इसके फलस्वरूप पश्चिमी तट के सहारे भारत में चक्रवातीय वर्षा नहीं होती।
- अरब सागरीय मानसून देश के पश्चिमोत्तर भागों में बंगाल की खाड़ी के मानसून से पहले पहुंच जाते हैं।

2. बंगाल की खाड़ी की शाखा

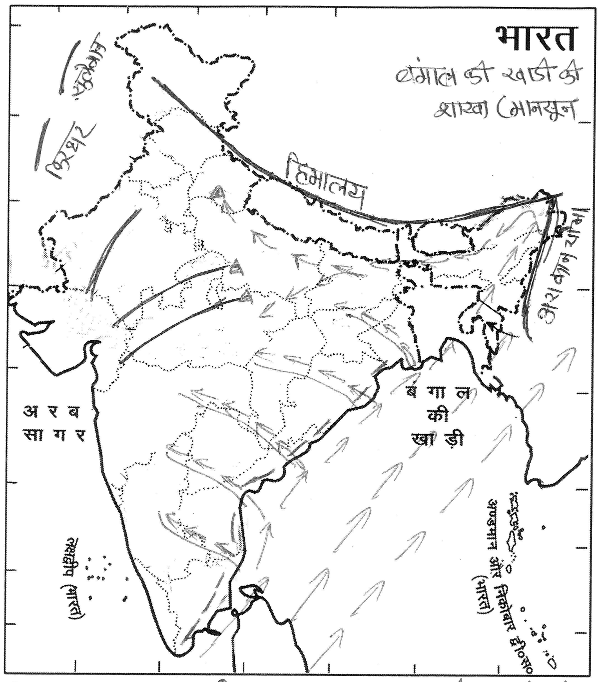

भारतीय जलवायु बंगाल की खाड़ी की शाखा

बंगाल की खाड़ी की शाखा देश में वर्षा करने वाली प्रमुख शाखा है।

- 1 जून को महेन्द्रगिरि से टकराने वाली दक्षिणी–पश्चिमी मानसून की दूसरी शाखा बंगाल की खाड़ी की तरफ बढ़ती है। इस समय आई. टी. सी. जेट बंगाल की खाड़ी पर क्रमशः दक्षिण से उत्तर खिसकता है। जिसके सहारे बनने वाले इसकी दुसरी शाखा उत्तर व उत्तर–पूर्व में ब्रह्मपुत्र घाटी में बढ़ती है। यह शाखा वहां विस्तृत क्षेत्रों में वर्षा करती है। इसकी एक उप शाखा मेघालय में स्थित गारो खासी की पहाड़ियों से टकराती है। खासी पहाड़ियों के शिखर पर स्थित मासिनराम और चेरापूंजी विश्व की सर्वाधिक औसत वार्षिक वर्षा प्राप्त करता है।
- गारो, खासी एवं जयन्तियां पहाड़ियां कीपनुमा आकृति में फैली हैं एवं समुद्र की ओर खुली हुई है। यहां पर बंगाल की खाड़ी से आने वाली हवाएं भरपूर वर्षा करती हैं।

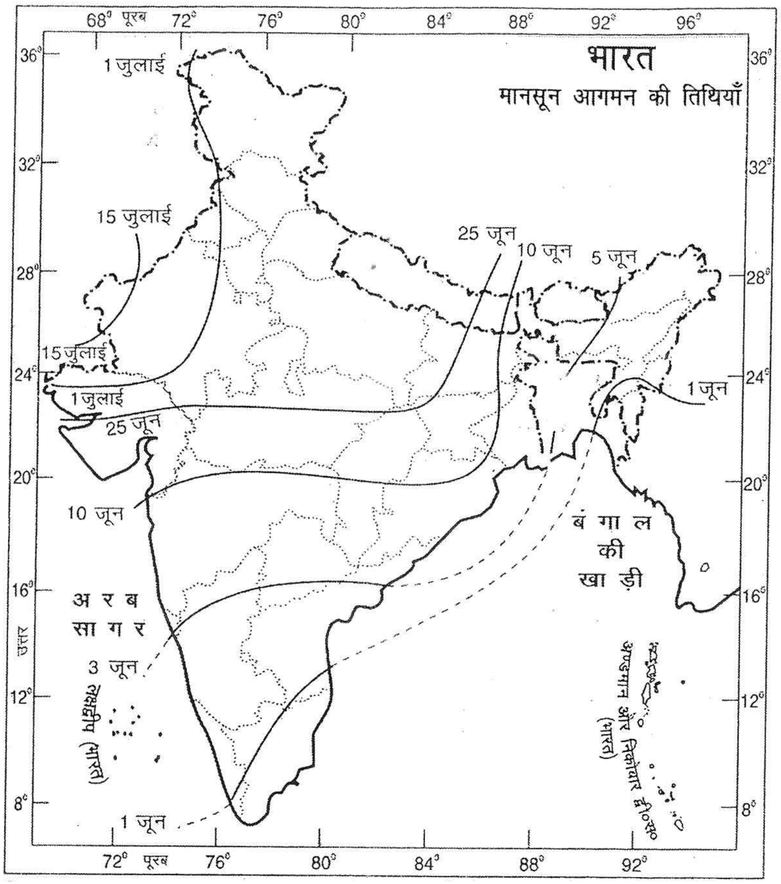

मानसून आगमन की तिथियां

शीतकालीन या उत्तर पूर्वी मानसून– शीतऋतु में अक्टूबर से फरवरी के मध्य उत्तरी ध्रुवीय अक्षांश में चक्रवाती भंवर के दक्षिण की ओर विस्तार के कारण जेट–स्ट्रीम का विस्तार 20° से 35° उत्तरी अक्षांश के मध्य हो जाता है। हिमालय तथा तिब्बत के पठार में यांत्रिक अवरोध के कारण यह जेट स्ट्रीम दो शाखाओं में विभक्त हो जाती है– प्रथम शाखा तिब्बत के पठार के ऊपर में एवं द्वितीय शाखा हिमालय के दक्षिण से होकर प्रवाहित होती है।

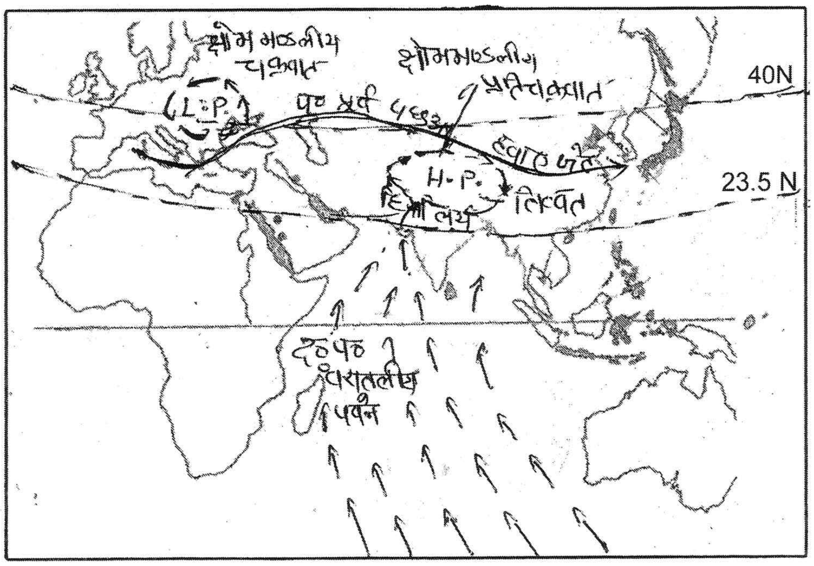

भारतीय मानसून की उत्पत्ति (ग्रीष्मकालीन मानसून की दशाएं)

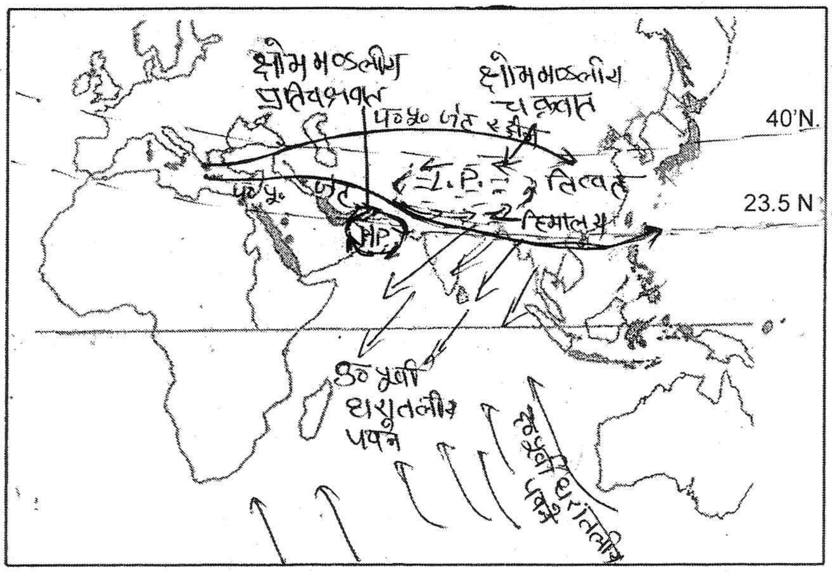

भारतीय मानसून की उत्पत्ति (शीतकालीन मानसून की दशाएं)

अफगानिस्तान तथा पश्चिमी पाकिस्तान के ऊपर (परिवर्तन मंडल) प्रति चक्रवातीय दशाएं निर्मित हो जाती हैं। फलस्वरूप उत्तर पश्चिम भारत में वायु ऊपर से नीचे बैठने लगती है जिसके कारण मौसम शुष्क एवं साफ हो जाता है तथा वायुमंडलीय दशा में स्थिरता आ जाती है परंतु जेट स्ट्रीम के कारण मौसम में सामयिक परिवर्तन उष्णकटिबंधीय चक्रवात अपनी कक्षा पर पूर्व से पश्चिम चलते हैं। यह सामान्यतः आंध्र प्रदेश के रायलसीमा तट पर पहुंचकर चक्रवातीय वर्षा करते हैं।

भारत में पूर्वी तट के सहारे तीन उच्च ताप तथा तीन निम्न वायुदाब क्षेत्र बनते हैं– छोटा नागपुर का पठार, दंडकारण्य पठार, मैसूर पठार।

उत्पत्ति के पश्चात यह औसत स्थान से उत्तर एवं दक्षिण की ओर खिसकता रहता है। मानसूनी अवदाब का मार्ग भी परिवर्तित होता है। इस प्रकार के अवदाबों की संख्या जून से लेकर सितंबर के बीच प्रत्येक माह में 2 से 4 तक होती है।

बंगाल की खाड़ी से उत्पन्न चक्रवात तमिलनाडु में वर्षा करते हैं। फिर कावेरी नदी बेसिन में प्रविष्ट होकर उत्तर पश्चिम में 150 सें मी. वर्षा करते हैं। जो बाद में अरब सागर से आई हुई शाखा की पवनों से मिलकर मलनाद पठार में 60–70 सेमी. वर्षा करते हैं।

- गोदावरी घाटी में प्रविष्ट हवाएं ताप्ती घाटी शाखा से मिलकर 60–80 सेमी. वर्षा करती हैं।
- महानदी घाटी में प्रविष्ट हवाएं छत्तीसगढ़ प्रदेश में 150 सेमी. वर्षा करती हैं।
- बंगाल की खाड़ी की एक शाखा हुगली के मुहाने में प्रविष्ट होकर दामोदर घाटी के सहारे छोटा नागपुर के पठार में पहुंचकर वर्षा करती है।
- बंगाल की खाड़ी की एक शाखा म्यांमार के तट तथा दक्षिणी पूर्वी बांग्लादेश के एक थोड़े से भाग से टकराती है। किंतु म्यांमार के तट पर स्थित अराकान पहाड़ियां इस शाखा के एक बड़े हिस्से को भारतीय उपमहाद्वीप की ओर विक्षेपित कर देती हैं।

पश्चिमी विक्षोभ (Western Disturbance)

पश्चिमी विक्षोभ एक शीतोष्ण कटिबंधीय चक्रवात है जिसकी उत्पत्ति शीत ऋतु में यूरोप भूमध्य सागरीय क्षेत्र के ऊपर बनने वाले शीतोष्ण चक्रवात के जन्म होता है। यह शीतोष्ण चक्रवात अथवा जेट धाराओं के माध्यम से पश्चिम से पूर्व की ओर प्रवाहित होने लगता है यह शीतोष्ण चक्रवात भूमध्य सागर, काला सागर, कैस्पियन सागर के ऊपर से प्रभावित होने के कारण नमी की अच्छी खासी मात्रा ग्रहण कर लेता है जब ये शीतोष्ण चक्रवात पछुआ जेट धाराओं के माध्यम से भारत में प्रवेश करता है तो इसे भारत में पश्चिमी विक्षोभ कहा जाता है।

पश्चिमी विक्षोभ पछुआ जेट धारा द्वारा बहाकर लाने वाली अत्याधिक आर्द्र हवा है। वास्तव में शीत ऋतु में जो भी वर्षा प्राप्त होती है वह पश्चिमी विक्षोभों के माध्यम से प्राप्त होती है। पश्चिमी उत्तर भारत के पहाड़ी राज्यों में जम्मू–कश्मीर, हिमाचल प्रदेश में हिम बूदों के रूप में तथा पश्चिमी मैदानों में पंजाब, हरियाणा और दिल्ली में जल बूदों के रूप में होती है। जब इन पछुआ विक्षोभों में आर्द्रता अधिक होती है तो ये वर्षा पंजाब, हरियाणा, दिल्ली तथा पश्चिमी बिहार तक हो जाती है। पश्चिमी विक्षोभ से वर्षा पश्चिम से पूर्व की ओर घटती जाती है।

अतः भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तर पश्चिम भाग में शीतकालीन वर्षा एवं हिम वर्षा के लिए उत्तरदायी है।

उल्लेखनीय है कि शीतोष्ण कटिबंधीय चक्रवातों की उत्पत्ति दो विभिन्न प्रकृति की वायु राशियों के मिलने पर वाताग्र के निर्माण से होती है।

टिप्पणी

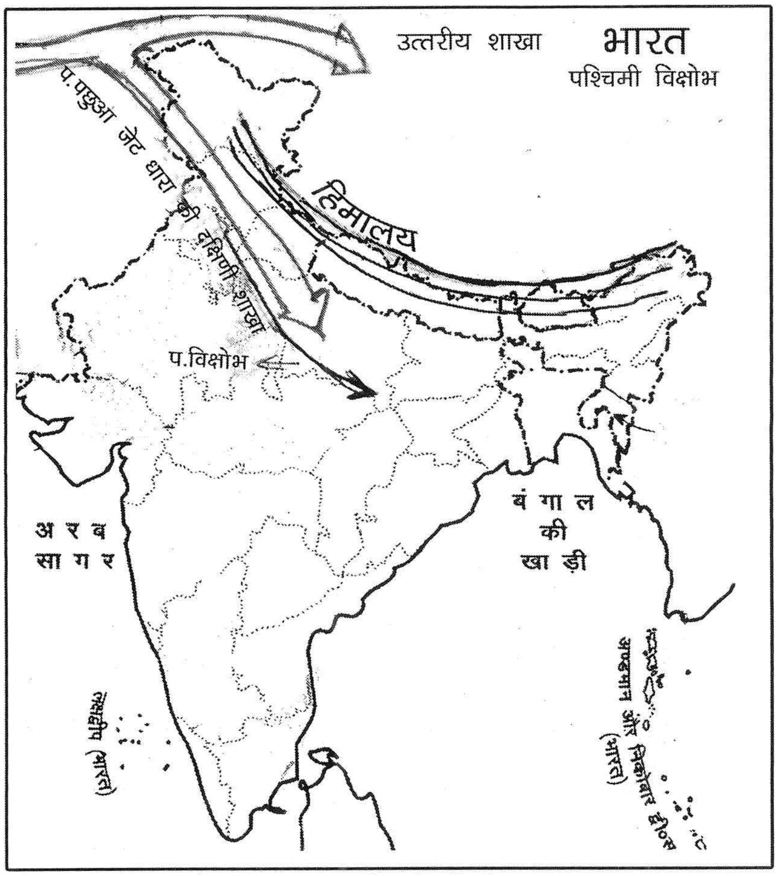

भारतीय जलवायु पश्चिमी विक्षोभ

पश्चिमी विक्षोभ की उत्पत्ति

पश्चिमी विक्षोभ की उत्पत्ति भूमध्य सागरीय क्षेत्र में होती है वस्तुतः शीतकाल में भू फेम तथा उसके आसपास के क्षेत्र ठंडा होने तथा ध्रुवीय ठंडी पवनों के प्रभाव में होने के कारण ठंडी वायु राशि का विकास होता है। ये वायु राशियों उपोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों से आने वाली तुलनात्मक गर्म एवं आर्द्र पछुआ जेट पवनों से अभिसरित होकर वाताग्र का निर्माण करती है तथा इसमें पूर्व की ओर गति प्रारंभ हो जाती है जो भूमध्य सागर, काला सागर, कैस्पियन सागर से आर्द्रता लेकर मध्य पूर्व को पार करती हुई ईरान, अफगानिस्तान तथा पाकिस्तान होती हुई भारतीय उपमहाद्वीप में प्रवेश करती है और यहां वाताग्री वर्षा करती है जैसा कि पूर्वविदित है कि यह वर्षा फुहार या हिमबूंदों के रूप में होती है।

पश्चिमी विक्षोभ का भारतीय जलवायु पर प्रभाव

- पश्चिमी विक्षोभ के आने के साथ मौसम बादल युक्त हो जाता है और रात्रि का तापमान बढ़ने के साथ अनियमित वर्षा का कारण बनता है।
- यह भारतीय उत्तरी मैदान में शीत काल में तीव्र वर्षा तथा पर्वतीय भाग में हिम वर्षा का कारण बनती है।
- यह वर्षा उत्तरी मैदान में रवि की फसल के लिए खासतौर से गेहूं की फसल के लिए लाभदायक होती है। तथा पर्वतीय भागों में खासतौर से जम्मू कश्मीर हिमाचल प्रदेश में सेब की पैदावार के लिए लाभदायक होती है।

- पर्वतीय भागों में हिम के रूप में वर्षा के कारण हिमालय पर्वत हिमाच्छादित हो जाता है। जिसके पिघलने से गंगा और यमुना नदियों में ग्रीष्म ऋतु के पहले ही जल भर जाता है यही कारण है कि इन नदियों में वर्ष भर जल रहता है।
- कभी–कभी अति तीव्र वर्षा या तीव्र बर्फबारी होने से फसलें दुष्प्रभावित होती है। तथा बाढ़ एवं अत्याधिक ठंड की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। तथा लगभग पूरा उत्तरी मैदान शीतलहर एवं कोहरे की चपेट में आ जाता है। जिससे जनजीवन अस्त–व्यस्थ हो जाता है।

अपनी प्रगति जांचिए

7. भारतीय मौसम विभाग ने भारत की वार्षिक जलवायु की अवस्थाओं के आधार पर वर्ष को कितनी ऋतुओं में बांटा है?

   (क) दो (ख) चार

   (ग) छह (घ) इनमें से कोई नहीं

8. पश्चिमी विक्षोभ क्या है?

   (क) उष्णकटिबंधीय चक्रवात (ख) शीतोष्ण कटिबंधीय चक्रवात

   (ग) ध्रुवीय चक्रवात (घ) मध्यवर्ती चक्रवात

2.7 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ख)
2. (क)
3. (ग)
4. (ख)
5. (ग)
6. (ख)
7. (ख)
8. (ख)

2.8 सारांश

उष्णकटिबंधीय जलवायु उष्ण कटिबंधों से संबंधित है। कोपेन के जलवायु वर्गीकरण में, ये एक अशुष्क जलवायु है, जिसमें पूरे 12 महीनों का मध्यमान तापमान 18°C से ऊपर (64°F) रहता है। अतिरिक्त उष्ण कटिबंधों के अलावा यहां दिन की लम्बाई में अत्यधिक विविधता पायी जाती है, इसलिए मौसम के साथ उष्ण कटिबंधीय तापमान अपेक्षाकृत पूरे वर्ष सदैव नियत रहते हैं तथा मौसमीय विविधता अवक्षेपण द्वारा अत्यधिक रूप से प्रभावित होती है।

हमारे आसपास प्रत्येक चीज छोटे कणों से मिलकर बनी है। ये छोटे कण अणु कहलाते हैं। इनमें स्वयं आपका शरीर भी सम्मिलित है। ठोस पदार्थ जैसे कि चट्टान में

टिप्पणी

ये अणु आपस में अति सघन रूप से जुड़े होते हैं और इनमें अधिक गतिशीलता नहीं होती है। इस कारण इन ठोस पदार्थों के आकार में परिवर्तन नहीं होता है। तरल पदार्थ जैसे कि जल भी अणुओं से मिलकर बना है, लेकिन जल के अणु आपस में ठोस पदार्थ जैसी सघनता के साथ जुड़े नहीं होते हैं। वे यद्यपि आपस में जुड़े रहते हैं किंतु उनमें एक सीमा तक गतिशीलता विद्यमान होती है। हमारे वायुमंडल में मौजूद गैसों की भांति गैस के अणु आपस में जुड़े नहीं होते हैं। वे पूर्ण गतिशीलता के साथ आपस में टकराने एवं द्रवों और ठोसों से टकराने के लिए स्वतंत्र होते हैं।

एल-निनो का प्रभाव अनियंत्रित रूप से होता है। इसकी शक्ति को सतह-वायुमंडलीय दाब की विसंगति तथा सतह और समुद्र के सतही तापमान की विसंगतियों द्वारा अनुमानित की जाती है। एल-निनो प्रक्रिया नाटकीय रूप से संसार के बहुत से भागों में नाटकीय प्रभाव उत्पन्न करती है। इसलिए यह महत्वपूर्ण है कि इसके प्रकटीकरण का अनुमान लगाया जाये। विभिन्न जलवायु, प्रतिमान, मौसम के भविष्य कथन के प्रतिमान तथा सांख्यिकीय प्रतिमान एल-निनो को अंतर्वार्षिक जलवायु विभिन्नता के एक भाग के लिए अनुमानित करते हैं। एल-निनो को अनुमानित करना 1980 में संभव हुआ था जब कंप्यूटरों की क्षमता अत्यधिक जटिल बड़े पैमाने के समुद्र-वायुमंडल अंतर्व्यवहार को समझने में समर्थ हुई थी।

दक्षिणी दोलन या इनसो (ENSO) एक प्रतिभाषित आवर्ती जलवायु प्रतिमान है जो औसत रूप से प्रत्येक पांच साल पर उष्णकटिबंधीय पैसेफिक सागर पर पाया जाता है। यह उष्णकटिबंधीय पूर्वी पैसेफिक सागर के सतह के तापमान की विविधता द्वारा पहचाना जाता है, जो गर्म या ठंडी, तथा जो क्रमशः एल-निनो या ला-निना अथवा वायु के सतही दाब उष्णकटिबंधीय पैसेफिक सागर में वायु के सतही दाब या दक्षिणी दोलन के रूप में जाने जाते हैं। दो विविधतायें युग्मित होती हैं-गर्म समुद्री भाग, एल-निनो जो पश्चिमी पैसेफिक में हवा के उच्च सतही दाब से संबंधित हैं, तथा ठंडा भाग, ला-निना, जो पश्चिमी पैसेफिक में हवा के निम्न सतही दाब से संबंधित है। यह क्रियाविधि जो दोलनों का कारण है, अब भी अध्ययन के अन्तर्गत है।

भारत की जलवायु मानसूनी प्रकार की है। मानसून शब्द की उत्पत्ति अरबी भाषा के शब्द 'मौसिम' से हुई है, जिसका तात्पर्य हवाओं की दिशा में मौसमी परिवर्तन से है। डॉ. एच. जी. डोबी के अनुसार, ''मानसून दो परस्पर विरोधी मौसम वाली जलवायु है। जिसमें ग्रीष्म काल में दक्षिणी पश्चिमी हवाएं और शीतकाल में उत्तरी पूर्वी हवाएं चला करती हैं। यह हवाएं बड़े पैमाने पर समुद्री एवं स्थलीय हवाएं हैं। पवनों का उत्क्रमण मानसूनी जलवायु का मूल सिद्धांत है।'' देश की भौगोलिक विशालता व उसकी स्थिति ने यहां जलवायु संबंधी विभिन्नताएं पैदा कर दी हैं। कर्क रेखा भारत के मध्य से गुजरती है। अतः कर्क रेखा के उत्तर में शीतोष्ण कटिबंध तथा दूसरा उसके दक्षिण में उष्णकटिबंधीय स्थित है। फिर भी यहां उष्ण कटिबंधीय मानसून की विशेषता रखता है। क्योंकि हिमालय का प्रभावशाली मौसम अवरोध के रूप में कार्य करता है। अतः यहां की जलवायु पर उष्णकटिबंधीय हवाओं का प्रभाव पड़ता है।

पश्चिमी विक्षोभ एक शीतोष्ण कटिबंधीय चक्रवात है जिसकी उत्पत्ति शीत ऋतु में यूरोप भूमध्य सागरीय क्षेत्र के ऊपर बनने वाले शीतोष्ण चक्रवात से होती है। यह शीतोष्ण चक्रवात अथवा जेट धाराओं के माध्यम से पश्चिम से पूर्व की ओर प्रवाहित होने लगता है। यह शीतोष्ण चक्रवात भूमध्य सागर, काला सागर, कैस्पियन सागर के ऊपर से

प्रभावित होने के कारण नमी की अच्छी खासी मात्रा ग्रहण कर लेता है जब ये शीतोष्ण चक्रवात पछुआ जेट धाराओं के माध्यम से भारत में प्रवेश करता है तो इसे भारत में पश्चिमी विक्षोभ कहा जाता है।

2.9 मुख्य शब्दावली

- **शुष्क** : सूखा।
- **नियत** : पहले से तय किया गया।
- **शृंखला** : कड़ी, चेन।
- **अवक्षेपण** : किसी ठोस पदार्थ का बनना।
- **अपेक्षा** : तुलना में।
- **सूर्यास्त** : सूर्य का छिपना।
- **स्थानांतरण** : एक स्थान से दूसरे स्थान पर बदलना।
- **विक्षोभ** : चक्रवात या तूफान।

2.10 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु-उत्तरीय प्रश्न

1. उष्णकटिबंधीय जलवायु से क्या तात्पर्य है? परिभाषित कीजिए।
2. वायुमंडलीय विक्षोभ किसे कहते हैं?
3. चक्रवात की परिभाषा लिखिए तथा प्रकार बताइए।
4. भारत की जलवायु को प्रभावित करने वाले कारक बताइए।
5. पश्चिमी विक्षोभ से आप क्या समझते हैं?

दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

1. उष्णकटिबंधीय व समशीतोष्ण मौसम प्रणाली की विवेचना कीजिए।
2. वायुमंडलीय विक्षोभ की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।
3. चक्रवात, मानसूनी हवाएं तथा उष्णकटिबंधीय परिघटनाओं का वर्णन कीजिए।
4. भारत की जलवायु की समीक्षा कीजिए।
5. पश्चिमी विक्षोभ का भारतीय जलवायु पर क्या प्रभाव पड़ता है? विस्तार से समझाइए।
6. निम्न पर टिप्पणी कीजिए- (क) एल-निनो, (ख) इनसो, (ग) ला-निना

2.11 सहायक पाठ्य सामग्री

1. सिंह सविंद्र, 2020, समुद्र विज्ञान, प्रवालिका पब्लिकेशन्स, प्रयागराज।
2. नेगी बी. एस., जलवायु विज्ञान तथा समुद्र विज्ञान, केदारनाथ रामनाथ, मेरठ।

3. सिंह सविंद्र, 2020, जलवायु विज्ञान, प्रवालिका पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद।
4. लाल डी. एस. 2013, जलवायु एवं समुद्र विज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज।
5. गौतम अलका, 2017, जलवायु एवं समुद्र विज्ञान, रस्तोगी पब्लिकेशन्स, मेरठ।
6. तिवारी अनिल कुमार एवं शर्मा बी. एल., 2008, जलवायु विज्ञान के मूल तत्व, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर।
7. कुमार अमित, 2011, जलवायु विज्ञान, विश्व भारती पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
8. वर्णवाल महेश कुमार, 2016, भूगोल एक समग्र अध्ययन, कॉ समॉस पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
9. खुल्लर डी. आर., 2014, भूगोल मुख्य परीक्षा, मैक्ग्रा–हिल प्रा. लि., नई दिल्ली।
10. भारती नीरज, अली अब्बास, मैकाबुक भारत एवं विश्व का भूगोल, अरिहंत पब्लिकेशन्स (इण्डिया) लिमिटेड, मेरठ।
11. ओझा एन. एस., 2016, वैकल्पिक भूगोल, क्रोनिकल पब्लिकेशंस प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।
12. मामोरिया चतुर्भुज सिसोदिया एम.एस., जलवायु विज्ञान एवं समुद्र विज्ञान, एस. बी. पी.डी. पब्लिकेशन हाउस आगरा।
13. हुसैन माजिद, संक्षिप्त भूगोल, टाटा मैकग्रा हिल एजुकेशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।
14. कुमार संजीत, कुमार अजीत, नेट/जे.आर.एफ./सेत भूगोल, पेपर–2, अरिहंत पब्लिकेशंस इंडिया लिमिटेड नई दिल्ली।
15. चतुर्भुज मामोरिया, सिंह कोमल, 2020, भूगोल बी.ए. तृतीय वर्ष, एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन आगरा ।
16. खन्ना सी.एल., यूनिफाइड भूगोल, बी.ए. तृतीय वर्ष, शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी, इंदौर।
17. न्याती जानकीलाल खन्ना, सी.एल., यूनिफाइड भूगोल, तृतीय सेमेस्टर शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी, इंदौर।
18. गर्ग एच. एस., सिंह कोमल, 2019–20, भूगोल, NCERT एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन आगरा।
19. सिंह राजेश कुमार, 2014, विश्व का भूगोल, लुसेंट पब्लिकेशन, पटना, बिहार।
20. खुल्लर डी.आर., 1996, भूगोल, सरस्वती हाउस प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली।

इकाई 3 जलवायु वर्गीकरण, प्रमुख वैश्विक जलवायु परिवर्तन तथा ग्लोबल वार्मिंग

संरचना

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 जलवायु वर्गीकरण : कोपेन एवं थॉर्नश्वेट
 3.2.1 कोपेन का जलवायु वर्गीकरण
 3.2.2 थॉर्नश्वेट का जलवायु वर्गीकरण
3.3 प्रमुख वैश्विक जलवायु परिवर्तन, प्रमाण, संभावित कारण एवं वैश्विक तापमान वृद्धि (ग्लोबल वार्मिंग)
 3.3.1 जलवायु परिवर्तन
 3.3.2 जलवायु परिवर्तनों के प्रमाण
 3.3.3 जलवायु परिवर्तन के संभावित कारण
 3.3.4 वैश्विक तापमान वृद्धि (ग्लोबल वार्मिंग)
3.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.5 सारांश
3.6 मुख्य शब्दावली
3.7 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.8 सहायक पाठ्य सामग्री

3.0 परिचय

वैश्विक जलवायु प्रणाली, वायुमंडल, समुद्र तथा बर्फ की चादरों (हिममंडल), सजीव जीव (जीवमंडल) तथा मिट्टी, तलछट तथा पत्थरों (भूमंडल) के बीच का गठबंधन है। यदि हम इन सबको केवल जलवायु प्रणाली के संदर्भ में देखें तो वायुमंडल में ऊर्जा तथा पदार्थ के चक्र को समझना संभव हो जाता है। इस प्रकार हम जलवायु परिवर्तन के कारणों की खोज (तथा प्रभाव) का पता लगा सकते हैं।

विश्वव्यापी जलवायु की पूर्ण परिस्थिति की विवेचना सौर तथा स्थलीय व्यवस्थाओं के संतुलन द्वारा की जाती है। ऊर्जा का संतुलन किस प्रकार नियमित होता है, यह भूमंडलीय जलवायु प्रणाली के अन्तर्गत ऊर्जा के प्रवाह, नमी, द्रव्यमान तथा संवेग पर निर्भर करता है। भूमंडलीय जलवायु प्रणाली के पांच घटक हैं: वायुमंडल, समुद्र, हिममंडल, जीवमंडल तथा भूमंडल।

इस इकाई में जलवायु वर्गीकरण के अंतर्गत कोपेन और थॉर्नश्वेट का जलवायु वर्गीकरण, प्रमुख वैश्विक जलवायु परिवर्तन, प्रभाव, संभावित कारण एवं वैश्विक तापमान वृद्धि (ग्लोबल वार्मिंग) आदि तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- जलवायु वर्गीकरण की प्रणाली को समझ पाएंगे;

- कोपेन एवं थॉर्नश्वेट के जलवायु वर्गीकरण के बारे में जान पाएंगे;
- प्रमुख वैश्विक जलवायु के बारे में जान पाएंगे;
- जलवायु परिवर्तन की प्रक्रिया को समझ पाएंगे;
- जलवायु परिवर्तन के प्रभाव एवं संभावित कारणों को जान पाएंगे;
- ग्लोबल वार्मिंग (वैश्विक तापमान वृद्धि) से अवगत हो पाएंगे।

3.2 जलवायु वर्गीकरण : कोपेन एवं थॉर्नश्वेट

मौसम तथा जलवायु अत्यधिक रूप से पृथ्वी पर जीवन को प्रभावित करते हैं। यह मनुष्यों के प्रतिदिन के अनुभवों का भाग हैं तथा उनके स्वास्थ्य, अन्न उत्पादन तथा भली प्रकार से रहन-सहन के लिए आवश्यक हैं। IPCC की द्वितीय आकलन रिपोर्ट (IPC, 1996) (जो अब SAR है) ने वैज्ञानिक रूप से प्रमाणित किया है कि मानवीय क्रियाकलाप पहले से ही जलवायु से प्रभावित होते रहे हैं। यदि जलवायु पर इंसानी जीवन के प्रभाव को हम समझना तथा खोजना चाहते हैं तो हमें पृथ्वी की जलवायु तथा जलवायु प्रक्रियाओं को समझना होगा।

सामान्य संदर्भों में 'मौसम' तथा 'जलवायु' भली-भांति पारिभाषित नहीं हैं। 'मौसम' जैसा कि हम अनुभव करते हैं, हमारे चारों ओर के वायुमंडल की परिवर्तित स्थिति है, जो तापमान, हवा, अवक्षेपण, बादल तथा अन्य वायुमंडलीय घटकों से संबंधित है। यह मौसम, मौसम प्रणाली के लगातार विकास तथा क्षय का परिणाम है जैसे कि अग्रभागों, फुआर तथा उष्ण कटिबंधीय चक्रवातों से जुड़े मध्य अक्षांश निम्न तथा उच्च दाब प्रणाली। मौसम केवल सीमित रूप से किसी भी चीज को अनुमानित कर सकता है। मध्यवर्ती पैमाने की संवाहित प्रणाली केवल घटकों के समय का ही अनुमान लगा सकती है। संक्षिप्त पैमाने पर चक्रवातों का अनुमान केवल कुछ दिनों या एक हफ्ते पहले ही लगाया जा सकता है। एक हफ्ते बाद आने वाले मौसम का अनुमान नहीं लगाया जा सकता है। जलवायु को हम औसत मौसम के पदों में, उसके मध्यमान तथा विविधता को एक निश्चित समय काल तथा निश्चित क्षेत्र के लिए संदर्भित कर सकते हैं। परम्परागत जलवायु विज्ञान, पृथ्वी पर पाई जाने वाली विविध जलवायु पद्धतियों के वर्गीकरण तथा व्याख्या को उपलब्ध कराता है। जलवायु, अक्षांशों, समुद्र से दूरी, वनस्पति प्रवर्धन, पर्वतों की उपस्थिति व अनुपस्थिति तथा अन्य भौगोलिक कारकों की निर्भरता के आधार पर एक स्थान से दूसरे स्थान के लिए भिन्न होती है। जलवायु समय के संदर्भ में भी भिन्न होती है - जैसे एक समय से दूसरे समय के लिए, एक मौसम से दूसरे मौसम के लिए बड़े समय के पैमाने जैसे - हिमयुग, जलवायु या इसकी विविधता की मध्यमान स्थिति को हम सांख्यिकीय रूप से 'जलवायु परिवर्तन' द्वारा संदर्भित कर सकते हैं। पारिभाषिक शब्दावली, 'जलवायु विविधता' तथा 'जलवायु परिवर्तन' आदि महत्वपूर्ण शब्दों की परिभाषा देती है।

जलवायु विविधता तथा परिवर्तन बाह्य कारकों द्वारा संचालित होते हैं, जिनको विशेषकर बड़े महाद्वीपीय तथा भूमंडलीय पैमानों के आधार पर स्थानिक अल्प रूप से अनुमानित किया जा सकता है। क्योंकि मानवीय क्रियाकलापों जैसे ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन तथा स्थल के उपयोग में परिवर्तन बाह्य कारकों को उत्पन्न करते हैं। यह माना जाता है कि बड़े पैमाने पर इंसान के कार्यकलापों से प्रभावित जलवायु परिवर्तन का हम

थोड़ा-बहुत अनुमान लगा सकते हैं। यद्यपि ऐसा करने की क्षमता हमारे पास बहुत सीमित है, क्योंकि हम जनसंख्या परिवर्तन, अर्थव्यवस्था बदलाव, तकनीकी विकास और भविष्य के मानवीय क्रियाकलापों से संबंधित लक्षणों का परिशुद्ध रूप से अनुमान नहीं लगा सकते हैं। इसलिए हमें बहुत ध्यानपूर्वक वातावरण के प्रति अपने व्यवहार को संपादित करना चाहिये तथा इन परिस्थितियों के आधार पर जलवायु की योजना बनानी चाहिये।

जलवायु चर

मौसम तथा जलवायु का पारंपरिक ज्ञान उन परिवर्तनों पर केन्द्रित है जो हमारे रोजमर्रा के जीवन को सीधा प्रभावित करते हैं: जैसे औसत, उच्चतम तथा निम्नतम तापमान, पृथ्वी की सतह के पास की हवा, अपने विभिन्न रूपों में उपलब्ध अवक्षेपण, आर्द्रता, बादलों का प्रकार तथा उनकी मात्रा तथा सूर्य विकिरण। विश्व में चारों ओर ये परिवर्तन मौसम विभागों द्वारा घंटे की दर से प्रेक्षित किये जाते हैं। जबकि ये मौसम तथा जलवायु की व्याख्या के केवल एक भाग मात्र हैं। मौसम प्रणाली की वृद्धि, गतिकी, तथा क्षय - वायुमंडल की उर्ध्वाधर संरचना, नीचे दबी भूमि तथा समुद्र के प्रभाव तथा अन्य कारकों, जो इंसानों द्वारा सीधे अनुभव नहीं किये जा सकते हैं, पर भी निर्भर करती है। जलवायु की व्याख्या हम वायुमंडलीय प्रवाह तथा इसके बड़े पैमाने पर समुद्री धाराओं और स्थल को इसके लक्षणों जैसे कि एल्बिडो, वनस्पति प्रवर्धन तथा मिट्टी की नमी के साथ इसके अंतर्व्यवहार के आधार पर कर सकते हैं। पृथ्वी की जलवायु संपूर्ण रूप से उन कारकों पर निर्भर करती है जो रेडियोएक्टिव संतुलन को प्रभावित करते हैं, उदाहरण के लिए, वायुमंडलीय संयोजन, सौर विकिरण या ज्वालामुखीय विस्फोट। पृथ्वी की जलवायु को समझने तथा मानवीय क्रियाकलापों द्वारा जलवायु परिवर्तन पर पड़ने वाले संभावित अनुमानों को समझने के लिए, जलवायु को निर्धारित करने वाले कारकों तथा घटकों की अवहेलना नहीं की जा सकती है। हमें जलवायु प्रभावों को समझना चाहिये, जो कि विविध घटकों से संकलित एक ऐसी जटिल प्रणाली है जिसके अन्तर्गत, वायुमंडल की गतिकीय तथा संयोजन, समुद्र बर्फ का आच्छादन, स्थली ये सतह तथा उसके लक्षण, इनके बीच के पारस्परिक अन्तर्व्यवहार, तथा इनके बीच होने वाली भौतिकी, रसायन तथा जीव वैज्ञानिक प्रक्रियाएं आती हैं। बड़े संदर्भों में जलवायु को हम संपूर्ण जलवायु प्रणाली के रूप में संदर्भित कर सकते हैं जिसके अन्तर्गत इसकी विविधताओं की सांख्यिकीय व्याख्या आती है।

जलवायु प्रणाली के घटक

जलवायु प्रणाली, एक अन्तर्व्यवहारिक प्रणाली है, जो पांच प्रकार के मुख्य घटकों से बनी है: वायुमंडल, जलमंडल, स्थलीय, सतह तथा जीव मंडल, जो विभिन्न बाह्य कारकों की क्रियाविधियों से प्रभावित होती हैं। इनमें से सबसे अधिक महत्वपूर्ण कारक सूर्य है। मानवीय क्रियाकलापों के सीधे प्रभाव को भी बाह्य कारकों से संदर्भित किया जाता है।

वायुमंडल इस प्रणाली का अत्यधिक अस्थायी तथा परिवर्तनशील भाग है। इसका संयोजन, जो कि पृथ्वी के विकास के साथ बदला है, इस रिपोर्ट में निर्धारित समस्याओं का केन्द्र है। पृथ्वी का शुष्क वायुमंडल मुख्यत: आयतन के अनुसार नाइट्रोजन (N_2 78.1%), आक्सीजन (O_2 20.9%) तथा आर्गान (Ar, 0.93%) से बना है। यद्यपि, कुछ अल्प मात्रा में गैसें भी उपस्थित होती हैं जैसे कार्बन डाइआक्साइड (CO_2), मीथेन (CH_2), नाइट्रस आक्साइड (N_2O) तथा ओज़ोन (Oz) जो इंफ्रारेड विकिरण का

अवशोषण तथा उत्सर्जन करती हैं। इन्हें ग्रीनहाउस गैसें भी कहते हैं। कुल आयतन के मिश्रित अनुपात में, शुष्क हवा 0.1% से भी कम उपस्थित होती है और पृथ्वी के ऊर्जा बजट में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। हालांकि वायुमंडल में जलवाष्प (H_2O) भी उपस्थित होती है जो कि एक प्राकृतिक रूप से ग्रीनहाउस गैस है। इसका आयतन मिश्रित अनुपात अत्यधिक बदलता रहता है लेकिन विशिष्ट रूप से ये 1% उपस्थित रहती है। क्योंकि ये ग्रीन हाउस गैसें पृथ्वी द्वारा उत्सर्जित इंफ्रारेड विकिरण को अवशोषित करती हैं तथा इंफ्रारेड विकिरण को ऊपर तथा नीचे की ओर उत्सर्जित करती हैं इसलिए ये पृथ्वी की सतह के आस-पास तापमान को बढ़ाती हैं। जलवाष्प, CO_2 तथा Oz सूर्य के अल्प-तरंग विकिरण को भी अवशोषित करती हैं।

ओज़ोन का वायुमंडलीय विकिरण तथा पृथ्वी के ऊर्जा बजट में इसकी भूमिका अनोखी है। ओज़ोन वायुमंडल, क्षोभमंडल तथा समताप मंडल का निचला हिस्सा है, जो ग्रीनहाउस गैस की तरह कार्य करता हे। समताप मंडल में ऊंचाई पर ओजोन की सान्द्रता की प्राकृतिक परत है, जो सूर्य की अल्ट्रावायलेट विकिरण को अवशोषित करती हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि ओजोन की परत समतापीय मंडल के रेडियोधर्मी संतुलन में आवश्यक भूमिका निभाती है तथा साथ ही विकिरण के नुकसान पहुंचाने वाले कारकों को छानने का कार्य भी करती है।

इन गैसों के अलावा वायुमंडल में ठोस तथा द्रव के कण तथा बादल पाये जाते हैं, जो आने वाले तथा जाने वाले जटिल विकिरणों तथा आकाशीय विविधताओं के बीच अन्तर्व्यवहार को स्थापित करते हैं। वायुमंडल का सबसे अधिक परिवर्तनशील घटक जल है जो विभिन्न रूपों में स्थित है जैसे - वाष्प, बादल की बूंदें तथा बर्फ के स्फटिक जलवाष्प एक शक्तिशाली ग्रीनहाउस गैस है। इन्हीं कारणों से तथा ऊर्जा के अवशोषण तथा उत्सर्जन की विभिन्न प्रावस्थाओं के बीच संक्रमण के कारण, जल तथा उसकी विविधता और परिवर्तन के लिए जलवाष्प मुख्य घटक है।

जलमंडल एक घटक है जो सभी द्रव सतह तथा भूमिगत जल तथा ताजे जल जैसे नदी, झील, तालाब तथा समुद्र का खारा पानी आदि से संयोजित है। ताजा पानी जमीन पर बहते हए समुद्र तथा नदियों में वापस पहुंच जाता है और समुद्र के संयोजन को प्रभावित करता है। समुद्र, पृथ्वी का लभगग 70% भाग घेरता है। ये ऊर्जा की एक बड़ी मात्रा को संकलित तथा स्थानान्तरित करता है और कार्बनडाइ-ऑक्साइड की एक बड़ी मात्रा को स्वयं में घोलता तथा संकलित करता है। इनका प्रवाह, हवा तथा घनत्व के वैमस्य से चलता है जो खारेपन तथा ऊष्मीय कारकों द्वारा उत्पन्न होते हैं तथा वायुमंडलीय प्रवाह से धीमा होता है। मुख्य रूप से समुद्र की बड़ी ऊष्मीय जड़ता के कारण, ये बड़े तथा विस्तारित तापमान परिवर्तन लाते हैं और पृथ्वी की जलवायु के लिए ये एक विनियामक का कार्य करते हैं तथा बड़े समय के पैमाने पर विशिष्ट रूप से प्राकृतिक जलवायु विविधता के स्रोत के रूप में कार्य करते हैं।

इन स्रोतों के जिनके अन्तर्गत ग्रीनलैंड तथा अंटार्कटिका की बर्फ की चादरें, महाद्वीपीय ग्लेशियर तथा बर्फ के मैदान, समुद्री बर्फ आते हैं जो जलवायु प्रणाली के लिए इनके महत्व की व्याख्या इनके सौर विकिरण के लिए इनकी उच्च परावर्तकता के द्वारा, इनकी पर्याप्त ऊष्मीय जड़ता तथा विशेष रूप से गहरे समुद्री पानी के प्रवाह के आधार पर करते हैं। क्योंकि बर्फ की चादरें अत्यधिक मात्रा में पानी को एकत्रित करती हैं, इसलिए उनकी आयतनों में विविधता, समुद्री स्तर की विविधता का संभावित स्रोत है। निम्न चित्र भूमडंलीय जलवायु प्रणाली को दर्शाता है।

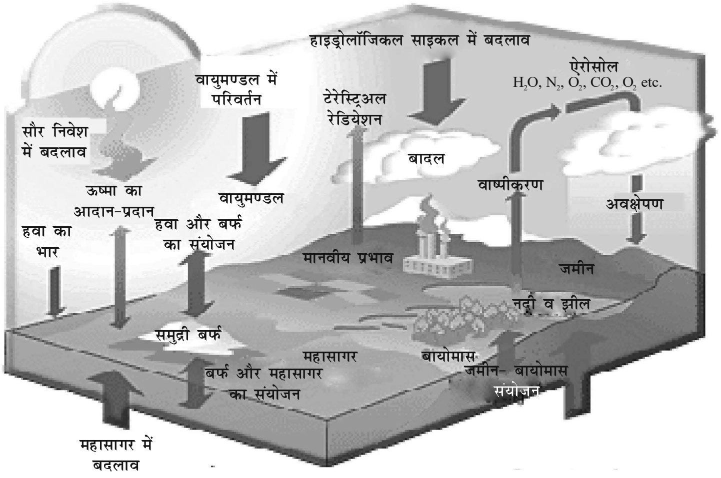

विश्वव्यापी जलवायु प्रणाली

स्थलीय सतह पर वनस्पति प्रवर्धन तथा भूमिगत मिट्टी यह नियंत्रित करती है कि किस प्रकार सूर्य द्वारा प्राप्त हुई ऊर्जा वायुमंडल में वापस चली जाती है। इसमें से कुछ ऊर्जा लम्बी-तरंगों (इंफ्रारेड) विकिरण द्वारा, पृथ्वी की सतह तथा वायुमंडल के गर्म हो जाने के कारण वापिस हो जाती है। कुछ ऊर्जा वाष्पोत्सर्जन द्वारा या तो मिट्टी से या पौधों की पत्तियों से वाष्पोत्सर्जित होकर पानी को दोबारा वायुमंडल में ले आती है। क्योंकि मिट्टी का वाष्पोत्सर्जन के ऊर्जा की आवश्यकता होती है इसलिए सतही तापमान पर मिट्टी का वाष्पोत्सर्जन अत्यधिक प्रभाव डालता है। जमीन की सतह की प्रकृति (खुरदरापन) जमीन की सतह के ऊपर हवा के प्रवाह द्वारा गतिकीय रूप से वातावरण को प्रभावित करती है। जमीन के खुरदरेपन को भूकृति विज्ञान तथा वनस्पति प्रवर्धन दोनों से निर्धारित किया जाता है। हवा वायुमंडल में सतह की धूल को भी ले जाती है जो वायुमंडलीय विकिरण से अन्तर्व्यवहार करती है।

समुद्री तथा स्थलीय जीवमंडल वायुमंडल के संयोजन पर बड़ा असर डालते हैं। जैविक क्रियायें ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन तथा अवशोषण को प्रभावित करती हैं। समुद्री तथा स्थलीय पौधे (विशेष रूप से जंगल) कार्बन डाइआक्साइड द्वारा महत्वपूर्ण रूप से कार्बन को संकलित करते रहते हैं। इसलिए कार्बन चक्र में तथा अन्य गैसों के बजट में, जैसे मीथेन तथा नाइट्रस आक्साइड में जीवमंडल केन्द्रीय भूमिका निभाता है। अन्य जीव मंडलीय उत्सर्जक वाष्पीकृत आरगैनिक यौगिक (VOC) होते हैं जो वायुमंडलीय रसायन, तथा एरोसाल के बनने के कारण जलवायु पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं क्योंकि संकलित कार्बन तथा अल्प मात्रा में पायी जाने वाली गैसों का आपस में फेरबदल जलवायु द्वारा प्रभावित होता है, इसलिए जलवायु परिवर्तन तथा अल्प मात्रा में पायी जाने वाली गैसों की वायुमंडलीय सान्द्रता की प्रतिपुष्टि की जा सकती है। जीवमंडल पर जलवायु का प्रभाव, जीवाश्म, वृक्षों के तनों में पाये जाने वाले वार्षिक रूप से बनने वाले छल्लों, परागकण तथा अन्य अभिलेखों के रूप में सुरक्षित है।

घटकों के बीच अन्तर्व्यवहार

जलवायु प्रणाली के विभिन्न घटकों के रूप में बहुत सी भौतिक, रासायनिक तथा जैविक अन्तर्व्यवहारिक प्रक्रियायें, समय तथा स्थान के परिमाण के बड़े पैमाने पर, प्रणाली को अत्यधिक रूप से जटिल बनाती हैं। जबकि जलवायु प्रणाली के घटक अपने संयोजन में, भौतिक तथा रासायनिक गुणों में एवं संरचना तथा व्यवहार में बहुत भिन्न होते हैं। फिर

भी ये सभी द्रव्यमान, ऊष्मा तथा संवेग के निरंतर प्रभाव द्वारा आपस में जुड़े होते हैं। सभी सहप्रणालियां खुली हुई तथा आंतरिक रूप से जुड़ी होती हैं।

उदाहरण के तौर पर, वायुमंडल तथा समुद्र अत्यधिक रूप से युग्मित होते हैं और जलवाष्प तथा ऊष्मा के वाष्पोत्सर्जन के रूप में दूसरों के साथ अदला-बदली करते हैं। यह जल चक्र का एक भाग है जो संघनन, बादल के बनने, अवक्षेपण तथा मौसम प्रणाली से ऊर्जा की पूर्ति को आगे बढ़ाते हैं। दूसरी तरफ अवक्षेपण, खारेपन, इसके वितरण तथा इसके प्रवाह को प्रभावित करता है। वायुमंडल तथा समुद्र अन्य गैसों के साथ कार्बन डाइआक्साइड की भी आपस में अदला-बदली करते हैं। इस संतुलन को बनाये रखने के लिए कार्बन डाइआक्साइड ठंडे ध्रुवीय जल में घुलकर नीचे गहरे समुद्र में चली जाती है और विषुवत रेखा के पास अपेक्षाकृत गर्म होकर बाहर आती है।

दूसरे अन्य उदाहरण हैं: वायुमंडल, प्रकाश संश्लेषण तथा श्वसन के द्वारा कार्बन डाइआक्साइड की सघनता को प्रभावित करता है। जीवमंडल वायुमंडल में जल के आगत को वाष्पन-उत्सर्जन द्वारा भी प्रभावित करता है तथा वायुमंडल का विकिरणीय संतुलन आसमान में वापस भेजी जाने वाली सूर्य की रोशनी की मात्रा द्वारा संचालित होता है। वास्तविक रूप से जटिल अन्तर्व्यवहारों के ये कुछ उदाहरण हैं, जिनमें से कुछ ज्ञात हैं तथा कुछ पूर्णतया अज्ञात। जलवायु प्रणाली के घटकों में या उनके अन्तर्व्यवहार में या बाह्य घटकों में परिवर्तन चाहे प्राकृतिक हो या मानवजनित, ये जलवायु विविधता पर असर डालते हैं।

विभिन्न पद्धतियां

पूर्व रूप से ज्ञात जलवायु संबंधी वर्गीकरण ग्रीक समय के परंपरागत वर्गीकरण हैं। यह पद्धति सामान्यत: पृथ्वी को अक्षांशीय भागों में बांटती है, जो 0°, 23.5° के महत्वपूर्ण समानान्तर, तथा 66.5° अक्षांश पर तथा दिन की लम्बाई पर आधारित है। आधुनिक जलवायु वर्गीकरण की रचना मध्य-19वीं सदी में पृथ्वी पर तापमान तथा अवक्षेपण के प्रकाशित मानचित्र द्वारा की गई, जो दोनों विसंगतियों को एक साथ प्रयोग करके जलवायु समूहीकरण के विकास की विधियों की अनुमति देता है।

जलवायु को वर्गीकृत करने की बहुत सी पद्धतियां बनायी गईं, लेकिन सभी को विस्तृत रूप से अनुभव पर आधारित या उत्पत्ति पर आधारित विधियों द्वारा विभेदित किया गया। यह विभेदीकरण वर्गीकरण में प्रयुक्त आंकड़ों के स्वभाव पर आधारित है। अनुभव पर आधारित विधियां परोक्ष जलवायु संबंधी आंकड़ों का प्रयोग करती हैं जैसे तापमान, आर्द्रता तथा अवक्षेपण, या इनसे व्युत्पन्नित साधारण इकाइयां (जैसे वाष्पोत्सर्जन)। इसके विपरीत उत्पत्ति पर आधारित पद्धति, जलवायु का वर्गीकरण इसके अनौपचारिक तत्वों तथा सभी कारकों की क्रियाओं और लक्षणों (वायु द्रव्यमान, प्रवाह प्रणाली, अग्रधारायें, सूर्य विकिरण, स्थानाकृतिक प्रभाव इत्यादि) के आधार पर करती हैं, जो जलवायु आंकड़ों के आकाशीय तथा समतापीय प्रतिमान उपलब्ध कराते हैं। इस प्रकार, अनुभवों पर आधारित वर्गीकरण जलवायु की व्याख्या करता है, वहीं उत्पत्ति पर आधारित वर्गीकरण वैज्ञानिक रूप से अधिक वांछनीय है, परन्तु अन्तर्निहित रूप से इसे लागू करना मुश्किल है क्योंकि यह वायुमंडल के साधारण प्रेक्षणों का प्रयोग नहीं करता है। परिणामस्वरूप: ऐसी विधियां कम लोकप्रिय तथा कम सफल होती हैं। हालांकि ऐसे क्षेत्र जो इन दोनों प्रकार के वर्गीकरण की पद्धतियों द्वारा वर्णित होते हैं वो आवश्यक रूप से एक-दूसरे से संबंधित नहीं होते हैं, विशेषत: ये समान जलवायु संबंधी प्रकारों के लिए जो विभिन्न जलवायु

प्रक्रियाओं के एकत्रीकरण के परिणामस्वरूप प्राप्त किये जाते हैं वे असंगत नहीं हैं। अनुभवों पर आधारित विधियों को आगे उनके व्यवहार के आधार पर बांटा जाता है जिनमें जलवायु संबंधी आंकड़े प्रयुक्त होते हैं। कुछ पद्धतियां जलवायु संबंधी आंकड़ों के प्रदर्शन तथा अन्य सांख्यिकीय औसत के द्वारा समूह प्रतिमानों के आधार पर प्रदर्शित होती हैं।

सामान्यत: जलवायु को उसके तथ्यों के प्रति प्रतिक्रिया के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है। उदाहरण के लिए, जलवायु के प्रकार प्राकृतिक वनस्पतीय प्रवर्धन के वितरण के आधार पर अलग-अलग किये जाते हैं। मिट्टी के बनने, चट्टानों के क्षय तथा अन्य कारक, जिनकी तीव्रता, स्वभाव या वितरण, जलवायु के द्वारा नियंत्रित या प्रभावित होते हैं। इसी प्रकार, विभिन्न जलवायु संबंधी समूहों को अलग-अलग करने की कसौटी तथ्यों के मान लिए गये व्यवहार द्वारा निर्धारित होती है। ये तथ्य जलवायु से संबंधित होते हैं, ना कि आंकड़ों के सांख्यिकीय गुणों से। यद्यपि, इन दोनों अनुभवों पर आधारित पद्धतियों के बीच विभेदीकरण उतना स्पष्ट नहीं है जैसा कि पहले सोचा गया था। जबकि समूहों को चुनकर अलग-अलग करने की शुरुआत जलवायु सांख्यिकी के लक्षणों द्वारा निर्धारित की जा सकती है तथा विसंगतियों का चुनाव, जो वर्गीकरण का आधार भी है, लेखक पर निर्भर करता है। यह चुनाव चयनित विसंगतियों में पहले से ही प्राप्त महत्व (प्रमाण) पर आधारित होता है। यह प्रत्यक्ष ज्ञान जलवायु के स्वभाव के विषयात्मक पहलू या कुछ अन्य कारकों पर निर्भर तथ्यों के महत्व को अन्तर्निहित करता है।

जलवायु प्रतिदिन के मौसमीय परिस्थितियों का एक वर्ष के समयकाल का एक औसत है। अक्षांश, समुद्रों से दूरी, वायुमंडलीय तथा समुद्री प्रवाहों के प्रतिमान, उन्नयन तथा स्थानीय भौगोलिक लक्षण एक स्थान की जलवायु को नियंत्रित करते हैं।

जलवायु के नियंत्रण का अर्थ जलवायु के अंतरसंबंधी तत्वों की अतिप्रचुरता, तापमान, तापमान में विभिन्नता, दाब, हवा, बादल, अवक्षेपण, समुद्री धारायें तथा और भी बहुत कुछ है। जलवायु वर्गीकरण आंकड़ों की क्रमिक रूप से व्यवस्था है जो जलवायु नियंत्रण तथा तत्वों से जुड़ी है। इस प्रकार की योजनाओं का उद्देश्य जलवायु के प्रकार व सहप्रकारों को पहचानना है। मानचित्र तथा ग्राफ जलवायु को दर्शाते हैं। वर्गीकरण विशेष रूप से जलवायु क्षेत्रों तथा सहक्षेत्रों की पहचान करते हैं जो बड़े क्षेत्रों, जो एक उपमहाद्वीप के आकार के होते हैं, उन्हें घेरते हैं। मानचित्र पर जलवायु क्षेत्र का प्रदर्शन अन्य वातावरणीय लक्षणों की स्थिति को समझने में सहायक होता है जिनसे जलवायु प्रभावित होती है। ऐसे जलवायु से संबंधित लक्षणों के अन्तर्गत जल, वनस्पति प्रवर्धन, मिट्टी, स्थलीय भूमि तथा जंगली जीवन आते हैं। ये मानव जीवन के लिए महत्वपूर्ण चीजों के वितरण पर जलवायु के प्रभाव को समझने में भी हमारी सहायता करते हैं, जैसे, कृषि, पर्यटन, रहन-सहन की सुविधा, तथा जलवायु संबंधित प्राकृतिक विपदायें। जोन ई. ऑलिवर (1973) के अनुसार जलवायु को वर्गीकृत करने के दो प्रकार होते हैं-अनुभव के आधार पर तथा उत्पत्ति के आधार पर। जलवायु के वर्गीकरण के लिए अनुभवों पर आधारित प्रकार जलवायु प्रेक्षित प्रभावों का प्रयोग करता है। यह वर्गीकरण विशेष रूप से तापमान तथा अवक्षेपण की सांख्यिकी का उपयोग करता है, क्योंकि मौसम विभागों के पास अपरिवर्तनीय रूप से इन तत्वों के आंकड़े मौजूद होते हैं। यद्यपि, सभी जलवायु संबंधी कारक एक उद्देश्य अन्य के लिए सहज रूप से महत्वपूर्ण हैं। कोपेन वर्गीकरण प्रणाली अनुभवों पर आधारित वर्गीकरण की सबसे प्रसिद्ध प्रणाली है। ये वास्तव में वाल्दमिर कोपेन द्वारा 1918 में प्रकाशित की गई थी जो वनस्पति प्रवर्धनों को पहचानने से संबंधित थी। कोपेन ने तापमान तथा अवक्षेपण के

आंकड़ों को जलवायु को वर्गीकृत करने के लिए सांख्यिकीय पैमानों पर विकसित किया था। यदि तापमान और अवक्षेपण के आंकड़े उपलब्ध ना हों तो उन्होंने वनस्पति प्रवर्धन को भी प्राकृतिक जलवायु संबंधी सूचक के रूप में प्रयोग किया था। इसमें अक्षरों की प्रणाली प्रत्येक जलवायु के प्रकार को पहचानती है। उदाहरण के लिए, Cfa संकेत देता है एक नम सह उष्ण कटिबंधी जलवायु के लिए, जिसमें क्रमशः एक हल्की सर्दी (C), पूरे वर्ष के अवक्षेपण (F) तथा गर्मी (a) हैं। कोपेन प्रणाली में बहुत से संशोधन, सम्मिलित किये गये, फिर भी ये महाद्वीपीय तथा भूमंडलीय पैमाने पर जलवायु क्षेत्रों के मानचित्रीकरण के लिए सबसे अधिक प्रयोग होने वाली प्रणाली है। सी. डब्लू. थॉर्नश्वेट ने इसकी स्पर्धा में एक और वर्गीकरण 1948 में प्रतिपादित किया। यह प्रणाली नमी की उपलब्धता तथा जलवायु पर केंद्रित है। थॉर्नश्वेट की प्रणाली जलवायु के मानचित्रीकरण के लिए उतनी प्रचलित नहीं है जितनी कोपेन की। फिर भी ये मासिक जल के बजट के व्यवहारिक विश्लेषण के लिए अधिक मान्य है। जबकि अनुभवों पर आधारित प्रणाली इस पर आधारित है कि जलवायु कहां है, वहीं उत्पत्ति पर आधारित प्रणाली इस बात की व्याख्या करती हैं कि वहां पर जलवायु क्यों है। इस प्रकार उत्पत्ति पर आधारित प्रणाली जलवायु के गतिकीय नियंत्रण पर केंद्रित है। उत्पत्ति के आधार पर आधारित प्रणाली प्रमाणों पर आधारित ना होकर सैद्धान्तिक है क्योंकि जटिल पृथ्वी–वायुमंडल प्रणाली में कारण तथा प्रभावों को प्रमाणित करना कठिन होता है। भौगोलिक विज्ञानियों ने उत्पत्ति पर आधारित प्रणाली को विकसित वायु द्रव्यमानों को जलवायु के मुख्य नियंत्रक के रूप में केन्द्रित किया। 1951 में आर्थर एन. स्ट्रैहलर तथा जॉन जे. हिडोर के कार्यों को भली भांति जाना गया गतिकीय जलवायु प्रतिमान 1969 में प्रतिपादित किया गया। विकिरित ऊर्जा के मौसमीय प्रतिमान तथा अवक्षेपण के प्रयोग द्वारा, हिडोर ने स्ट्रैहलर के पूर्व के वायु द्रव्यमानों के जलवायु के समूहीकरण को समतापीय, तापमान तथा ध्रुवीय प्रकारों में परिष्कृत किया। इस प्रतिमान में नौ जलवायु प्रकार संकलित किए गए, जिसमें प्रत्येक तीन बड़े समूहों के लिए तीन जलवायु प्रकार थे। वायु द्रव्यमान चार प्रकार के होते हैं। तटीय उष्णकटिबंधीय, महाद्वीपीय उष्ण कटिबंधीय, तटीय ध्रुवीय तथा महाद्वीपीय ध्रुवीय। एक क्षेत्र में वायु द्रव्यमानों की आवृत्ति तथा मौसमीकरण उस क्षेत्र की जलवायु को निर्धारित करती हैं। स्ट्रेहलर तथा स्ट्रैहलर (2005) के द्वारा निष्पादित संसार के जलवायु मानचित्र समान त्रिपक्षीय बड़े समूह हैं, लेकिन इसके अंतर्गत 14 जलवायु, 6 संभावित सह प्रकारों के साथ संकलित हैं।

जलवायु वर्गीकरण की आवश्यकता, अनुभव के आधार पर पारिभाषित जलवायु तथा उसकी सीमाओं और जलवायु वितरण की व्याख्या करने में पड़ती है। मध्य बीसवीं सदी में भूवैज्ञानिकों ने बहुत से सफल वर्गीकरणों का विकास किया। इन योजनाओं में अपेक्षाकृत साधारण मानचित्र, सांख्यिकी तथा ग्राफ प्रयुक्त होते हैं। इसके विपरीत जलवायु विज्ञान के परिष्करण के द्वारा किया गया जलवायु वर्गीकरण आज जैसा है, वैसा पहले कभी नहीं था।

एक समान पद्धति में जलवायु को वर्गीकृत करने के बहुत से तरीके हैं। वास्तव में पौराणिक ग्रीस में जलवायु को परिस्थितियों के अक्षांशों पर आधारित मौसम की व्याख्या द्वारा परिभाषित किया जाता था। आधुनिक जलवायु का वर्गीकरण उत्पत्ति के आधार पर प्रस्तावना, जो जलवायु के कारणों पर केन्द्रित है तथा अनुभवों के आधार पर प्रस्तावना, जो विभिन्न प्रकार के वायु द्रव्यमानों की आवृत्ति जो एक संक्षिप्त मौसम की हलचल के अन्तर्गत आती है, उससे संबधित है। अनुभवों के आधार पर वर्गीकरण के उदाहरणों के अन्तर्गत जलवायु के वे भाग आते हैं, जो पौधों के कठोरपन द्वारा वाष्पन, उत्सर्जन या

सामान्यत: कोपेन के जलवायु वर्गीकरण द्वारा परिभाषित किए जाते हैं, जो वास्तविक रूप से निश्चित जैविकी से जुड़ी जलवायु को पहचानने के लिए बनाया गया है। इस वर्गीकरण का एक सामान्य दोष यह है कि ये उन भागों के बीच जिनके द्वारा इसे परिभाषित किया गया है, एक अलग सीमा रेखा बना लेती है।

3.2.1 कोपेन का जलवायु वर्गीकरण

कोपेन का वर्गीकरण तापमान तथा अवक्षेपण के औसत मासिक मानों पर निर्भर करता है। कोपेन वर्गीकरण के अत्यधिक प्रयोग होने वाले रूप में पांच प्रारंभिक प्रकार आते हैं जो A से E के द्वारा चिन्हित हैं। ये प्रारंभिक प्रकार हैं: A-उष्ण कटिबंध, B-शुष्क, C-हल्का-मध्य अक्षांश, D-ठंडा-मध्य अक्षांश, तथा E-ध्रुवीय। इन पांचों प्रारंभिक वर्गीकरणों को द्वितीयक वर्गीकरण में विभाजित किया जा सकता है, जैसे वर्षा वन, मानसून, उष्ण कटिबंधीय सवाना, आर्द्र महाद्वीपीय, समुद्री जलवायु, भूमध्यसागरीय जलवायु, घास के समतल मैदान, सह आर्कटिक जलवायु, टुंड्रा, ध्रुवीय पहाड़ों पर जमी बर्फ तथा रेगिस्तान।

वर्षा वन: अत्यधिक वर्षा के ऐसे स्थान होते हैं जहां वार्षिक रूप से निम्नतम सामान्य वर्षा 1.750 मिमी (69 इंच) से 2,000 मिमी (79 इंच) के बीच होती है। यहां मासिक रूप से औसत तापमान वर्ष के पूरे महीनों में 18°C (64°F) रहता है।

मानसून: एक मौसमीय रूप से व्याप्त हवा है जो कई महीनों तक चलती है। उत्तरी अमेरिका, दक्षिणी अमेरिका, उप-सहारा का अफ्रीका, आस्ट्रेलिया तथा पूर्वी एशिया मानसून के क्षेत्र हैं।

उष्ण कटिबंधीय सवाना: घास के प्राकृतिक मैदान हैं जो सह उष्ण कटिबंधीय तथा उष्ण कटिबंधीय अक्षांशों के आधे शुष्क तथा आधे नम जलवायु के क्षेत्रों में स्थित हैं। यहां पूरे वर्ष औसत तापमान 18°C (64°F) या उससे थोड़ा अधिक रहता है तथा वार्षिक वर्षा 750 मिमी (30 इंच) से 1270 मिमी (50इंच) के बीच होती है। ये पूरी तरह से अफ्रीका, भारत, दक्षिण अमेरिका के उत्तरी भाग तथा आस्ट्रेलिया में फैले हैं।

आर्द्र सह उष्ण कटिबंधीय जलवायु के भाग वो हैं, जहां वे सर्दी की वर्षा (या कभी-कभी बर्फबारी) तथा बड़े तूफानों से जुड़े हैं जो पश्चिम की ओर पश्चिम से पूर्व को परिचालित होते हैं। गर्मियों की वर्षा अधिकतर झंझावात तथा कभी-कभी पाये जाने वाले उष्ण कटिबंधीय चक्रवातों के समय पर पायी जाती है। नम उष्ण कटिबंधीय जलवायु महाद्वीपों के पूर्वी भाग में स्थित होती है जो लगभग 20° से 40° के बीच विषुवत रेखा से दूर स्थित होती है।

संसार में नम महाद्वीपीय जलवायु

आर्द्र महाद्वीपीय जलवायु : विविध मौसम के प्रतिमानों तथा बड़ी मात्रा में मौसमीय तापमान विविधता द्वारा दर्शायी जाती है। इन स्थानों पर तीन महीनों से ज्यादा प्रतिदिन का औसत तापमान 10°C (50°F) रहता है तथा सबसे ठंडे महीने का तापमान -3°C (26.6°F) से नीचे रहता है जो क्षेत्र शुष्क या अर्धशुष्क जलवायु के बीच की कसौटी पर खरे नहीं उतरते वे क्षेत्र महाद्वीप की तरह वर्गीकृत होते हैं।

समुद्री जलवायु : विशिष्ट रूप से संपूर्ण संसार के महाद्वीपों के मध्य अक्षांशों पर स्थित पश्चिमी तटों तथा दक्षिणी पूर्वी आस्ट्रेलिया में पूरे साल होने वाले अवक्षेपण के साथ पायी जाती हैं।

भूमध्यसागरीय जलवायु : भूमध्यसागरीय जलवायु के क्षेत्र, भूमध्यसागरीय बेसिन, उत्तरी अमेरिका के भाग, पश्चिमी तथा दक्षिणी आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रीका का दक्षिण-पश्चिमी भाग तथा केन्द्रीय चिली के भाग के स्थल भागों की जलवायु से मिलते-जुलते क्षेत्र हैं। यहां जलवायु गर्म, शुष्क गीष्म ऋृतु तथा ठंड़ा, नम शरद ऋृतु सर्दी के रूप में पायी जाती है।

घास के समतल मैदान : ये शुष्क घास के समतल मैदान हैं जहां वार्षिक तापमान की दर गर्मियों में लगभग 40°C (104°F) तथा सर्दियों में –40°C (–40°F) से तक होती है।

सहआर्कटिक जलवायु : इसमें अवक्षेपण बहुत कम होता है तथा मासिक तापमान 10°C 50°F) से ऊपर वर्ष के एक से तीन महीनों तक रहता है, ठंडे सर्द मौसम के कारण इसका एक बहुत बड़ा क्षेत्र स्थायी रूप से (दो वर्षों से अधिक) बर्फ से आच्छादित रहता है। इस प्रकार की जलवायु में सर्दी सामान्यत: 6 महीनों की होती है तथा इस समय यहां का तापमान औसत से 0°C (32°F) नीचे होता है।

आर्कटिक टुंड्रा प्रदेश का मानचित्र

टुंड्रा : यह क्षेत्र दूरस्थ उत्तरी गोलार्ध में, टैंगा पट्टी के उत्तर में स्थित है। जिसके अन्तर्गत रूस तथा कनाडा आते हैं।

ध्रुवीय पहाड़ों पर जमी बर्फ : ध्रुवीय पहाड़ों पर जमी बर्फ के क्षेत्र या ध्रुवीय बर्फ की चादरें एक ग्रह या चन्द्रमा के उच्च अक्षांश के क्षेत्र हैं जो बर्फ से ढके हैं। यहां बर्फ से ढंकी ऊंची पर्वतों की चोटियां बनती हैं क्योंकि ऊंचे अक्षांशों वाले क्षेत्रों में विषुवतीय क्षेत्रों की अपेक्षा सूर्य की बहुत ही कम ऊर्जा प्राप्त होती है, परिणामस्वरूप इनका सतही तापमान बहुत कम होता है।

रेगिस्तान : यह एक भूदृश्य का रूप या क्षेत्र है जहां अवक्षेपण बहुत कम मात्रा में पाया जाता है। रेगिस्तान में सामान्य रूप से दो बार बदलने वाले तापमान या मौसमीय

तापमान उपस्थित होते हैं। इनका दिन का तापमान गर्मियों में 45°C या 113°F होता है तथा निम्न रात के समय का तापमान (सर्दियों में 0°C, 32°F) होता है। ऐसा अत्यधिक रूप से उपस्थित निम्न आर्द्रता के कारण होता है। बहुत से रेगिस्तान बारिश की छाया से बनते हैं, क्योंकि पहाड़ रेगिस्तान में पहुंचने वाली नमी तथा अवक्षेपण के मार्ग को अवरुद्ध कर देता है।

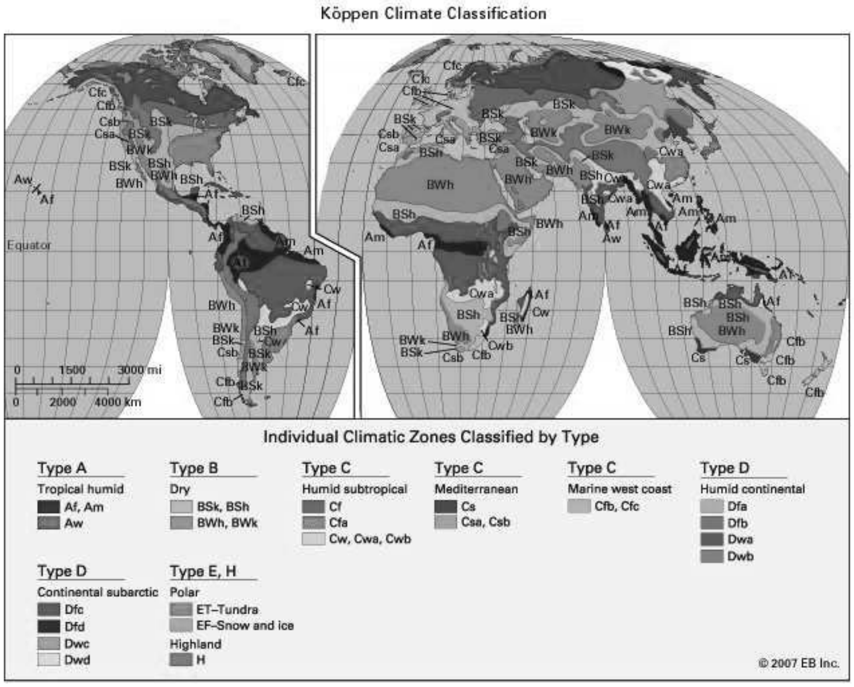

कोपेन का जलवायु वर्गीकरण

कोपेन प्रणाली की आलोचना

कुछ वैज्ञानिकों के बीच कोपेन की प्रणाली को सुधारने के लिए उस पर बहस छिड़ी। सबसे ज्यादा उठने वाला प्रतिवाद समतापी समूह C की श्रेणी से संबद्ध है। व्यवहारिक जलवायु विज्ञान में (जिसका पहला संस्करण 1966 में प्रकाशित हुआ था) जॉन एफ. ग्रिफ्थ ने एक नये सहउष्ण कटिबंधीय भाग को प्रस्तावित किया जो 6°C (42.8°F) से 18°C (64.4°F) के बीच ठंडे महीनों वाले क्षेत्रों से संबंधित है तथा जो प्रभावकारी रूप से समूह C को लगभग दो बराबर के भागों में विभाजित करने के लिए है।

विवाद के अन्य दूसरे बिन्दु के अन्तर्गत शुष्क 'B' की जलवायु आती है। यहां बहस की वजह है कि कोपेन ने केवल दो ऊष्मीय उपसमूहों की संकल्पना दी थी, जो अपर्याप्त है। जो इसकी हामी भरते हैं उन्होंने यह सुझाव दिया कि शुष्क जलवायु को अन्य जलवायु प्रकारों के साथ समान तापमान पर रखा जाये, जहां ऊष्मीय अक्षर एक अतिरिक्त बड़े अक्षर S घास के प्राकृतिक समतल के लिया W (या D) रेगिस्तान के लिए प्रयुक्त हो। (ग्रिफ्थ ने एक वैकल्पिक शुष्क शुरुआत के लिए सूत्र दिया ‘R’ = 160 + 9‘T’, जहां ‘R’ शुरुआत के बराबर है, मिलीमीटर में या औसत अवक्षेपण के संदर्भ में तथा ‘T’ डिग्री सेल्सियस में मध्य वार्षिक तापमान है)।

तीसरा विचार ‘तटीव ध्रुव’ या ‘EM’ जोन को समूह E के अंतर्गत बनाने का था। यह विचार अपेक्षित रूप से हल्की तटीय परिस्थितियों (जैसे यूशोनिया, अर्जेन्टाइना तथा

अनय एल्यूटिअन उपमहाद्वीप) को ठंडे, महाद्वीपीय टूंड्रा जलवायु से अलग करने का है। यहां विशिष्ट प्रस्ताव भिन्न हैं, कुछ सबसे ठंडे महीने के मापदंडों जैसे 0.7°C (19.4°F) की स्थापना की वकालत करते हैं तथा कुछ अन्य नये क्षेत्रों के निर्धारण पर बल देते हैं, जिन क्षेत्रों के लिए वार्षिक तापमान 0°C से ऊपर है।

ध्रुवीय जलवायु की शुरुआत 10°C के सबसे गर्म महीने की तर्ज की परिशुद्धता भी एक प्रश्न है। एक वैकल्पिक सूत्र की योजना अनुसार: 'W' = 9 – 0.1'C', जहां 'W' सबसे गर्म महीने के लिए औसत तापमान को दर्शाता है तथा 'C' सबसे बंडे महीने के तापमान को; तथा दोनों तापमानों को डिग्री सेल्सियस में (उदाहरण के लिए, यदि सबसे ठंडा महीना औसत रूप से -20°C है तथा सबसे गर्म महीना औसत रूप से 11°C या उससे ज्यादा है तो जलवायु ध्रुवीय नहीं होती। यह सीमा रेखा ध्रुवीय अक्षांशों का अनुसरण करते हैं जहां पेड़ नहीं पनप सकते हैं। जो प्रारम्भिक है वो ध्रुवों की तरफ तथा अनुवर्ती महाद्वीप के पश्चिमी सीमा की ओर जाता है। लेकिन आंतरिक स्थल में निम्न अक्षांश पर दोनों लाइनें एक-दूसरे को एशिया तथा उत्तरी अमेरिका के पूर्वी तटों के पास काटती हैं।

ट्रीवार्था जलवायु वर्गीकरण

ट्रीवार्था जलवायु वर्गीकरण प्रणाली कोपेन प्रणाली का संशोधित रूप है, यह बड़े जलवायु संबंधी समूह को वनस्पतीय प्रवर्धित भागों के आसपास के भागों विशेषकर अमरीका के वातावरण के संबंध में दोबारा पारिभाषित करता है। मानक कोपेन प्रणाली के अन्तर्गत पश्चिमी वाशिंगटन तथा ओरगान, दक्षिणी कैलीफोर्निया की जलवयु जैसी श्रेणियां हैं जबकि ये दोनों क्षेत्र भिन्न मौसम तथा वनस्पतीय प्रबंधन में पाये जाते हैं। यह दक्षिणी न्यू इंग्लैंड को खाड़ी तटों के जलवायु वाली श्रेणी में रखता है। ट्रेवार्था संशोधन पैसेफिक उत्तरी पश्चिमी समुद्री क्षेत्र को कैलीफोर्निया, खाड़ी तटों से न्यू इंग्लैंड से अलग जलवायु में रखता है।

समूह A

यह उष्ण कटिबंधीय जलवायु क्षेत्र, जैसा कि कोपेन प्रणाली में पारिभाषित है (अर्थात् जहां पूरे 12 महीनों का औसत 18°C या उससे अधिक होता है), ऐसी जलवायु जिसमें दो सूखे महीने (अर्थात् 66 मिमी से कम अवक्षेपण पाया जाता है, कोपेन प्रणाली के समान) को A के समान वर्गीकृत करते हैं (कोपेन के Af की जगह), जबकि अन्य Aw वर्गीकृत करते हैं। यदि कम सूर्य / छोटे दिनों के समय, शुष्क मौसम हो या As वर्गीकृत करते हैं। यदि उच्च सूर्य। लम्बे दिनों में मौसम शुष्क हो। वास्तविक योजना में विशिष्ट मानसून की जलवायु को पहचानने वाला अभी कोई भी निर्धारक नहीं है Am को बाद में कोपेन के समान, मापदंडों में जोड़ा गया था (कम से कम तीन महीनों के लिए, जिसमें से एक महीने में आवश्यक रूप से 60 मिलीमीटर औसत अवक्षेपण हो)।

समूह B

BW तथा BS का अर्थ-कोपेन प्रणाली के समान होता है, जहां कोपेन की BWn जलवायु कभी-कभी BM द्वारा दर्शायी जाती है (यहां M 'समुद्री' के लिए प्रयुक्त होता है)। यद्यपि शुष्क की उच्चतम पराकाष्ठा की मात्रा के लिए भिन्न सूत्र 10X (T – 10) + 3P प्रयुक्त होता है, जहां T मध्य वार्षिक तापमान डिग्री सेल्सियस के बराबर है तथा P छः उच्च सूर्य के महीनों में प्राप्त कुल अवक्षेपण का प्रतिशत है (छः उच्च) सूर्य के महीने

अर्थात् उत्तरी गोलार्ध में अप्रैल से सितम्बर तक और दक्षिणी गोलार्ध में अक्टूबर से मार्च तक)। यदि किसी दिये गये क्षेत्र का अवक्षेपण ऊपर दिये गये सूत्र से कम होता है लेकिन उस मात्रा के दुगुने से कम होता हे तो उस जलवायु को घास के समतल मैदानों (BS) से वर्गीकृत करते हैं, तथा यदि अवक्षेपण, सूत्र के मान से दुगुना होता है तो जलवायु समूह B की नहीं होती है। कोपेन प्रणाली की तरह असमान रूप से, ट्रेवार्था की योजना में इस समूह के अन्तर्गत कोई भी ऊष्मीय सह समुच्चय स्थित नहीं होता जब तक कि सार्वभौमिक ऊष्मीय परिमाण का प्रयोग ना किया जाये।

समूह C

ट्रीवार्था योजना में इस श्रेणी में केवल सह उष्ण कटिबंधीय क्षेत्र (जहां आठ या उससे अधिक महीनों में तापमान 10°C होता हो) आते हैं। इस समूह में Cs तथा Cw का अर्थ कोपेन प्रणाली के समान ही होता है, परन्तु जलवायु में कोई भी सूखा मौसम कोपने के Cf के स्थान पर Cr द्वारा निर्देशित नहीं होता है (Cs के लिए वार्षिक औसत अवक्षेपण 890 मिमी (35 इंच) से कम होता है, तथा सबसे सूखे गर्मी के महीने में अवक्षेपण 30 मिमी से कम तथा सबसे नम सर्दी के महीने में 30 मिमी का एक तिहाई अवक्षेपण होता है।)

समूह D

यह समूह ठंडे महाद्वीपीय क्षेत्र (चार से सात महीनों तक 10°C से ऊपर) को प्रदर्शित करता है। तटीय समतापी जलवायु (अधिकतर कोपेन की Cfb तथा Cwb जलवायु के समान, जबकि इनमें से कुछ ट्रेवार्था के क्रमश: Cr तथा Cw के लिए सही हैं) को ट्रेवार्था वर्गीकरण में DO से निर्देशित करते हैं जो उत्तरी अमरीका तथा एशिया दोनों के पूर्वी तटों के पास से संबंधित हैं। ये वास्तव में ट्रेवार्था योजना के DO के योग्य होता है (जब ये कोपेन के Cfb/Cwb के स्थान पर Cfa/Cwa में सही बैठता है) जबकि अन्य महाद्वीपीय जलवायु DCa (जो कोपने में Dfa, Dwa, Dsa होती है) तथा DCb (जो कोपेन में Dfb, Dwb, Dsb) द्वारा दर्शायी जाती है। महाद्वीपीय जलवायु के लिए, कभी-कभी तीसरा अक्षर (a या b) मिटा दिया जाता है। DC को सामान्यत: अवक्षेपणीय मौसमीयता के लिए तटीय तथा उपमहाद्वीपीय जलवायु के लिए और अक्षर जोड़े जाते हैं (r, w या s जो भी लागू हों) तटीय तथा महाद्वीपीय जलवायु के विभाजन बिंदु 0°C ठंडे महीने के लिए है जबकि इसी के लिए कोपेन मान –3°C gS (जैसा कि प्रणाली योजना में किया गया है, यद्यपि कुछ जलवायु विज्ञानी विशेषकर यूनाइटेड स्टेट में 0°C को विषुवतीय सीमा महाद्वीपीय जलवायु के लिए प्रेक्षित करते हैं।)

समूह E

यह बर्फ का क्षेत्र प्रस्तुत करता है, जैसा कि कोपेन प्रणाली में परिभाषित है (1 से 3 महीने जिनका औसत तापमान 10°C या उससे अधिक है, जो कोपेन के Cfc, Dfc, Dwc, Dsc, Dfd, Dwd हैं)। वास्तविक में, यह समूह आगे विभाजित नहीं किया गया है, बाद में EO तथा EG नाम रखे गये, EO (तटीय सह आर्कटिक) सबसे ठंडे महीने को निर्दिष्ट करता है जहां औसत तापमान -10°C या उससे नीचे है। जैसा कि समूह D में तीसरा अक्षर अवक्षेपण की मौसमीयता को बताने के लिए जोड़ा गया है। ट्रेवार्था योजना में कोपेन के Dfd/Dwd जलवायु के लिए कोई भी अलग से उसी का भाग नहीं है।

समूह F

यह ध्रुवीय जलवायु का समूह है जो FT (कोपेन का ET) तथा FI (कोपेन के EF) में विभाजित है।

समूह H

यह उच्च स्थानों की जलवायु है, जिसमें जलवायु वर्गीकरण में ऊंचाई महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। विशेषत: ये तब लागू होता है जब प्रत्येक महीने के औसत तापमान के समुद्री स्तर के मान में 5.6°C जोड़ कर उसमें संशोधन किया जाये, जो प्रत्येक 1000 मीटर की ऊंचाई के साथ विभिन्न ऊष्मीय समूह के जलवायु का परिणाम है जो वास्तविक मासिक तापमान के स्थान पर प्रयुक्त होता है। कभी-कभी G, H की जगह प्रयोग होता है, जबकि ऊपर दिया गया कथन सत्य हो और ऊंचाई 500 मीटर से अधिक लेकिन 2500 से कम हो। लेकिन G और H को हम लागू होने वाले ऊष्मीय अक्षर के सामने रखते हैं ना कि उन्हें बदलते हैं और दूसरा अक्षर सही मासिक तापमान को बताता है ना कि वास्तविक मासिक तापमान को।

3.2.2 थॉर्नश्वेट का जलवायु वर्गीकरण

इसका अमेरिकन जलवायु विज्ञानी तथा भूवैज्ञानिक सी.डब्लू. थॉर्नश्वेट ने आविष्कार किया था। यह जलवायु वर्गीकरण मिट्टी तथा जल के बजट को वाष्पन-उत्सर्जन के संदर्भ में वर्णित करता है। यह एक निश्चित क्षेत्र के वनस्पति प्रवर्धन के फलने-फूलने के लिए कुल अवक्षेपण के भाग की जांच करता है। यह संकेतों का प्रयोग करता है जैसे आर्द्रता का संकेत तथा शुष्कता का संकेत, जो एक क्षेत्र की नमी को उसके औसत तापमान, औसत वर्षा तथा औसत वनस्पति प्रवर्धन को निर्धारित करने में प्रयुक्त होता हे। एक दिये गये क्षेत्र के लिए संकेत का मान जितना कम होता है, वह क्षेत्र उतना ही शुष्क होता है।

नमी के वर्गीकरण के अंतर्गत जलवायु श्रेणियां आती हैं जो निम्न का वर्णन करती हैं: अत्यंत आर्द्र, आर्द्र, सह-आर्द्र, सह शुष्क, अर्ध शुष्क (जहां मान -20 से -40 है), तथा शुष्क (जिसका मान -40 से नीचे है) नमी के क्षेत्र प्रत्येक वर्ष वाष्पोत्सर्जन की अपेक्षा अधिक अवक्षेपण का अनुभव करते हैं, जबकि शुष्क क्षेत्र वार्षिक रूप से अवक्षेपण की अपेक्षा अधिक वाष्पोत्सर्जन का अनुभव करते हैं। पूरी पृथ्वी की सतह के कुल भाग का 33 प्रतिशत या तो शुष्क है या अर्ध शुष्क, जिसके अन्तर्गत दक्षिण पश्चिम उत्तरी अमेरिका, दक्षिण-पश्चिम दक्षिणी अमेरिका, दक्षिणी अफ्रीका के उत्तरी भाग का ज्यादातर भाग व दक्षिण अफ्रीका का थोड़ा भाग, पूर्वी एशिया का दक्षिण पश्चिमी क्षेत्र तथा आस्ट्रेलिया का अधिकतर भाग आते हैं। अध्ययन बताते हैं कि अवक्षेपण का प्रभाव (PE) थॉर्नश्वेट नमी की अनुक्रमाणिका में गर्मी में ज्यादा आंके जाते हैं तथा सर्दी में कम आंके जाते हैं। यह अनुक्रमाणिका प्रभावशाली रूप से एक दिये गये क्षेत्र के लिए शाकाहारी प्राणी तथा स्तनधारी जातियों के सदस्यों की संख्या निर्धारित करने में प्रयुक्त होती है। यह अनुक्रमाणिका जलवायु परिवर्तन के अध्ययन में भी प्रयुक्त होती है।

थॉर्नश्वेट पद्धति के अन्तर्गत ऊष्मीय वर्गीकरण में माइक्रो ऊष्मीय, मीसो तथा मेगा ऊष्मीय पद्धतियां आती हैं। माइक्रो ऊष्मीय जलवायु एक निम्न वार्षिक मध्यमान तापमान है, जो सामान्यत: 0°C (32°F) से 14°C (57°F) के बीच होता है, जिसमें गर्मी का समय अल्प तथा संभावित वाष्पोत्सर्जन 14 सेंटीमीटर (5.5 इंच) से 43 सेंटीमीटर (17 इंच)

के बीच होता है। मीसो ऊष्मीय जलवायु में दुराग्राही ऊष्मा तथा दुराग्राही ठंड संभावित वाष्पोत्सर्जन 57 सेंटीमीटर (22 इंच) तथा 114 सेंटीमीटर (45 इंच) के बीच नहीं पायी जाती है। मेगा ऊष्मीय जलवायु जिसमें संभावित रूप से उच्च तापमान तथा समुचित मात्रा में वर्षा संभावित वार्षिक वाष्पोत्सर्जन के साथ 114 सेंटीमीटर (45 इंच) अधिकतम रूप से पायी जाती है।

थार्नश्वेट ने वृष्टि एवं वाष्पन के आधार पर जलवायु प्रदेशों का विभाजन किया। उन्होंने भारतीय जलवायु को 12 प्रकार के जलवायु प्रकारों में विभक्त किया–

1. **AAR% उष्णकटिबंधीय अति आर्द्र जलवायु**– इस जलवायु में उच्च तापमान, अधिक वर्षा, वर्ष भर वर्षा और सदाबहार वर्षा वन की विशेषताएं पाई जाती हैं। क्षेत्र पश्चिमी घाट त्रिपुरा, मिजोरम और दक्षिणी मेघालय के क्षेत्रों में पाया जाता है।
2. **BAW उष्णकटिबंधीय आर्द्र जलवायु**– तापीय दक्षता सूचकांक 128 से अधिक, वर्षण प्रभावित सूचकांक 64 या 127 के मध्य हो। शीत ऋतु में वर्षा की कमी, क्षेत्र भारत के पश्चिमी घाट के शेष भाग एवं पश्चिमी ढालों तथा पश्चिमी बंगाल के क्षेत्र।

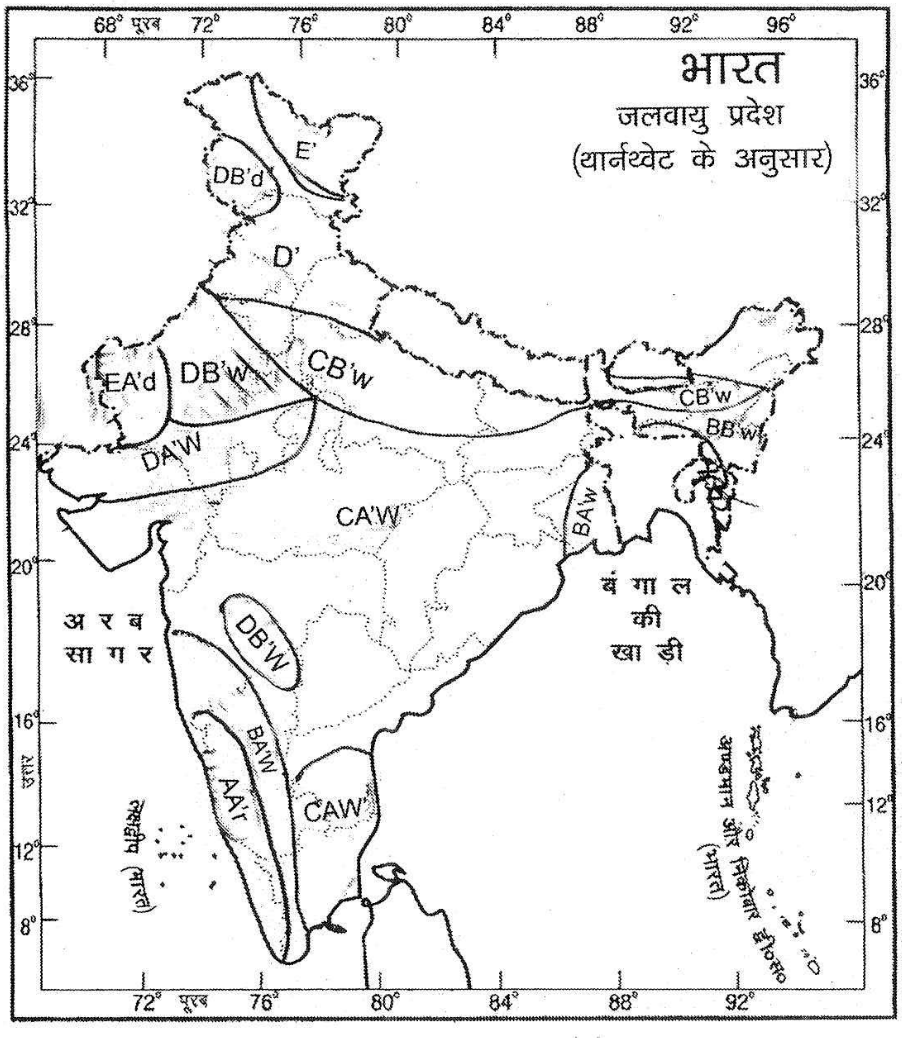

भारत जलवायु प्रदेश (थॉर्नश्वेट के अनुसार)

3. **BBW समशीतोष्ण आर्द्र जलवायु**- शीतकाल में वर्षा की कमी क्षेत्र- मेघालय, असम, नागालैंड, मणिपुर आदि तापीय दक्षता एवं वर्षण सूचकांक 128 या उससे अधिक।
4. **CAW उष्णकटिबंधीय उषार्द्र जलवायु**- यहां शीत ऋतु शुष्क विस्तार प्रायद्वीप के अधिकांश भाग, दक्षिणी भाग के क्षेत्र तक।
5. **CAW उष्णकटिबंधीय उपार्द्ध जलवायु**- के समान है किंतु शरद ऋतु में अधिक वर्षा।
6. **CBW समशीतोष्ण उपार्द्र जलवायु**- यहां शीतकाल में वर्षा नहीं होती। इसमें गंगा-ब्रह्मपुत्र मैदान के क्षेत्रों तक विस्तार है।
7. **DAW उष्णकटिबंधीय आर्द्र-शुष्क जलवायु**- इस जलवायु में शीत ऋतु में वर्षा कम होती है। भारत के कच्छ व दक्षिणी-पूर्वी राजस्थान में यह जलवायु पाई जाती है।
8. **DBCL समशीतोष्ण आर्द्र-शुष्क जलवायु**- इस जलवायु क्षेत्र में वर्ष भर आर्द्रता की कमी होती है। सह्याद्रि की वृष्टि छाया वाले क्षेत्र में यह जलवायु पाई जाती है।
9. **DBW समशीतोष्ण आर्द्र-शुष्क जलवायु**- इस जलवायु में शीत ऋतु में शुष्क मौसम रहता है, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, पंजाब, हरियाणा में यह जलवायु पाई जाती है।
10. **D टैगा तुल्य जलवायु**- यह जलवायु टैगा की जलवायु के समान है। इसका विस्तार हिमाचल प्रदेश से अरुणाचल प्रदेश तक हिमालय के निचले ढालों के सहारे पाई जाती है।
11. **EA'd उष्णकटिबंधीय शुष्क जलवायु**- उष्णकटिबंधीय मरुस्थलीय जलवायु, तापीय दक्षता 128 या इससे अधिक, वृष्टि दक्षता सूचकांक 16 से भी कम मुख्य क्षेत्र थार का मरुस्थल।
12. **E' टुण्ड्रा तुल्य जलवायु**- यह शीत जलवायु है जो हिमालय के उच्च भागों में पाई जाती है, मुख्य रूप से जम्मू कश्मीर के लद्दाख क्षेत्र में।

अपनी प्रगति जांचिए

1. जलवायु प्रणाली कितने प्रकार के मुख्य घटकों से बनी है?

   (क) दो (ख) चार

   (ग) पांच (घ) छह

2. कोपेन ने जलवायु वर्गीकरण प्रणाली कब प्रकाशित की थी?

   (क) 1908 (ख) 1918

   (ग) 1928 (घ) 1932

3.3 प्रमुख वैश्विक जलवायु परिवर्तन, प्रमाण, संभावित कारण एवं वैश्विक तापमान वृद्धि (ग्लोबल वार्मिंग)

जलवायु पर्यावरण के भौतिक, जैविक एवं सांस्कृतिक कार्य और विकास को नियंत्रित करता है। जलवायु में परिवर्तन एक निश्चित समय में मौसम का वितरण होना है और इस परिवर्तन की सीमा कई वर्ष लंबी होती है।

3.3.1 जलवायु परिवर्तन

जलवायु परिवर्तन एक लंबे समय में, जो एक दशक से कई लाख वर्ष भी हो सकता है, मौसम के ढांचे में होने वाला दीर्घकालिक परिवर्तन है। यह मौसम की औसत स्थितियों में होने वाला परिवर्तन हो सकता है या एक औसत के संबंध में मौसमी घटनाओं के वितरण में होने वाला परिवर्तन हो सकता है उदाहरण के तौर पर, अधिक या कम समशीतोष्ण मौसमी घटनाएं। जलवायु परिवर्तन एक विशेष क्षेत्र में भी सीमित रह सकता है या पूरी धरती पर हो सकता है।

आज के चलन के हिसाब से खासकर पर्यावरणीय नीतियों के सन्दर्भ में, जलवायु परिवर्तन का तात्पर्य आधुनिक जलवायु में होने वाला परिवर्तन होता है। इसे मानवीय जलवायु परिवर्तन कहा जा सकता है। आम तौर पर यह मानवीय ग्लोबल वार्मिंग या ग्लोबल वार्मिंग के नाम से जाना जाता है।

जलवायु परिवर्तन की सबसे सामान्य परिभाषा जलवायु तंत्र में कई दशकों में होने वाला सांख्यिकीय परिवर्तन है, उसका कारण चाहे कुछ भी हो। इसी तरह कुछ दशकों से कम समय में होने वाले उतार-चढ़ाव, जैसे अल निनो, जलवायु परिवर्तन के अंतर्गत नहीं आते हैं।

यह शब्द कभी-कभी विशेष तौर पर मनुष्य द्वारा किये गए जलवायु परिवर्तनों को निरूपित करने के लिए प्रयुक्त होता है, उदाहरण स्वरूप, जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र का ढांचागत सम्मेलन जलवायु परिवर्तन को कुछ इस तरह परिभाषित करता है- 'वह जलवायु परिवर्तन जो सीधे तौर पर या परोक्ष रूप से उन मानव क्रियाओं के कारण होते हैं जो वैश्विक पर्यावरण की बनावट को बदल देते हैं और जो उसी समयांतराल में आने वाले नैसर्गिक प्राकृतिक भिन्नता के अतिरिक्त होते हैं।' दूसरे सन्दर्भों में जलवायु परिवर्तन ग्लोबल वार्मिंग का पर्याय है।

3.3.2 जलवायु परिवर्तनों के प्रमाण

जलवायु परिवर्तन के प्रमाण विभिन्न प्रकार के स्रोतों से लिए गए हैं, जिनका प्रयोग भूतकाल की जलवायु बनाने के लिए किया जा सकता है। उन्नीसवीं सदी के मध्य की शुरूआत से सतह के तापमान की जानकारी समुचित रूप से उपलब्ध है। शुरुआती समय के लिए ज्यादातर प्रमाण अप्रत्यक्ष हैं- जलवायु परिवर्तन के नतीजे प्रोक्सियों में परिवर्तन, और पर्यावरणीय सूचकों जैसे वनस्पतियां, बर्फ के केन्द्र, डेंड्रोक्रोनोलोजी, समुद्र तल स्तर में परिवर्तन और हिमनदों के विज्ञान, से निकाले जाते हैं।

सबसे हाल के इतिहास में, वैज्ञानिक सारे संसार के मापक स्टेशनों से प्राप्त तापमान, वर्षा और दूसरी चर मौसमी घटनाओं की जानकारी से जलवायु परिवर्तन के

प्रमाण बनाने में सक्षम रहे हैं। सबसे पुराने समय की जलवायवीय आंकड़ों की सूची सत्रहवीं सदी की शुरुआत में केन्द्रीय इंग्लैंड से प्राप्त तापमान के आंकड़ों की है। हालांकि अधिकतर सहायक अभिलेख सिर्फ उन्नीसवीं सदी के हैं। तुलनात्मक रूप से कम समय के आंकड़ों के बावजूद, बहुत सावधानीपूर्ण गणितीय विश्लेषण के द्वारा वैज्ञानिक यह निरूपित करने में सफल होते आये हैं कि बीसवीं सदी के दौरान धरती की सतह का तापमान 0.6°C बढ़ चुका है। यह विश्वास किया जाता है कि यह गर्मी मनुष्य द्वारा ग्रीन हाउस गैसों द्वारा पर्यावरण में बढ़ाए गए प्रदूषण के कारण है।

निश्चित रूप से यह अब सब जानते हैं कि धरती की जलवायु मानव द्वारा वैश्विक पर्यावरण में परिवर्तन करने की शुरुआत करने और हमारे मौसमों की जानकारी इकट्ठी करनी शुरू करने से पहले भी परिवर्तित हुई है। पैलियोक्लाइमेट में परिवर्तन का ज्ञान सूचना के अप्रत्यक्ष या प्रोक्सी स्रोतों के पुनर्निर्माण से आया है। पिछले दो हज़ार सालों के दौरान आये जलवायुवीय परिवर्तनों के लिए ऐतिहासिक आंकड़े संभवतः तभी प्रयुक्त किये जा सकते हैं जब उन आंकड़ों में उन्हें लिखे जाने के समय हुई किसी खास मौसमी घटना की जानकारी हो। प्रोक्सी आंकड़ों के दूसरे स्वरूप प्राकृतिक घटनाओं, जो जलवायु निर्भर होती हैं, का अध्ययन करने से आते हैं। उदाहरण के तौर पर पेड़ों के वलय की वृद्धि जलवायु पर निर्भर होती है और वलयों के आकार तथा काष्ठ घनत्व का उपयोग वृद्धि के समय के पर्यावरण के पुनर्निर्माण के लिए किया जा सकता है। सबसे पुराने जीवित वृक्ष लगभग चार हज़ार वर्ष पुराने हैं। मरे हुए पेड़ों की पुराने काष्ठ का प्रयोग लगभग दस हज़ार वर्ष पुरानी जलवायु के पुनर्निर्माण के लिए हुआ है।

हाल के समय में हुए जलवायु परिवर्तन जलवायु के सन्दर्भ में हुए कृषि प्रारूप और व्यवस्थापन में हुए परिवर्तन से ढूंढ़े जा सकते हैं। पुरातत्वीय प्रमाण, मौखिक इतिहास और ऐतिहासिक दस्तावेज़ अतीत के जलवायु में हुए परिवर्तनों को देखने के लिए एक अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं। जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को बहुत-सी सभ्यताओं के विनाश से भी जोड़कर देखा गया है।

- **हिमनदः** हिमनद अपने पीछे हिमोढ़ छोड़ जाते हैं जिसमें विभिन्न पदार्थों का भण्डार होता है- जिसमे जैविक पदार्थ, बिल्लौर, और पोटैशियम होते हैं और जिनकी तिथि निर्धारित की जा सकती है- इनकी सहायता से ये आंकड़े प्राप्त किये जा सकते हैं कि हिमनद कब आगे बढ़ा और कब उसका पुनः वापिस हुआ। ठीक इसी तरह टेफ्रोक्रोमोलोजिकल तकनीक से हिमनद आच्छादन की अनुपस्थिति का पता ज्वालामुखीय टेफ्रा क्षितिज की उपस्थिति से लगाया जा सकता है जिसके जमा होने की तिथि संभवतः निर्धारित की जा सकती है।
- **वनस्पतियां:** वनस्पतियों के प्रकारों, वितरण और आच्छादित क्षेत्रों में परिवर्तन हो सकता है। किसी भी दिए गए परिदृश्य में जलवायु में होने वाला हल्के से परिवर्तन के कारण वर्षण, गर्मी बढ़ सकती हैं जिसके कारण पौधों की वृद्धि और वायु में निहित CO_2 का उत्तरवर्ती अधिग्रहण बेहतर होता है। हालांकि बड़े, तीव्र और अधिक समूल परिवर्तन के कारण वनस्पति तनाव, तीव्र वनस्पति ह्रास, और कुछ परिस्थितियों में मरुस्थलीकरण हो सकता है।
- **डेंड्रोक्लाईमेटोलोजी:** यह वृक्षों के वलय प्रारूपों में वृद्धि का विश्लेषण है जो अतीत की जलवायु भिन्नताओं को सुनिश्चित करने के लिए होता है। चौड़े और

मोटे वलय एक उर्वर, अच्छी तरह से सींचने की विकास अवधि के, जबकि पतले संकरे वलय कम वर्षा के समय और आदर्श वृद्धि परिस्थिति से कम परिस्थिति के द्योतक होते हैं।

3.3.3 जलवायु परिवर्तन के संभावित कारण

पृथ्वी की जलवायु गतिशील है और प्राकृतिक चक्रों के द्वारा हमेशा बदलती रहती है। संसार जिस चीज़ के बारे में चिंतित है- वह बात यह है कि इन परिवर्तनों की गति मानवीय क्रियाओं के कारण बढ़ गयी है। सारे संसार में वैज्ञानिक, जिन्हें वृक्ष वलयों, परागकणों के नमूने, बर्फ के केन्द्रों और समुद्री तलछटों से प्रमाण मिल रहे हैं, इन परिवर्तनों का अध्ययन कर रहे हैं। जलवायु परिवर्तन के कारणों को दो वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है- एक वो प्राकृतिक कारणों से होता है और एक वो जो आदमी द्वारा किया जाता है।

जलवायु तंत्र की प्राकृतिक परिवर्तनशीलता और जलवायवीय क्रियाएं हमेशा से पृथ्वी के इतिहास का हिस्सा रही हैं हालांकि वातावरण में अभूतपूर्व दर और परिमाण से बढती हुई ग्रीन हाउस गैसों की सांद्रता में परिवर्तन हुए हैं। संयुक्त राष्ट्र, सरकारें और संसार भर के बहुत से वैज्ञानिक यह मानते हैं कि हमें आगे के परिवर्तनों को स्थिरता देनी होगी और उन्हें रोकना होगा।

जलवायु परिवर्तन के प्राकृतिक कारण

जलवायु परिवर्तन के लिए बहुत से प्राकृतिक कारक जिम्मेदार हैं। कुछ जो सबसे ज्यादा प्रकट हैं वो महाद्वीपीय बहाव, ज्वालामुखी, समुद्री धाराएं, पृथ्वी का झुकाव, धूमकेतु और उल्काएं आदि हैं।

- **महाद्वीपीय बहावः** लगभग 2000 लाख साल पहले सारे महाद्वीप एक बड़े भूभाग का हिस्सा थे। बहुत साल पहले महाद्वीप तब बने जब बड़े बड़े भूभाग इधर-उधर बहने लगे। इस बहाव का भी जलवायु पर प्रभाव पड़ा क्योंकि इसने भूभागों की भौतिक विशेषताएं, उनकी स्थिति और जल निकायों की स्थिति बदल दी थी। भूभागों के अलगाव ने समुद्री धाराओं और वायु के प्रवाह की दिशा बदल दी जिससे जलवायु पर बहुत प्रभाव पड़ा। महाद्वीपों का यह बहाव आज भी चल रहा है, हिमालयी क्षेत्र एक मिली मीटर प्रति वर्ष की दर से ऊंचा उठ रहा है क्योंकि भारतीय भूभाग धीरे-धीरे लेकिन निरंतर एशियाई भूभाग की तरफ बढ़ रहा है।
- **ज्वालामुखीः** जब एक ज्वालामुखी फटता है तो इससे भारी मात्रा में सल्फर डाई ऑक्साइड (SO_2), वाष्प, धूल, और राख वातावरण में आती है। हालांकि जवालामुखी सम्बन्धी क्रियायें सिर्फ कुछ दिन ही रहती हैं लेकिन भारी मात्रा में निकलने वाली गैसें और राख जलवायु को कई साल तक प्रभावित करते रह सकते हैं। एक बड़े विस्फोट से लाखों टन सल्फर डाई ऑक्साइड गैस पर्यावरण की ऊपरी सतह (जिसे स्ट्रेटोफियर भी कहते हैं) तक पहुंच सकती है। सल्फर डाई ऑक्साइड पानी से मिल कर सल्फ्यूरिक अम्ल की छोटी-छोटी बूंद बनाती है। ये बूंदें इतनी छोटी होती हैं कि इनमें से कई बहुत वर्षो तक हवा में रुक सकती हैं। ये सूर्य की रौशनी की सक्षम परावर्तक होती हैं और ऊर्जा के कुछ मात्रा को, सामान्यतया जितनी ये ग्रहण करती हैं, धरती तक आने से रोकती हैं।

- **पृथ्वी का झुकावः** पृथ्वी पूरे वर्ष में एक बार सूर्य का एक चक्कर लगाती है। यह अपने कक्षीय पथ के लम्बवत तल के प्रति 23.5° के कोण पर झुकी है। आधे वर्ष के लिए जब गर्मियां होती हैं तब उत्तरी गोलार्ध सूर्य की ओर झुका रहता है। दूसरे आधे वर्षों में जब सर्दियां होती हैं तब पृथ्वी सूर्य से दूर झुकी होती है। अगर यह झुकाव नहीं होता तो हमें अलग-अलग मौसमों का अनुभव नहीं होता। धरती के झुकाव में परिवर्तन मौसमों के अनुशासन को प्रभावित कर सकता है- अधिक झुकाव का मतलब अधिक गर्म गर्मियां और अधिक ठंडी सर्दियां और कम झुकाव का मतलब कम गर्म गर्मियां और कम ठंडी सर्दियां।

  पृथ्वी की कक्षा थोड़ी दीर्घवृत्ताकार है, जिसका तात्पर्य यह है कि पूरे साल की परिक्रमा के दौरान पृथ्वी और सूर्य के बीच की दूरी बदलती रहती है। सामान्यतया हम सोचते हैं कि धरती का एक निश्चित अक्ष है आखिरकार यह हमेशा यह ध्रुव (इसे ध्रुवतारा और उत्तरी ध्रुव भी कहा जाता है) की तरफ इशारा करती है। वास्तव में यह स्थिर नहीं होता, अक्ष भी आधे अंश प्रति सदी से थोड़े से अधिक की दर से गतिशील है। अतः ध्रुव हमेशा से नहीं रहे हैं और हमेशा नहीं रहेंगे न ही उत्तर के तारे के तरफ इशारा करेंगे। लगभग 2500 ई.पू. जब पिरामिड बनाये गए तब ध्रुव थुबान तारे (अल्फा द्रकॉनिस) के पास था। पृथ्वी के अक्ष में होने वाला यह दिशा परिवर्तन अग्रगमन कहलाता है और यह भी जलवायु में होने वाले परिवर्तनों के लिए जिम्मेदार है (इसे ध्रुवतारा और उत्तरी तारा भी कहा जाता है)।

- **समुद्री धाराएंः** समुद्र जलवायु तंत्र के महत्वपूर्ण भाग हैं। ये पृथ्वी के 71 प्रतिशत भाग में हैं और वायुमंडल या भूमि सतह द्वारा सोखे जाने वाले सौर विकिरण के दोगुन के आस-पास विकिरण को अवशोषित करते हैं। समुद्री धाराएं पूरे ग्रह पर भारी मात्रा में ऊष्मा को इधर-उधर ले जाती हैं - लगभग उतनी ही मात्रा जितनी वायुमंडल ले जाता है। लेकिन समुद्र भूभागों से घिरे हुए हैं, इसलिए पानी के द्वारा होने वाली ऊष्मा का वहन वाहिकाओं के रास्ते से होता है। हवा समुद्री तल पर एक क्षैतिज दबाव डालती है और समुद्री धाराओं के खाके को नियंत्रित करती है। विश्व के कुछ भागों पर विश्व के अन्य भागों के तुलना में समुद्री धारा का अधिक प्रभाव पड़ा है। पेरू के तट और उससे जुड़े दूसरे क्षेत्रों पर हम्बोल्ट धारा, जो पेरू की तटवर्ती सीमा से लग कर बहती है, का बहुत प्रभाव पड़ा है। प्रशांत महासागर में होने वाली अल निनो घटना पूरे विश्व को प्रभावित कर सकती है।

- **ग्रीनहाउस गैसें और उनके स्रोतः** कार्बनडाईऑक्साइड निःसंदेह वायुमंडल में उपस्थित सबसे महत्वपूर्ण ग्रीन हाउस गैस है। भूमि उपयोग के खाके में परिवर्तन, वनोन्मूलन, भूमि समाशोधन, कृषि और अन्य सभी क्रियाएं किसी न किसी तरह कार्बनडाईऑक्साइड का उत्सर्जन करती हैं।

- **सौर विविधताएंः** पृथ्वी के जलवायु तंत्र के लिए सूर्य ऊर्जा का स्रोत है। यद्यपि सूर्य ऊर्जा का कुल उत्सर्जन प्रतिदिन के दृष्टिकोण से स्थिर ही होता है, एक बढ़ी हुई समयावधि में होने वाले छोटे परिवर्तन से जलवायु पर प्रभाव पड़ता है। कुछ वैज्ञानिकों को शंका है कि बीसवीं सदी के शुरुआती आधे वर्षों में होने वाली गर्मी सौर ऊर्जा के उत्सर्जन में वृद्धि होने के कारण थी। चूंकि सूर्य ऊर्जा का आधारभूत स्रोत है इसलिए यह बात सहायक होगी कि सूर्य के कुल ऊर्जा उत्सर्जन में

परिवर्तन में जलवायु में परिवर्तन करेगा। वैज्ञानिक अध्ययन बताते हैं कि पिछले जलवायु परिवर्तनों में सौर ऊर्जा की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। उदाहरण के लिए सौर क्रियाओं में कमी को लगभग 1650 से 1850 के मध्य आये शीतयुग का कारण माना जाता है, जब ग्रीनलैंड 1420 से 1720 तक बर्फ के करण अलग-थलग पड़ गया था और हिमनद आल्प्स में आ गए थे।

जलवायु परिवर्तन के मानवीय कारण

उन्नीसवीं सदी की औद्योगिक क्रांति में औद्योगिक क्रियाकलापों के लिए जीवाश्म ईंधनों का बहुत उपयोग हुआ। जीवाश्म ईंधन जैसे तेल, कोयला और प्राकृतिक गैस आपूर्ति आदि के ऊर्जा की आवश्यकता अधिकतर वाहन चलने और औद्योगिक तथा घरेलू विद्युत पैदा करने के लिए हुई। सिर्फ ऊर्जा विभाग ही कार्बनडाईऑक्साइड के कुल उत्सर्जन के 3/4 मीथेन उत्सर्जन के 1/5 भारी मात्र में नाइट्रस ऑक्साइड के उत्सर्जन का उत्तरदायी है।

कार्बनडाईऑक्साइड निश्चित रूप से वायुमंडल में उपस्थित सबसे महत्वपूर्ण ग्रीन हाउस गैस है। भूमि उपयोग के खाके में परिवर्तन, वनोन्मूलन, भूमि की सफाई, कृषि और कुछ दूसरी क्रियाएं, इन सभी से कार्बनडाईऑक्साइड का उत्सर्जन होता है। मीथेन वायुमंडल में उपस्थित दूसरी महत्वपूर्ण ग्रीन हाउस गैस है। यह जानवरों से निकलती है जैसे डेयरी की गाय, बकरियां, भैंसें, ऊंट, घोड़े और भेंड़। मीथेन का उत्सर्जन तेल के कुएं खोदने, कोयला खोदने, गैस की पाइपलाइन से स्रावित होने से, लैंडफिल और अपशिष्टों के ढेर से होता है।

ग्लोबल वार्मिंग की निश्चितता कुछ वैश्विक घटनाओं जैसे फसलों पर प्रभाव और संसार भर में मौसमों की चरम स्थिति, में देखी जा सकती है। यह ध्रुवीय फसलों में हुए नाटकीय परिवर्तन में आसानी से देखी जा सकती है जैसे, आर्कटिक की बर्फीली फसलें सिकुड़ रही हैं और अंटार्कटिक की बर्फ की शेल्फ पिघल रही है।

जलवायु परिवर्तन के प्रमुख कारण और योगदानकर्ता

यूके की सरकार के अनुसार यूके में जलवायु परिवर्तन में मानव निर्मित कारणों के प्रमुख योगदानकर्ता निम्न हैं:

- औद्योगिक प्रक्रिया से आने वाला 4 प्रतिशत कार्बन उत्सर्जन
- 7 प्रतिशत कृषि से - उदाहरण के लिए लिवस्टॉक और मन्योर से आने वाला मीथेन उत्सर्जन, रासायनिक उर्वरकों से होने वाला नाइट्रस ऑक्साइड का उत्सर्जन
- परिवहन से होने वाला 21 प्रतिशत कार्बन उत्सर्जन
- और 65 प्रतिशत ऊर्जा उत्पादन के लिए उपयोग किये गए ईंधन से (परिवहन को छोड़कर)

यूके के कुल कार्बन उत्सर्जन का 40 प्रतिशत व्यक्तिगत निर्णय लेने के फलस्वरूप आता है। अधिकतर व्यक्ति के लिए उत्सर्जन के प्रमुख स्रोत निम्न हैं:

- घर में बिजली का उपयोग (मुख्य उद्देश्य गर्मी पैदा करना)
- कार चलाना
- हवाई यात्रा

लोगों के घरों के दूसरे कारक भी हैं जो अप्रत्यक्ष रूप से जलवायु परिवर्तन के भागीदार होते हैं। कुर्सी मेज से लेकर कम्प्यूटर तक, कपड़ों से लेकर कालीन तक सब कुछ बनाये जाने और परिवहन के समय ऊर्जा का उपयोग करते हैं- और इससे कार्बन का उत्सर्जन होता है।

जलवायु परिवर्तन के कारण में योगदानकर्ता के तौर पर कृषि

जलवायु परिवर्तन पर एक अंतरराष्ट्रीय पैनल के अनुसार ग्रीन हाउस गैसों की बढ़ोत्तरी के तीन कारण जिनका पिछले 250 वर्षों में अवलोकन किया गया है वो जीवाश्म ईंधन, भूमि उपयोग और कृषि हैं।

यह दिखाया जा चुका है कि कृषि का जलवायु पर व्यापक प्रभाव पड़ता है शुरू में यह प्रभाव उत्पादन और ग्रीन हाउस गैसों जैसे कार्बनडाईऑक्साइड, मीथेन और नाइट्रस ऑक्साइड के उत्सर्जन कारण पड़ता है।

जलवायु परिवर्तन का दूसरा कारण यह है कि जब कृषि पृथ्वी की सतह को बदल देती है तो ऊष्मा और प्रकाश को अवशोषित या परावर्तित कर देने की इनकी क्षमता भी बदल जाती है। भूमि प्रयोग में परिवर्तन जैसे जीवाश्म ईंधन के प्रयोग के साथ साथ वनोन्मूलन, मरुस्थलीकरण, कार्बनडाईऑक्साइड के एंथ्रोपोजेनिक स्रोत हैं।

जलवायु परिवर्तन के कारण में योगदानकर्ता के तौर पर वनोन्मूलन

हमारे संसार में वर्षा वनों का क्या महत्व है पहले यह समझना होगा। वे पारिस्थितक तंत्र के एक सुकोमल भाग को बनाते हैं जिसकी उत्पत्ति में करोड़ों वर्ष लगे।

वर्षावन प्रति वर्ष मानव द्वारा उत्सर्जित कार्बन के 20 प्रतिशत को अवशोषित करने में सहायता करते हैं इसलिए जलवायु परिवर्तन के कारण में योगदानकर्ता के तौर पर वनोन्मूलन भी महत्वपूर्ण है। वर्षा वनों को उनके प्रतिस्थापित होने से ज्यादा तेज़ी से काटने के कारण कार्बन उत्सर्जन चक्र पर भयानक प्रभाव पड़ा है और अतिरिक्त 17 प्रतिशत ग्रीन हाउस गैस का उत्सर्जन होने लगा है। याद रखें कि पेड़ कार्बनडाईऑक्साइड को अवशोषित करते हैं और अधिक वनोन्मूलन का मतलब वायुमंडल में अधिक कार्बनडाईऑक्साइड का एकत्रित होना है।

वनोन्मूलन रोकने के तरीके

हमें बहुत सारे कारणों से पेड़ चाहिए ..निम्नलिखित तरीकों से हम उन्हें अपने आस-पास बनाये रख सकते हैं।

वनोन्मूलन

पृथ्वी पर जीवन के लिए पेड़ प्राणदायी हैं लेकिन वो भी खतरनाक दर से नष्ट किये जा रहे हैं। खरीदारी करते हुए, खाते हुए यहां तक पीते हुए भी पूरे दिन भर में हम बहुत सारे चुनाव करते हैं जिनके मूल कहीं न कहीं वनोन्मूलन होते हैं। बहुत से कारणों से पेड़ काटे और जला दिए जाते हैं। लकड़ी की आपूर्ति के लिए, कागज के उत्पादों के लिए, फसलों के लिए भूमि बनाने के लिए, मवेशियों के लिए और घर बनाने के लिये पेड़ काट दिए जाते हैं। वनोन्मूलन के दूसरे कारण खुदाई और तेल ढूंढ़ना, शहरीकरण, अम्ल वर्षा और दावानल हैं। संयुक्त राष्ट्र खाद्य एवं कृषि संगठन के अनुसार 330 लाख एकड़ के जंगलों का विनाश प्रतिवर्ष होने से विश्व में मानव के कारण उत्पन्न होने वाली ग्रीन हाउस गैस 20 प्रतिशत बढ़ जाती है। वनोन्मूलन के कारण वायु और जल प्रदूषण भी बढ़ता है, जैव विविधता को नुकसान पहुंचता है, भूक्षरण होता है और जलवायु में विघ्न पड़ता है।

तो आप वनोन्मूलन को रोकने के लिए क्या कर सकते हैं?

वनोन्मूलन से भिड़ने का एक आसान रास्ता है कि आप एक पौधा लगाएं। लेकिन आप घर में, स्टोर में, कार्य करते हुए किये गए अपने चुनावों पर ध्यान इस बात का ध्यान दे कर कि आप समस्या के योगदानकर्ता नहीं बनेंगे, इसे एक कदम आगे ले जा सकते हैं। वनोन्मूलन को रोकने के लिए आप निम्न कार्य कर सकते हैं।

1. एक पेड़ लगाएं।
2. कागज का कम प्रयोग करें।
3. पुनर्चक्रण करें और पुनर्चक्रित उत्पाद खरीदें।
4. काष्ठ और उसके उत्पादों पर वन नेतृत्व परिषद की मुहर जरूर देखें।
5. अधिक से अधिक शाकाहारी भोजन करें।

3.3.4 वैश्विक तापमान वृद्धि (ग्लोबल वार्मिंग)

ग्लोबल वार्मिंग बीसवीं सदी के मध्य से पृथ्वी के नजदीक की सतह, हवा और समुद्र के तापमान के बढ़ने को और इसकी अनुमानित निरंतरता को कहा जाता है। जलवायु परिवर्तन के अंतरराष्ट्रीय पैनल (IPCC) की 2007 की चौथी निर्धारण रिपोर्ट के अनुसार बीसवीं सदी के दौरान वैश्विक सतह तापमान 0.74 ± 0.18 °C (1.33 ± 0.32 °F) तक बढ़ा है। बीसवीं सदी के मध्य से देखी गयी अधिकतर तापमान वृद्धियां ग्रीन हाउस गैसों के बढ़ने के कारण हुई जो मानवीय क्रियाओं जैसे जीवाश्म ईंधन जलाने और वनोन्मूलन के कारण बढ़ीं। वैश्विक धुंधलापन वायुमंडलीय एरोसॉल जो सूर्य की रौशनी को धरती तक पहुंचने से रोक देती है, की सांद्रता में वृद्धि के कारण हो रहा है। वैश्विक धुंधलेपन ने ग्रीन हाउस गैसों के कारण हुई ग्लोबल वार्मिंग के प्रभाव को कुछ कम किया है।

टिप्पणी

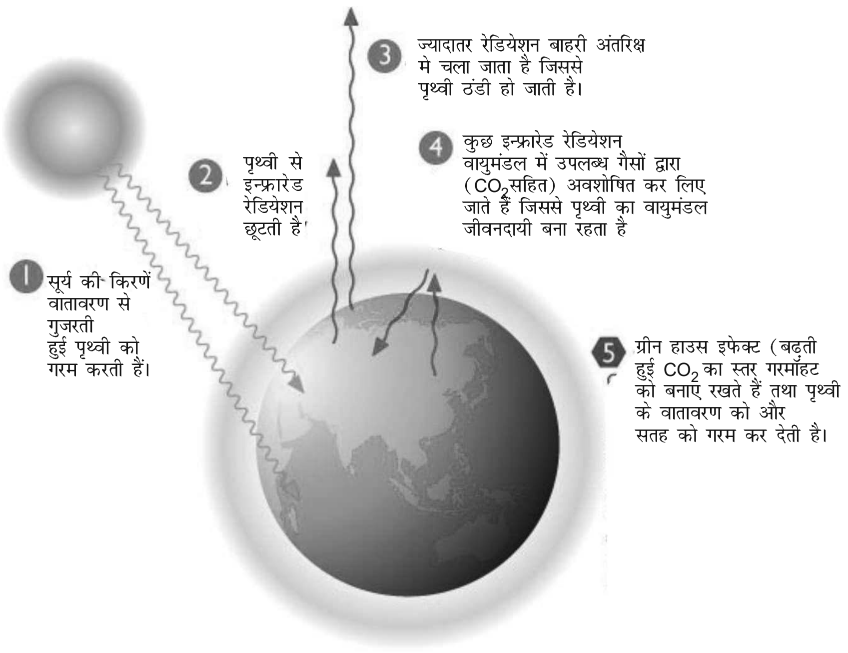

ग्लोबल वार्मिंग

क्लाइमेट मॉडल के अनुमानों का सारांश यह है कि जलवायु परिवर्तन के अंतरराष्ट्रीय पैनल की रिपोर्ट यह संकेत देती है कि 21वीं सदी के दौरान वैश्विक सतह तापमान 1.1 से 6.4 °C (2.0 to 11.5 °F) तक बढ़ने वाला है। इस अनुमान में यह अनिश्चितता ग्रीन हाउस गैसों के प्रति अलग-अलग संवेदना रखने वाले मॉडलों और भविष्य में ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन के अलग-अलग अनुमानों का प्रयोग करने के कारण आई है। वैश्विक तापमान में वृद्धि के कारण समुद्र का स्तर ऊपर उठ जायेगा और इससे वर्षा की मात्रा और स्वरूप बदल जायेगा जिसमें संभवत: उपोष्णकटिबंधीय मरुस्थलों के विस्तार भी आ जायेंगे। अनुमान है कि आर्कटिक में सबसे ज्यादा गर्मी बढ़ेगी और यह हिमनदों, परमाफ्रोस्ट और समुद्री बर्फ के लगातार होने वाली वापसी से जुड़ी होगी। दूसरे संभावित प्रभावों में समशीतोष्ण मौसमी घटनाओं की आवृत्ति और तीव्रता में परिवर्तन, जातियों का विलोप और कृषि पैदावार में परिवर्तन इत्यादि आते हैं। गर्मी का बढ़ना और इससे जुड़े दूसरे परिवर्तन पूरे विषय में क्षेत्र के अनुसार भिन्न होंगे हालांकि इन क्षेत्रीय भिन्नताओं की प्रकृति अनिश्चित है। वायुमंडलीय कार्बनडाईऑक्साइड की समसामयिक वृद्धि के फलस्वरूप समुद्र अधिक अम्लीय हो गए हैं और ऐसा कहा गया है कि इनकी अम्लता बढ़ती जायेगी।

वैज्ञानिक की एक राय यह है कि एंथ्रोपोजेनिक ग्लोबल वार्मिंग घटित हो रही है। हालांकि राजनैतिक और सार्वजनिक बहस चलती रहेगी। क्योटो प्रोटोकॉल का लक्ष्य 'खतरनाक एन्थ्रोपोजेनिक हस्तक्षेप' को रोकने के लिए ग्रीन हाउस गैसों की सांद्रता का स्थिरीकरण करना है। नवम्बर 2009 तक 187 राज्यों ने प्रोटोकॉल को मंजूर किया और उस पर हस्ताक्षर किया।

ग्लोबल वार्मिंग रोकने के पांच तरीके

आप बार-बार एक ही सलाह सुनेंगे या पढ़ेंगे कि ग्लोबल वार्मिंग को रोकने के लिए आप क्या कर सकते हैं। बड़े मीडिया स्रोत बहुत साधारण सी सलाहे देते हैं जैसे अपने बल्ब

बदल कर छोटे फ्लूरोसेंट लगाने की। हाइब्रिड कार खरीदने की, और प्रयोग न करने पर उपकरणों का प्लग निकाल देने की।

आप मुख्य धारा की मीडिया की सलाह से संतुष्ट नहीं हैं क्योंकि आप जानते हैं कि बहुत बड़े काम करने हैं, जलवायु परिवर्तन को हमारे पारिस्थितिक तंत्र में और भी विनाशकारी प्रलय लाने से रोकने के अधिक नाटकीय कार्यों की आवश्यकता है।

1. गैस के अधिक मूल्य और कार्बन उत्सर्जन की अनदेखी करें

आप गैस पम्प पर बढ़ती हुई कीमत की अनदेखी करेंगे और अपनी कार बेच कर रोज़मर्रा के कार्बन उत्सर्जन से छुटकारा पा लेंगे। एक हाइब्रिड वाहन लेने पर भी आप ईंधन के लिए जीवाश्म ईंधन पर ही निर्भर होते हैं।

एक साईकिल चला कर आप अधिक स्वस्थ हो जायेंगे। कार के प्रति अपने लगाव पर नियंत्रण पायें, अपना वाहन बेच दें, और बाइक का इस्तेमाल करके अधिक चपल हो जाएं, या जन यातायात जैसे बस, सबवे या ट्रेन का प्रयोग करें। संभवत: आपके शहर में कार साझा (कारपुलिंग) करने के भी कार्यक्रम होंगे। एक कार चलाने के बहुत से परिवहन विकल्प हैं।

यदि आपकी रोज की यात्रा आपके घर से पांच मील से अधिक है तो आप अपनी नौकरी की जगह के और नजदीक जाने की सोच सकते हैं। कार के बिना जीना स्वतंत्र होने के अनुभव जैसा है और आप अपने काम के लिए जाते हुए ग्लोबल वार्मिंग को रोकना सीख जायेंगे।

बिना कार के जीवन जीना

2. स्वस्थ पर्यावरण और अपने लिए ताजा और स्थानीय फल खाएं

पिछले कुछ वर्षों में बाज़ार में जैविक खाद्य सामग्री का आगमन हुआ है। लेकिन बराबर महत्व की बात यह सोचना है कि यह खाद्य सामग्री आती कहां से है। उदाहरण के लिए आपके सुपरबाज़ार में उत्पाद का कितना भाग लगभग आधे संसार की दूरी तय करके आता है? उन सेबों और आडुओं पर लगे स्टिकर देखिये और आप देखेंगे 'चिली का उत्पाद', 'मैक्सिको' या 'चीन'। यह ध्यान में रखना भी आवश्यक है कि उस खाद्य सामग्री का कितना भाग वाकई उस मौसम में हुआ है। खाद्य पदार्थों का परिवहन भी ग्रीन हाउस गैसों को बढ़ाने में योगदान देता है।

कम कार्बन वाले खाद्य पदार्थ पाने के आसान रास्ते निम्न हैं:

- वह चीज़ें खरीदना जो वाकई उस मौसम में हों।
- किसानों के बाज़ार से स्थानीय फलों और सब्जियों को खरीदना।
- CSA में शामिल होना।

ताजे फल

यदि आप ऊपर दी गयी सलाह का अनुसरण करते हैं तो आप अपने भोजन में कार्बन की बहुत मात्रा कम कर लेंगे। इसके अतिरिक्त स्थानीय ताज़े खाद्य पदार्थों का प्रयोग न सिर्फ इस ग्रह के लिए बल्कि आपके स्वास्थ्य के लिए भी अच्छा है।

3. अपने घर के कार्बन पदचिन्हों को कम करना सीखिए

क्या आप यह महसूस करते हैं कि आधुनिक घर बहुत से कृत्रिम उत्पादों और ऐसे दूसरे पदार्थों से बने हैं जिनको बनाने में ज्यादा ऊर्जा लगी है? इसका मतलब यह है कि आधुनिक घरों का ग्लोबल वार्मिंग को बढ़ाने में बहुत बड़ा हाथ है और यह दुखद है। उदाहरण के तौर पर कंक्रीट (आश्चर्यजनक रूप से) पानी के बाद धरती पर सबसे ज्यादा प्रयुक्त होने वाला पदार्थ है और इसे बनाने में भारी मात्रा में ऊर्जा की खपत होती है। और सिर्फ यही नहीं इसको बनाने का तरीका भी बहुत प्रदूषण फ़ैलाने वाला होता है।

एक ऐसे घर से जो अधिकतम ऊर्जा क्षमता के साथ बना हो आप अपने घर की ऊर्जा का बिल भी कम कर सकते हैं। एक सबसे साधारण चीज़ जिसे सीखने पर विचार किया जाना चाहिए वह निष्क्रिय सौर डिजाइन है। निष्क्रिय सौर घरों में कुशल डिजाइन होते हैं जो सक्रिय ऊर्जा ऊष्मन और शीतलन के लिए आवश्यक ऊर्जा की मात्रा नाटकीय रूप से कम कर देते हैं। दूसरे शब्दों में निष्क्रिय सौर घर गर्मियों में ठंडे और सर्दियों में गर्म होते हैं और इन्हें वातानुकूलित या गर्म करने की आवश्यकता बहुत कम होती है। अधिक ऊर्जा क्षमता कम कार्बन पदचिन्ह के बराबर होती है।

एक घर कैसा हो सकता है अपनी इस अवधारणा को बतायें। यदि आप इसे और आगे ले जाना चाहते हैं तो एक पुआल के बने घर या ढेले से बने घर को बनाने के लिए आप उसकी एक कार्यशाला में भाग ले सकते हैं। घर बनाने की ये दो प्राकृतिक तकनीकियां स्थानीय और प्राकृतिक निर्माण सामग्री जैसे पुआल, बालू या मिट्टी के प्रयोग

पर जोर देती हैं। प्राकृतिक भवन निर्माण पर्यावरण को स्थिर रखने वाली जीवन शैली की तरफ बढ़ता हुआ महत्वपूर्ण कदम होगा।

4. अपना धन अपनी जेब में और कार्बन हवा से बाहर रखें

वैश्विक पूंजीवादी समाज उच्चश्रृंखला उपभोक्तावाद पर पनपता है। और यह वह तंत्र है जो पर्यावरण के क्षय और वैश्विक जलवायु परिवर्तन में योगदान दे रहा है। लेकिन आप अपनी खपत कम करके उपभोक्तावाद पर लगाम लगा सकते हैं। उदाहरण के तौर पर, उपयोग में आ चुके कपड़े खरीद कर, एक कुप्पा साझा करके, और कुछ न खरीदने वाले दिवस जैसी प्रतियोगिताएं में भाग लेकर आप यह कर सकते हैं। ऐसे अनंत तरीके हैं जिससे आप सादा जीवन जीना सीख सकते हैं और परिणाम स्वरूप उतने ही आराम से पृथ्वी पर रहने का तरीका सीख सकते हैं।

अपना जीवन सादा करके सुखी जीवन व्यतीत करें। कम उपभोग करते ही आपके कार्बन पदचिन्ह तुरंत कम हो जायेंगे। बड़ी मीडिया आप को 'कम उपभोग' करने के लिए कभी नहीं कहेगी क्योंकि उपभोक्तावाद ही हमारी टूट चुकी अर्थव्यवस्था को चला रहा है। (आखिर यू. एस. के सकल घरेलू उत्पाद का 70 प्रतिशत उपभोक्ताओं के खर्च से ही आता है)

आप बड़ी मीडिया को चुनौती दे सकते हैं, उपभोक्तावाद को नकार सकते हैं और बदले में वैश्विक जलवायु परिवर्तन को रोक सकते हैं और सादी तथा अधिक सुखद जीवन शैली के लिए लोगों को प्रेरित कर सकते हैं। कोशिश करिये।

5. अपने जीवन मूल्य अपने मित्रों के साथ सुख से जिएं

यदि आप के आस-पास ऐसे व्यक्ति नहीं हैं जिनके जीवन मूल्य भी आप जैसे हैं और आपके चुनाव का समर्थन करते हैं तो ग्लोबल वार्मिंग से लड़ना आपके लिए मुश्किल हो सकता है। हालांकि इकोविलेज में जा कर आप इसे आसान कर सकते हैं।

एक इकोविलेज

इस आश्चर्यजनक जगह के बारे में जानें और आप को बहुत आश्चर्य होगा। डांसिंग रैबिट इकोविलेज का उद्देश्य पारिस्थितिक और सांस्कृतिक परिवर्तन का एक गहरे रास्ते से समाधान करने के समग्र प्रयास को निरूपित करता है।

चूंकि इकोविलेज समाज की किसी और जगह की तुलना में बड़े स्तर पर पारिस्थितिक और सांस्कृतिक दोनों तरह के अंतर पैदा करते हैं इसलिए आप उसका

समर्थन करके एक बड़ा अंतर पैदा कर सकते हैं। पूरे विश्व में बहुत से इकोविलेज हैं और सबका अपना संगठन और लक्ष्य है, लेकिन सभी किसी-न-किसी तरह से पृथ्वी पर आसान जीवन जीने के तरीके को समर्पित हैं।

यदि आप एक समुदाय में रहते हैं तो आप एक ज्यादा सुखद और अधिक सादी जीवन शैली पा सकते हैं। बहुत से इकोविलेजों में आने वाले को इकोविलेज दिखाने की भी सुविधा है ताकि वो देख सकें कि अधिक सदा जीवन, और एक-दूसरे का सहयोग करके जीने पर जीवन कितना अद्‍भुत और संतुष्टिदायक लगता है।

व्यक्तिगत चुनावों और क्रियाओं द्वारा आपको ग्लोबल वार्मिंग को रोकना है। यदि आप एक नाटकीय कार्य करना चाहते हैं तो ये ऐसी बातें हैं जिन्हें आप कर सकते हैं। रोजमर्रा के जीवन में बहुत से पल ऐसे हैं जब आपको परिवर्तन के मौके मिलते हैं। बड़ी समस्या के समाधान के लिए बड़ा परिवर्तन चाहिए। ग्लोबल वार्मिंग ऐसी ही एक समस्या है और भविष्य की किसी भी आपत्ति या आपातकाल से बचने के लिए हमे ऐसे ही बड़े परिवर्तन की आवश्यकता है।

यह बहुत आवश्यक है कि आप उपरोक्त जानकारियां अभी से संसार से बांटना शुरू कर दें। भविष्य की पीढ़ी और दुनिया के गरीब नहीं चाहते कि आप उन कार्यों को करने के लिए जो वाकई में अंतर पैदा करते हैं, लोगों को जागरूक और शिक्षित करने के लिए मीडिया का इंतजार करें।

पृथ्वी के तापमान में भविष्य के परिवर्तन

भविष्य के उत्सर्जन, ग्रीन हाउस गैसों की सांद्रता, वायुमंडल में गर्मी बढाने का उनका कुल प्रभाव और जलवायु तंत्र के प्रक्रियों में अनिश्चितता होने के कारण भविष्य के तापमान परिवर्तन का अनुमान भी अनिश्चित है। इन आपत्ति सूचनाओं को ध्यान में रखते हुए जलवायु परिवर्तन पर अंतरराष्ट्रीय पैनल (IPCC) ने भविष्य में गर्मी बढ़ने के बारे में निम्न अनुमान लगाया (IPCC 2007)–

21वीं सदी के अंत तक पृथ्वी के सतह के औसत तापमान में 1980-1990 के सबसे अच्छे अनुमान 3.2 से 7.2°F (1.8-4.0°C) तक की तुलना में 2 से 11.5°F (1.1-6.4°C) तक की बढ़ोतरी होने की सम्भावना है। सारे रिहायशी महाद्वीपों में गर्मी बढ़ने की औसत दर बीसवीं सदी में अनुभव की गयी दर के मुकाबले दोगुना होने की संभावना है।

भविष्य के ग्रीन हाउस गैस, एरोसॉल उत्सर्जन और बदलती स्थितियों के प्रति पृथ्वी के व्यवहार की अनिश्चितता के कारण पृथ्वी का तापमान कितना और कितनी तेज़ी से बढ़ेगा यह बात अज्ञात है। इसके अतिरिक्त प्राकृतिक दबाव जैसे सूर्य और ज्वालामुखी की क्रियाशीलता में परिवर्तन भी भविष्य के तापमान को प्रभावित कर सकते हैं हालांकि तापमान पर कितना प्रभाव पढ़ेगा यह ज्ञात नहीं है क्योंकि प्राकृतिक दबावों का समय और उनकी तीव्रता को पहले से नहीं बताया जा सकता है।

मॉडल बनाने की तकनीक में सुधार को अवलोकित किये गए पर्यावरण परिवर्तन के आंकड़ों के साथ जोड़ने पर भविष्य के तापमान का सही आकलन करने में हमारा आत्मविश्वास बढ़ गया है। पहली बार 2007 में इसके आकलन में जलवायु परिवर्तन पर अंतरराष्ट्रीय पैनल (IPCC)अपना सबसे अच्छा अनुमान लगाने में सफल रही और उत्सर्जन के हर परिदृश्य में औसत ग्लोबल वार्मिंग के आस-पास रही।

जल की ऊष्मा भण्डारण की शक्ति के कारण भूभाग समुद्रों की तुलना में अधिक गर्म होंगे। उच्च अक्षांश निम्न अक्षांशों की तुलना में पिघलती बर्फ के प्रभाव के सकारात्मक प्रतिक्रिया में अधिक गर्म होंगे।

उत्तरी अमेरिका का अधिकतर हिस्सा, पूरा अफ्रीका, यूरोप, उत्तरी और मध्य एशिया और मध्य और दक्षिणी अमेरिका के ज्यादातर हिस्सों की विश्व के बाकी हिस्सों से औसतन अधिक गर्म होने की सम्भावना है। अनुमान बताते हैं कि दक्षिणी एशिया, ऑस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैण्ड और दक्षिणी अमेरिका के तापमान में वृद्धि औसत वैश्विक तापमान वृद्धि के बराबर होगी।

मौसमों के हिसाब से गर्मी बढ़ने की मात्रा भी अलग होगी ज्यादातर क्षेत्रों में गर्मियों में कम और जाड़ों में अधिक गर्मी बढ़ेगी।

जलवायु की प्रतिक्रिया

भविष्य के तापमान परिवर्तन सिर्फ मानवीय और प्राकृतिक दबाव के सीधे प्रभाव के फलस्वरूप नहीं होंगे। जलवायु 'प्रतिक्रिया' के करण भी तापमान में परिवर्तन हो सकता है - जलवायु तंत्र के इन सीधे प्रभावों के प्रति प्रतिक्रिया को जलवायु प्रतिक्रिया कहते हैं। ये प्रतिक्रियाएं उन सीधे प्रभावों को कम भी कर सकती हैं और बढ़ा भी सकती हैं:

- सकारात्मक प्रतिक्रिया के उदाहरण के तौर पर उस प्रतिक्रिया को देख सकते हैं जो गर्म होने पर बर्फ के पिघलने पर आती है इसे हिम परावर्तकता प्रतिक्रिया भी कहते हैं। यदि आर्कटिक के नजदीक तापमान बढ़ता है तो समुद्री बर्फ संभवत: पिघल जायेगी। क्योंकि समुद्री जल उतना परावर्तक नहीं है जितनी कि बर्फ है। इसलिए बर्फ के पिघलने से गर्मी ज्यादा बढ़ जायेगी (क्योंकि समुद्र बर्फ की तुलना में अधिक सौर विकिरण को अवशोषित करता है)।
- एक नकारात्मक प्रतिक्रिया के उदाहरण के तौर पर उस प्रतिक्रिया को देख सकते हैं जो गर्मी बढ़ने के कारण बढे हुए वाष्पन से निचले बादल के बढ़ने पर होती है। निचले / या गाढ़े बादल (फैला हुआ, तूफानी बादल) जलवायु को ठंडा कर देंगे (सूर्य की रौशनी को परावर्तित करके)- और गर्मी के बढ़ने को कम कर देंगे।

जलवायु तंत्र में बहुत सी जलवायु प्रतिक्रिया क्रियावलियां हैं जो जलवायु दबाव में परिवर्तन के प्रभाव को या तो बढ़ा (सकारात्मक प्रतिक्रिया) सकते हैं या उसे कम (नकारात्मक प्रतिक्रिया) कर सकते हैं। उदाहरण के तौर पर जैसा कि ग्रीन हाउस गैसों की बढती हुई सांद्रता पृथ्वी की जलवायु को गर्म कर रही है तो हिम और बर्फ भी पिघल रही है। इस पिघलने से वो अंधेरी भूमि या वो पानी जो उस बर्फ या हिम के नीचे थे वो सामने आ रहे हैं और ये अंधेरे क्षेत्र सूर्य के अधिक से अधिक प्रकाश को अवशोषित कर रहे हैं जिससे गर्मी और बढ़ रही है जिससे और बर्फ पिघल रही है और इसी तरह एक खुद को चलाने वाला चक्र चल रहा है। यह प्रतिक्रिया लूप 'हिम- ऐल्बिडो प्रतिक्रिया' भी कहलाता है जो ग्रीन हाउस गैसों द्वारा शुरू में बढ़ाई गयी गर्मी को और बढ़ा देता है।

ऐल्बिडो (धवलता) प्रभाव

किसी पदार्थ के द्वारा परावर्तित प्रकाश की मात्रा को ऐल्बिडो कहते हैं। वास्तविक गहरे काले पदार्थ का ऐल्बिडो तभी शून्य (कोई परावर्तन नहीं) होता है जब वह पूरी तरह

काला होता है और पूरी तरह सफ़ेद पदार्थ का ऐल्बिडो 1.0 (पूरी तरह परावर्तन) होता है। निम्न सारिणी में कई पदार्थों, जो धरती की सतह को ढकते हैं, के लिए कुछ प्रतिनिधि ऐल्बिडो दर्शाये गए हैं। इन सभी ऐल्बिडो में से अधिकतर सूर्य के प्रकाश के आपतन कोण के प्रति संवेदनशील होते हैं, यह पानी के लिए विशेषकर सही है। सूर्य जब 40° के कोण पर होता है तप यह ऐल्बिडो नाटकीय रूप से बढ़ जाता है क्योंकि सूर्य के प्रकाश के 10° के कोण पर यह 0.5 और 0° पर यह 1 होता है।

सारिणी : *पृथ्वी के विभिन्न पदार्थों का ऐल्बिडो*

पदार्थ	ऐल्बिडो (% परावर्तन)
समग्र ग्रह	0.31
तूफानी बादल	0.9
पतले बादल	0.6
पक्षाभ बादल	0.5
जल	0.06 - 0.1
हिम और ताज़ी बर्फ	0.9
बालू	0.35
घास के मैदान	0.18 - 0.25
पर्णपाती वन	0.15 - 0.18
शंकुल वन	0.09 - 0.15
वर्षावन	0.07 - 0.15

पृथ्वी की जलवायु की जटिलता को ढूंढ़ने वाले वैज्ञानिकों के शोध का एक बड़ा हिस्सा जलवायु प्रतिक्रिया को ढूंढ़ने, समझने और उसकी मात्रा का सही आकलन करने पर ध्यान देता रहा है।

वायुमंडलीय वाष्प

अधिक ग्रीन हाउस गैस जैसे कार्बनडाईऑक्साइड का वायुमंडल में उत्सर्जन करना ग्रीन हाउस प्रभाव को और ज्यादा बढ़ा देता है और इसलिए पृथ्वी की जलवायु भी गर्म होती है। गर्म होने की मात्र विभिन्न जलवायु प्रतिक्रिया क्रियावलियों पर निर्भर होती है। उदाहरण के तौर पर चूंकि ग्रीन हाउस गैस बढ़ने पर वायुमंडल गर्म होता है तो इसमें जल वाष्प की सांद्रता भी बढ़ती है जिससे ग्रीन हाउस प्रभाव और बढ़ जाता है। बदले में और गर्मी बढ़ती है जिससे अतिरिक्त वाष्प बनती है और वायुमंडल में जाती है और खुद को चलाने वाला यह चक्र चलता रहता है। जलवाष्प की यह प्रतिक्रिया इतनी अधिक हो सकती है कि जितनी अतिरिक्त कार्बनडाईऑक्साइड वायुमंडल में आई है उससे होने ग्रीन हाउस प्रभाव को वो दोगुना कर सकती है।

मेघाच्छादन

अतिरिक्त किन्तु आवश्यक जलवायु प्रतिक्रिया क्रियावली में बादल भी आते हैं। बादल अवरक्त विकिरण को अवशोषित करने में बहुत प्रभावी होते हैं इसलिए इनका भी ग्रीन हाउस प्रभाव बहुत अधिक होता है जिसके कारण पृथ्वी गर्म होती है। बादल आते हुए सौर विकिरणों का परावर्तन भी करते हैं इसलिए ये पृथ्वी को ठंडा भी करते हैं। बादलों के किसी भी पक्ष जैसे उनके प्रकार, स्थिति, जल की मात्रा, उनकी ऊंचाई, कणों के आकार एवं आकृति या उनकी आयु में से किसी में एक परिवर्तन बादल की पृथ्वी को गर्म या ठंडा करने की क्षमता को प्रभावित करता है।

कुछ परिवर्तनों से गर्मी बढ़ जाती है और कुछ इसे कम कर देते हैं। जलवायु के गर्म होने पर प्रतिक्रिया में बादलों में क्या परिवर्तन आते हैं, और यह परिवर्तन किस तरह से प्रतिक्रिया क्रियावली द्वारा जलवायु को प्रभावित करते हैं, इसे जानने के लिए इस दिशा में शोध जारी है। निम्न चित्र में मेघाच्छादन का चित्रण किया गया है।

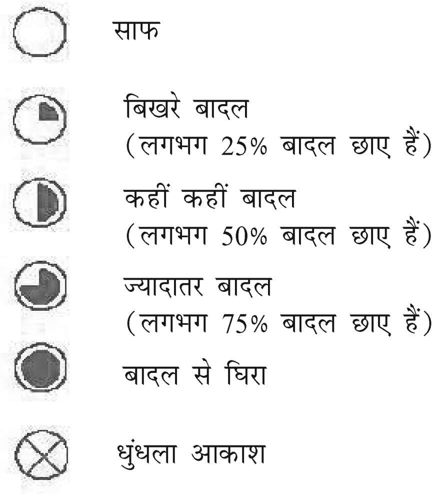

मेघाच्छादन का चित्रण

परमाफ्रोस्ट

उत्तरी क्षेत्रों में परमाफ्रोस्ट का पिघलना एक और प्रतिक्रिया है जो मिट्टी के जैविक पदार्थो से मीथेन गैस, कार्बनडाईऑक्साइड के स्राव के कारण होती है, मीथेन एक सक्षम ग्रीन हाउस गैस है। उत्तरी अमेरिका और उसके आस-पास परमाफ्रोस्ट के पिघलने का विवरण मिलता है।

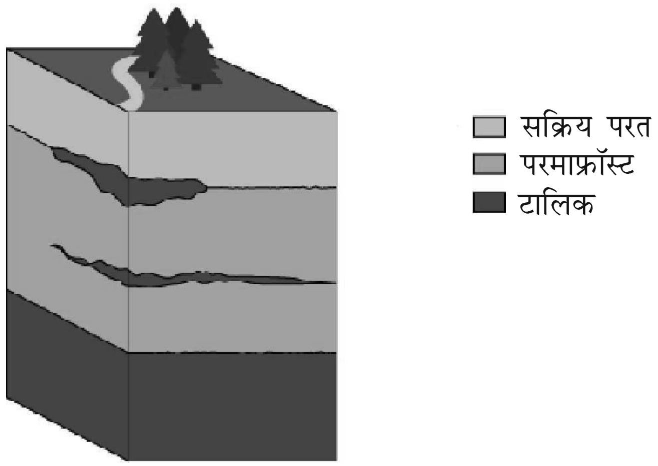

परमाफ्रोस्ट

भविष्य के जलवायु परिवर्तन पर होने वाली बहस इस संबंध में हुई हाल की घटनाओं को जाने बिना नहीं पूरी होगी। इसलिए परिशिष्ट 4.2 की ओर संकेत करो जो 2010 में कानकून, मैक्सिको में जलवायु परिवर्तन सम्मेलन की तरफ संकेत करता है और परिशिष्ट 4.3 की ओर जो कानकून, मैक्सिको में जलवायु परिवर्तन सम्मेलन में भारत की स्थिति को रेखांकित करता है।

एक पारिस्थिक तंत्र एक जैविक पर्यावरण होता है जिसमें एक विशेष क्षेत्र में रहने वाले सभी जीवित प्राणी, निर्जीव, आते हैं साथ-ही-साथ पर्यावरण के घटक जिनसे कोई प्राणी सबंध रखता है जैसे मिट्टी, जल और सूर्य का प्रकाश भी इसी में आते हैं। एक दिए गए क्षेत्र में पाए जाने वाले सभी जीव और सभी जैव-अजैव कारक, जैसे, जैव समुदाय और उनका भौतिक वातावरण जिसने उन जीवों का संबंध होता है, पारिस्थितिक तंत्र के अंतर्गत आते हैं।

बदलती हुई जलवायु स्थितियों के करण पारिस्थितिक तंत्र से कार्बन का उत्सर्जन एक महत्वपूर्ण प्रतिक्रिया है। क्षेत्रीय वर्षण के स्वरूप में परिवर्तन के कारण उच्च कार्बन पारिस्थिक तंत्रों के डाईबैक, जैसे अमेजन, कुछ मॉडलों के द्वारा अनुमानित किये गए हैं लेकिन अब तक इनका अवलोकन नहीं किया गया है। प्रयोगशाला के अध्ययन इस ओर संकेत करते हैं कि शीतोष्ण वनों और घास के मैदानों में मिट्टी के जैविक पदार्थों के विघटन का कारण तापमान और वर्षण में परिवर्तन है।

पारिस्थितिक तंत्र पारिस्थितिकी

पारिस्थितिक तंत्र पारिस्थितिकी पारिस्थितिक तंत्र के जैविक और अजैविक घटक तथा पारिस्थितिक तंत्र के ढांचे में उनके आपस में संबंध का समग्र अध्ययन है। यह विज्ञान पारिस्थितिक तंत्र के कम करने के ढंग का निरीक्षण करता है और इसका संबंध उसके घटकों जैसे रसायन, आधार शैल, मिट्टी, पौधे और पशुओं से करके देखता है। पारिस्थितिक तंत्र पारिस्थितिकी पारिस्थितिक तंत्र की भौतिक और जैविक संरचना का निरिक्षण करता है और इस बात का भी निरिक्षण करता है कि ये पारिस्थितिक तंत्र की सभी विशेषताएं एक दूसरे से कैसे सम्बंधित हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

3. जलवायु परिवर्तन का निम्न में से प्राकृतिक कारण कौन-सा है?
   (क) ज्वालामुखी (ख) समुद्री हवाएं
   (ग) धूमकेतु एवं उल्काएं (घ) ये सभी
4. बीसवीं सदी के मध्य देखी गई तापमान वृद्धियां (ग्लोबल वार्मिंग) किस गैस के बढ़ने के कारण हुई?
   (क) ग्रीन हाउस गैस (ख) ऑक्सीजन
   (ग) हाइड्रोजन (घ) नाइट्रोजन

3.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ग)
2. (ख)
3. (घ)
4. (क)

3.5 सारांश

जलवायु विविधता तथा परिवर्तन बाह्य कारकों द्वारा संचालित होते हैं, जिनको विशेषकर बड़े महाद्वीपीय तथा भूमंडलीय पैमानों के आधार पर स्थानिक अल्प रूप से अनुमानित किया जा सकता है क्योंकि मानवीय क्रियाकलापों जैसे ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन तथा स्थल के उपयोग में परिवर्तन बाह्य कारकों को उत्पन्न करते हैं। यह माना जाता है कि बड़े पैमाने पर इंसान के कार्यकलापों से प्रभावित जलवायु परिवर्तन का हम थोड़ा-बहुत अनुमान लगा सकते हैं। यद्यपि ऐसा करने की क्षमता हमारे पास बहुत सीमित है, क्योंकि हम जनसंख्या परिवर्तन, अर्थव्यवस्था बदलाव, तकनीकी विकास और भविष्य के मानवीय क्रियाकलापों से संबंधित लक्षणों का परिशुद्ध रूप से अनुमान नहीं लगा सकते हैं। इसलिए हमें बहुत ध्यानपूर्वक वातावरण के प्रति अपने व्यवहार को संपादित करना चाहिये तथा इन परिस्थितियों के आधार पर जलवायु की योजना बनानी चाहिये।

जलवायु प्रणाली, एक अन्तर्व्यवहारिक प्रणाली है, जो पांच प्रकार के मुख्य घटकों से बनी है: वायुमंडल, जलमंडल, स्थलीय, सतह तथा जीव मंडल, जो विभिन्न बाह्य कारकों की क्रियाविधियों से प्रभावित होती हैं। इनमें से सबसे अधिक महत्वपूर्ण कारक सूर्य है। मानवीय क्रियाकलापों के सीधे प्रभाव को भी बाह्य कारकों से संदर्भित किया जाता है।

कोपेन वर्गीकरण प्रणाली अनुभवों पर आधारित वर्गीकरण की सबसे प्रसिद्ध प्रणाली है। ये वास्तव में वाल्दमिर कोपेन द्वारा 1918 में प्रकाशित की गई थी जो वनस्पति प्रवर्धनों को पहचानने से संबंधित थी। कोपेन ने तापमान तथा अवक्षेपण के आंकड़ों को जलवायु को वर्गीकृत करने के लिए सांख्यिकीय पैमानों पर विकसित किया था। यदि तापमान और अवक्षेपण के आंकड़े उपलब्ध ना हों तो उन्होंने वनस्पति प्रवर्धन को भी प्राकृतिक जलवायु संबंधी सूचक के रूप में प्रयोग किया था। इसमें अक्षरों की प्रणाली प्रत्येक जलवायु के प्रकार को पहचानती है। उदाहरण के लिए, Cfa संकेत देता है एक नम सह उष्ण कटिबंधी जलवायु के लिए, जिसमें क्रमशः एक हल्की सर्दी (C), पूरे वर्ष के अवक्षेपण (F) तथा गर्मी (a) हैं। कोपेन प्रणाली में बहुत से संशोधन, सम्मिलित किये गये, फिर भी ये महाद्वीपीय तथा भूमंडलीय पैमाने पर जलवायु क्षेत्रों के मानचित्रीकरण के लिए सबसे अधिक प्रयोग होने वाली प्रणाली है। सी. डब्लू. थॉर्नश्वेट ने इसकी स्पर्धा में एक और वर्गीकरण 1948 में प्रतिपादित किया। यह प्रणाली नमी की उपलब्धता तथा जलवायु पर केंद्रित है।

जलवायु परिवर्तन एक लंबे समय में, जो एक दशक से कई लाख वर्ष भी हो सकता है, मौसम के ढांचे में होने वाला दीर्घकालिक परिवर्तन है। यह मौसम की औसत स्थितियों में होने वाला परिवर्तन हो सकता है या एक औसत के संबंध में मौसमी घटनाओं के वितरण में होने वाला परिवर्तन हो सकता है उदाहरण के तौर पर, अधिक या कम समशीतोष्ण मौसमी घटनाएं। जलवायु परिवर्तन एक विशेष क्षेत्र में भी सीमित रह सकता है या पूरी धरती पर हो सकता है।

जलवायु परिवर्तन के प्रमाण विभिन्न प्रकार के स्रोतों से लिए गए हैं, जिनका प्रयोग भूतकाल की जलवायु बनाने के लिए किया जा सकता है। उन्नीसवीं सदी के मध्य की शुरुआत से सतह के तापमान की जानकारी समुचित रूप से उपलब्ध है। शुरुआती समय के लिए ज्यादातर प्रमाण अप्रत्यक्ष हैं- जलवायु परिवर्तन के नतीजे, प्रोक्सियों में परिवर्तन, और पर्यावरणीय सूचकों जैसे वनस्पतियां, बर्फ के केन्द्र, डेंड्रोक्रोनोलोजी, समुद्र तल स्तर में परिवर्तन और हिमनदों के विज्ञान, से निकाले जाते हैं।

पृथ्वी की जलवायु गतिशील है और प्राकृतिक चक्रों के द्वारा हमेशा बदलती रहती है। संसार जिस चीज़ के बारे में चिंतित है- वह बात यह है कि इन परिवर्तनों की गति मानवीय क्रियाओं के कारण बढ़ गयी है। सारे संसार में वैज्ञानिक, जिन्हें वृक्ष वलयों, परागकणों के नमूने, बर्फ के केन्द्रों और समुद्री तलछटों से प्रमाण मिल रहे हैं, इन परिवर्तनों का अध्ययन कर रहे हैं। जलवायु परिवर्तन के कारणों को दो वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है- एक वो प्राकृतिक कारणों से होता है और एक वो जो आदमी द्वारा किया जाता है।

उन्नीसवीं सदी की औद्योगिक क्रांति में औद्योगिक क्रियाकलापों के लिए जीवाश्म ईंधनों का बहुत उपयोग हुआ। जीवाश्म ईंधन जैसे तेल, कोयला और प्राकृतिक गैस आपूर्ति आदि के ऊर्जा की आवश्यकता अधिकतर वाहन चलने और औद्योगिक तथा घरेलू विद्युत पैदा करने के लिए हुई। सिर्फ ऊर्जा विभाग ही कार्बन डाई ऑक्साइड के कुल उत्सर्जन के 3/4 मीथेन उत्सर्जन के 1/5 भारी मात्र में नाइट्रस ऑक्साइड के उत्सर्जन का उत्तरदायी है।

ग्लोबल वार्मिंग बीसवीं सदी के मध्य से पृथ्वी के नजदीक की सतह, हवा और समुद्र के तापमान के बढ़ने को और इसकी अनुमानित निरंतरता को कहा जाता है। जलवायु परिवर्तन के अंतरराष्ट्रीय पैनल (IPCC) की 2007 की चौथी निर्धारण रिपोर्ट के अनुसार बीसवीं सदी के दौरान वैश्विक सतह तापमान 0.74 ± 0.18 °C (1.33 ± 0.32 °F) तक बढ़ा है। बीसवीं सदी के मध्य से देखी गयी अधिकतर तापमान वृद्धियां ग्रीन हाउस गैसों के बढ़ने के कारण हुई जो मानवीय क्रियाओं जैसे जीवाश्म ईंधन जलाने और वनोन्मूलन के कारण बढ़ीं। वैश्विक धुंधलापन वायुमंडलीय एरोसॉल जो सूर्य की रौशनी को धरती तक पहुंचने से रोक देती है, की सांद्रता में वृद्धि के कारण हो रहा है। वैश्विक धुंधलेपन ने ग्रीन हाउस गैसों के कारण हुई ग्लोबल वार्मिंग के प्रभाव को कुछ कम किया है।

अधिक ग्रीन हाउस गैस जैसे कार्बनडाईऑक्साइड का वायुमंडल में उत्सर्जन करना ग्रीन हाउस प्रभाव को और ज्यादा बढ़ा देता है और इसलिए पृथ्वी की जलवायु भी गर्म होती है। गर्म होने की मात्र विभिन्न जलवायु प्रतिक्रिया क्रियावलियों पर निर्भर होती है। उदाहरण के तौर पर चूंकि ग्रीन हाउस गैस बढ़ने पर वायुमंडल गर्म होता है तो इसमें जल वाष्प की सांद्रता भी बढ़ती है जिससे ग्रीन हाउस प्रभाव और बढ़ जाता है। बदले में और गर्मी बढ़ती है जिससे अतिरिक्त वाष्प बनती है और वायुमंडल में जाती है और खुद को चलाने वाला यह चक्र चलता रहता है। जलवाष्प की यह प्रतिक्रिया इतनी अधिक हो सकती है कि जितनी अतिरिक्त कार्बनडाईऑक्साइड वायुमंडल में आई है उससे होने ग्रीन हाउस प्रभाव को वो दोगुना कर सकती है।

3.6 मुख्य शब्दावली

- **विश्वव्यापी :** पूरे विश्व में फैला हुआ।
- **चक्रवात :** तूफान।
- **संरचना :** बनावट।
- **अवहेलना :** आज्ञा न मानना।
- **आच्छादन :** ढकना, छिपाना।

टिप्पणी

- **उत्सर्जन** : निष्कासन, बहना, त्यागना।
- **वर्गीकरण** : बांटना।
- **प्रतिपादित** : उत्पन्न करना।
- **पराकाष्ठा** : उच्चतम स्तर पर, अंतिम बिंदु।

3.7 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु-उत्तरीय प्रश्न

1. जलवायु से क्या आशय है? परिभाषित कीजिए।
2. जलवायु प्रणाली के प्रमुख घटकों के नाम लिखिए।
3. कोपेन के जलवायु वर्गीकरण के कितने प्रकार हैं?
4. जलवायु परिवर्तन के प्राकृतिक कारणों को बताइए।
5. ग्लोबल वार्मिंग से आप क्या समझते हैं? स्पष्ट कीजिए।

दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

1. जलवायु वर्गीकरण की प्रणाली का उल्लेख कीजिए।
2. कोपेन तथा थॉर्नश्वेट के जलवायु वर्गीकरण का तुलनात्मक विश्लेषण कीजिए।
3. जलवायु परिवर्तन की प्रक्रिया को विस्तार से समझाइए।
4. जलवायु परिवर्तन के प्रमाण एवं संभावित कारणों का उल्लेख कीजिए।
5. वैश्विक तापमान (ग्लोबल वार्मिंग) का वैश्विक जलवायु पर क्या प्रभाव पड़ता है? स्पष्ट कीजिए।

3.8 सहायक पाठ्य सामग्री

1. सिंह सविंद्र, 2020, समुद्र विज्ञान, प्रवालिका पब्लिकेशन्स, प्रयागराज।
2. नेगी बी. एस., जलवायु विज्ञान तथा समुद्र विज्ञान, केदारनाथ रामनाथ, मेरठ।
3. सिंह सविंद्र, 2020, जलवायु विज्ञान, प्रवालिका पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद।
4. लाल डी. एस. 2013, जलवायु एवं समुद्र विज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज।
5. गौतम अलका, 2017, जलवायु एवं समुद्र विज्ञान, रस्तोगी पब्लिकेशन्स, मेरठ।
6. तिवाड़ी अनिल कुमार एवं शर्मा बी. एल., 2008, जलवायु विज्ञान के मूल तत्व, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर।
7. कुमार अमित, 2011, जलवायु विज्ञान, विश्व भारती पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
8. वर्णवाल महेश कुमार, 2016, भूगोल एक समग्र अधययन, कॉ समॉस पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
9. खुल्लर डी. आर., 2014, भूगोल मुख्य परीक्षा, मैक्ग्रा-हिल प्रा. लि., नई दिल्ली।
10. भारती नीरज, अली अब्बास, मैकाबुक भारत एवं विश्व का भूगोल, अरिहंत पब्लिकेशन्स ‰इण्डियाŠ लिमिटेड, मेरठ।

टिप्पणी

11. ओझा एन. एस., 2016, वैकल्पिक भूगोल, क्रोनिकल पब्लिकेशंस प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।
12. मामोरिया चतुर्भुज सिसोदिया एम.एस., जलवायु विज्ञान एवं समुद्र विज्ञान, एस.बी. पी.डी. पब्लिकेशन हाउस आगरा।
13. हुसैन माजिद, संक्षिप्त भूगोल, टाटा मैकग्रा हिल एजुकेशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।
14. कुमार संजीत, कुमार अजीत, नेट/जे.आर.एफ./सेत भूगोल, पेपर-2, अरिहंत पब्लिकेशंस इंडिया लिमिटेड नई दिल्ली।
15. चतुर्भुज मामोरिया, सिंह कोमल, 2020, भूगोल बी.ए. तृतीय वर्ष, एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन आगरा ।
16. खन्ना सी.एल., यूनिफाइड भूगोल, बी.ए. तृतीय वर्ष, शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी, इंदौर।
17. न्याती जानकीलाल खन्ना, सी.एल., यूनिफाइड भूगोल, तृतीय सेमेस्टर शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी, इंदौर।
18. गर्ग एच. एस., सिंह कोमल, 2019-20, भूगोल, NCERT] एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन आगरा।
19. सिंह राजेश कुमार, 2014, विश्व का भूगोल, लुसेंट पब्लिकेशन, पटना, बिहार।
20. खुल्लर डी.आर., 1996, भूगोल, सरस्वती हाउस प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली।

इकाई 4 समुद्र विज्ञान : इतिहास, पृथ्वी पर भू–जल वितरण एवं महासागरीय तलों की विशेषताएं

संरचना

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 समुद्र विज्ञान की प्रकृति एवं क्षेत्र
  4.2.1 समुद्र विज्ञान की प्रकृति
  4.2.2 समुद्री विज्ञान का विषय क्षेत्र
4.3 समुद्र विज्ञान का ऐतिहासिक विकास
4.4 जल और थल का वितरण
4.5 महासागरीय तलों की प्रमुख विशेषताएं
  4.5.1 महाद्वीपीय सीमाएं : पृथ्वी की संरचना, प्लेट विवर्तनिकी और समुद्री तलछट
  4.5.2 गहरी समुद्री खाइयां (घाटियां)
4.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.7 सारांश
4.8 मुख्य शब्दावली
4.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.10 सहायक पाठ्य सामग्री

4.0 परिचय

समुद्र विज्ञान पृथ्वी के विज्ञान की एक शाखा है जो महासागर के बारे में बताती है। इसमें विभिन्न प्रकार के विषयों का समावेश है, जैसे कि महासागर के तल की परत की समाकृती, महासागरीय जल–प्रवाह, महासागरों और समुद्रों का खारापन, महासागरीय पानी का चक्र, समुद्री संसाधन, समुद्री पारिस्थितिक तंत्र इत्यादि। महासागरीय जल–प्रवाह लगातार एक ही दिशा में बहता है जो कि विभिन्न फोर्स द्वारा उत्पन्न होता है। जैसे लहरों का टूटना, हवा, कोरीओलिस दबाव, तापमान और खारेपन का अंतर एवं सूर्य और चंद्रमा द्वारा गुरूत्वाकषर्णीय खिंचाव के कारण लहरों का उठना। महासागरीय तल महासागर का निचला भाग होता है। महाद्वीपीय ढलान के तल के नीचे महाद्वीपीय उठान होता है, जो कि महाद्वीपीय ढलान के नीचे जमा हुए सेडीमेन्ट से बनता है। समुद्री पारिस्थितिक तंत्र पृथ्वी के तल का लगभग 71 प्रतिशत और ग्रहों का 97 प्रतिशत पानी है। समुद्री पारिस्थितिक तंत्र साफ पानी के पारिस्थितिक तंत्र से बिल्कुल अलग है क्योंकि इसमें घुलनशील पदार्थ विशेषकर नमक होता है। लगभग 85 प्रतिशत पदार्थ समुद्री पानी में सोडियम और क्लोरिन होते हैं।

इस इकाई में समुद्र विज्ञान की प्रकृति, क्षेत्र, इतिहास, पृथ्वी पर भू–जल वितरण, महासागरीय तलों की प्रमुख विशेषताएं, पृथ्वी की संरचना, प्लेट विवर्तनिकी, समुद्री तलछट तथा गहरी समुद्री घाटियां आदि तथ्यों का विश्लेषण किया गया है।

4.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- समुद्र विज्ञान की प्रकृति एवं क्षेत्र के बारे में जान पाएंगे;
- समुद्र विज्ञान के इतिहास से परिचित हो पाएंगे;
- पृथ्वी पर भू–जल वितरण की प्रक्रिया को समझ पाएंगे;
- महासागरीय तलों की प्रमुख विशेषताओं को समझ पाएंगे;
- महाद्वीपीय सीमाओं और पृथ्वी की संरचना को जान पाएंगे।

4.2 समुद्र विज्ञान की प्रकृति एवं क्षेत्र

समुद्र विज्ञान भौतिक भूगोल की एक महत्वपूर्ण शाखा है। जिसका एक स्वतंत्र विज्ञान के रूप में विकास हो रहा है। समुद्र विज्ञान आज बहुत ही महत्वपूर्ण विषय है। क्योंकि हम लोग इस पृथ्वी के लगभग 29.2 प्रतिशत भाग पर निवास करते है। शेष पृथ्वी के 70.8 प्रतिशत भाग पर जल राशियां हैं। पृथ्वी पर हमारी जनसंख्या बढ़ रही है। क्योंकि समुद्र ही मानव की भविष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति का स्रोत है। साथ ही अतुल संपदा का भंडार है। दूसरी तरफ ग्लोबल वार्मिंग हो रही है जिसके कारण समुद्र पृथ्वी पर अतिक्रमण कर रहा है। इस तरह से समुद्री प्रदूषण और समुद्र के आगे बढ़ने को कैंसे रोका जा सकता है। इसका अध्ययन करना आवश्यक हो गया है। इतना ही नहीं पृथ्वी पर मानव जीवन को प्रभावित करने में जल का महत्वपूर्ण स्थान है। सर्वप्रथम जीव की उत्पत्ति समुद्रों से ही मानी जाती है। जब समुद्रों का उद्भव हुआ तो कार्बन के भौतिक अथवा हाइड्रोकार्बन के एकीकरण से जीवाणु युक्त पदार्थों का निर्माण एवं विकास हुआ। समुद्र विज्ञान (oconography) में सागर महासागर का सामान्य चित्रण का अध्ययन भौगोलिक दृष्टि से किया जाता है।

हमारी पृथ्वी में जल जहां जिस रूप में है उसे जलमंडल (hydrosphere) कहते हैं। जैसे जल महासागरों, सागरों, झीलों, नदियों, भूमिगत जल तरल रूप में और और उच्च अक्षांशों और ऊंचे पर्वतों में ठोस रूप में तथा वायुमंडल में गैसीय रूप में है। इन सबका अध्ययन ही जलमंडल (hydrosphere) कहलाता है तथा इस जलमंडल या सागरों के अध्ययन को समुद्र विज्ञान कहते हैं। समुद्र विज्ञान में न केवल समुद्रों की भौगोलिक विशेषताओं का वरन् उसके भौतिक, रासायनिक, वानस्पतिक एवं जैविक अभिलक्षणों का भी विस्तृत अध्ययन किया जाता है।

समुद्र विज्ञान की परिभाषाएं

समुद्र विज्ञान ग्रीक भाषा के दो शब्दों (okeanos) जिसका अर्थ 'समुद्र' है तथा दूसरा शब्द (graphia) जिसका अर्थ है– 'वर्णन' अर्थात समुद्र विज्ञान का शाब्दिक अर्थ समुद्र अथवा सागर का वर्णन करना।

एम. ग्रांट के अनुसार, ''सामान्य भाषा में समुद्रों का अध्ययन करने वाली मानव ज्ञान की शाखा को ही समुद्र विज्ञान (oceanography) कहते हैं।''

मारमर (Marmer) के अनुसार, ''समुद्र विज्ञान के अंतर्गत मुख्यतः समुद्र बेसिनों के आकार एवं गुण जल की रचना गतियां आदि का अध्ययन सम्मिलित है।''

फ्रीमैन (Freeman) के अनुसार, "मौसम विज्ञान की भांति समुद्र विज्ञान भी जिसकी उत्पत्ति भौगोलिक पृष्ठभूमि से ही हुई है तथा इसमें जलमंडल महत्वपूर्ण स्थान रखता है जो कि पृथ्वी के धरातल पर अत्यंत गतिशील भाग है।"

प्राउडमैन (Proudman) के अनुसार, ''समुद्र विज्ञान सागरीय जल के भौतिक गुण धर्मों के संदर्भ में गतिकी तथा ऊष्मागतिकी के मूलभूत सिद्धांतों का अध्ययन करता है।''

सविंद्र सिंह के अनुसार, ''समुद्र विज्ञान एक विज्ञान है जिसके अंतर्गत सागरीय द्रोणियों एवं उनके उच्चावचों की विशेषताओं एवं उत्पत्ति सागरीय जल के भौतिक एवं रासायनिक गुणों (तापमान, लवणता एवं घनत्व) सागरिया गतियों (ज्वार, सागरीय तरंगें, महासागरीय धाराएं, ज्वारीय तरंग, सुनामी आदि) सागरिया अवसादों तथा निक्षेपों, सागरीय संसाधनों, तटीय आवासों (Habitats), सागरीय जीवों तथा जैविक उत्पादकता एवं मानव तथा सागरीय पर्यावरण के मध्य संबंधों का अध्ययन किया जाता है।"

4.2.1 समुद्र विज्ञान की प्रकृति

समुद्र विज्ञान एक क्रमबद्ध विज्ञान है। इसके अंतर्गत सागर महासागर जल की भौतिक एवं रासायनिक विशेषताएं, इसकी गहराई, तापमान लवणता, सागरीय गतियां, (लहरें धाराएं, ज्वार भाटा) महासागरीय बेसिन महासागरीय नितल का उच्चावच महासागर में पाई जाने वाली वनस्पतियों, जीव जंतु, प्रवाल भित्ति, महासागरीय जमाव, प्रवाल विरंजन, समुद्री संसाधन– जैविक संसाधन, अजैविक संसाधन, खनिज एवं ऊर्जा संसाधन– गैसीय ऊर्जा, पेट्रोलियम, समुद्र स्तर में परिवर्तन, समुद्री कानून, समुद्री प्रदूषण एवं व्यावहारिक समुद्र विज्ञान आदि का अध्ययन किया जाता है। साथ ही विभिन्न महासागरों की उत्पत्ति, उनकी सीमाएं, खाड़ियां, जलडमरूमध्य आदि का अध्ययन किया जाता है। महासागर की सतह में होने वाले परिवर्तन किस प्रकार मानव को, स्वयं महासागरों को किस प्रकार प्रभावित करते हैं। जलवायु में होने वाले दीर्घकालीन परिवर्तनों का समुद्र की सतह में होने वाले परिवर्तन से घनिष्ठ संबंध होता है। समुद्र में गिरने वाली नदियों, महाद्वीपीय ग्लेशियर तथा अपरदन क्रिया का महासागर पर क्या प्रभाव पड़ता है, इन सभी का अध्ययन समुद्र विज्ञान की प्रकृति है। इसी तरह से समुद्री निक्षेपों के अध्ययन से सुदूर अतीत की उन दशाओं का ज्ञान प्राप्त होता है जिनमें इन जीवों का विकास होता है। निक्षेपों द्वारा अतीत के भूगार्भिक युगों में हुए जलवायु परिवर्तनों का वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त होता है।

महासागरों का महत्व

महासागर हमारे प्राकृतिक पर्यावरण का महत्वपूर्ण भाग है।

- जलवायु पर प्रभाव– स्थल की अपेक्षा जल की विशिष्ट ऊष्मा अधिक होती है, जिससे स्थल की अपेक्षा जल देर से गर्म होता है और देर से ठंडा होता है। इस क्रिया का प्रभाव जलवायु पर पड़ता है। यही कारण है कि समुद्र के निकटवर्ती स्थानों की जलवायु सम (Moderate) रहती है।
- पृथ्वी पर जीवों की उत्पत्ति सर्वप्रथम महासागरों में हुई है। जीवों के वर्तमान स्वरूप में विकसित होने में लाखों करोड़ों वर्षों का समय लगा।

- समुद्र जल में गति होती है, इस गति के कारण समुद्री धाराएं ज्वारीय तरंगें महासागरीय जल में निरंतर मंथन करती हैं। जिसके कारण जल को गर्म और ठंडा होने में अधिक समय लगता है।
- महासागरों में हजारों प्रकार के जीव–जंतु वनस्पतियों के अक्षय भंडार हैं। इनमें पादप, प्लवक, प्राणी प्रमुख हैं। इनमें प्लवक (फाइटो प्लैंक्टन तथा जूओ प्लैंक्टन) अत्यंत सूक्ष्म आकार के होते हैं, उन्हें अन्य प्रकार के समुद्री जीवों की उत्पत्ति और विकास में सहायक माना जाता है। समुद्र के तल में घुले हुए विभिन्न प्रकार के रासायनिक पदार्थों तथा जल की सतह पर पड़ने वाली सूर्य की किरणों की सहायता से प्लैंक्टन द्वारा अनेक प्रकार के जीवों का निर्माण करते हैं, पुनः इन्हीं समुद्री जीवों के मृत शरीर के खोल नितल पर निक्षेप के रूप में एकत्रित होते रहते हैं।
- आर्थिक दृष्टि से महासागर और भी अधिक महत्वपूर्ण हैं क्योंकि इनमें विभिन्न खनिज पदार्थ, नमक, बहुमूल्य रत्न, उन्नतशील तकनीकों द्वारा समुद्री जल से मैग्नीशियम, पेट्रोलियम, गैस, सोना, सीसा, सोडियम क्लोराइड आदि विभिन्न खनिजों को प्राप्त किया जाता है। अतः समुद्र संसाधन के भंडार हैं।
- महासागर विश्व की बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए भोज्य पदार्थ की पूर्ति का एक प्रमुख साधन है जो प्रोटीन आहार का महत्वपूर्ण घटक है। वर्तमान में प्रोटीन की खपत का 3% महासागरों से प्राप्त मछलियों से उपलब्ध होता है और ये भविष्य के प्रमुख भंडार हैं।
- पेट्रोलियम कोयला तथा गैस आदि खनिज के विशाल भंडार हैं।
- महासागरों में संसाधनों का विशाल भंडार सुरक्षित पड़ा है। आज आवश्यकता इस बात की है कि किसी प्रकार बिना क्षति पहुंचाए इनका प्रयोग किया जाए।
- समुद्री जीव से प्राप्त होने वाली औषधियां अनेक हैं, अतः समुद्री जैविक विविधता तथा समुद्री प्राकृतिक आवास (Marine Biodiversity and Marine Habitat) को सुरक्षित रखा जाए।
- आवागमन का प्रमुख साधन है– महासागर, एक महाद्वीप से दूसरे महाद्वीप के लिए अपारगम्य है। आज विभिन्न राष्ट्रों के मध्य समुद्री मार्ग अधिक सुगम और सस्ते हैं।
- सामरिक दृष्टि से भी महासागर का महत्व है, प्रत्येक राष्ट्र समुद्र तट पर अपने अधिकार हेतु प्रयासरत हैं। हिन्द महासागर का सामरिक महत्व तो और भी अधिक महत्वपूर्ण है।

4.2.2 समुद्री विज्ञान का विषय क्षेत्र

समुद्र विज्ञान समुद्रों का एक क्रमबद्ध विज्ञान है, जिसके अंतर्गत समुद्रों में घटित होने वाली विभिन्न घटनाओं का अध्ययन किया जाता है। समुद्र विज्ञान केवल समुद्रों का ही अध्ययन नहीं करता अपितु एक अंतरानुशासनिक विज्ञान भी है जिसमें भौतिकी (Physics), रसायन शास्त्र (Chemistry), भौमिकी (Geology) तथा जीव विज्ञान (Biology) के माध्यम से सागरीय जल के भौतिक एवं रासायनिक तत्वों का अध्ययन, सागरीय तली में होने वाली अनेक प्रक्रियाओं तथा परिघटनाओं का अध्ययन तथा जल में पाए

जाने वाले विभिन्न प्रकार के पौधों एवं जीव जंतुओं का भी अध्ययन किया जाता है। समुद्र विज्ञान के विषय क्षेत्र के अंतर्गत हम समुद्री जल की विभिन्न गहराइयों, समुद्री जल की संरचना, जल के तापक्रम, लवणता, ऊष्मा बजट धाराएं, लहरें, ज्वार भाटा महासागर जमाव, प्रवाल भित्ति, प्रवाल विरंजन, समुद्री संसाधन, खनिज और ऊर्जा समुद्र स्तर में परिवर्तन, समुद्री कानून, समुद्री प्रदूषण, व्यावहारिक समुद्र विज्ञान आदि का अध्ययन करते हैं। जैसा कि निम्न चित्र से स्पष्ट होता है।

समुद्र विज्ञान

हाइड्रोस्फीयर/जल विज्ञान

• समुद्र एक परिचय व्यावहारिक समुद्र विज्ञान	1. समुद्र तल से राहत	7. प्रवाल भित्तियाः प्रवाल विरंजन
	2. लवणता	8. समुद्री संसाधनः जैविक खाद्य एवं ऊर्जा
	3. महासागर का तापमान	9. समुद्र स्तर में परिवर्तन
	4. धाराएं, लहरें	10. समुद्री कानून
	5. ज्वार	11. समुद्री प्रदूषण
	6. महासागरीय जमाव	

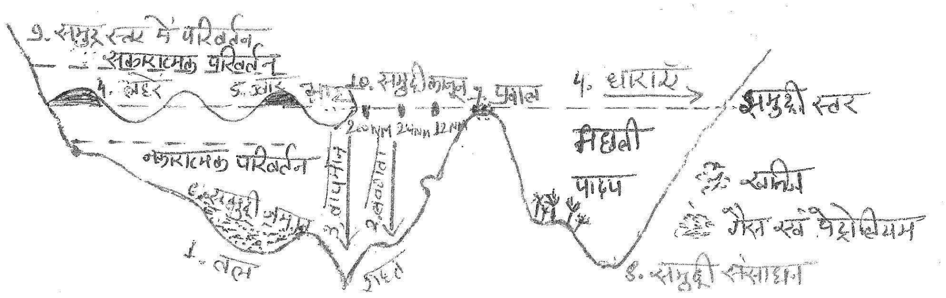

समुद्र विज्ञान का विषय क्षेत्र

1. भौतिकीय एवं विवर्तनिकी द्वारा महासागरों की उत्पत्ति, महाद्वीपीय विस्थापन
   - प्लेट टेक्टोनिक एवं सागर नितल का प्रसरण
2. समुद्री भू आकृतियां
   - सागरीय उच्चावच
   - महाद्वीपीय निम्न तट
   - महाद्वीपीय ढाल
   - अगाध सागरीय मैदान
   - महासागरीय खड्ड (खाई)
3. भौतिक एवं रासायनिक संरचना
   - समुद्री– तापमान (ऊष्मा बजट)
   - समुद्री–घनत्व
   - समुद्री–लवणता
   - समुद्री–निक्षेप
   - समुद्री दबाव एवं संपीड़न

4. समुद्री गतियां
    - महासागरीय–तरंगें
    - महासागरीय–लहरें
    - महासागरीय–धाराएं
    - महासागरीय–ज्वार भाटा
    - सुनामी–ज्वारीय तरंगें
5. वायुमंडल एवं महासागरीय परिसंचरण
    - वायुमंडलीय परिसंचरण एवं समुद्री धाराएं
    - दक्षिणी दोलन एवं वाकर परिसंचरण
    - एल–निनो एवं ला–निनो
6. तटीय आवास एवं बायोम
    - तटीय आवास
    - एश्चुअरी
    - तटभूमि
    - लैगून
    - मैंग्रोव
    - तटीय बायोम
    - लिटोरल
    - उप–लिटोरल
    - पेलेजिक
7. समुद्री पारिस्थितिकी
    - सागरीय जीवों का वर्गीकरण
    - सागरीय उत्पादकता
    - आहार श्रृंखला
    - सागरीय पौधे
    - सागरीय जंतु
8. प्रवाल भित्तियां
    - प्रवाल विरंजन
9. समुद्री संसाधन
    - जैविक संसाधन
    - अजैविक संसाधन
    - खनिज एवं ऊर्जा
10. मानव एवं समुद्री पर्यावरण
    - समुद्री प्रदूषण
11. व्यावहारिक समुद्र विज्ञान

समुद्र विज्ञान की प्रमुख शाखाएं

वर्तमान में समुद्र विज्ञान की अनेक शाखाएं विकसित हुई हैं जो इसके क्षेत्र, विस्तार और परिवर्तनशील प्रकृति की द्योतक हैं। इसकी प्रमुख शाखाएं निम्न हैं–

भौतिक समुद्र विज्ञान (Physical Oceanography)– समुद्र विज्ञान की इस शाखा के अंतर्गत स्थल, जल एवं वायुमंडल की भौतिक जटिल प्रक्रियाओं का समुद्रों पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया जाता है। इस शाखा में मुख्यतः महासागरीय जल के भौतिक गुणों जैसे तापमान, लवणता, दबाव आदि का अध्ययन किया जाता है। इसके अलावा समुद्री जल संचरण धाराएं, तरंगें, ज्वार–भाटा, समुद्री अवसादों, महासागरों का नितल आदि का अध्ययन भौतक समुद्र विज्ञान में किया जाता है।

रासायनिक समुद्र विज्ञान (Chemical Oceanography)– समुद्र विज्ञान की इस शाखा के अंतर्गत समुद्री जल की संरचना, समुद्री जल के तत्व जैसे लवणता की मात्रा और उसको प्रभावित करने वाले कारक समुद्र में लवणता का प्रतिशत, वितरण, लंबवत एवं क्षितिज वितरण, वाष्पीकरण की मात्रा, प्रकाश संश्लेषण की क्रिया, समुद्रों में पोषक तत्व, उत्पादकता, जैविक तत्व आदि अनेक ऐसे रासायनिक कारक होते हैं जो महासागरीय जल में पाए जाते हैं। जैविक, भौतिक, भूगार्भिक प्रक्रमों को नियंत्रित करते हैं। इन्हीं कारणों से आधुनिक समुद्र विज्ञान में समुद्री जल के रासायनिक विश्लेषण का महत्व बढ़ गया है। क्योंकि लवणता की कमी या अधिकता से समुद्रों में गतियां होती हैं, धाराएं चला करती हैं।

जैविक समुद्र विज्ञान (Biological Ocenography)– समुद्र विज्ञान की यह शाखा जीवों तथा समुद्री वनस्पतियों से संबंधित है। समुद्र का एक जैवीय पर्यावरण के रूप में अध्ययन किया जाता है। इस शाखा के अंतर्गत समुद्री जीवों का वर्गीकरण, वितरण, जिसमें विभिन्न प्रकार की मछलियां, शैवाल, प्लैक्टन, नेकटन, विभिन्न प्रकार के प्रवाल, तैरने वाली वनस्पतियां, सागरीय आवासों, मैंग्रोव, सागरीय पुलिन, लैगून, सागरीय बायोम, परिस्थितिकीय उत्पादकता, सागरीय आहार श्रृंखला तथा सागरीय जैव भू रासायनिक चक्र आदि का अध्ययन किया जाता है। संपूर्ण प्रोटीन पदार्थों की उपलब्धि में 3 प्रति प्रोटीन पदार्थ मछलियों से प्राप्त होता है। समुद्र सबसे ज्यादा 'कार्बन डाईऑक्साइड' सोखते हैं और पृथ्वी पर सबसे अधिक 'ऑक्सीजन' की मात्रा भी हमें समुद्रों से ही प्राप्त होती है।

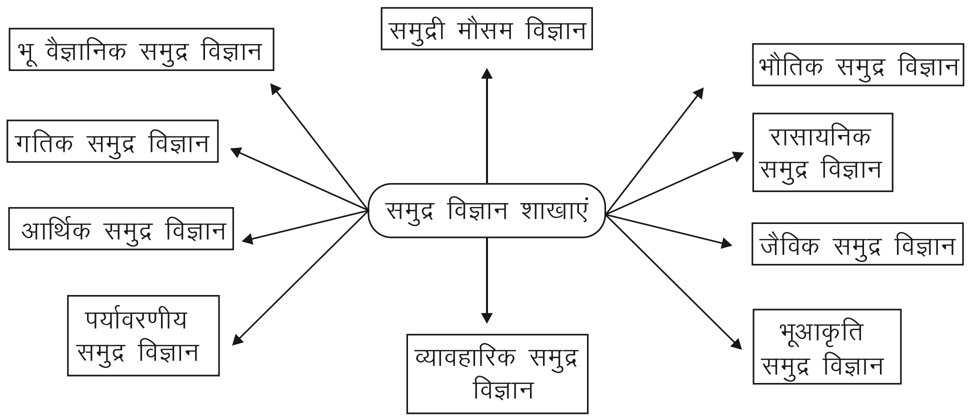

समुद्र विज्ञान की शाखाएं

भू–आकृतिक समुद्र विज्ञान (Geomorphological Oceanography)

इस शाखा के अंतर्गत समुद्र अनाच्छादन प्रक्रियाओं के द्वारा विभिन्न स्थल रूपों का विकास होता है, जैसे सागरीय क्लिप, कन्दरा, तरंग, वेदिका, स्टैक, महासागरीय चबूतरा, सागरीय पुलिन आदि विभिन्न भू–रूपों का निर्माण सागरीय अपरदन, परिवहन और निक्षेपण के द्वारा होता है।

भू–वैज्ञानिक समुद्र विज्ञान (Marine Geology)

समुद्र विज्ञान की यह शाखा सागरों, महासागरों के बेसिनों की उत्पत्ति एवं भू–वैज्ञानिक संरचना का अध्ययन करती है। इसके अंतर्गत– बेसिनों की उत्पत्ति, संरचना, समुद्रों की आकारकी, महासागरीय नितल का प्रसरण, महाद्वीपीय विस्थापन एवं प्रवाह, प्लेट टेक्टोनिक आदि के द्वारा महासागरों तथा महाद्वीपों की वर्तमान स्थिति की व्याख्या करने में सहायता मिलती है। कैसे पैजिया और पैथालासा से महाद्वीप एवं महासागरों का निर्माण हुआ और आज भी इनमें विकास हो रहा है। समुद्री भूकंप और ज्वालामुखी तथा भू–चुंबकत्व के द्वारा महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है।

गतिक समुद्र विज्ञान (Dynamic Oceanography)

इस शाखा के अंतर्गत मुख्यतः सागरीय जल की गतियां जैसे– लहरें, सागरीय तरंगें, महासागरीय धाराएं, ज्वार भाटा, सुनामी, तूफानी तरंगों, वाकर संचरण एल–निनो एवं ला–निनो परिघटना आदि का अध्ययन किया जाता है।

आर्थिक समुद्र विज्ञान (Economic Oceanography)

आर्थिक समुद्र विज्ञान की शाखा का महत्व संसाधन एवं ऊर्जा संसाधन के रूप में और भी अधिक बढ़ गया है। प्राचीन काल से व्यापार एवं वाणिज्य के क्षेत्र में इसका महत्व था परंतु आज सामरिक दृष्टिकोण से महासागरों का महत्व और भी अधिक बढ़ गया है। विश्व में तेल समुद्री माध्यम से वर्तमान समय में यातायात किया जाता है। आर्थिक समुद्र विज्ञान के अंतर्गत सागरीय–खनिज संसाधन, ऊर्जा संसाधन, खाद्य संसाधन प्रमुख हैं। आधार रेखा से सागर की ओर दो सौ नॉटिकल मील या 370.4 किलोमीटर तक की दूरी वाले भाग को विशिष्ट आर्थिक मंडल (EEZ) कहते हैं।

पर्यावरण समुद्र विज्ञान (Environmental oceanography)

समुद्र विज्ञान की इस शाखा के अंतर्गत समुद्री परिस्थितिकी तंत्र तथा पारिस्थितिकी का अध्ययन किया जाता है। चूंकि विभिन्न आर्थिक उद्देश्यों को लेकर मनुष्य की सागरों पर उपस्थिति बढ़ती जा रही है। जिस कारण अनेक पर्यावरणीय समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं। विश्व में तेल समुद्रों के माध्यम से यातायात किया जाता है। कई बार ऐसा होता है कि तेल का रिसाव हो जाता है और वह समुद्र में फैल जाता है या टैंकर पलट जाता है। जब यह फैलता है तो समुद्री प्रदूषण होता है और ये वैश्विक जलवायु को प्रभावित करता है और ये सबसे अधिक घातक होता है। क्योंकि तेल का सर्फेस सेंटर जल के सर्फेस सेंटर से अलग होता है और तेल तेजी से जल में फैल जाता है जो पानी के ऊपर परत के रूप में चढ़ जाता है। अतः इसे शीघ्र ही सुखाया नहीं जा सकता। जिसके कारण समुद्री वनस्पतियां, समुद्री जीव–जंतु बड़ी मात्रा में प्रभावित होते हैं। इससे समुद्री प्रदूषण बढ़ रहा है। जिसके कारण सागरीय पारिस्थितिकी असंतुलन हो रही है। अतः इसका अध्ययन करना समुद्र विज्ञान का महत्वपूर्ण विषय है।

अनुप्रयुक्त या व्यवहारिक समुद्र विज्ञान (Applied Oceanography)

यह समुद्र विज्ञान की नवीन एवं व्यावहारिक शाखा है। तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या और उनकी आवश्यकता की पूर्ति के लिए समुद्र विज्ञान की उपयोगिता बढ़ती जा रही है। चूंकि आर्थिक दृष्टि से भी महासागरों के महत्व में वृद्धि हो रही है। अब समुद्र भविष्य के संसाधनों के भंडार हैं। दूसरी तरफ पृथ्वी के स्थल भाग के संसाधन का अत्यधिक शोषण के फलस्वरूप समाप्त होने की कगार में है। औद्योगीकरण के बढ़ने से मानव सामुद्रिक संसाधनों की ओर अग्रसर हो रहा है क्योंकि वही एक आशा की किरण मात्र है और भावी पीढ़ियों के लिए इन्हीं के द्वारा खाद्य संसाधन, ऊर्जा संसाधन, खनिज संसाधन की संभावना विद्यमान है। आज समुद्री यानों का निर्माण, बंदरगाहों का निर्माण, समुद्र तल से प्राकृतिक गैस, पेट्रोलियम खोज अभियान, समुद्री जैव संसाधनों के विदोहन इस शाखा का मुख्य उद्देश्य है। इसलिए इसे सामुद्रिक यांत्रिकी (Ocean-Engineering) भी कहते हैं। अतः मानव जाति के कल्याण के लिए महासागरों का योगदान बहुत ही महत्वपूर्ण है।

समुद्री मौसम विज्ञान (Marine Meteorology)

समुद्री मौसम विज्ञान के अंतर्गत ऊर्जा विनिमय, वायुदाब तथा पवन प्रवाह आदि का अध्ययन पार्थक्य–पृष्ठ के संदर्भ में किया जाता है। मौसम तथा जलवायु का महासागरों पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए नियत वाही पवनों से उत्पन्न दबाव से लहरें तथा समुद्री धाराएं, उष्ण एवं शीतल धाराएं, वायुमंडलीय विक्षोभ के द्वारा ज्वारीय तरंगें तथा वायुमंडलीय ताप परिसंचरण से समुद्र का तल अधिक प्रभावित होता है। सूर्यताप से लगातार वाष्पीकरण होता है, जिससे जलीय चक्र (Hydrological) का निर्माण होता है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. "समुद्र विज्ञान सागरीय जल के भौतिक गुणधर्मों के संदर्भ में गतिकी तथा ऊष्मागतिकी के मूलभूत सिद्धांतों का अध्ययन करता है।" यह परिभाषा किसने दी?

   (क) फ्रीमैन   (ख) प्राउडमैन

   (ग) सविंद्र   (घ) एम. ग्रांट

2. हमारी पृथ्वी में जल जहां जिस रूप में है उसे निम्न में से क्या कहा जाता है?

   (क) वायुमंडल   (ख) थलमंडल

   (ग) जलमंडल   (घ) इनमें से कोई नहीं

4.3 समुद्र विज्ञान का ऐतिहासिक विकास

समुद्र विज्ञान की एक क्रमबद्ध विज्ञान के रूप में नींव प्राचीन काल में समुद्री खोज यात्राओं के द्वारा रखी गई थी। बाद में समुद्री विज्ञान का विकास 15वीं एवं 16वीं शताब्दी में व्यापक स्तर पर खोज एवं अन्वेषण के दौर से प्रारंभ हुआ। इस युग को खोज एवं अन्वेषण का महायुग कहा गया। परंतु उसका वैज्ञानिक रूप से विकास 19वीं

सदी की देन है, क्योंकि सागरों, महासागरों के रहस्यों को जानने के लिए कई सागरीय यात्राएं, आधुनिक जलपोत, संयंत्रों, शोधों की नई प्रवृत्तियों के साथ समुद्र विज्ञान का तेजी से विकास हुआ। हर्डमैन के अनुसार, समुद्र विज्ञान का विकास वर्तमान युग में हुआ। किंतु इसकी उत्पत्ति अत्यंत प्राचीन है।

समुद्र विज्ञान के ऐतिहासिक विकास को निम्न तीन भागों में बांट सकते हैं–

1. प्रारंभिक काल या प्राचीन क्लासिकल युग
2. मध्यकाल या अंध युग
3. आधुनिक काल या पुनर्जागरण काल

1. प्राचीन काल– इस काल में नाविकों, इतिहासकारों, दार्शनिकों आदि के द्वारा ज्ञात पृथ्वी की जानकारी तथा उनका ज्ञान भूमध्य सागर के आसपास तक ही सीमित था। यह काल मुख्य रूप से 4000 BC से दूसरी AD तक माना जाता है। इसमें प्रमुख होमर, हेकेटियस, स्ट्रेबो, अरस्तू, हेरोडोटस, पाइथागोरस, इरेतोस्थनीज आदि यूनानी विद्वान प्रमुख थे। जिन्होंने नौपरिवहन के द्वारा समुद्री मार्ग की खोज की। इन्होंने भूमध्य सागर से लेकर काला सागर, लाल सागर, कैस्पियन सागर, हिंद महासागर, अरब सागर एवं अटलांटिक महासागर आदि के ज्ञात क्षेत्रों की खोज की तथा ज्वार तथा महासागर और वायुमंडल के अंतर्संबंधों की व्याख्या की और समुद्र के किनारे निवास करने वाले मानव के मुख्य व्यवसाय तथा नौकाओं के संचालन की कला मालूम की तथा सागरों, महासागरों से संबंधित ज्ञान का विकास किया। प्रमुख विद्वानों द्वारा जो खोजें की गईं वे निम्न हैं–

फिनीशियन (1000 BC से 300 ई. AD)– फिनीशियन को नौकाओं के निर्माण एवं संचालन की कला मालूम थी। उन्होंने भूमध्य सागर, लाल सागर, हिंद महासागर, रूम सागर के कुछ भागों की खोज की। इनके व्यापारिक संबंध दक्षिण पूर्वी एशिया के देशों से थे। इन्होंने कनारी द्वीप की खोज की। इन्होंने 590 ईसवी पूर्व अफ्रीका की समुद्री यात्रा की। साथ ही ब्रिटेन तक पहुंचने में सफलता प्राप्त की। फिनीशियन जाति के लोग साहसी एवं कुशल नाविक, चतुर व्यापारी थे।

एनेक्सीमेंडर (BC 610–546)– एनेक्सीमेंडर ने कैस्पियन सागर को एक खाड़ी एवं काले सागर को एक झील माना। उन्होंने कल्पना की कि पृथ्वी के सागर धीरे–धीरे संकुचित होते जा रहे हैं और एक दिन सूख जाएंगे।

पाइथस (ईसवी पूर्व से चौथी सदी)– ये प्रथम यूनानी नौपरिसंचरण थे। जिन्होंने इंग्लैंड की तट रेखा का मापन किया। अपनी समुद्री यात्रा के दौरान उन्होंने ज्वार की उत्पत्ति चंद्रमा से मानी। ये मूल रूप से खगोलस थे।

हिकेटियस (ईसवी पूर्व 520)– ये भूगोल के पिता कहे जाते हैं। इन्होंने आयोनियावासियों को अपना नौसैनिक बेड़ा तैयार करने की बात कही तथा नौसैनिक दस्ते पर निगरानी रखने को प्रेरित किया।

हेरोडोटस (ईसवी पूर्व 484 से 425)– इन्होंने 464 से 447 तक विश्व के अधिकांश भागों का भ्रमण किया। इन्होंने भूमध्य सागर के तटीय प्रदेशों को द्वीपों, काला सागर, अजोव सागर, कैस्पियन सागर तथा तीन महाद्वीपों से घिरा बताया तथा विश्व मानचित्र बनाया। इन्होंने 3 महाद्वीप अर्थात यूरोप, एशिया तथा लीबिया तथा तीन महासागर मारे इरेथ्रियन, मारे आस्ट्रेलिस तथा मारे अटलांटिक द्वारा आवृत थे।

टिप्पणी

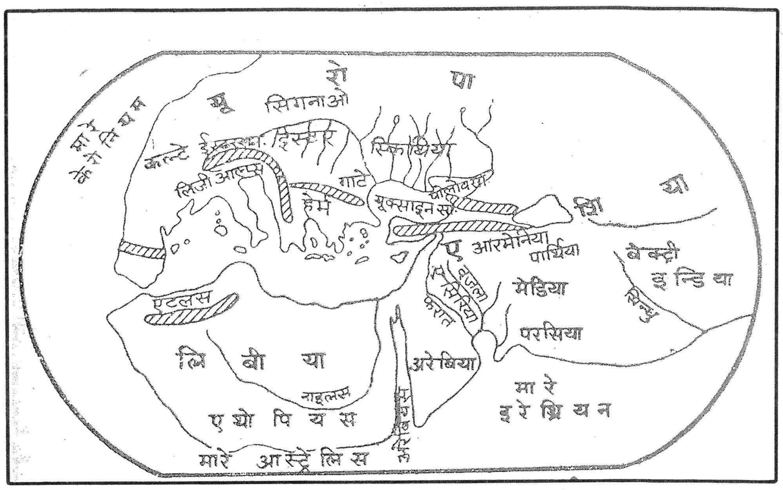

हेराडोटस के अनुसार ज्ञात विश्व ई. पू. 450

अरस्तू (ईसवी पूर्व 384–322)– अरस्तू एसियन, काला एवं कैस्पियन सागर के तटवर्ती भागों इटली, आयोनिया एवं उत्तरी अफ्रीका के तटवर्ती भागों में यात्रा की। उनका प्रसिद्ध ग्रंथ मेट्रोलॉजिका में महासागर और वायुमंडल के अंतर्संबंधों की व्याख्या की गई। इस ग्रंथ में वाष्पन, संघनन, वर्षण का उल्लेख मिलता है।

इरेटोस्थनीज (2016–192 ईसवी पूर्व)– ये प्रथम यूनानी गणितज्ञ थे, जिन्होंने पृथ्वी की परिधि की गणना की थी। इन्होंने पृथ्वी की गणना 40000 किलोमीटर बताई जबकि पृथ्वी की वास्तविक परिधि 40032 किलोमीटर है। इन्होंने मानचित्र में भूमध्य सागर के आसपास प्रदेशों को बताया तथा युक्साइन (काला सागर) तथा कैस्पियन सागर को अन्य विद्वानों की भांति उत्तरी सागर की खाड़ी माना।

इरेटोस्थनीज का विश्व मानचित्र

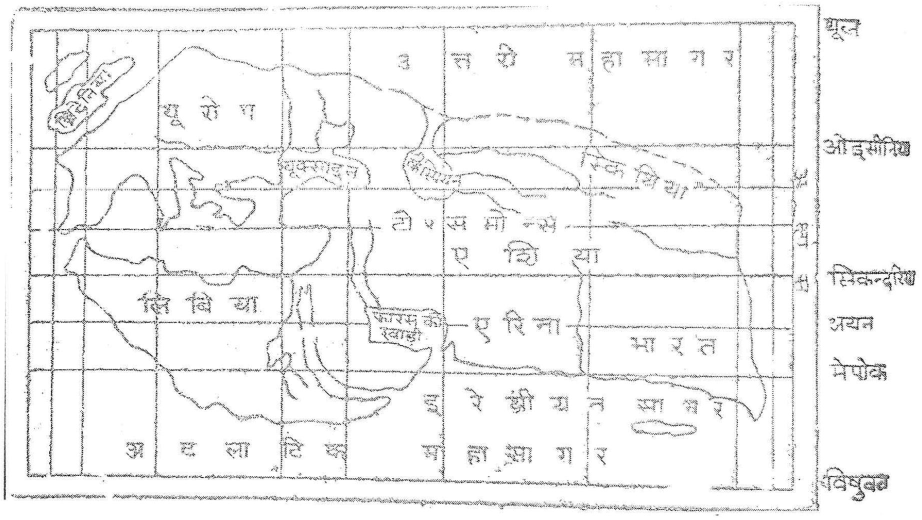

इरेटोस्थनीज रचित विश्व मानचित्र

पेसिडोनियस (ईसवी पूर्व 135 से 50 ईसवी पूर्व)– पेसिडोनियस ने पहली बार महासागरों की गहराई बताने का प्रयास किया। उन्होंने भूमध्य सागर में सार्डिनिया के पास गहराई 1000 फैदम तक का मापन किया। वर्तमान में भूमध्य सागर का यह

भाग सबसे गहरा माना। उन्होंने व्यवस्थित रूप से ज्वार भाटा का निरीक्षण किया और बताया कि अमावस्या एवं पूर्णिमा के आसपास ज्वार की ऊंचाई सबसे अधिक होती है। ज्वार भाटा का सीधा संबंध सूर्य एवं चंद्रमा से है।

स्ट्रेबो (63 ईसवी पूर्व से 24 ईसवी)– स्ट्रेबो ने विश्व मानचित्र में लीबिया को महासागर से घिरा माना है। उन्हें काला सागर (यूक्साइन), भूमध्य सागर के द्वीपों, तटों, खाड़ियों एवं बंदरगाहों का अच्छा ज्ञान था तथा उन्होंने भूगोल पढ़ने के लिए यात्रा को महत्वपूर्ण माना।

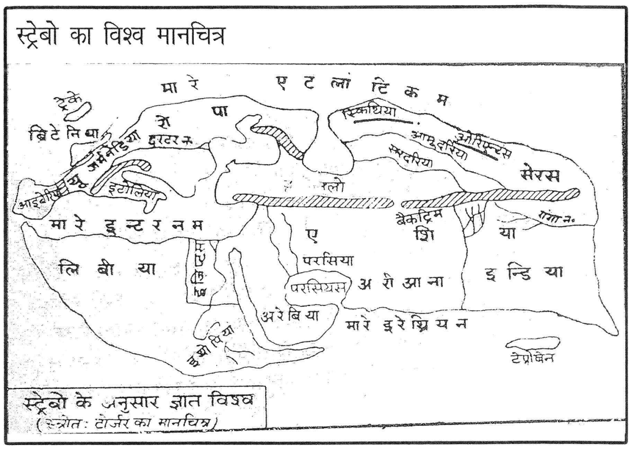

स्ट्रेबो के अनुसार ज्ञात विश्व

टॉलमी (90 से 168 ईसवी)– टॉलमी ने समस्त रोम साम्राज्य का मानचित्र प्रस्तुत किया। टॉलमी का विश्व मानचित्र में अक्षांश एवं देशांतर रेखाओं के द्वारा तीन महाद्वीपों को दर्शाया गया। ये महाद्वीप एशिया, यूरोप और अफ्रीका थे। हिंद महासागर (इरेशियन सागर) को स्थल से घिरा हुआ माना। विश्व मानचित्र में यूरोप, नीले व काले सागर के निकट प्रादेशिक मानचित्र भी बनाएं।

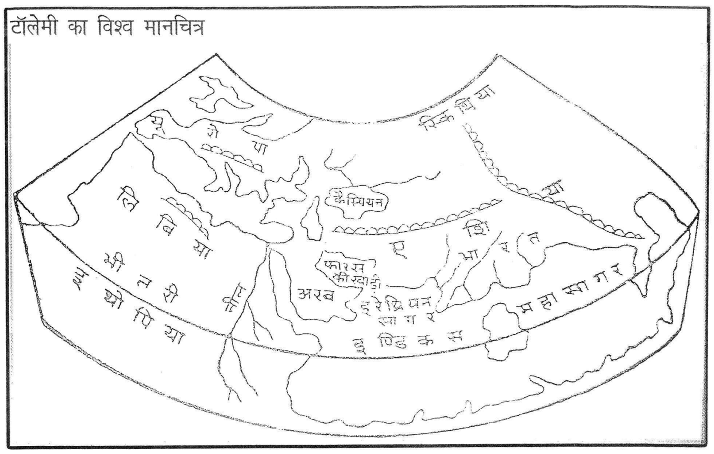

टॉलमी का विश्व मानचित्र

भारतीय ग्रंथों के अनुसार सागर– सागर को पुराणों में उदधि कहा गया है। भारतीय पुराणों में प्रायः सात सागर बताए गए हैं, ये सागर हैं– 1. क्षारोद अर्थात लवण सागर, अधिक खारे पानी वाला सागर, 2. इक्षुरसोद अर्थात् गन्ने के रस जैसा गहरे रंग वाला सागर (इसमें शैवाल अधिक मात्रा में रहे होंगे), 3. सुरोद सागर– सुरा की

भांति हल्का (स्वच्छ जल वाला सागर) निकटवर्ती द्वीप शाल्मलि है, 4. क्षीरोद – दुग्ध की भांति (विशेष अशांत सागर जिसमें तूफान आने से झाग अधिक मिलते हैं), 5. घृतोद सागर– घृत की भांति (जो घी की परत की भांति शांत रहने वाला), 6. दही मंडोत– दही जैसा (जहां पर सागर शीत ऋतु में जम जाए) 7. शोद्धोद– शुद्ध जल वाला (जिस सागर में खारापन नगन्य हो)।

2. मध्यकाल या अन्ध युग

समुद्र विज्ञान के विकास में मध्ययुग दूसरी सदी के अंत से चौदहवीं सदी ईसवी तक माना जाता है। इसका समुद्र विज्ञान के विकास में महत्वपूर्ण योगदान नहीं रहा। भूमध्य सागर के समीपवर्ती देशों पर अरबों का आधिपत्य स्थापित हो गया था। अरब के व्यापारी ने अपने अनुभव के आधार पर हिंद महासागर की पवन संचरण के मौसमी प्रतिरूप को समझ लिया था। जिससे मानसूनी हवाओं की जानकारी प्राप्त कर समुद्री यात्राओं का लाभ उठाया। ये व्यापारी भारत सहित दक्षिण पूर्वी एशिया के अन्य देशों की यात्रा किया करते थे। 673 ईसवी 735 ईसवी में एक अंग्रेज ने ज्वारीय परिघटना के बारे में बताया कि ज्वार चंद्रमा द्वारा नियंत्रित होता है। ज्वार की ऊंचाई हवा की शक्ति द्वारा नियंत्रित होती है। इनकी पुस्तक 'Se Temporum Ratione' है। यूरोप के स्कैंडेनोविया के निवासी विकिंग्स ने अटलांटिक महासागर में नौसंचालन किया और आइसलैंड से ग्रीनलैंड पहुंचे और ग्रीनलैंड से बैफिन द्वीप पहुंच गए। इस तरह एरिक द रेड ने 982 में बैफिन द्वीप की खोज की। लेफ एरिकसन जो एरिक द रेड का पुत्र था, उसने 995 ईसवी में विनलैंड (न्यूफाउंडलैंड) की खोज की। इस समय जलवायु अपेक्षाकृत गर्म थी जिससे यात्रियों को शीत प्रधान भूखंडों की यात्रा करने में कम कठिनाई झेलनी पड़ी। 13वीं शताब्दी में पुनः जलवायु परिवर्तन हुआ और तापमान में गिरावट के कारण उत्तरी अटलांटिक महासागर में हिम खंडों का प्रसार हुआ और समुद्री यात्रा बंद हो गई। इस बीच 1100 में चीन का योगदान सराहनीय रहा। चीन में 1000 ईसवी में दिक सूचक यंत्र का आविष्कार हुआ। इस यंत्र ने भावी समुद्री यात्रा में अधिक सहायता की और चीन के आंतरिक जलमार्गों को प्रशांत महासागर से जोड़ा गया। 1405–1433 के बीच चीनी यात्री ने सुदूर प्रदेशों की खोज की। एडमिरल जेगही ने हिंद महासागर, इंडोनेशिया तथा अफ्रीका के दक्षिण सिरे से लेकर अटलांटिक महासागर की खोज की।

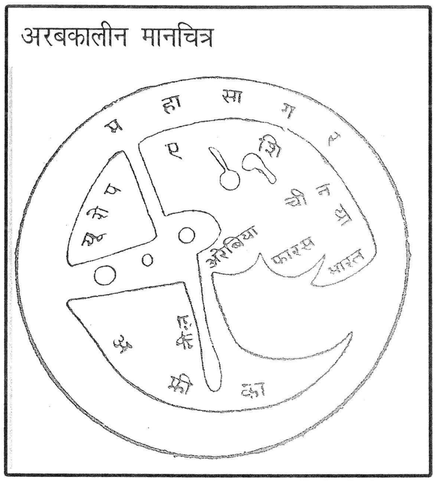

अरबकालीन मानचित्र

3. आधुनिक काल (पुनर्जागरण काल)

आधुनिक काल या पुनर्जागरण काल को निम्न भागों में बांटा जा सकता है–

1. खोज एवं अन्वेषण का महायुग (15वीं एवं 16वीं सदी)।
2. महासागर का आरंभिक वैज्ञानिक खोज काल (17वीं एवं 18वीं सदी)।
3. समुद्र विज्ञान का विकास (19वीं सदी का काल)।
4. 20वीं सदी में समुद्र विज्ञान का विकास।
5. 21वीं सदी में समुद्र विज्ञान का विकास।

1. खोज एवं अन्वेषण का महायुग (15वीं एवं 16वीं सदी)

15वीं ईसवी से 16वीं ईसवी तक खोज एवं अन्वेषण का युग कहा गया। इस युग में खोजों से नवीन दुनिया की खोज हुई। इसमें कोलंबस, वास्कोडिगामा ने अफ्रीका महाद्वीप के चक्कर लगाकर नियमित सामुद्रिक मार्ग की खोज की। यातायात मार्गों का पुनरुद्धार हुआ। समुद्री मार्ग द्वारा पहुंचने की लालसा से यूरोपवासियों में नवीन ज्ञान का संचार हुआ। प्रिंस हेनरी द नेविगेटर पुर्तगाल एवं महारानी इसाबेला (स्पेन) के निर्देशन में खुले समुद्रों में साहसपूर्ण यात्राओं का क्रम प्रारंभ हुआ। इन्होंने पुर्तगाल में सागरीय वेधशाला की स्थापना की। फलस्वरूप 15वीं सदी के अंतिम दो दशकों में एवं 16वीं सदी के प्रथम दो दशकों में महत्वपूर्ण एवं साहसिक यात्राएं संभव हो सकीं। 1492 में कोलंबस ने नई दुनिया व पश्चिमी द्वीप समूह की खोज की, जिसे वह पूर्वी द्वीप समूह एवं भारत समझ बैठा। 1498 में अंततः वास्कोडिगामा ने अफ्रीका का चक्कर लगाकर भारत की ओर का सामुद्रिक मार्ग खोजा। कुछ समय पश्चात 1519–21 में मैगलन ने संपूर्ण पृथ्वी का एक चक्कर लगाया और उसने अरस्तू की इस मान्यता को प्रमाणित किया कि पृथ्वी गोल है। इसके पश्चात खोज यात्राओं का सिलसिला तेज हुआ। 1500 से 1520 के मध्य स्पेनी तथा पुर्तगालियों ने मध्यवर्ती अमेरिका, उत्तरी पूर्वी अमेरिका तथा दक्षिणी अमेरिका की खोज की। डेलकानो ने उत्तमाशा अंतरीप की खोज की।

2. महासागर का आरंभिक वैज्ञानिक खोज काल (17वीं एवं 18 वीं सदी)

18वीं सदी में सागरों, महासागरों का वैज्ञानिक स्तर पर अध्ययन प्रारंभ हो गया। इस काल में ज्वार भाटा, महासागरीय जल का दबाव, धाराओं, महासागरीय तापमान का क्षैतिज एवं लंबवत वितरण, गहराई आदि का विस्तृत एवं वैज्ञानिक अध्ययन शुरू हो गया। (1728–1779) कैप्टन जेम्स कुक ने 3 यात्राएं कीं। उन्होंने न्यूजीलैंड तथा ऑस्ट्रेलिया महाद्वीप के पूर्वी भाग की खोज की। दूसरी समुद्री यात्रा 1772 ईसवी में अंटार्कटिका महाद्वीप की खोज की। इन्होंने आर्कटिक एवं अंटार्कटिका वृतों को पार किया। कुक ने विभिन्न द्वीपों जैसे ईस्टर, टोंगा, न्यू हेब्राइड्स, न्यू केलिडोनिया आदि की खोज की तथा उनके चार्ट बनाए। कुक ने हैरिसन द्वारा निर्मित क्रोनोमीटर की सहायता से विभिन्न स्थानों का देशांतर शुद्धता के साथ निर्धारण किया। कुक के तीसरे अभियान में विभिन्न द्वीपों का सर्वेक्षण किया। 1778 में हवाई द्वीप की खोज की। उन्होंने महासागर के तटीय क्षेत्रों, महासागरीय क्रस्ट, सागरीय पौधों, जंतुओं, सूक्ष्मजीवों, महासागरीय जल का तापमान, लवणता, महासागरीय धाराएं, ज्वार भाटा का विशद अध्ययन किया। इसके अलावा रॉबर्ट बोयले ने 'आब्जर्वेशन एण्ड एक्सपेरिमेंट ऑन न साल्टीनेस ऑफ द सी' नामक पुस्तक 1674 में प्रकाशित की। न्यूटन ने ज्वारीय उत्पत्ति

संबंधी सिद्धांत का प्रतिपादन किया। बेंजामिन फ्रेंकलिन ने गल्फ स्ट्रीम का समुद्री चार्ट बनाया। 1521 में फिलीपींस द्वीप की खोज की। सन 1532 में फ्रांसिस्को पिंजारो ने पेरू की खोज की। लगभग 60 वर्षों बाद फ्रांसिस ड्रेक ने दक्षिण अमेरिका तथा अंटार्कटिका ने मध्य मार्ग की खोज की। कोर्टेरियल (1500) ने न्यूफाउंडलैंड की खोज की। कर्टियर ने 1534– 44 में सेंट लारेंस की खाड़ी की खोज की। हडसन ने (1607–1611) हडसन की खाड़ी, बेफिन ने 1616 में बेफिन की खाड़ी की खोज की, हम्बोल्ट की यात्राएं भी उल्लेखनीय हैं। जेराडस मरकेटर ने विश्व मानचित्र के लिए सन 1569 में एक मानचित्र प्रक्षेप की रचना की जो नौसंचालन हेतु उपयोग किया जा सके।

3. समुद्र विज्ञान का विकास 19वीं सदी का काल

समुद्र विज्ञान का क्रमबद्ध विज्ञान के रूप में विकास 19वीं सदी में हुआ। समुद्र विज्ञान को क्रमबद्ध विज्ञान के रूप में विकसित करने में एडवर्ड फोर्ब्स, चार्ल्स डर्विन, चार्ल्स विल्किस, थॉमसन आदि का विशेष योगदान रहा।

एडवर्ड फोर्ब्स– ये जीवाश्म विज्ञानी थे किंतु समुद्र विज्ञान के प्रणेता थे। उन्होंने 1834 में एसियन सागर और आयरिस सागर पर कार्य किया। इन्होंने सागरीय जीवन पर प्रकाश डाला और कहा कि 600 मीटर के नीचे जीवन की संभावना नहीं है।

चार्ल्स डार्विन– ये प्रकृति विज्ञानी थे। इनकी पुस्तक 'ओरिजिन ऑफ स्पीसीज' है। इन्होंने 1831–36 जलपोत (बीगल) तथा प्रशांत महासागर के प्रवाल भित्ति तथा एटॉल पर कार्य किया। इन्होंने पशु–पक्षी तथा विकासवाद सिद्धांत का प्रतिपादन किया। इनकी प्राकृतिक छांट की संकल्पना है।

थॉमसन– इन्होंने अटलांटिक महासागर और प्रशांत महासागर के अधिकांश भाग का अनुसंधान किया। इन्होंने 492 स्थानों की गहराई नापी। 133 बार नितल से निक्षेप प्राप्त किया, 151 स्थानों पर समुद्री जीवों का अध्ययन किया, मेरियाना गर्त की गहराई नापी, प्रवाल भित्तियों की संरचना, समुद्री निक्षेपों का वितरण, 8 समुद्री भागों का तापमान मापने के लिए समुद्री अभियान चलाया और विभिन्न आंकड़े एकत्रित किए। उन्होंने 'चैलेंजर' शोध पोत 1872–1876 द्वारा खोज अभियान गठित किया। शोध पोत ने 125,800 किलोमीटर यात्रा की। तीन महासागरों में 362 प्रेक्षण केंद्र स्थापित किए। इसमें 19 वर्ष लगे। 50 ग्रंथों में रिपोर्ट प्रकाशित की। चैलेंजर अभियान ने समुद्र विज्ञान में क्रमबद्ध भौतिक, रासायनिक तथा जैविक शाखाओं को विकसित किया। इस अभियान में 4717 जैव प्रजातियां, मेरियान खाई 8185 मापी गई।

चैलेंजर अभियान परिणाम को "The Depth of the Sea" नामक पुस्तक में 1873 में प्रकाशित किया गया। 1877 ईसवी में "Voyage of the challenger the Atlantic" नामक ग्रंथ की रचना की। इस ग्रंथ में सारगेसो सागर, महासागरों के नितल के उच्चावच, गहरे समुद्रों के निक्षेप, तापमान, ज्वार भाटा, धाराओं का मापन तथा भौतिक एवं रासायनिक गुणधर्मों को प्रकाशित किया गया।

प्रिंस एल्बर्ट– इन्होंने समुद्र विज्ञान को महत्वपूर्ण योगदान दिया। इन्होंने मोनाको में सागरीय संग्रहालय तथा पेरिस में सागरीय संस्थान की स्थापना की। एफ. नान्सेन ने समुद्री जल की लवणता तथा तापमान की शुद्धता का मापन किया।

पुर्तगाल के प्रिंस हेनरी (1394–1460)

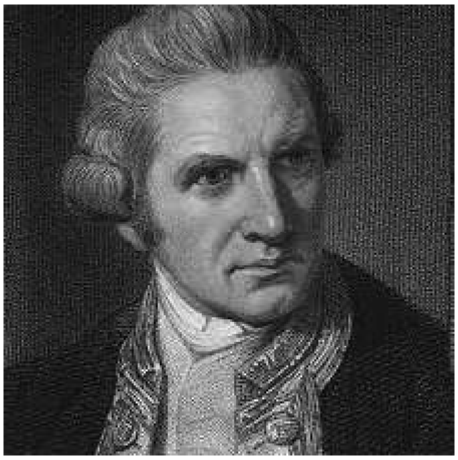

कैप्टन जेम्स कुक : ग्लोब का दो बार चक्कर लगाया (1728–1779)

फर्डिनेड मैगलन : नाव द्वारा विश्व का चक्कर लगाने वाला प्रथम खगोल यात्री (पुर्तगाल की खोज 1480–1521)

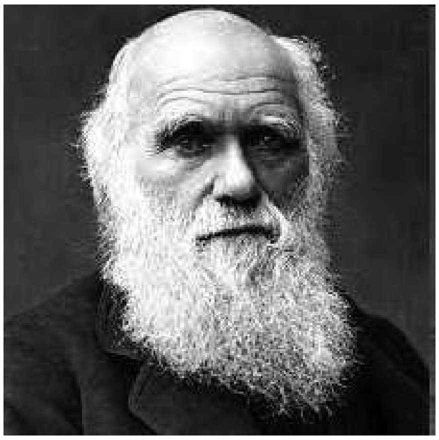

चाल्स डार्विन (1809–1882)

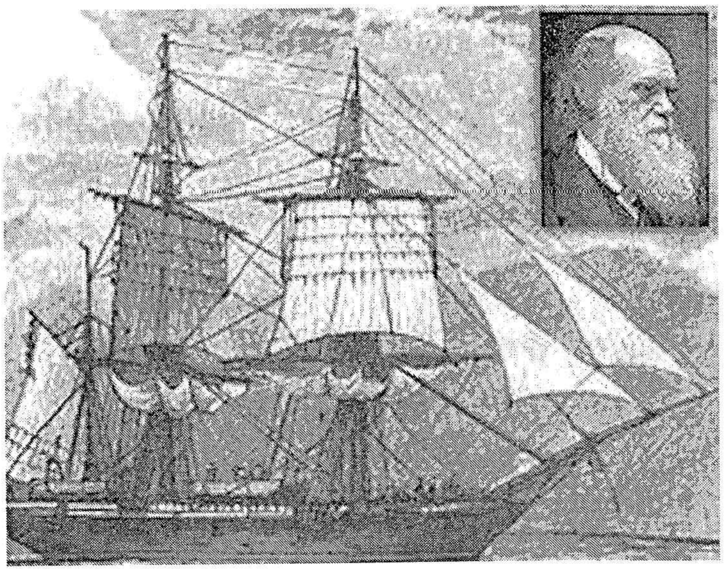

चार्ल्स डार्विन का जहाल (वीगल)

4. 20वीं सदी में समुद्र विज्ञान का विकास

20वीं सदी में समुद्र विज्ञान का विकास तीव्र गति से हुआ। इस सदी में आधुनिक जल पोतों, संयंत्रों, शोध कार्य बड़े पैमाने पर शुरू हो गए। आधुनिक तकनीकी के द्वारा नितल की बनावट, संरचना, निक्षेपों, प्रवाल आदि का क्रमबद्ध अध्ययन शुरू हो गया।

- बीसवीं सदी के प्रथम दशक में 1919 में बेहम ने प्रतिध्वनिक गंभीरतामापी यंत्र का आविष्कार किया।
- 1925–27 ईसवी मटियोर ने गंभीरतामापी यंत्र का प्रयोग किया और उन्होंने अंध महासागर में 70000 गहराइयों का मापन किया तथा ताप एवं लवणता की जटिल संरचना पर कार्य किया।
- मैथ्यू मौरी ने 'द फिजिकल ज्योग्राफी ऑफ द सी' का प्रकाशन किया।
- अलेक्जेंडर अगासीज, अलेक्जेंडर लुई अगासीज ने संयुक्त राज्य अमेरिका में अनेक शोध कार्य किए।
- संयुक्त राज्य अमेरिका ने 'नौसैनिक समुद्र वैज्ञानिक कार्यालय' की स्थापना की।
- हेलेण्ड हेनसन (1935) ने नार्वेजियन सागर का अध्ययन किया तथा जिओडेसी व जियोफिजिक्स के अंतर्राष्ट्रीय संघ की बैठक (1936) में इंटरनेशनल गल्फ स्ट्रीम सर्वे की स्थापना की।
- द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान संयुक्त राज्य अमेरिका की नौसेना ने समुद्र विकास किया, प्रशांत महासागर की गहराई नापी।
- जॉनसन फ्लेमिंग ने दी ओशन्श (The Oceans) पुस्तक लिखी।
- 1960 में हेस ने सागर तली प्रसरण (Ocean floor spreading) का विवरण दिया।
- 1957–58 में अंतरराष्ट्रीय भू–भौतिकी वर्ष मनाया गया, जिसमें 70 देशों ने भाग लिया।

- 1950 में विश्व मौसम संगठन की स्थापना हुई।
- 1967 में ग्लोबल एटमॉस्फीयर रिसर्च प्रोग्राम (GARP) परियोजना बनाई गई।

इस तरह से समुद्र विज्ञान के विकास में संयुक्त राज्य अमेरिका, फ्रांस, जर्मनी, जापान, भारत, बेल्जियम, कनाडा, रूस आदि देशों ने समुद्र विज्ञान में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। बीसवीं सदी में उपग्रह कंप्यूटर चुंबकीय तरंगें, रेडियो तरंगें, आधुनिक यंत्र, पनडुब्बियों व मानवीय यंत्रों के द्वारा समुद्र विज्ञान का विकास हुआ। अनेक शोध संस्थान कार्यरत रहे।

5. 21वीं सदी में समुद्र विज्ञान का विकास

21वीं सदी में समुद्र विज्ञान की प्रवृत्ति, पर्यावरण तथा पारिस्थितिकी के रूप में विकास हुआ। अनेक देशों ने अनेक शोध कार्य किए तथा संस्थाओं के माध्यम से विभिन्न पर्यावरणीय ह्रास से संबंधित शोध कार्य शुरू किए गए। साथ ही सागरों के सामरिक महत्व एवं व्यावहारिक समुद्र विज्ञान पर अधिक बल दिया। 2004 की भारत–सुमात्रा की सुनामी की भयावह घटनाओं ने सामुद्रिक शोध कार्य को और भी आगे बढ़ाया। साथ ही जलवायु की मॉनिटरिंग के लिए वायुमंडल और महासागर का अध्ययन महत्वपूर्ण विषय बन गया। कंप्यूटर उपग्रह की सहायता से आंकड़ों की प्रोसेसिंग में सहायता प्राप्त हुई।

भारत में समुद्र विज्ञान का विकास (Growth of Oceanography in India)

अंतर्राष्ट्रीय हिंद महासागर अभियान के अंतर्गत भारत में समुद्र विज्ञान संबंधी अनुसंधान शुरू किया गया। भारत में राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान नई दिल्ली में है जिसका उद्देश्य हिंद महासागर के बारे में जानकारी प्राप्त करना है। इस संस्थान के चार संभाग हैं तथा दो प्रमुख इकाइयां हैं। भारत ने सितंबर 1962 से दिसंबर 1965 तक अंतर्राष्ट्रीय हिंद महासागरीय खोज में सक्रिय सहयोग दिया।

1. नियोजन एवं सम्यक विभाग नई दिल्ली, इसमें भौतिक एवं रासायनिक सूचनाओं का विश्लेषण होता है।
2. हिंद महासागरीय जैविकीय केंद्र (एर्नाकुलम)
3. भौतिक समुद्र विज्ञान संभाग (एर्नाकुलम)
4. जैविकीय समुद्र विज्ञान संभाग (एर्नाकुलम)
5. राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान (मुंबई)

भारत में वैज्ञानिक शोध कार्य

1. भौतिक समुद्र विज्ञान
2. रासायनिक समुद्र विज्ञान
3. सागरीय जीव विज्ञान (मत्स्यिकी)
4. मौसम विज्ञान विभाग
5. सागरीय भू विज्ञान एवं भौतिक

मुख्य शोध पोतें

TNS कृष्णा, R.V. वरुण, R.V. कोच, F.V.बंगद प्रमुख हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

3. विश्व मौसम संगठन की स्थापना कब हुई थी?

(क) 1940 (ख) 1950

(ग) 1960 (घ) 1970

4. निम्न में से समुद्र विज्ञान का प्रणेता किसे माना जाता है?

(क) एडवर्ड फोर्ब्स (ख) चार्ल्स डार्विन

(ग) प्रिंस एल्बर्ट (घ) थॉमसन

4.4 जल और थल का वितरण

पृथ्वी पर जीवन के अस्तित्व के लिए जल परमावश्यक वस्तु है। सौरमंडल में पृथ्वी ही एक ऐसा ग्रह है जहां जल पाया जाता है। पृथ्वी पर 71% भाग पर जल का विस्तार है तथा 29% पर स्थल भाग है। इस 71% भाग में पाए जाने वाले जल में भी 97% भाग महासागरों, सागरों में पाया जाता है। इन महासागरों को जल का विशाल भंडार कहा जाता है। वायुमंडल में जलवाष्प की मात्रा इसी विशाल भंडार से वाष्पन के द्वारा प्राप्त होती है। स्वच्छ जल तथा पेयजल संपूर्ण पृथ्वी पर तीन प्रतिशत ही पाया जाता है। उत्तरी गोलार्द्ध में स्थल भाग की प्रधानता है तो दक्षिण गोलार्द्ध में जल का विस्तार है। उत्तरी गोलार्द्ध में क्षेत्रफल के 60.7% प्रति भाग पर जल का विस्तार है, जबकि दक्षिण गोलार्द्ध में 80.9% भाग पर जल का विस्तार है। निम्न चित्र में स्थलीय एवं जलीय भाग का विवरण दिखाया गया है।

ग्लोब पर जल एवं स्थल का वितरण

स्थलीय गोलार्द्ध

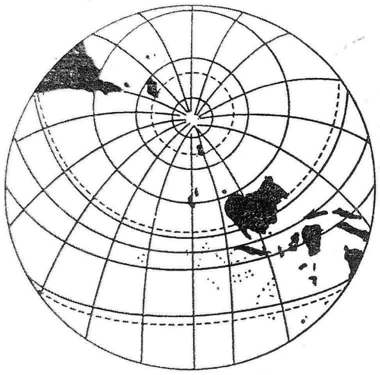

जलीय गोलार्द्ध

ग्लोब पर जल और स्थल का वितरण

स्थल व जल क्षेत्रों का सामान्य वितरण (General Distribution of Land And Water Areas)

ग्लोब पर देखने से स्पष्ट होता है कि महाद्वीप एवं महासागरों का वितरण बहुत ही असमान पाया जाता है। इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका (Encyclopaedia Britannica) के अनुसार, ग्लोब का कुल क्षेत्रफल 50.99 करोड़ वर्ग किलोमीटर है। सभी महासागर

टिप्पणी

मिलकर 36.10 करोड़ वर्ग किलोमीटर जल से ढके हुए हैं। इस जलमंडल के अंतर्गत सागर, महासागर, खाड़ियां, विशाल अंतर्देशीय सागर सम्मिलित हैं।

जल और स्थल के वितरण में निम्न तत्व हैं–

- ये महासागर भू–पर्पटी के जिस भाग पर फैले हैं, वह बेसाल्ट की परत है।
- संपूर्ण पृथ्वी तल पर वेगनर के अनुसार, प्रारंभिक काल में एक ही विशाल महासागर (जल राशि) के रूप में विद्यमान था जिसे उन्होंने पेन्थालासा नाम दिया था।
- आगे चलकर विशाल महासागर भूगार्भिक हलचलों के कारण अनेक सागरों में बंट गया। यथा–

  – प्रशांत महासागर (Pacific Ocean)

  – अटलांटिक महासागर या अंध महासागर (Atlantic Ocean)

  – हिंद महासागर (Indian Ocean)

  – उत्तरी ध्रुव महासागर या और आर्कटिक महासागर (Northern Ocean)

  – दक्षिणी ध्रुव महासागर या अंटार्कटिका महासागर (Southern Ocean)
- भूमध्य रेखा के उत्तर में लारेशिया भूखंड के महाद्वीप विस्तृत हैं, जिनके मध्य उत्तरी अटलांटिक महासागर तथा उत्तर में आर्कटिक महासागर विस्तृत हैं।
- दक्षिण में गोंडवाना लैंड के महाद्वीप स्थित हैं, जिनके मध्य में दक्षिण अटलांटिक महासागर तथा हिंद महासागर विस्तृत हैं।
- उपरोक्त दोनों स्थल खंडों के महाद्वीप को घेरते हुए विशाल प्रशांत महासागर हैं।
- उत्तरी गोलार्द्ध में स्थल का विस्तार अधिक है। उत्तरी गोलार्द्ध में उत्तरी ध्रुवीय महासागरीय बेसिन तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में उत्तरी ध्रुवीय महाद्वीपीय प्रदेश (अंटार्कटिका महाद्वीप) है।
- महाद्वीपों की आकृति त्रिभुजाकार है जिनके आधार उत्तर में आर्कटिक महासागर में है तथा शीर्ष दक्षिण में है।
- महासागर भी त्रिभुजाकार है परंतु उनके आधार दक्षिण में तथा शीर्ष उत्तर में स्थित है।
- स्थल गोलार्द्ध का केंद्र फ्रांस में स्वायर नदी के मुहाने पर और जल गोलार्ध का न्यूजीलैंड के दक्षिण पूर्व में है।

उत्तरी और दक्षिणी गोलार्द्ध में जल का वितरण विभिन्न अक्षांशों के अनुसार निम्न है–

अक्षांश में जल एवं स्थल का वितरण (कोसिन्ना के अनुसार)

अक्षांश	उत्तरी गोलार्द्ध		दक्षिणी गोलार्द्ध	
	जल का भाग (प्रतिशत में)	स्थल का भाग (प्रतिशत में)	जल का भाग	स्थल का भाग
90–85	100.0	–	–	100
85–80	85.2	12.8	–	100
80–75	77.1	22.9	10.7	89
75–70	65.5	34.5	38.6	61.4

70—65	28.7	71.3	78.5	20.4
65—60	31.2	69.8	99.7	0.3
60—55	45.0	55.0	99.9	0.1
55—50	40.7	59.3	98.5	1.5
50—45	43.8	56.2	97.5	2.5
45—40	51.2	48.8	96.4	3.6
40—35	56.8	43.2	93.4	6.6
35—30	53.7	42.3	84.2	15.8
30—25	59.6	40.6	78.4	21.6
25—20	65.2	30.8	75.4	24.6
20—15	70.8	29.2	76.4	23.6
15—10	76.5	23.4	76.6	20.4
10—5	75.7	24.3	76.9	23.1
5—0	78.3	21.4	75.9	24.1
90.0	60.7	39.3	80.3	19.1

4.5 महासागरीय तलों की प्रमुख विशेषताएं

प्रमुख महासागर प्रशांत महासागर, अटलांटिक महासागर, हिंद महासागर तथा आर्कटिक महासागर हैं, जो सदैव हिम आच्छादित रहते हैं। यहां प्रमुख तीन महासागरों एवं उनकी विशेषताओं का वर्णन किया जा रहा है।

1. प्रशांत महासागर (Pacific Ocean)

- यह विशाल महासागर है जो लगभग 1/3 क्षेत्र को घेरे हुए है। इस महासागर की औसत गहराई 4572 मीटर है तथा अधिकतम गहराई मेरियाना खाई में चैलेंजर 11033 मीटर है।
- प्रशांत महासागर में एशिया के पूर्वी तट तथा ऑस्ट्रेलिया के पूर्वी तट के सहारे मग्न तटों का विस्तार अधिक है। यहां मग्न तटों की चौड़ाई 160 से 1600 किलोमीटर तक है, किंतु पश्चिम में तटीय चौड़ाई केवल 80 किलोमीटर है।
- इसकी आकृति लगभग वृत्ताकार है। उत्तर में बहुत संकरे जल संयोजन द्वारा आर्केटिक महासागर से जुड़ा है। यह दक्षिण में बहुत खुला है तथा हिंद अंटार्कटिक तथा अटलांटिक महासागर से मिल जाता है। यह सभी महासागरों से कृत्रिम सीमा से पृथक होता है।
- प्रशांत महासागर अंटार्कटिका से 147 डिग्री पूर्वी देशांतर (तस्मानिया) से सीमा बनाता है। अटलांटिक तथा प्रशांत महासागर केपहार्न के दक्षिण में 70 डिग्री पश्चिमी देशांतर से सीमा बनाता है तथा हिंद महासागर तथा प्रशांत महासागर मलाया, सुमित्रा, जावा, तिमोर तथा तस्मानिया द्वीपों से सीमा बनाते हैं।
- प्रशांत महासागर के पश्चिमी तटों पर वलित पर्वतों की श्रृंखला है जिससे पश्चिमी तट कम चौड़े हैं।
- प्रमुख उतक पूर्वी भाग में पाए जाते हैं। प्रमुख उतक एल्बेट्रॉस पठार हैं।

प्रमुख सागर– उत्तर में बेरिंग सागर, ओखोटस्क सागर, जापान सागर, पीला सागर, पूर्वी सागर, पूर्वी चीन सागर, दक्षिणी चीन सागर, ऑस्ट्रेलिया के उत्तर पूर्व में सेलाबीज

न्यूजीलैंड तक विस्तृत है। इसके अलावा कारपेण्डिया की खाड़ी, अराफुरा सागर, बास जलडमरूमध्य आदि महाद्वीपीय मग्न तट पर स्थित हैं।

द्रोणी– पूर्वी ऑस्ट्रेलियन द्रोणी, दक्षिणी ऑस्ट्रेलियन द्रोणी फिजी द्रोणी फिलीपाइन्स, पेरू–चिली द्रोणी, कैरोलिना, सोलोमन द्रोणी, ग्वाटेमाला द्रोणी आदि।

द्वीप– प्रशांत महासागर में 20 हजार द्वीप हैं। इन्हें पूर्वी एवं पश्चिमी द्वीपों में बांटा गया है। पश्चिम की ओर द्वीप समूह महाद्वीपीय द्वीप कहलाते हैं। पूरब में महासागरीय द्वीप कहलाते हैं।

प्रशांत महासागर के तटों पर ज्वालामुखी क्रिया होने के कारण अग्नि वलय (Ring of fire) स्थित है।

2. अटलांटिक महासागर (Atlantic Ocean)

- अटलांटिक महासागर की आकृति अंग्रेजी के 'S' अक्षर जैसी है।
- इसका विस्तार उत्तरी ध्रुव महासागर से दक्षिण सागर तक स्थित है। यह विश्व का दूसरा बड़ा महासागर है।
- विश्व के कुल क्षेत्रफल का लगभग 16.5% है।
- इस महासागर की सबसे अधिक चौड़ाई 35 डिग्री उत्तरी अक्षांश के निकट 6000 किलोमीटर है। यह महासागर दक्षिण में चौड़ा तथा विषुवत रेखा के समीप संकरा है।
- अटलांटिक सागर के मध्य (मध्य अटलांटिक उतक) है। यह 14000 मीटर लंबा तथा 4000 मीटर ऊंचा है।
- यह खिंचाव एवं भ्रंशन से बना है। इस ऊतक का उत्तरी भाग 'डॉल्फिन' श्रेणी तथा दक्षिणी भाग चैलेंजर श्रेणी के नाम से प्रसिद्ध है।
- प्यूटोंरिको और दक्षिण सैंडविच अथवा रौस अटलांटिक महासागर की प्रमुख गर्त है। इस महासागर के महाद्वीपीय मग्न तट अपेक्षाकृत अधिक चौड़े हैं।
- अटलांटिक महासागर में बरमुडा द्वीप है।

प्रमुख सागर– कैरेबियन, आइरिश, उत्तरी सागर, सारगेसो सागर, वेडोल सागर है। रूम सागर, कैरेबियन सागर, मेक्सिको की खाड़ी, बाल्टिक सागर, उत्तरी वैफिन की खाड़ी, हडसन की खाड़ी प्रमुख हैं।

द्रोणी– लैब्रोडोर, उत्तरी अमेरिका द्रोणी, ब्राजील द्रोणी, स्पेनिश, केपवर्डे, गुआना, अगुलहास प्रमुख द्रोणियां हैं।

द्वीप– ब्रिटिश द्वीप, न्यूफाउंडलैंड, पश्चिमी द्वीप, आईसलैंड, बरमुडा, सेंट हेलेना, ट्रिनीडाड, फॉकलैण्ड, शटलैण्ड, जार्जिया, सैंडविच, कनारी, केपवर्ड आदि।

3. हिंद महासागर (Indian Ocean)

- हिंद महासागर की आकृति त्रिभुजाकार है, क्षेत्रफल और विस्तार की दृष्टि से तीसरा महासागर है।
- इसकी औसत गहराई 3950 मीटर है। उत्तर में एक बंद सागर के रूप में स्थित है जो एशिया महाद्वीप से घिरा है तथा दक्षिण में अंटार्कटिका महाद्वीप तक फैला है।

- उत्तर में लक्षद्वीप चागोस उतक, मध्य में सेंटपाल उतक, दक्षिण में एमस्टरडम सेंट पॉल पठार के नाम से जाना जाता है। इसके अलावा सोकोत्रा, चागोस, सेशल्स, दक्षिण मेडागास्कर, प्रिंस एडवर्ड, क्रीजेट मुख्य हैं।

द्रोणी– ओमान द्रोणी, अरेबियन द्रोणी, सोमाली द्रोणी, मारीशस द्रोणी, नेटाल द्रोणी, अंडमान द्रोणी प्रमुख हैं।

सागर– मोजांबिक चैनल, अंडमान सागर, लाल सागर, फारस की खाड़ी।

द्वीप– मालागासी, श्रीलंका, सोकोगा, जंजीबर, कोमोरो, अंडमान और निकोबार लक्षदीप आदि।

तालिका : पृथ्वी सतह पर विद्यमान जल भंडार

भंडार	मात्रा घन कि.मी. घन 100,00,000	कुल जल का प्रतिशत
महासागर	1370	97.25
हिम चोटियां और हिमनद	29	2.05
भूमिगत जल	9.5	0.68
झीलें	0.125	0.01
मृदा नमी	0.065	0.005
वायुमंडल में विद्यमान	0.013	0.001
सरिताएं और नदियां	0.0017	0.0001
जैव मंडल	0.0006	0.00004

तालिका : महासागरों का क्षेत्रफल तथा आयतन

महासागर का नाम वर्ग कि.मी.	क्षेत्रफल	प्रतिशत घन कि.मी.	आयतन	प्रतिशत मी.	औसत गहराई
1. प्रशांत महासागर	16,52,46,200	45,77	70755500	51.63	3,940
2. अटलांटिक महासागर	8,24,41,500	22.83	32,36,13,300	23.61	3,844
3. हिंद महासागर	7,34,42,700	20.34	29,10,30,000	21.23	3.840
4. आर्कटिक महासागर	1,40,90,100	3.91	1,69,80,000	1.23	1.117

महासागरीय उच्चावच का अध्ययन सोनार (साउंड नेविगेशन रेजिंग) की मदद से किया जाता है। भूपृष्ठ की औसत ऊंचाई तथा गहराई को उच्चतादर्शी वक्र (हिप्सोमेट्रिक कर्व) के द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। हिप्सोमेट्रिक कर्व का विकास सर्वप्रथम कोसीना (1921) ने किया था।

ग्लोब के धरातल के सबसे ऊंचे क्षेत्र की ऊंचाई 8848 मीटर आंकी गई है जबकि सबसे गहरे भाग के क्षेत्र की गहराई 11035 मीटर है। सेलिसबरी के अनुसार, महाद्वीप एवं महासागर पृथ्वी के प्रथम श्रेणी के उच्चावच के लक्षण हैं। इसी तरह स्थल की औसत ऊंचाई 840 मीटर पाई जाती है। जबकि महासागरों की औसत गहराई 3800 मीटर है। भूपृष्ठ की औसत ऊंचाई तथा गहराई के कारण ही पृथ्वी पर संतुलन स्थित हुआ है क्योंकि इस ऊंचे एवं गहरे क्षेत्रों के मध्यस्थ एक ऐसी पेटी स्थित है, जहां पर सबसे नीचे एवं सबसे ऊंचाई के पदार्थ का संतुलन स्थापित हुआ है, जो क्षति पूर्ति का कटिबंध (Zone of compensation) कहलाता है।

जलीय चक्र (Hydrological cycle)

जल ही जीवन है। इस पृथ्वी पर जीवन जल से ही संभव है और जल महासागर (जलमंडल) स्थलमंडल और वायुमंडल में संचरित होता रहता है और इस संचरण को जल चक्र (Hydrological cycle) कहते हैं। अर्थात जिस माध्यम से जल महासागर से वायुमंडल में फिर वायुमंडल से स्थलमंडल में तथा स्थलमंडल से (जैसे पर्वत, पठार, मैदान) प्रवाहित होकर महासागर में पुनः पहुंच जाता है, उसको जलीय चक्र कहा जाता है और ये जल पुनः जलवाष्प के रूप में या बादल के रूप में रहता है और पुनः संघनन होकर स्थलमंडल पर या तो हिम के रूप में, वर्षा के रूप में आता है। यह जलीय चक्र को संचालित करने में सूर्यताप जिम्मेदार है। सूर्य से आने वाला सूर्यताप इसका संचरण करता है।

जलीय चक्र एक अत्यंत जटिल प्रक्रिया है। जिसमें कई उपचक्र भी सम्मिलित हैं। वायुमंडल में जल चक्र कैसे चलता है। चित्र के माध्यम से समझा जा सकता है

जलीय चक्र

हिम

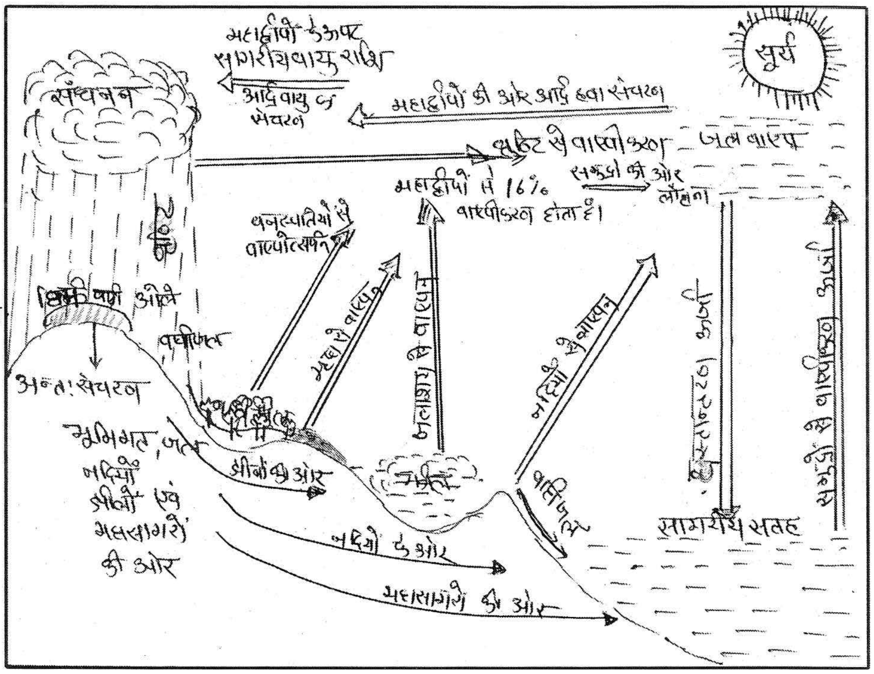

जल चक्र (Hyclrological Cycle)

उपर्युक्त चित्र द्वारा स्पष्ट होता है कि महासागर से जल सूर्यताप द्वारा गर्म होता है और वाष्पीकृत होकर बादलों के रूप में बदल जाता है और बादल पुनः स्थल की ओर चलते हैं इसका मुख्य कारण–

- हमारे स्थलमंडल, जलमंडल की अपेक्षा अधिक गर्म होते हैं।
- अगर स्थल भाग का ताप बढ़ेगा तो हवाएं गर्म होकर ऊपर उठेंगी।
- जब हवाएं गर्म होकर ऊपर उठेंगी तो वायुमंडल में वायुदाब कम होगा।
- वायुदाब कम होने से हवाएं समुद्र से स्थल की ओर चलेंगी और उसी वायु के साथ जल वाष्प एवं नमी (आर्द्रता) बादलों के रूप में चलेगी।

- यह बादल जैसे–जैसे स्थल की तरफ जाएंगे वैसे–वैसे इनकी ऊंचाई बढ़ती जाएगी।
- इनकी ऊंचाई बढ़ने का मुख्य कारण स्थलमंडल से उठने वाली गर्म हवाएं हैं।
- बाद में ऊपर उठती हुई हवाओं के कारण वायु में स्थित नमी (आर्द्रता) जो बादल का निर्माण करती है उसमें संघनन हो जाता है।

इस तरह से महासागर का जल भाप बनकर जलवाष्प के रूप में वायुमंडल में मिल जाता है और वायुमंडल में वर्षण प्रारंभ हो जाता है। धरातल में यह वर्षण क्रिया भी कई रूपों में संपन्न होती है।

1. कुछ वर्षा सीधे नदियों, झीलों तथा स्थल पर स्थित जल भंडारों में मिलती है।
2. जल वर्षा के कुछ भाग का वनस्पतियों द्वारा अंतरोधन (अवशोषित) कर लिया जाता है।
3. जल वर्षा के कुछ भाग वनस्पति विहीन भागों में सीधे जमीन में पहुंचता है। जिसे throughfall कहते हैं। जो अंतःस्रवण (मिट्टी व पहाड़ों से उर्ध्वाधर गति, जिससे संचरण हो जाता है उसे मृदा जल भंडार कहते हैं। इस मृदा जल भंडार से कुछ जल का वाष्पीकरण हो जाता है।

कुछ वर्षा जल पुनः वाष्पीकृत हो जाता है।

1. कुछ वर्षा का जल वनस्पतियों द्वारा वाष्पोत्सर्जन (evapotranspiration) होने से क्षय हो जाता है ।
2. कुछ नदियों तालाबों झीलों आदि के द्वारा वाष्पीकरण द्वारा क्षय हो जाता है।
3. धरातलीय जल के कुछ भाग नदियों द्वारा, सागरों, महासागरों में वापसी हो जाता है।
4. मृदा जल भंडार से कुछ जल पौधों से वाष्पोत्सर्जन द्वारा वायुमंडल में क्षय हो जाता है तथा कुछ पुनः जल स्रोतों के रूप में पुनः सतह पर आ जाता है। इस समस्त प्रक्रिया की विश्व भर में प्रतिवर्ष पुनरावृत्ति होती रहती है। जिस कारण विश्वस्तरीय जल चक्र क्रियाशील रहता है।

वाष्पीकरण	जल संतुलन
1. महासागरों से वाष्पीकरण	1. भूमिगत जल के रूप में
2. नदियों से वाष्पन	2. झीलों और महासागरों में
3. वृष्टि से वाष्पन	3. नदियों के रूप में
4. जलाशयों से वाष्पीकरण	4. वर्षा जल बूंदों के रूप में
5. मृदा से वाष्पन	5. वर्षण के रूप में

वर्षा द्वारा जो जल पृथ्वी पर प्राप्त होता है उस संपूर्ण जल बजट का लगभग 97.2% महासागरों में भंडारित है। शेष 2.8% नमी में है, 2.15% नमी ध्रुवीय हिमपेटियों एवं स्थाई हिमनदों में भंडारित है। 0.62% नमी भूमिगत जल के रूप में (यह जलीय चक्र के लिए सुलभ होता है) तथा 0.03% प्रतिशत नमी नदियों, मिट्टियों, झीलों, तालाबों तथा आंतरिक सागरों में भंडारित है।

तालिका : पृथ्वी जल का वितरण

जलाशय	आयतन 10 लाख घन कि.मी.	का कुल प्रतिशत
महासागर	1, 370	97.25
हिमनिया हिम टोपी	29	2.05
भूमिगत जल	9.5	0.68
झीलें	0.125	0.01
मृदा में नमी	0.065	0.005
वायुमंडल	0.013	0.001
नदी नाले	0.0017	0.0001
जैव मंडल	0.0006	0.00004

जलीय चक्र में भूमंडल में वाष्पीकरण और वर्षण में संतुलन होता है परंतु महाद्वीप और महासागर में यह संतुलन समान नहीं होता। महासागर से कुल पृथ्वी का 86% वाष्पीकरण होता है और स्थल से 14%। इसी तरह समुद्र पर वर्षा का प्रतिशत 77% तथा महाद्वीपों पर 23% अर्थात $77 + 23 = 100\%$ । ज्ञातव्य है कि महासागरीय क्षेत्रों से वाष्पीकरण की मात्रा वर्षण की मात्रा से अधिक है। महासागर वाष्पीकरण 86% कर रहे हैं और वर्षा 77% हो रही है जबकि महाद्वीप से 14% वाष्पीकरण होता है और वर्षा 23% पा रहे हैं। इस तरह से समुद्रों को 9% हानि और महाद्वीपों को 9% लाभ हो रहा है। इसका मुख्य कारण महासागरों के वाष्पीकरण द्वारा जितना जलवाष्प के रूप में महासागरों के ऊपर वायुमंडल में पहुंचता है वह बादल बनकर महाद्वीप की तरफ संचरण करता है। क्योंकि महाद्वीप ज्यादा गर्म होने के कारण हवाएं गर्म होकर ऊपर उठती हैं और निम्न वायुदाब का क्षेत्र बनाती हैं। अतः महाद्वीपों पर वाष्पीकरण से वर्षा की मात्रा अधिक होती है।

4.5.1 महाद्वीपीय सीमाएं : पृथ्वी की संरचना, प्लेट विवर्तनिकी और समुद्री तलछट

महाद्वीपीय सीमाओं के अंतर्गत पृथ्वी की संरचना, प्लेट विवर्तनिकी और समुद्री तलछट को क्रमशः इस प्रकार समझा जा सकता है–

- **पृथ्वी की आंतरिक संरचना**

तीन शताब्दियों पहले, अंग्रेज वैज्ञानिक आइजक न्यूटन ने ग्रहों और गुरुत्वाकर्षण बल के अपने अध्ययन के आधार पर गणना कर बताया कि पृथ्वी का औसत घनत्व सतह पर स्थित चट्टानों से दुगुना है। इसलिए पृथ्वी का आन्तरिक भाग बहुत अधिक घने पदार्थों से बना होना चाहिए। न्यूटन के समय के बाद से पृथ्वी की आंतरिक संरचना के बारे में हमारा ज्ञान काफी बढ़ा है लेकिन घनत्व को लेकर उसके अनुमान अब तक अपरिवर्तनीय बने हुए हैं। हमारी वर्तमान सूचनाएं हमें पृथ्वी के अन्दर चलने वाली भूकम्पीय तरंगों के रास्ते और उनकी प्रकृति के अध्ययन के साथ ही प्रयोगशाला में सतही पदार्थों और चट्टानों पर उच्च दबाव और तापमान में हो रहे प्रयोगों से मिल रही हैं। पृथ्वी के आन्तरिक भाग के अन्य महत्वपूर्ण आंकड़े सतही चट्टानों के भूगर्भीय अध्ययन, सौरमंडल में पृथ्वी की गति और पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण तथा चुम्बकीय क्षेत्रों और पृथ्वी के अन्दर बहने वाली गर्मी के प्रवाह से मिलते हैं।

पृथ्वी ग्रह तीन मुख्य परतों से बना है, जिनमें बेहद पतली भूपर्पटी या क्रस्ट, मैंटल और कोर यानी केन्द्रक है। मैंटल और कोर दोनों को ही दो और भागों में विभक्त किया जाता है। सभी भाग इस प्रकाशन के आमुख पर दर्शाई गई मापनी के अनुसार चित्रित किए गए हैं और अन्त में दी गई तालिका में विभिन्न अंगों की मोटाई बताई गई है। यद्यपि मैण्टल और कोर मोटाई में बराबर सी हैं पर कोर पृथ्वी के कुल परिमाण का केवल पन्द्रह प्रतिशत ही है जबकि करीब 84 प्रतिशत हिस्सा मैण्टल का है। क्रस्ट बाकी के एक प्रतिशत में है। ज्यों ज्यों वैज्ञानिक प्रयोगशाला में चट्टानों पर उच्च दाब और पर प्रयोग कर रहे हैं और भूकम्प के आंकड़ों को कम्प्यूटर से विश्लेषित कर रहे हैं। पृथ्वी की परतों और इसके रसायनिक संयोजन के बारे में जानकारी लगातार बढ़ रही है।

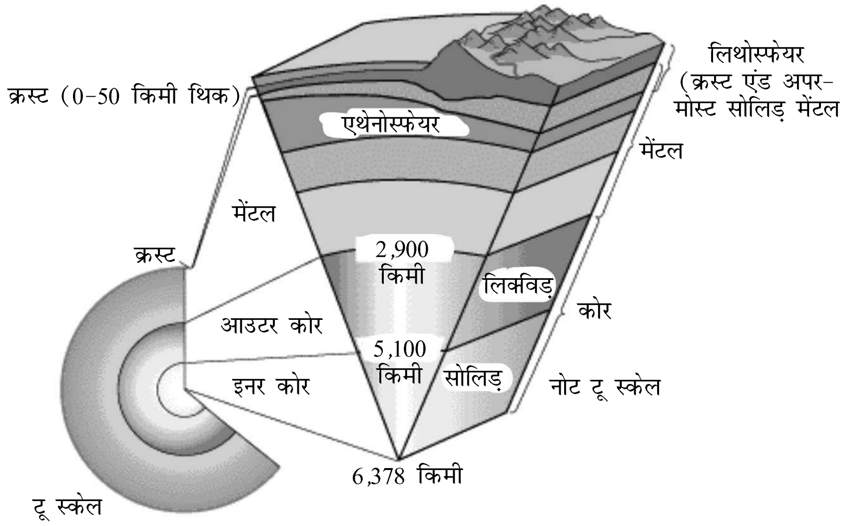

पृथ्वी की आंतरिक संरचना की तीन मुख्य परतें

क्रस्ट

क्रस्ट तक हमारी पहुंच होने के कारण इसकी खूब भूगर्भीय पड़ताल हुई है। इस वजह से हम मैंटल और कोर की तुलना में इसकी संरचना और संयोजन के बारे में काफी ज्यादा जानते हैं। जब भूगर्भीय प्रक्रियाओं के कारण लावा के विस्फोट के साथ निकलने और पैठने के कारण चट्टानों की विस्थापन और नई परतों के रूप में जमाव होने, कटाव, चट्टानी अणुओं के एकत्रीकरण, भुरभुरी छिद्रदार चट्टानों के घनीकरण तथा पुन:क्रिस्टीकरण से क्रस्ट के अन्दर भी कई जटिल संरचनाएं बन जाती हैं।

चित्र में हवाई द्वीप पर पांच किलोमीटर मोटा समुद्री क्रस्ट दर्शाया गया है। पूर्वी कैलिफोर्निया के क्षेत्र में महाद्वीपीय क्रस्ट की मोटाई ग्रेट वैली में 25 किलोमीटर है तो सिएरा नेवादा में यह 60 किलोमीटर है।

प्लेट विवर्तनिकी की वृहद मापन प्रक्रिया के आधार पर करीब 12 प्लेट, जिन पर कई महाद्वीप तथा समुद्री बेसिन हैं, पृथ्वी की सतह पर भूगर्भीय समय के अनुसार हलचल करती हैं। इन प्लेट्स के किनारों को भूकम्पों और ज्वालामुखियों पर ध्यान केन्द्रित कर चिन्हित किया गया है। प्लेट्स में टकराव से हिमालय, विश्व की सबसे ऊंची पर्वतश्रृंखला, जैसे पर्वतों का निर्माण हो सकता है। इन प्लेट्स में क्रस्ट और ऊपरी मैंटल का हिस्सा शामिल होता है और ये बहुत गर्म ऊपरी मैंटल जोन पर टिकी होती हैं तथा प्रतिवर्ष कुछ सेंटीमीटर की बेहद धीमी गति से सरकती रहती हैं। उनके सरकने की गति नाखूनों के

टिप्पणी

बढ़ने की गति से भी कम होती है। महाद्वीपों की तुलना में क्रस्ट महासागरों के नीचे ज्यादा पतली होती है।

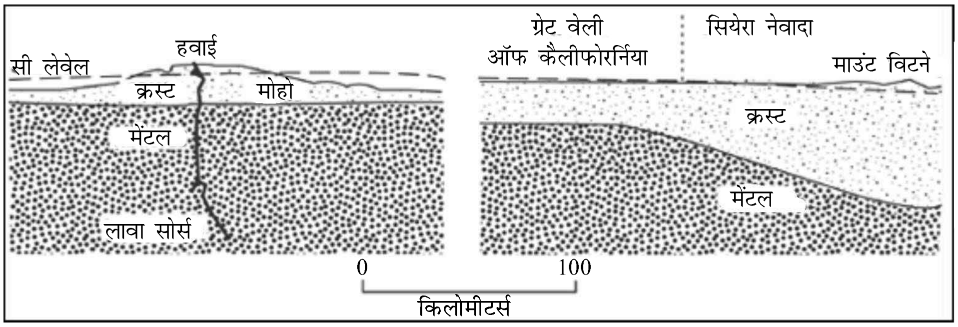

क्रस्ट एवं मेंटल

क्रस्ट और मैंटल के बीच की सीमा को मोहोरोविसिस असम्बद्धता (या मोहो) कहते हैं। यह नाम इसकी खोज करने वाले क्रोएशिएन वैज्ञानिक एन्द्रिजा मोहोरोविसिस के सम्मान में रखा गया है। अभी तक किसी ने भी इस सीमा को नहीं देखा है पर नीचे की तरफ भूकम्पीय तरंगों की गति में एकाएक होने वाली बढ़ोतरी से इसे अनुभव किया जा सकता है। मोहो के पास गति में इस परिवर्तन के पीछे चट्टानों की प्रकृति में परिवर्तन को आधार माना जाता है। मोहो को भेदने के लिए उस तक जमीन में छेद करने का प्रस्ताव किया गया और सोवियत रूस में कोला पेन्निसुला में जमीन में करीब 12 किलोमीटर गहराई तक छेद भी किया गया लेकिन बाद में गहराई के साथ इसका खर्च एकाएक बहुत बढ़ता जा रहा था जिससे इसे रोक दिया। और मोहो तक पहुंचने का कार्य अभी निकट समय में होता नहीं लगता।

मैंटल

ऊपरी मैंटल और प्लेट विवर्तन के बारे में हमारा ज्ञान भूकम्पीय तरंगों के अध्ययन, पृथ्वी की आन्तरिक ऊष्मा के प्रवाह, चुम्बकीय और गुरुत्वाकर्षण संबंधी अध्ययनों तथा चट्टानों और खनिजों पर प्रयोगशाला के प्रयोगों पर आधारित है। पृथ्वी की सतह से करीब सौ से दो सौ किलोमीटर नीचे चट्टान का तापमान गलनांक के करीब होता है। कुछ ज्वालामुखियों में विस्फोट के साथ निकलने वाली पिघली हुई चट्टानों की मैंटल के इसी भाग से उत्पति होती है। अत्यधिक लचीली चट्टानों वाले इस क्षेत्र में भूकम्पीय तरंगों की गति कदरन हल्की पड़ जाती है और माना जाता है कि इसी परत पर टेक्टोनिक प्लेट्स तैरती हैं। इस कम गति वाले मंडल के नीचे ऊपरी मैंटल में एक परिवर्तनीय मंडल होता है। इसमें दो अन्तराल होते हैं जो कम घनत्व वाले खनिज से अधिक घनत्व वाले खनिज में परिवर्तन के कारण उत्पन्न होते हैं। इन खनिजों की रासायनिक संरचना और आण्विक संघटन को प्रयोगशालाओं में उच्च ताप व दाब के बीच जाना जा चुका है। परिवर्तन मंडल (ट्रांसिजशन जोन) के नीचे निचली मैंटल परत है। जो तुलनात्मक रूप से साधारण (आयरन) लोहे और मैग्निशियम सिलीकेट जैसे खनिज से बनी है। जो गहराई के साथ साथ स्वतः ही अत्यधिक घनत्व वाले खनिज रूप में बदलता जाता है। मैंटल से कोर की तरफ चलने पर भूकम्पीय तरंगों की गति में निश्चित कमी (करीब 30 प्रतिशत) और घनत्व में (करीब 30 प्रतिशत) बढ़ोतरी अंकित होती है।

कोर

कोर पहली आन्तरिक संरचना है जिसे सबसे पहले पहचाना गया। इसे 1906 में आर. डी. ओल्ढम ने भूकम्पों के आंकड़ों के अपने अध्ययन से खोजा। इससे पृथ्वी के घनत्व के बारे में न्यूटन के सिद्धान्त की व्याख्या करने में सहायता मिली। माना जाता है कि बाह्य कोर तरल अवस्था में है। क्योंकि यह भूकम्प की अपरूपण (एस) तरंगों को आगे नहीं जाने देता और भूकम्प की दाबित (पी) तरंगें भी जब इससे गुजरती हैं तो उनका वेग भी तेजी से कम हो जाता है। आन्तरिक कोर में से गुजरने के दौरान भूकम्पीय तरंगों के व्यवहार के आधार पर माना जाता है कि आन्तरिक कोर ठोस स्थिति में है।

भूकम्पीय तरंगों के आंकड़ों, पृथ्वी के घूर्णन और इनर्शिया, चुम्बकीय क्षेत्र डाइनेमो सिद्धांत और प्रयोगशाला में लोहे के पिघलने, मिलाने के प्रयोगों के अध्ययन के बाद आन्तरिक और बाह्य कोर की संरचना के बारे में निष्कर्ष निकाले गए। माना जाता है कि कोर मुख्यतया लोहे तथा उसमें दस प्रतिशत ऑक्सीजन या सल्फर या निकल या इन तीनों के किसी सामूहिक संयोग के मिश्रण से बनी है।

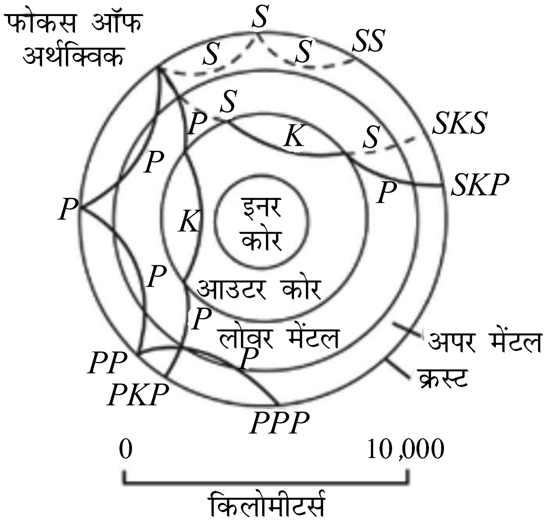

सम्पूर्ण पृथ्वी की अनुप्रस्थ काट

सम्पूर्ण पृथ्वी की अनुप्रस्थ काट का चित्र भूकम्पीय तरंगों के जटिल पथ को दर्शाता है। विभिन्न गहराइयों पर विभिन्न स्तर की चट्टानों के कारण भूकम्पीय तरंगों की गति में परिवर्तन आ जाता है जिस कारण उनके पथ में घुमाव आता है। पी अंकित गहरी रेखाएं कम्प्रेशनल तरंगों की हैं। जबकी डैश वाली एस अंकित रेखाएं शीअर तरंगों को प्रदर्शित करती हैं। एस तरंगें कोर में से नहीं गुजर सकतीं लेकिन वे कोर में प्रवेश के समय कम्प्रेस्ड तरंगों में बदल सकती हैं। (पीकेपी, एसके एस) तरंगें सतह पर भी परावर्तित हो सकती हैं (पीपी, पीपीपी, एसएस)।

निम्न तालिका में डॉन एल. एण्डरसन की एक पाठ्यपुस्तक में ली गई गहराई, घनत्व और संरचनाओं को दर्शाती है। वैज्ञानिक पृथ्वी की आन्तरिक भाग के रसायनिक और खनिज संयोजन को और अच्छी तरह जानने के लिए प्रयोगशालाओं में सतह पर वातारण के दबाव से बीस लाख गुना अधिक दबाव और 20000 डिग्री सेंटीग्रेट जितने उच्च तापमान वाले प्रयोगों में जुटे हैं।

टिप्पणी

तालिका : *पृथ्वी की आन्तरिक संरचना के आंकड़े*

डेनसिटी (जी/सीएम^3)

	थिकनेस (किमी)	**टोप**	**बोटम**	**टाईपस ऑफ रॉक फाउन्ट**
क्रस्ट	30	2.2 –	– 2.9	सीलिसेक रॉकस एंडेसाइट, वैसाल्ट एट बेस
अपर मेंटल	720	3.4 –	– 4.4	पेरीडोलाइट, इक्लोगायट, ओलीवाथन, स्पानेल, गारनेट, पाइरोक्सीन पेरोवस्काईट, ऑक्सीडोस
लोअर मेंटल	2,171	4.4 –	– 5.6	मेंगनिशियम, एंड सीलिकन ऑक्साड
आउटर कोर	2,259	9.9 –	– 12.2	आइरन + ऑक्सीजन, सल्फर, निकेल एलोए
इनर कोर	1,221	12.8 –	– 13.1	आइरन + ऑक्सीजन, सल्फर, निकोल एलोए
टोटल थिकनेस	6,401			

• प्लेट विवर्तनिकी

प्लेट विवर्तनिकी के सिद्धान्त का भूगर्भीय विज्ञान में वही महत्व है जो जैवविज्ञान में चार्ल्स डार्विन के विकासवाद के सिद्धान्त का है। इसने भूगर्भविज्ञान को एक ऐसा व्यापक सिद्धान्त दिया है जो यह समझाता है कि पृथ्वी कैसे काम करती है। सिद्धान्त का प्रतिपादन 1960 और 1970 में हुआ जब समुद्री सतह की प्रकृति, पृथ्वी के पुरातन चुम्बकत्व, ज्वालामुखियों और भूकम्पों के वितरण तथा पृथ्वी के अन्तरतम में ऊष्मा के प्रवाह और पूरे संसार में फैले हुए पौधों और पशु जीवाश्मों की जानकारी हासिल की गई।

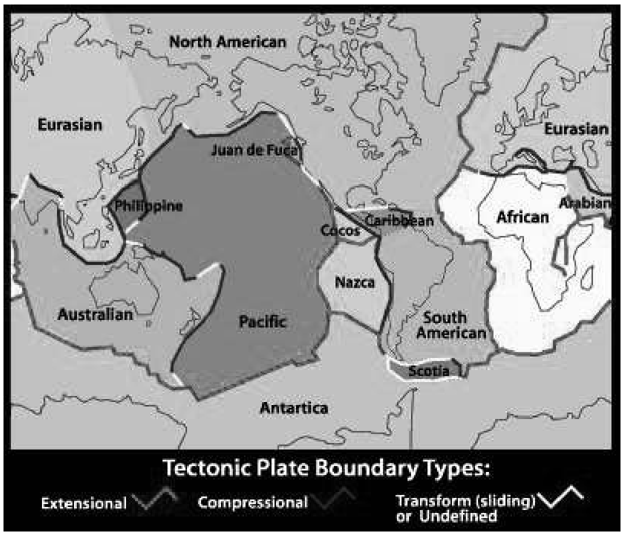

प्लेट विवर्तनिकी सीमाओं का प्रदर्शन

इस सिद्धान्त के अनुसार पृथ्वी की बाह्यतम परत यानी स्थलमंडल सात बड़े और कठोर टुकड़ों में टूटा हुआ है जिन्हें प्लेट कहते हैं, जिनमें अफ्रीकन, उत्तरी अमरीकन, दक्षिणी अमरीकन, यूरेशियन, अंटार्कटिक और पैसिफिक प्लेट है। कई लघु प्लेट भी अस्तित्व में हैं जिनमें अरब, नाज्का और फिलिपाइन्स प्लेट्स प्रमुख हैं।

ये सभी प्लेट्स अलग–अलग दिशाओं में और अलग–अलग गति (दो सेमी से दस सेमी प्रतिवर्ष, लगभग उतनी गति से जितने से कि आपके नाखून बढ़ते हैं) से एक दूसरे

से संबंध रखते हुए गतिमान हैं। ये प्लेट इस प्रकार से घूम रही हैं कि जैसे विध्वंस हो रहे शहर से गुजर रही हों। कई बार वे आपस में टकरा जाती हैं, तो कभी दूर हो जाती हैं, या किनारों से एक दूसरे को रगड़ते हुए आगे बढ़ने लगती हैं। वो जगह जहां दो प्लेट्स मिलती हैं प्लेट सीमा कहलाती है। इन सीमाओं के भी अलग–अलग नाम हैं जो इस बात पर निर्भर करते हैं कि दोनों प्लेट एक दूसरे किस संबंध के साथ गतिमान हैं।

- टकराव: अभिसारी सीमा (कन्वर्जेंट बाउंड्री)
- एक दूसरे से दूर जाना: अपसारी सीमा (डीवर्जेंट बाउंड्री)
- बगल से गुजरना: रूपान्तर सीमा (ट्रान्सफोर्म बाउण्ड्री)

प्लेट सीमाओं के सन्दर्भ में बात करें तो यदि आपका घर किसी प्लेट सीमा के मध्य में या उसके निकट हो तो विवर्तनिकी की दृष्टि से आप पर क्या प्रभाव होगा।

अभिसारी सीमाएं

वो स्थान जहां प्लेट्स एक दूसरे से टकराती हैं या एक दूसरे को कुचलती है उन्हें अभिसारी सीमाएं कहा जाता है। प्लेट्स प्रत्येक साल में कुछ सेंटीमीटर ही सरकती हैं जिसके चलते ऐसे टकराव बहुत धीमे और लाखों सालों तक होते रहने की प्रक्रिया में रहते हैं। यहां तक कि प्लेट टकराव में लम्बा समय लगने के चलते कई रुचिकर चीजें भी घट जाती हैं।

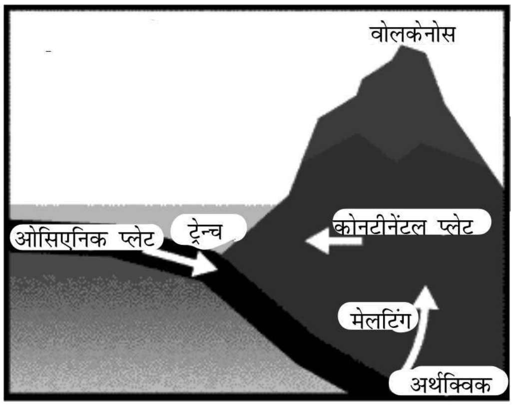

एक समुद्री प्लेट और महाद्वीपीय प्लेट का टकराव

उदाहरण के लिए चित्र में एक सामुद्रिक प्लेट एक महाद्वीपीय प्लेट के अन्दर घुस रही है। दो प्लेटों के टकराने के इस चित्र को ध्यान से देखें तो ऐसा लगेगा कि जैसे किसी धीमी गति से चल रही फिल्म के एक फ्रेम में दो कारें टकरा कर एक दूसरे में घुस गई हों। बिल्कुल जैसे टक्कर के दौरान कार का अगला हिस्सा टकरा कर मुड़ जाता है उसी प्रकार टकराने वाली प्लेट्स के अगले हिस्से भी मुड़ते हैं। चित्र में महाद्वीपीय प्लेट का अगला हिस्सा एक विशाल पर्वत के रूप में मुड़ गया है जबकि सामुद्रिक प्लेट का अगला हिस्सा नीचे की ओर मुड़ गया है और पृथ्वी में गहरे पैठ गया है। दोनों के टकराव स्थल पर एक गड्ढा बन गया है। मुड़ने की यह पूरी प्रक्रिया दोनों प्लेटों में स्थित चट्टानों को तोड़ती और फिसला देती है जिसके चलते भूकम्प आते हैं। ज्यों ही सामुद्रिक प्लेट का कुछ हिस्सा पृथ्वी के गर्म अन्तरतम में घुसता है इसमें मौजूद चट्टानें पिघलने लगती हैं। ये पिघली हुई चट्टानें महाद्वीपीय प्लेट के नीचे ऊपर की ओर उठती हैं। जिससे और भूकम्प पैदा होते हैं, और जब यह अन्ततः ज्वालामुखी के विस्फोट के रूप में सतह पर

टिप्पणी

पहुंचती है। इस तरह के टकराव का एक उदाहरण दक्षिण अमरीका के पश्चिमी तट पर पाया जाता है। जहां समुद्री नाज्का प्लेट दक्षिण अमरीकी महाद्वीपीय प्लेट में घुस रही है। इस टकराव के चलते एन्डीज पर्वतों की रचना हुई है, इस पर्वत शृंखला में ज्वालामुखियों की लम्बी शृंखला है और प्रशान्त महासागर के किनारों पर गहरी खाइयां बन गई हैं। क्या अभिसारी प्लेट्स जनजीवन के लिए खतरनाक हैं। जहां प्लेट टकराती हैं वहां पर्वत, भूकम्प और ज्वालामुखी बनते हैं। प्लेट के टकराव से बने सुन्दर पर्वतों में लाखों लोग रहते हैं और उन्हें देखने आते हैं। उदाहरण के लिए उत्तरी अमरीका का रॉकी पर्वत, यूरोप का आल्प्स, टर्की में पोन्टिक पर्वतमाला, इरान में जागरोस पर्वतमाला और मध्य एशिया में हिमालय का निर्माण प्लेट टकराव के कारण हुआ है। हर साल हजारों लोग इन पर्वतों में होने वाले भूकम्प और ज्वालामुखी विस्फोट में मारे जाते हैं। कभी कभार बड़े विस्फोटों या भूकम्पों में बड़ी संख्या में लोग मारे जाते हैं। 1883 में इण्डोनेशिया में क्राकाताउ ज्वालामुखी के विस्फोट में 37,000 लोग मारे गए। 1983 में कोलम्बिया में नेवादा डेल रिज में हुए विस्फोट के कारण मिट्टी स्खलन में 25,000 हजार लोग मारे गए। 1976 में चीन के तांगशान में आए भूकम्प में करीब 76 000 लोग मारे गए। दूसरी ओर ऐसे इलाकों में जहां बहुत कम लोग रह रहे हों वहां आने वाले भूकम्प और ज्वालामुखी विस्फोट किसी को भी नुकसान नहीं पहुंचाते। यदि हम अभिसारी सीमा प्लेट वाले क्षेत्र में रहने का विकल्प चुनते हैं तो हम ऐसे भवन बना सकते हैं जो भूकम्परोधी हो, हम ज्वालामुखी के फटने की चेतावनी को समझते ही उसके आसपास का इलाका खाली कर दें। हां अभिसारी सीमा वाले क्षेत्र रहने के लिए खतरनाक हैं पर तैयारी और जागरूकता के साथ खतरे को काफी हद तक कम किया जा सकता है।

अपसारी सीमाएं

ऐसे स्थान जहां प्लेट्स एक दूसरे से दूर जा रही हों अपसारी सीमाओं वाले क्षेत्र कहे जाते हैं।

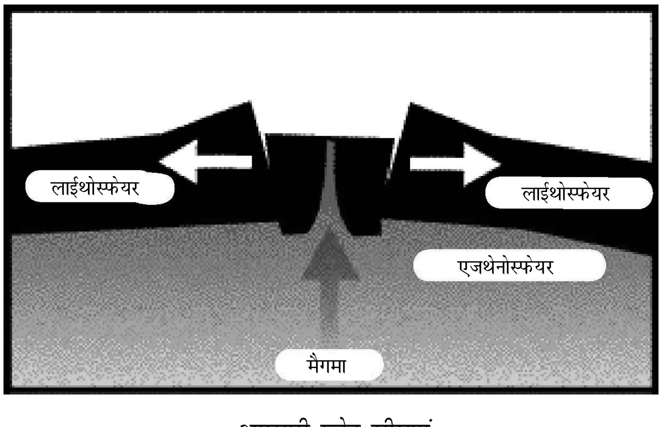

अपसारी प्लेट सीमाएं

जैसा कि चित्र में दिखाया गया है, जब पृथ्वी की पतली सतही परत (यानी स्थलमंडल) एक दूसरे से दूर खींचती हैं तो यह ऐसे कमजोर स्थानों पर टूट जाती हैं जो एक दूसरे से दूर जा रहे हों। जैसे जैसे प्लेट्स सीमा वाले स्थान से अलग होने लगती हैं तो दोनों प्लेट्स के बीच के ब्लॉक टूटकर पृथ्वी के नरम, प्लास्टिक वाले आन्तरिक भाग (दुर्बलतामंडल) में गिर जाते हैं। इस प्रकार ब्लॉक्स के डूबने से केन्द्रीय घाटी बनाते हैं जिसे दरार (रियट) भी कहते हैं। इन दरारों को भरने के लिए मैग्मा (तरल चट्टानें) ऊपर

की ओर उठ आता है। इस प्रक्रिया में सीमा के साथ एक नई क्रस्ट का निर्माण हो जाता है। जहां यह मैग्मा सतह पर पहुंचता है वहां इन फाल्ट्स के किनारों पर भूकम्प आते हैं और ज्वालामुखी विस्फोट होने लगते हैं। जहां एक अपसारी सीमा जमीन को पार करती है वहां विशेष प्रकार की दरार घाटी (रियट वैली) बन जाती है जो करीब 30 से 50 किलोमीटर चौड़ी होती है। उदाहरण में केन्या और इथियोपिया की पूर्वी अफ्रीका रियट और न्यू मैक्सिको की रियो ग्राण्ड रियट घाटियां शामिल हैं। जहां अपसारी सीमाएं समुद्री सतह को दूर करती हैं वहां ऐसी दरार घाटियां बहुत संकरी, केवल एक किलोमीटर या इससे भी कम चौड़ी, होती हैं। और ये मध्य सामुद्रिक शृंखला के ऊपर साथ-साथ चलती हैं। समुद्री शृंखलाएं समुद्री सतह से एक किलोमीटर तक ऊंची उठ जाती हैं और हजारों की संख्या में लाखों मील तक फैल कर वैश्विक जाल सा बिछा लेती हैं। इसके उदाहरण के रूप में मध्य अटलांटिक शृंखला और पूर्वी प्रशांत शृंखला का नाम लिया जा सकता है। प्लेटों का अलगाव एक बहुत धीमी प्रक्रिया है। उदाहरण के लिए मध्य अटलांटिक शृंखला के कारण अटलांटिक महासागर हर साल महज दो सेंटीमीटर चौड़ा हो रहा है।

रूपान्तर सीमाएं

वो स्थान जहां प्लेटें एक दूसरे से लगती हुई सरकती हैं उन्हें रूपान्तर सीमाएं (ट्रान्सफोर्म बाउंड्रीज) कहते हैं। रूपान्तर सीमा के दोनों तरफ की प्लेट्स केवल पास-पास रह कर सरकती भर हैं और एक दूसरे से टकराती या भिड़ती नहीं है इसलिए इन सीमा स्थलों पर अभिसारी या अपसारी सीमाओं की सी विशेषताएं नहीं दिखाई देती हैं। वास्तव में रूपान्तर सीमा वाले स्थानों को प्लेट सीमा के किनारों पर लम्बी खाइयों से पहचाना जाता है जो चट्टानों के अन्दर धंसने से बनती हैं। अन्य स्थानों पर इनका चिन्हीकरण उन सरिताओं के प्रवाह से भी किया जाता है जो एकाएक बीच में ही दो हिस्सों में बंट कर अलग अलग प्रवाहित होने लगती हैं।

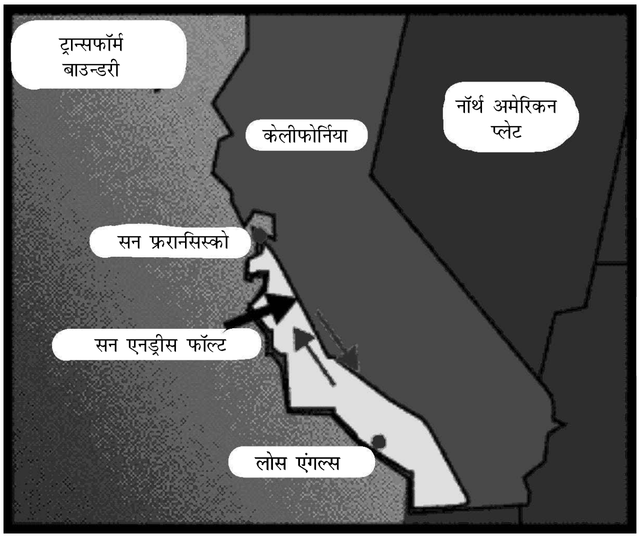

सैन एण्ड्रीज फाल्ट, प्रसिद्ध रूपान्तर सीमा

शायद विश्व में सबसे ज्यादा प्रसिद्ध रूपान्तर सीमा सैन एण्ड्रीज फाल्ट है। फाल्ट के पश्चिम में स्थित कैलिफोर्निया की प्लेट शेष कैलिफोर्निया की तुलना में धीरे-धीरे उत्तर की ओर बढ़ रही है। इस फाल्ट के करीब प्लेट की गति बराबर में है न कि आमने सामने इस कारण लॉस एंजेल्स न तो टूटा और न ही समुद्र में समाया जैसा कि

सामान्यतया सोचा जा रहा था। बल्कि यह छह सेंटीमीटर प्रति वर्ष की गति से सैन फ्रांसिस्को की ओर बढ़ रहा है। इस गति से लगभग एक करोड़ साल बाद दोनों शहर एक दूसरे के आमने-सामने पहुंच जाएंगे। यद्यपि रूपान्तर सीमाएं सतह पर किसी अचम्भित कर देने वाली विशेषताओं से नहीं पहचानी जातीं लेकिन उनकी गतिमान के कारण हो रही हलचलों से कई भूकम्प उत्पन्न होते हैं। सैन एण्ड्रीज के समीप अब तक का सबसे शक्तिशाली भूकम्प 1906 में आया था जिसने सैन फ्रांसिस्को में तबाही मचाई थी। शहर की कई सारी इमारतें क्षतिग्रस्त हो कर गिर गई थीं और कई इसके बाद लगी आग में जल गई थीं। भूकम्प और आग के कारण 600 से ज्यादा लोग मारे गए थे। सैन एण्ड्रूज के समीप हाल ही में आए बड़े भूकम्पों में 1940 में इम्पीरियल वैली भूकम्प और 1989 में लोमा प्रिएटा भूकम्प को गिना जा सकता है।

महासागर के तल की परत की समाकृति

महासागरीय जलाशय विवर्तनिक शक्तियों और प्रक्रियाओं का परिणाम है। सारे महासागरीय जलाशय ज्वालामुखी चट्टानों से बने हैं जो कि मध्य महासागरीय पहाड़ियों की दरारों से निकली हैं। इन जलाशयों में पाई गई सबसे पुरानी चट्टानें लगभग 200 मिलियन साल पुरानी हैं। ये चट्टानें पुरानी महाद्वीपीय चट्टानों से काफी युवा हैं जिनकी उम्र 4 बिलियन सालों से भी ज्यादा है। इस विभेद का कारण बहुत साधारण है। विवर्तनिक प्रक्रियाएं पुरानी महासागरीय चट्टानों को खत्म कर देती हैं। महासागरीय चट्टानें पृथ्वी के आवरण में वापिस चली जाती है। जब महासागरीय पपड़ी में नालियां बन जाती हैं। काफी सारे सबडक्शन क्षेत्र महाद्वीपीय किनारों पर होते हैं जहां महासागरीय पपड़ी महाद्वीपीय पपड़ी से मिलती हैं। सबडक्शन महासागर में गहरी खाइयां भी बनाता है।

महासागरीय जलाशय की भौगोलिक स्थिति

महासागरीय जलाशय विशेषता रहित धरती सतह नही हैं। भौगोलिक स्थिति की विशेषताएं जो यहां हैं उनके बारे में हमारी जानकारी नीचे दी गई तकनीकों से निकाली गई है: भूकंपनीय सर्वेक्षण; इको साउंडर; साइड-स्कैन सोनार; और उपग्रह के द्वारा समुद्री सतह की ऊंचाई मापना। महासागरीय जलाशयों की गहराई के बारे में ज्यादातर साधारण जानकारी प्रथम विश्व युद्ध के बाद बनाई गई हैं जब इको साउंडर सैन्य कार्यवाही के लिए तैयार किया गया। यह यंत्र ध्वनि तरंग के उत्सर्जन और उसकी प्रतिध्वनि की खोज के बीच का समय ठीक-ठीक बताता है। इस प्रणाली के प्रयोग से वैज्ञानिक साउनडर से महासागरीय तल की दूरी का पता लगा सकते हैं।

धरती के स्थलीय भूमि सतह और महासागरीय जलाशयों की भौगोलिक स्थिति

स्रोत: जियोफिजीक्स और प्लेनेटरी फिजीक्स का संस्थान, कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय, सैन डियगो)।

यह चित्र पृथ्वी की भौमिक तल सतह और महासागर जलाशय की भौगोलिक स्थिति को दर्शाता है। चित्र के लिए डाटा सेटलाइट एलटीमेटरी और जहाज की गहरी आवाजों से और यूएस जियोलोजिकल सर्वे, पृथ्वी का डिजीटल ऐलीवेशन मैप (डीईएम) से मिलता है। महासागरीय जलाशय का वर्गीकरण लाल से पीला, पीले से हरा, हरे से नीला बढ़ती हुई गहराई को दर्शाता है। बहुत सारी भौगोलिक स्थिति की विशेषताएं जोकि महासागरीय जलाशय से जुड़ी हैं इस चित्र में देखी जा सकती हैं। लाल रंग की किनारियों वाले बड़े जमीनी टुकड़े महाद्वीपीय चट्टान हैं। पानी के नीचे होने के बाद भी यह विशेषता महाद्वीपीय भूखंड के ढांचे का हिस्सा हैं। महाद्वीपीय चट्टान के चारों ओर पीले से हरा क्षेत्र है, वह महाद्वीपीय ढलान और महाद्वीपीय उठान हैं। नीला क्षेत्र बहुत से महासागरीय जलाशय में महासागरीय सतह बनाता है। महासागरीय जलाशय के केंद्र में, मध्य महासागरीय पहाड़ियां हरे से पीले और पीले से संतरी रंग में देखी जा सकती हैं।

महाद्वीपीय चट्टान / पट्टी

महाद्वीपीय चट्टान प्रत्येक महाद्वीप की बढ़ी हुई परिधि हैं जो कि छिछले समुद्र और खाड़ियों से इंटरग्लेशियल समय से घिरी हुई हैं (जैसे कि वर्तमान अवधि)। समुद्र जो कि महाद्वीपीय चट्टान के ऊपर आता है 'चट्टानी समुद्र' कहलाता है। ज्यादातर तलछट महाद्वीपीय चट्टानों पर अंतिम हिमयुग के समय से ही जमी हुई हैं। महाद्वीपीय चट्टानों का शोषण व्यावसायिक रूप से जीवाश्म ईंधन और कच्ची धातु निकालने के लिए किया जाता है और चट्टानों के ऊपर का पानी समुद्री खाने का खजाना प्रदान करता है।

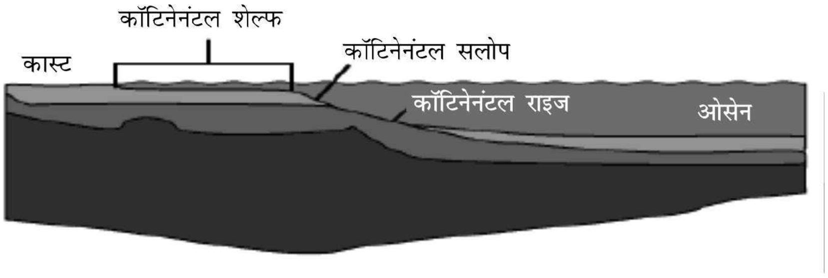

महाद्वीपीय चट्टान

भौगोलिक स्थिति

महाद्वीपीय चट्टान की चौड़ाई अत्याधिक रूप से बदलती है, जिसमें कि कुछ क्षेत्रों में चट्टान लगभग हैं ही नहीं। महाद्वीपीय चट्टान की औसतन चौड़ाई लगभग 80 किलोमीटर (किमी) (50 मील) होती है। चट्टान की गहराई भी बदलती है, लेकिन यह 150 मीटर (मी) (490 फीट) छिछले पानी तक सीमित है। चट्टान की ढलान ज्यादातर काफी हद तक नीची होती है, 0.5 डिग्री के क्रम में। इसका खड़ा उभार भी 20 मीटर से कम है (65 फीट)। महाद्वीपीय चट्टान ज्यादातर एक छोर पर खत्म होती है जहां पर ढलान तीव्रता से बढ़ती है जोकी **शेल्फ ब्रेक** कहलाती है। चट्टान ब्रेक के नीचे की समुद्री सतह महाद्वीपीय ढलान कहलाती है जो कि महाद्वीप का हिस्सा भी कहलाता है। महाद्वीपीय चट्टान और महासागरीय परत के बीच में महाद्वीपीय ढलान संपर्क बनाती है।

महाद्वीपीय ढलान के नीचे से **महाद्वीप उठान** होता है, दूसरी ढलान का हिस्सा जो कि अंत में गहरे सागर की सतह में मिल जाता है **वितलीय मैदान** कहलाता है। महाद्वीपीय चट्टान और ढलान **महाद्वीपी मार्जिन** के हिस्से होते हैं।

चट्टान के हिस्से को आम तौर पर **आंतरिक महाद्वीपीय कांटीनेन्टल चट्टान, मध्य महाद्वीपीय चट्टान** और **बाह्य महाद्वीपीय चट्टान** में बांटा गया है। हर एक हिस्से की अपनी एक विशेष भूविज्ञान (जियोमोरफोलोजी) और समुद्री जीवविज्ञान (मेरिन बायोलोजी) है।

जहां से महाद्वीपी ढलान शुरू होती है वहां से चट्टान के गुण चट्टान टूटने पर बहुत ही प्रभावशाली तरीके से बदलते हैं। कुछ को छोड़ कर **शेल्फ ब्रेक** आश्चर्यजनक ढंग से एकबराबर लगभग 140 मीटर (मी) (460फिट (फिट) की गहराई पर स्थित है। बीती हुई बर्फीली पीढ़ियों के इस लक्षण के होने की एक संभावना हो सकती है जब समुद्र की सतह का लेवल अब की सतह के स्तर से कम था।

महाद्वीपी ढलान महाद्वीपी चट्टान से बहुत अधिक खड़ी है; इसका औसत कोण तीन डिग्री है, लेकिन यह कम से कम एक डिग्री और अधिक से अधिक दस डिग्री हो सकता है। महाद्वीपी ढलान अक्सर सबमरीन घाटियों द्वारा काटी जाती है जिसकी उत्पति कई सालों तक रहस्यपूर्ण रही है ।

महाद्वीपी ढलान के नीचे से लेकिन वितलीय मैदान की ओर होते हुए महाद्वीपी उठान है। इसका अनुपात ढलान और चट्टान के बीच का होता है, 0.5-1 डिग्री के क्रम में। ढलान से अधिकतम 500 किमी की दूरी पर, महाद्वीपी ढलान और चट्टान से पानी के बहाव के द्वारा इकट्ठी हुई अवसाद से यह ढलान बनती है। ढलान के नीचे जमी अवसाद एक के ऊपर एक परत जमाकर ढलान की तली पर इकट्ठी होती रहती है जिसे महाद्वीपीय उत्थान अर्थात महाद्वीपी उठान भी कहते हैं।

हालांकि महाद्वीपीय चट्टान को महासागर के फिजियोग्राफिक प्रांत की तरह माना जाता है, यह गहरे महासागर का वास्तविक हिस्सा नहीं है लेकिन महाद्वीप के जलमग्न किनारों के अनुरूप है। निष्क्रिय महाद्वीपी किनारा जैसे कि एटलांटिक के तट पर चौड़ी और कम गहरी चट्टानें होती हैं जो कि मोटी तलछटी वेजइस से बनी होती हैं जिसकी उत्पति किसी निकटवर्ती महाद्वीप के लम्बे कटाव से होती है। क्रियाशील महाद्वीपी किनारों में पतली और खड़ी चट्टानें होती हैं जो कि बार-बार भूकंप आने के कारण तलछट के गहरे समुद्र में जाने से बनती हैं।

उदाहरण

कुछ तटरेखा महाद्वीपी चट्टानों से विहीन होती है, विशेष रूप से ऐसी जगहों में जहां पर महासागरीय प्लेट का बाहरी किनारा महासागर की खोह में तट से दूर सबडक्शन क्षेत्र में जाता हो। इस तरह के उदाहरण चिली के तट और सुमात्रा के पश्चिमी तट पर मिलते हैं। अगर तुलना करें तो आर्कटिक महासागर में साइबेरिया चट्टान सबसे बड़ी चट्टान है जिसकी चौड़ाई 1500 किमी (930मील) है। दक्षिणी चीनी समुद्र एक दूसरे विशाल महाद्वीपी चट्टान के ऊपर है जो कि बोर्नीयो, सुमात्रा और जावा को एशियन मेनलैंड से जोड़ता है। उत्तरी समुद्र और ईरानी गल्फ दूसरे पानी के जाने-पहचाने समूह हैं जो कि महाद्वीपी चट्टान के ऊपर हैं।

- **तलछट**

महाद्वीपीय ढलाव भूमिज तलछटों द्वारा आवरणित है। वह तलछट महाद्वीपों के क्षरण से प्राप्त किए जाते हैं। फिर भी, तलछट नदियों द्वारा वहन किए जाने वाले पदार्थों से खोजे

जा सकते हैं। विश्व के महाद्वीपीय ढलानों पर तलछट का लगभग 60–70 प्रतिशत अवशिष्ट तलछट है। अतीत के हिमयुग के दौरान जब समुद्र स्तर जो वर्तमान से 100–120 मीटर निम्नतर था के दौरान निक्षेपित हुआ है।

टिप्पणी

तलछट आमतौर पर वृद्धिक रूप से तट से दूरी के साथ उत्तम बनते हैं। बालू उथले, तरंग उत्प्रेरित जल, के लिए सीमित है जबकि गाद एवं मृदाएं समुद्रतट से दूर, शांत, गहरे जल में, निक्षेपित हो जाती हैं। ये दराज तलछट 15–40 से.मी. एक दूरी सहित प्रति 1000 वर्ष 30 से.मी. की एक औसत दर पर निक्षेपित होते हैं।

सापेक्ष रूप से पहुंच योग्य महाद्वीपीय ढलान समुद्र सतह का सर्वोत्तम प्रकार से बूझा गया भाग है। समुद्र का अधिकतम वाणिज्यिक शोषण जैसे कि मेटालिक अयस्क, गैर धात्विक अयस्क एवं जीवाश्म ईंधन (तेल एवं प्राकृतिक गैस) महाद्वीपीय ढलान/दराज के क्षेत्र में घटित होती है। इसके अतिरिक्त दराजों के ऊपर जल समुद्री भोजन का एक समृद्ध स्रोत संविहित करता है। इस पृष्ठभूमि में, खुले तटरेखाओं वाले राष्ट्रों ने अपने महाद्वीपीय टीलों के ऊपर तट से 350 समुद्री मीलों की दूरी तक संप्रभु अधिकारों का दावा किया है। अपने दावों को प्रतिष्ठापित करने के लिए विभिन्न समुद्री देशों ने संयुक्त राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय कानून आयोग 1958 द्वारा महाद्वीपीय टीलों पर सम्मेलन पर हस्ताक्षर किए।

महाद्वीपीय ढाल

विश्व के संयोजित महाद्वीपीय ढाल में एक कुल लम्बाई का लगभग 300,000 किमी. (200,000 मील) है एवं 100 से 3200 मीटरों (330 से 10,500 फीट) की गहराई पर महासागर के थाले के प्रारम्भ के लिए महाद्वीपीय टीले के छोर पर टीले के भग्न स्थान से 4 डिग्री की अधिकता में एक औसत कोण पर अवरोहित होते हैं।

ढलान की प्रवणता बिना प्रमुख नदियों वाले स्थिर तट से परे न्यूनतम है एवं यौन पर्वतशृंखलाओं एवं संकुचित महाद्वीपीय ढलानों वाले तटों से उच्चतम हैं। अधिकतर प्रशांत ढलान अटलांटिक ढलानों से खड़ेतर हैं। प्रवणता हिन्द महासागर में सपाटतम हैं। सभी महाद्वीपीय ढलानों में लगभग एक अर्द्ध गहरे समुद्री खाइयों में या उथलेतर अवसादों, एवं समुद्री तलछट के पखों में शेष समापन के अधिकतम या महासागरीय उत्थानों में अवरोहित होते हैं। महाद्वीपीय परत से संक्रमण से महासागरीय परत आमतौर पर महाद्वीपीय ढलान के नीचे घटित होते हैं।

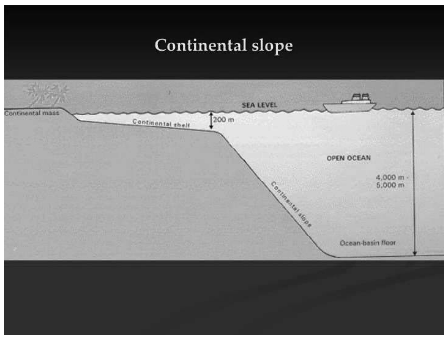

महाद्वीपीय ढाल

महासागरीय सतह की लगभग 8.5 प्रतिशत महाद्वीपीय ढलान उत्थान प्रणाली से आवरणित है। टीले ढलान भग्न के आगे, महाद्वीपीय परत शीघ्रता से पतली होती है एवं

उत्थान आंशिक रूप से महाद्वीपीय परत पर एवं गहरे सागर के महासागरीय परत पर स्थित हैं। यद्यपि महाद्वीपीय ढलान 4 डिग्री के लगभग औसत के हैं। यह कार्बोनेट सीमाओं पर, दोषित सीमाओं पर, या नेतृत्वकारी छोर पर, विवर्तनिक रूप से सक्रिय सीमाओं पर बढ़ सकते हैं।

महाद्वीपीय ढलान असंख्य उपसमुद्री ढलित घाटियों एवं प्रपातीखंडों द्वारा दंतुरित हैं। दक्षिण पूर्वी संयुक्त राज्यों के काले पठारों से एवं दक्षिणी कैलीफोर्नियां से महाद्वीपीय सीमा भूमि मध्यम गहराई के पठारों द्वारा महाद्वीपीय टीलों से पृथक किए महाद्वीपीय ढलानों के उदाहरण हैं। पर्वतीय तट रेखाओं से परे ढलान एवं संकुचित टीले में बहुधा चट्टानों की फसलें हैं।

महाद्वीपीय ढलानों के पूर्व प्राधान्य तलछट कीचड़ हैं, वहां कंकड़ या बालू के तलछटों की न्यूनतर राशियां हैं। भू वैज्ञानिक समय के दौरान, महाद्वीपीय ढलान तलछटों के लिए निक्षेपणीय अस्थाई स्थल हैं। सागर स्तर के न्यून स्थान के दौरान, नदियां अपने तलछटीय भार प्रत्यक्ष रूप से उनके ऊपर ढेर लगा सकती हैं। तलछट बनता रहता है जब तक पिण्ड/भार अस्थिर नहीं बन जाता एवं निम्नतर ढलान के लिए निर्मोक एवं महाद्वीपीय उत्थान अस्थाई बन जाता है। समुद्र सतह के उच्च स्थानों के दौरान यें प्रक्रियाएं धीमी हो जाती हैं क्योंकि तटरेखा महाद्वीपीय टीले के आर-पार भूमि की ओर लौट जाती है, एवं तलछटों का अधिकतर तट के लिए वितरित मुहानों एवं झीलों/ समुद्रतालों में फंसा लिए जाते हैं। अभी भी प्रक्रिया जारी रहती है, यद्यपि धीमे से अभिवहन द्वारा एवं टीले के धरातल के छनन द्वारा टीले के भग्न के आर पार तलछट जैसे ही लाए जाते हैं। ढलान कभी-कभी फलोरिडा प्रवाह जो अपने धरातलों के क्षरण के लिए कार्य करते हैं जैसी प्रमुख महासागरीय प्रवाहों द्वारा चमकाई जाती हैं। सक्रिय रहित/परे प्रमुख निक्षेपण केन्द्र जैसे कि मिस्सीसिपी डेल्टा, पुनः क्रमण द्वारा ढलान शृंखलाओं का जमाव हो सकता है। जब कि सक्रिय ढलान पर गुरुत्वाकर्षण प्रकियाओं द्वारा सतत तलछट निचले ढलानों का पतन कर रहा है।

वितलीय मैदान

एक अथाह समतल महासागर की गहरी सतह पर एक भूमिगत समतल है जो आमतौर पर 3000 मीटर (9800 फिट) एवं 6000 मीटरों (20000 फिट) की गहराई के बीच पायी जाती है। साधारणतः एक महाद्वीपीय उत्थान एवं एक मध्य महासागरीय शिखर चरणों के बीच अवस्थित है, अथाह समतल पृथ्वी पर सपाटतम, कोमलतम एक बहुत कम अन्वेषित क्षेत्र है। अथाह समतल महासागरीय थालों के प्रमुख भू वैज्ञानिक तत्व हैं (दूसरे तत्व हैं एक उच्चारित मध्य- महासागरीय शृंखला एवं पार्श्वकीय अथाह चोटियां)। इन तत्वों के अतिरिक्त सक्रिय महासागरीय थाले (वे जो एक संचलन कर रही प्लेट विवर्तनीय सीमा से सम्बधित हैं) प्रतीकात्मक रूप से एक महासागरीय खाड़ी एवं एक प्रत्यावर्तन क्षेत्र सम्मिलित हैं। यद्यपि वे पृथ्वी के धरातल के 50 प्रतिशत का आर्थिक आवरण करते हैं, वे तलछटीय अंकन में निकृष्ट रूप से संरक्षित हैं क्योंकि वे प्रत्यावर्तन प्रक्रिया द्वारा उपभोग होने के लिए प्रवृत्त हैं। अथाह समतल निर्मित होता है जब निम्नतर महासागरीय परत पिघलती है एवं ऊपरी आवरण की अवसन्न मण्डल सतह द्वारा ऊपर की ओर बाध्य की जाती है। जैसे ही यह असिताश्मिक पदार्थ मध्य महासागरीय शृंखला पर धरातल पर पहुंचता है, यह नई महासागरीय परत का निर्माण करता है। अथाह समतल, मुख्य रूप से मृदा एवं गाद शुद्ध कणयुक्त तलछट द्वारा महासागरीय परत के एक मूल रूप से असमान धरातल के आवरणित होने का परिणाम है। इस तलछट का अधिकतर

अव्यवस्थित प्रवाह जो महाद्वीपीय सीमाओं से उच्च समुद्रीय ढलवा घाटियों से नीचे गहरे जल के साथ प्रसारित हैं, तलछटों का शेष मुख्य रूप से अगाध तलछटों से निर्मित है। यह समतल न्यूफाउण्डलैण्ड के दक्षिण में स्थित है अब सोहेम अथाह समतल के रूप में जाना जाता है। इस खोज का अनुसरण करते हुए सभी महासागरों में अन्य दूसरे उदाहरण प्राप्त किए गए।

4.5.2 गहरी समुद्री खाइयां (घाटियां)

एक मध्य महासागर श्रृंखला (एमओआर) एक भूतलजल पर्वत प्रणाली के लिए साधारण शब्दावली है जिसमें विभिन्न पर्वत श्रृंखलाएं हैं, प्रतीकात्मक रूप से एक घाटी को धारण करते हुए प्लेट विवर्तनिक द्वारा निर्मित अपने मेरूदंड के साथ संचलन करते हुए एक दरार के रूप में जानी जाती हैं, जो समुद्र सतह विस्तारण के लिए उत्तरदायी है। ऊपर उठी समुद्र सतह संवहन प्रवाहों का परिणाम है जो महासागरीय परत में एक रैखिक कमजोरी पर गरम द्रवीभूत चट्टान के रूप में जो परत में उठती है एवं एक लावा के रूप में शीतन पर नई परत का निर्माण करते हुए लावा के रूप में प्रकट होती है। एक मध्य महासागरीय श्रृंखला दो विवर्तनिक प्लेटों के बीच में सीमा का सीमांकन करती है एवं परिणामस्वरूप एक विपथमापी प्लेट सीमा परिभाषित की जाती है।

विश्व की मध्य महासागर श्रृंखलाएं जुड़ी हैं एवं एक एकल वैश्विक मध्य महासागर श्रृंखला प्रणाली का निर्माण करती है जो विश्व में मध्य महासागर श्रृंखला प्रणाली को विश्व में दीर्घतम पर्वत श्रृंखला का निर्माण करती है। सतत पर्वत श्रृंखला 65,000 कि.मी. (40,400 एमआई) लंबी है (एंडीज से कई गुना दीर्घतर, दीर्घतम महाद्वीपीय पर्वत श्रृंखला) एवं महासागरीय श्रृंखला प्रणाली की कुल लंबाई 80,000 किमी (49,700 मील) लंबी है।

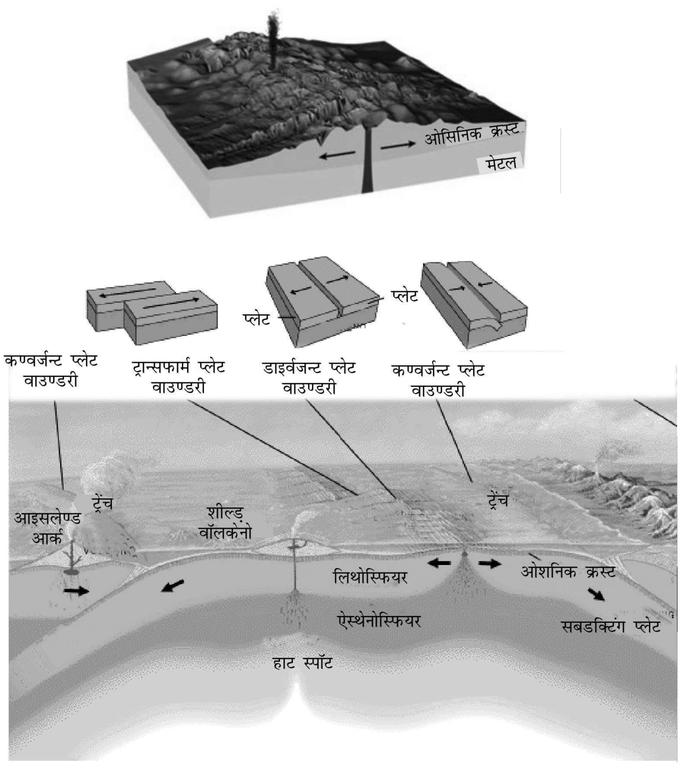

मध्यसागर ट्रेंच

विवरण

शृंखला अक्ष के साथ दरार के निकट एवं परत में एवं महासागर सतह पर एक नए मैग्मा के सतत प्रकटन द्वारा मध्य सागर शृंखलाएं भूवैज्ञानिक रूप से सक्रिय हैं। स्फटीकीय मैग्मा बसाल्ट (आग्वेय) की नई परत (मध्य महासागर शृंखला अग्निय चट्टान के लिए एमओआरबी के रूप में जाने जाने वाले) एवं गैब्रो का निर्माण करती है।

चट्टानें सागर सतह के नीचे परत निर्मित करते हुए शृंखला के अक्ष पर एवं उस अक्ष से वृद्धि कर रही दूरी सहित आयु के साथ नवीनतम हैं, क्योंकि पृथ्वी के अंतर्निहित परत में पिघल रहे प्रति संपीडन के कारण बसाल्ट का नया मैग्मा संरचना अक्ष के निकट पर प्रकट होता है।

चट्टानों से निर्मित महासागरीय परत स्वयं पृथ्वी से वयस्कतर है; अधिकतर महासागरीय परत महासागर थाले में 200 मिलियन वर्षो से कम पुरानी है। महासागर शृंखला पर परत नवीकरण की सतत अवस्था में है। मध्य महासागरीय शृंखला से दूर संचलन करते हुए, महासागर की गहराई उन्नतिक रूप से वृद्धि करती है; महासागर की खाइयों में महानतम गहराइयां हैं। जैसे ही महासागरीय परत शृंखला अक्ष से दूर संचलन करती है, अंतनिर्दिष्ट परत में पीरिडोटाइट शीतल होती है एवं अधिक खुरदरी बन जाती है। परत एवं संपिक्ष रूप से पीरिडोटाइट इसके नीचे महासागरीय स्थलमंडल का निर्माण करता है।

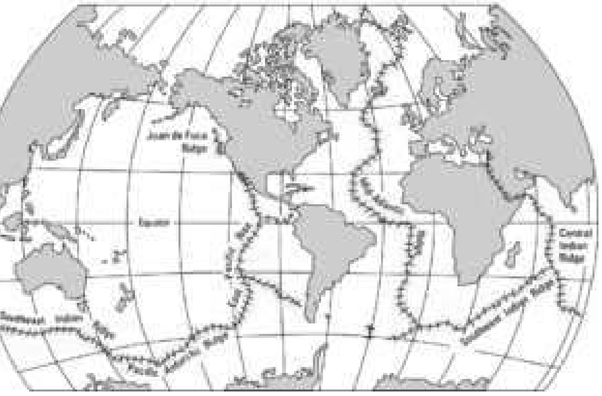

मध्यसागर रिजों का वितरण

मध्य अटलांटिक शृंखला जैसे धीमे फैलने वाली शृंखलाओं में साधारणतः विशाल, चौड़ी दरार घाटी होती है। कभी कभी इतनी विशाल जैसी 10–20 किमी चौड़ी एवं आस्तरित शृंखला भूभाग की परत पर जिसमें एक हजारों मीटरों तक की राहत हो सकती है (3,128 फीट)। इसके विपरीत, तीव्र फैलने वाली शृंखलाएं जैसे कि पूर्वी प्रशांत उत्थान संकुचित है, सपाट स्थलाकृति जो मीलों के कई सैंकड़ों के ऊपर शृंखला से दूर साधारणतः ढालित हैं साधारणतः तेज उत्कीर्णन द्वारा घिरे हैं।

संरचना प्रक्रियाएं

महासागरीय परत महासागरीय एक शृंखला पर निर्मित है, जबकि स्थल मंडल खाइयों पर दुर्बलता मंडल में वापस परावर्तित है। यह आरेख बहुत गुमराह करने वाला है; परत परिपाटी इसके जैसी किसी वस्तु की तरह नहीं दिखाई देती एवं उल्लिखित आचरण प्लेट विवर्तनिक जलाशय से नहीं जुड़ी है।

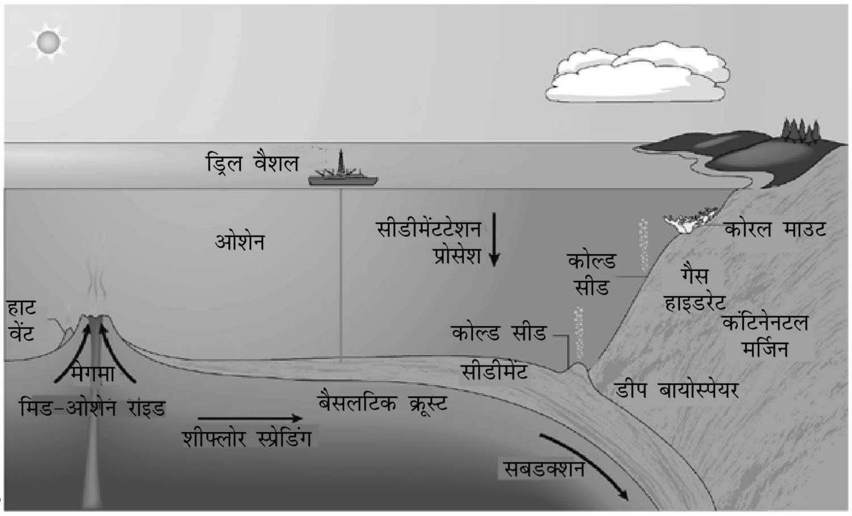

मध्यसागर रिज

दो प्रकार की प्रक्रियाएं हैं, श्रृंखला दाब एवं पट्टी खिंचाव, मध्य महासागर श्रृंखलाओं पर फैलाव दिखाई दिए जाने के लिए उत्तरदायी होना विचारा गया है एवं जैसे कि कौन प्रभुत्वशाली है की वहां कुछ अनिश्चितता है, श्रृंखला दाब तब घटता है जब श्रृंखला की ढेर वृद्धि श्रृंखला से दूर शेष विवर्तनिक प्लेट को धक्का देती है। बहुधा एक परावर्तन क्षेत्र की ओर। परिवर्तन क्षेत्र पर, पट्टी दाब प्रभाव में आता है। परावर्तन हो रहे (खींचे) इसके साथ पीछे शेष प्लेट को खींचते हुए अंतर्निहित प्लेट के नीचे यह साधारणत: विवर्तनिक प्लेट का भार है। अन्य प्रक्रियाएं, मध्य महासागर श्रृंखला पर नई महासागरीय परत की संरचना के योगदान के लिए प्रस्तावित हैं परंतु संवाहक है। फिर भी कुछ अध्ययन हुए हैं जिन्होंने दर्शाया कि ऊपरी परत (दुर्बल मंडल) भी विवर्तनिक प्लेट को साथ खींचने के लिए पर्याप्त घर्षण उत्पन्न करने के लिए लचर है। फिर भी, ऊपर दिए गए प्रतिबिंब में असमान परत की ऊपरी कूपन जो मैग्मा को महासागर श्रृंखलाओं के नीचे निर्मित होने का कारण है केवल अपने उच्च 400 किमी (250 एमआई) को संलिप्त होना प्रकट करता है, जैसे कि भूकम्पी टोमोग्राफी एवं भूकम्पी स्थिरता के अध्ययन से लगभग 400 किलोमीटर पर निष्कर्ष निकाला गया है। सापेक्ष रूप से उथली गहराई जिससे ऊपर कुपित पर श्रृंखलाओं के नीचे उच्चासरित होती हैं 'पट्टी खिंचाव प्रक्रिया' के साथ अधिक संगत हैं। दूसरी ओर, उत्तरी अमेरिकन जैसी विश्व की कुछ दीर्घतम विवर्तनीय प्लेटें संचलन में हैं, फिर भी कहीं भी परावर्तित नहीं हो रही हैं।

मध्य महासागर श्रृंखला प्रणाली नई महासागर परत का निर्माण करती है, जैसे ही स्फटिकीकृत बसाल्ट उचित लौह-टिटेनियम ऑक्साइड के क्यूरी बिंदुओं के नीचे एक श्रृंखला अक्ष पर शीतल हो रही को नि:श्रवण किया जाता है, उन ऑक्साइडों में पृथ्वी के चुंबकीय क्षेत्र के समानान्तर चुंबकीय क्षेत्र दिशाएं अंकित की जाती हैं। महासागर परत में क्षेत्र को अभिमुखीकरण अंकन समय के साथ पृथ्वी के चुंबकीय क्षेत्र की दिशाओं के एक अंकन को संरक्षण करते हैं। क्योंकि अपने संपूर्ण इतिहास के दौरान अनियमित अंतरालों पर क्षेत्र ने दिशाओं को पलट दिया है, पलटने की रीति महासागर परत में काल/आयु एक संकेतक के रूप में प्रयुक्त किए जा सकते हैं। इसी प्रकार परत आयु मापन के साथ-साथ पलटनों की रीति पृथ्वी के चुंबकीय क्षेत्र के इतिहास को स्थापित करने में सहायता के लिए प्रयुक्त की जाती है।

इतिहास

मध्य महासागर शृंखलाएं गहरे महासागर में साधारणतः निमग्न हैं। यह 1950 तक नहीं था, जब महासागर सतह का सर्वेक्षण विस्तार से किया गया था, ताकि उनका पूर्ण विस्तार को जाना जा सके। कोलंबिया विश्वविद्यालय का लैमैंट डोहेर्टी पृथ्वी वेधशाला नामक एक जहाज, वीमा ने महासागरीय धरातल से महासागर सतह के बारे में डाटा अंकन करने के लिए अटलांटिक महासागर की यात्रा की। भैरीथार्प एवं ब्रुश हीजन के नेतृत्व में एक दल ने डाटा का विश्लेषण किया एवं निष्कर्ष दिया कि अटलांटिक की सतह के मध्य के साथ एक विशाल असंख्य पर्वत शृंखला दौड़ रही है, वैज्ञानिकों ने उस समुंद्री पर्वत शृंखला को मध्य-अटलांटिक शृंखला नाम दिया।

प्रथम बार, शृंखला को अटलांटिक महासागर के लिए विशिष्ट एक प्राकृतिक घटना विचारा गया। फिर भी जैसे महासागर सतह का सर्वेक्षण पूरे विश्व में जारी रहा, यह पाया गया कि प्रत्येक महासागर मध्य–महासागर शृंखला प्रणाली के भागों को समाहित करता है। यद्यपि शृंखला पद्धति अटलांटिक महासागर के मध्य नीचे संचलित होती है, शृंखला दूसरे महासागरों के केंद्र से दूर स्थित है।

प्रभाव

एल्फ्रेड वेजेनर ने सन् 1912 में महाद्वीपीय बहाव का सिद्धान्त प्रस्तुत किया था। वेजेनर ने कहा– मध्य अटलांटिक शृंखला-क्षेत्र जिसमें अटलांटिक की सतह है जैसे ही यह फैलना जारी रखती है, यह सतत खुले आवरण को विदरित कर रही है एवं स्थान को ताजगी के लिए निर्मित कर रही है। फिर भी, उसने इस अवलोकन का अपने बाद के कार्यो में नियोजित नहीं किया एवं उसके सिद्धांत को भू वैज्ञानिकों द्वारा निरस्त कर दिया क्योंकि वहां यह व्याख्या करने की यांत्रिकता नहीं थी कि किस प्रकार महासागर परत द्वार महाद्वीपों को कैसे जोता जा सकता है और सिद्धांत पूर्ण रूप से भुला दिया गया था।

1950 में मध्य–महासागर शृंखला के विश्वस्तर पैमाने की खोज का अनुसरण करते हुए भू वैज्ञानिकों ने एक नए कार्य का सामना किया। व्याख्या करते हुए कि किस प्रकार एक विशाल (असंख्य) भू वैज्ञानिक संरचना का निर्माण हो सकता था। 1960 में भू वैज्ञानिकों ने खोजा एवं सागर सतह फैलाव के लिए यांत्रिकता लिए प्रस्तावित करना प्रारम्भ कर दिया। प्लेट संरचनाएं सागर सतह पर फैलाव के लिए एक उचित व्याख्या थी एवं बहुसंख्या भू वैज्ञानिकों द्वारा प्लेट संरचना की स्वीकृति ने भू वैज्ञानिक चिन्तन में एक प्रमुख नमूना परिवर्तन में परिणति दी।

यह प्राकलित किया गया कि पृथ्वी के मध्य महासागर शृंखला के साथ प्रत्येक वर्ष 20 ज्वालामुखी विस्फोट होते हैं एवं प्रत्येक वर्ष 25 वर्ग किलोमीटर नए समुद्री सतह का निर्माण इस प्रक्रिया द्वारा होता है। 1 से 2 किलोमीटर परतीय मोटाई के साथ, यह प्रत्येक वर्ष निर्मित नई महासागरीय परत का 4 घन किलोमीटर के लगभग राशि है।

महासागरीय खाई

महासागरीय खाइयां समुद्र सतह के भू आकृतिक संकुचित अवसादों परन्तु लम्बे गोलार्धिक पैमाने हैं। वे महासागरीय सतह के गहरे भाग हैं।

पृथ्वी के ठोस धरातल पर खाइयां एक अति महत्वपूर्ण प्राकृतिक सीमाओं में से एक को परिभाषित करती हैं। एक दो स्थल मण्डली की प्लेटों के बीच तीन प्रकार की

स्थल मण्डलीय सीमाएं हैं; विपथगामी (जहां एक स्थल मण्डलीय प्लेट दूसरे के नीचे डूबती है एवं परत पर वापस लौटती हैं) एवं रूपांतरित करती हैं (जहां दो स्थल मण्डलीय प्लेट्स एक दूसरे से गुजरते हुए फिसलती हैं।)।

खाइयां प्लेट सीमाओं के विभिन्न निर्माण संरचना सम्बधी लक्षण हैं, विपथगामी प्लेट सीमाओं के साथ, प्लेटें एक कुछ मिमी. से 10 सेमी. प्रतिवर्ष की बहुत तीव्रता के साथ साथ संचलन करती हैं। एक खाई स्थिति का अंकन करती है जिस पर लचर परिवर्तन हो रही यही दूसरी स्थमण्डलीय पट्टी के नीचे गिरना प्रारम्भ करती है। खाइयां साधारणत: एक ज्वालामुखीय टापुओं के चाप के समानान्तर हैं।

ज्वालामुखीय चाप से लगभग 200 किमी तक महासागरीय खाइयां प्रतीकात्मक रूप से उसे 4 किमी (1.9 से 2.5एमआई) के आस-पास के महासागर सतह के स्तर के नीचे विस्तारित होती हैं। समुद्र सतह के नीचे 10,911 मी. (35,798 फीट) की एक गहराई पर मरियाना खाई के चैलेंजर द्वीप में महानतम महासागर गहराई ध्वनित होने वाली है। महासागरीय स्थल मंडल प्रति सेकंड एक वर्ग मीटर के दसवें भाग के लगभग एक वैश्विक दर पर खाइयों में संचलन करता है।

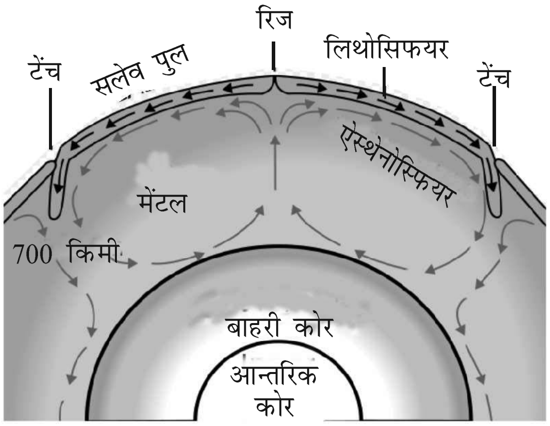

मध्यसागरीय ट्रेचों का निर्माण

भौगोलिक वितरण

विचलनकारी प्लेट सीमाओं का लगभग 50,000 किमी क्षेत्र प्रशांत महासागर के चारों ओर है। खाइयां कभी-कभी दहन हो जाती हैं एवं गाम्भीर्य भित्तीय रहित हैं। परंतु मौलिक ढांचे जिनका ये प्रतिनिधित्व करती हैं का अर्थ है कि यहां महान नाम भी प्रयुक्त किया जाना चाहिए। यह कैशकिडिया, माकरन दक्षिणी कमतर एंटाइल्स एवं कैलाब्रियन खाइयां जो ज्वालामुखी चाप के नीचे 700 किमी जितनी गहरी डुबकी लगाती है विचलन प्लेट सीमाओं एवं उनके गहरेतर परावर्तन क्षेत्रों के निदान हैं। खाइयां महाद्वीप टकराव क्षेत्रों से विभेद करती हैं (जैसे जो हिमालय निर्मित करने के लिए भारत एवं एशिया के बीच), जहां महाद्वीपीय परत परावर्तन क्षेत्र में प्रवेश करती है।

जब कोई उत्पलावी महाद्वीपीय पटल खाई में प्रवेश करता है तो परिणामस्वरूप प्रत्यावर्तन रुक जाता है और अभिसारी प्लेट का किनारा टकराव क्षेत्र बन जाता है। खाइयों की सदृश्य आकृतियां टकराव क्षेत्रों के साथ मिल जाती हैं। इन अवसाद-भरी अग्र गंभीरों को परिधीय अग्रभूमि बेसिन कहा जाता है जो उसी प्रकार की होती हैं जैसी गंगा नदी एवं टिगरिम-यूफ्ट्स नदियों के बहाव के साथ-साथ की भूमि हैं।

ट्रेंच (खाई) का इतिहास

1940–1950 तक खाई को स्पष्ट रूप से निरूपित नहीं किया गया था परंतु महाद्वीपों के बीच अटलांटिक समुद्र के आर–पार टेलीग्राफ के बलों के लगाने के काम को शुरू करने से पहले उन्नीसवीं एवं बीसवीं शताब्दी के पूर्व तक समुद्र के विषय में वास्तविक रुचि नहीं दिखाई गई। खाई (trench) शब्द मुररे एवं हजोर्ट (1912) की प्राचीन समुद्री विज्ञान पुस्तक में नहीं दिया गया है बल्कि इसमें गहरा (deep) शब्द समुद्र की सबसे गहरी जगह के लिए अपनाया गया है, जैसे चैलेंजर दीप। प्रथम विश्व युद्ध के मैदानों से प्राप्त किए अनुभवों ने खाई युद्ध की संकल्पना को एक ऐसी महत्वपूर्ण दीर्घित अवसादी सीमा में निरूपित कर दिया और इस प्रकार इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि 1920 की शुरुआत में खाई (trench) शब्द को प्राकृतिक आकृतियों को वर्णित करने के लिए प्रयोग किया गया था। युद्ध समाप्त होने के दो वर्ष के बाद स्काटलैंड ने भू-गर्भीय परिपेक्ष्य में इस शब्द का वर्णन चट्टानी पर्वतों में संरचनात्मक रूप से नियंत्रित अवसाद के रूप में किया। जॉनस्टोन ने 1923 में अपनी पाठ्य पुस्तक 'समुद्र विज्ञान एक परिचय' में इस शब्द को किसी सीमांकित,दीर्घित समुद्रीय तल के अवसाद के रूप में प्रयुक्त किया।

1920 और 1930 के दौरान फेलिक्स एड्रीज वेलनग मेनिस्ज ने एक अद्वितीय गुरुत्वमापी का विकास किया जो पनडुब्बी के स्थित वातावरण में गुरुत्व को माप सकता था और इसे खाइयों में गुरुत्व को मापने के लिए प्रयोग किया। उसकी मापों ने यह स्पष्ट किया कि खाइयां ठोस भूमि के वे स्थान हैं जो अधोकुआंकरण की वजह से बने हैं। खाइयों पर कुंआकरण की संकल्पना को 1939 में ग्रिग्रस द्वारा एक विवर्तनजन संकल्पना के रूप में अभिलक्षित किया गया जिसके लिए उसने घूर्णकारी ड्रमों के एक युग्म का प्रयोग करते हुए एक सदृश मॉडल विकसित किया। प्रशांत महासागर में द्वितीय विश्व युद्ध ने विशेष रूप से पश्चिमी एवं उत्तरी प्रशांत महासागर के अनुगंभीर में बहुत अधिक सुधार ला दिए और इन गहराइयों की रेखीय प्रकृति स्पष्ट कर दी। गहरे समुद्रों के अनुसंधान प्रयासों में तेजी से, विशेषतौर पर 1950 और 1960 में प्रतिध्वनि मापकों के व्याप्त प्रयोग ने इस शब्द की परिवर्तनशील उपयोगिता की पुष्टि कर दी। महत्वपूर्ण खाइयों की जानकारी ली गई, उनका नमूना तैयार किया गया और उनकी अधिकतम गहराई को ध्वनिक रूप से निश्चित किया गया। 1960 में बैथीस्केफी थिस्ती के आगमन से खाई् अन्वेषण का साहसिक चरण अपनी चरम सीमा में पहुंच गया जिसने चैलेंजर द्वीप की सतह को विभाजित करके एक अद्वितीय विश्व रिकॉर्ड कायम कर दिया। इसके बाद 1960 के पूर्व में राबर्ट एस डाइज और हेरी हेस के समुद्रीतल के अभिकथन ने इस संकल्पना को और अधिक प्रचारित कर दिया और 1960 के अंत में आई प्लेट विर्तनिक क्रांति में इस (trench) खाई शब्द को विवर्तनिक प्लेट के साथ साथ अनुगभीरी विवक्षा से जोड़कर पुनर्निरूपित किया जाने लगा।

खाई पुनरावृत्ति

यद्यपि ऐसा लगता है कि खाइयों की स्थिति लम्बे समय से स्थिर है लेकिन ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि विशेष रूप से प्रत्यावर्तन क्षेत्रों, जहां दो समुद्रीय प्लेटें अभिसारित होती हैं, के साथ सहयोजित रहने वाली कुछेक खाइयां अवनत हो जाती हैं अर्थात् वह पीछे की ओर् उस प्लेट में संचलन करती है जो पश्च संचलन तरंग के साथ-साथ प्रत्यावर्तित हो रही होती है। इसे खाई पुनरावृत्ति (हींज पुनरावृत्ति) भी कहते हैं। यह पश्च चापी बेसिनों की मौजूदगी का एक उदाहरण है।

पेरू चिली खाई

खाइयां किसी अभिसारी प्लेट की विशिष्ट भौतिक आकृति की केन्द्रीय खंड होती हैं। खाइयों के आर-पार के ट्रांसेक्टों को असमयिति रूपरेखायें प्रदान करती हैं जिनमें सापेक्ष रूप से आसान -5 डिग्री की बाह्य समुद्र तरफी ढलान और -10-16 डिग्री की खड़ी ढलान (भूमि तरफी) रहती है। यह असमयिति इस वजह से रहती हैं क्योंकि बाह्य ढलाव निम्नगामी प्लेट के शिखर से निरूपित होती है जो इसके नीचे की ओर आते ही मुड़ जाती है। स्थलमंडल की अधिक मोटाई के लिए इस मुड़ाव का आसान होना जरूरी है। ज्योंही प्रत्यावर्तनकारी प्लेट खाई के पास प्रवेश करती है तो पहले यह बाहरी खाई स्फीति को निर्मित करने के लिए ऊपर की ओर झुकती है और फिर बाह्य खाई ढलान निर्मित करती हुई नीचे को झुकती है। बाह्य खाई का ढलान उप समांतरीय सामान्य दोषों द्वारा छिन्न-भिन्न हो जाता है जो समुद्री तल को सोपान मार्ग नीचे खाई की ओर कर देता है। प्लेट की सीमा स्वयं खाई के अक्ष द्वारा निरूपित होती है। आंतरिक खाई की दीवार के नीचे, दोनों प्लेटें प्रत्यावर्तन अपकर्तन करती हुई एक दूसरे से आगे खिसक जाती हैं और जिनके परिच्छेदन से खाई की स्थिति निरूपित होती है। अध्यारोही प्लेट में ज्वालामुखीय चाप (सामान्य तौर से) और अग्रचाप रहता है। ज्वालामुखीय चाप का निर्माण गहराई में प्रत्यावर्तित प्लेट और दुर्बल मंडलीय परत का अध्यारोपण प्लेट के साथ सह संयोजन के कारण होता है। अग्रचाप खाई एवं ज्वालामुखीय चाप के बीच में रहता है। अग्रचाप में पृथ्वी के आंतरिक भाग से न्यूनतम ऊष्मा प्रवाह रहता है क्योंकि अग्रचाप स्थलमंडल और ठंडी प्रत्यावर्तित प्लेट के बीच कोई दुर्बल मंडल (संवहनीय) परत नहीं होती है।

खाई की आंतरिक दीवार अध्यारोही प्लेट और सबसे बाहरी अग्रचापी प्लेट को सीमांकित करती है। अग्रचापी में अग्नेय एवं परिवर्तनकारी पटल सम्मिलित रहते हैं और यह पटल बढ़ते हुए प्रोदभावी प्रिज्म के सहायक का काम करता है (अधोगामी प्लेट से आंतरिक खाई में अवसाद खुरचता जाता है और यह खाई में गिरने वाले अवसाद की मात्रा

पर निर्भर करता है)। यदि अवसाद का प्रवाह अधिक होता है तो पदार्थ प्रत्यावर्ती प्लेट अध्यारोही प्लेट पर अंतरित हो जाता है। इस विषय में प्रोद्भावी प्रिज्म बढ़ता है और खाई की स्थिति ज्वालामुखीय चाप से निरंतर हटती हुई अभिसारी सीमांत के ऊपर बन जाती है। बढ़ते हुए प्रोद्भावी प्रिज्मों के अभिसारी सीमांतों को प्रोदभावी अभिसारी सीमांत कहा जाता है और ये लगभग सभी आधे अभिसारी सीमांतों को तैयार करते हैं। यदि अवसाद प्रवाह न्यून रहता है तो विवर्तनिक अपादान प्रक्रिया के द्वारा पदार्थ अध्यारोही प्लेट से प्रत्यावर्ती प्लेट पर अंतरित होता जाता है जिसे प्रत्यावर्ती क्षरण कहते हैं और जो प्रत्यावर्ती क्षेत्र में ही घटित होता है। अग्रचापों में हो रहा प्रत्यावर्तन क्षरण प्रारूपिक तौर से आग्नेय चट्टानों को अनावृत कर देता है। इस स्थिति में खाइयों की स्थिति अभिसारी सीमांत से हटकर मैगमीय चापों की ओर बन जाती है। प्रत्यावर्तन क्षरण को झेल रहे अभिसारी सीमांतों को गैर प्रोद्भावी अभिसारी सीमांत कहा जाता है और इनमें आधे से अधिक अभिसारी प्लेट सीमाएं शामिल होती हैं। इसे अति सरलीकरण कहा जाता है क्योंकि अपसारी सीमांत के विभिन्न भाग अपने जीवन काल में अवसाद प्रोद्भवन और प्रत्यावर्तन क्षरण को झेलते हैं।

खाई के आरपार की असममीतीय रूपरेखा पदार्थों एवं विवर्तनिक विकास में एक भूत अंतरों की प्रदर्शित करती है। खाई की बाहरी दीवार और बाहरी स्फीति में वह समुद्री तल शामिल होता है जो बाहरी खाई स्फीति के नजदीक आरंभ हो रही प्रत्यावर्तन संबंधी विकृति से संचलित होकर उसके खाई के नीचे गिरने में लाखों वर्ष ले लेता है। इसके विपरीत, आंतरिक खाई की दीवार अभिसारी सीमांत के संपूर्ण जीवन काल में प्लेटों की पारस्परिक क्रियाओं से विकृत होती है। अग्रचाप लगातार प्रत्यावर्तन संबंधी भूकंपों को चपेट में रहता है। इस दीर्घित विकृति एवं कंपन के लिए यह जरूरी है कि आंतरिक खाई का ढलान जिस किसी भी पदार्थ से निर्मित हो परंतु उसे एक आधारित कोण से नियंत्रित होना जरूरी है। चूंकि वे विकृत अवसादों की अपेक्षा आग्नेय चट्टानों से निर्मित होते हैं इसीलिए गैर प्रोद्भावी खाइयों की दीवारें प्रोद्भावी खाइयों की दीवारों की अपेक्षा अधिक खड़ी होती हैं।

भारित खाइयां

आंतरिक खाई की ढलान के संयोजन और खाई परिवर्तनशीलता के प्रथम नियंत्रण क्रम को आपूर्तित किए अवसाद के द्वारा निर्धारित किया जाता है। सक्रिय प्रोद्भावी प्रिज्म महाद्वीपों की समीपी खाइयों के लिए सामान्य है जहां बड़ी नदियां या हिमानी समुद्र में आती हैं और अपने साथ बड़ी मात्रा में अवसाद लाती हैं जो इनसे होकर खाइयों में चला जाता है। ये भारित खाइयां भ्रमितकारी होती हैं क्योंकि प्लेट विवर्तनिक में ये अन्य अभिसारी सीमांतों से अप्रथकीय नहीं होती हैं परंतु इनमें खाई की अनुगंभीर प्रणाली अभिव्यक्ति की कमी रहती है। यूएसए का उत्तर पश्चिमी कस्केडिया सीमांत एक भारित खाई है जो उत्तरी पश्चिमी यूएसए और दक्षिण पश्चिमी कनाडा की नदियों के द्वारा लाये गए अवसादों का परिणाम है। लेसर एंटाइल्स अभिसारी सीमांत खाई परिवर्तनशीलता में अवसाद स्रोतों की समीपता के महत्व को प्रदर्शित करता है। दक्षिण में, अरिनिको नदी के मुहाने के पास कोई भी परिवर्तनकारी खाई नहीं है और अग्र चाप को मिलाकर प्रोद्भावी प्रिज्म लगभग 500 किमी. चौड़ा है। प्रोद्भावी प्रिज्म इतना बड़ा है कि यह बर्बाडोस और त्रिनिडाड जैसे द्वीपों को निर्मित करता है। उत्तर की ओर अग्रचाप संकरा

होता जाता है और प्रोद्भावी प्रिज्म समाप्त हो जाता है और केवल 17 डिग्री उत्तरी अक्षांश में खाई की परिवर्तनशीलता दृष्टिगत होती है। बिल्कुल उत्तर में, जहां पर कोई अवसादी स्रोत नहीं हैं, वहां 8600 मी से अधिक गहरी प्यूट्रो रिको खाई है और कोई सक्रिय प्रोद्भावी प्रिज्म नहीं है। नदियों की समीपता, अग्रिम चाप की चौड़ाई और खाई परिवर्तनशीलता के बीच इसी प्रकार का संबंध अलास्कीय अलीट्यूएन अभिसारी सीमांत के साथ-साथ पूर्व से पश्चिम तक देखा जा सकता है। अलास्का की तटवर्ती अभिसारी प्लेट सीमा इसके आरंभ से भरी हुई खाइयों के पूर्वी चौड़े अग्रचाप (अलास्का की तटवर्ती नदियों) से तंग पश्चिमी अग्रचाप वाली गहरी खाई टिगरिस - यूफेट्स और सिंधुनदियों द्वारा लाए गए अवसादों से भरी है। खाई के साथ जमा गंदालापन अवसादों के अधो अक्षीय परिवहन की सप्लाई के कारण है जो खाई में 1000-2000 किमी दूर से प्रविष्ट होता है-जैसाकि वल्पैरैसो के दक्षिण के पेरू चिली खाई और अल्युटियन खाड़ी में पाया जाता है।

खाई की गहराई को नियंत्रित करने के लिए अभिसारी दर भी महत्वपूर्ण हो सकती है। विशेष तौर पर उन खाइयों के लिए जो महाद्वीपों के नजदीक हैं क्योंकि धीमे अभिसार के कारण अवसाद को निपटाने की अभिसारी सीमांत क्षमता अधिक बढ़ जाती है।

खाई परिवर्तनशीलता तब अपेक्षित होती है जो समुद्र संतृप्त और महाद्वीप अभिसारित होने लगते हैं। जब समुद्र चौड़े होते हैं तो खाइयां महाद्वीपीय अवसादों के स्रोत से दूर और गहरी हो सकती हैं। ज्योंही महाद्वीप एक दूसरे के समीप आते हैं तो खाई महाद्वीपीय अवसादों से बदल कर उथली हो सकती है। जब प्रत्यावर्तन से टकराव तक का परिवर्तन होता है तो इसका अनुमान लगाने का एक सरल तरीका यह है कि पहले से अंकित की गई खाई की सीमा कब भरी और यह समुद्री तल से कब ऊंची उठी।

प्रोद्भावी प्रिज्म अग्रिम प्रोद्भवन से तब प्रोद्भावी प्रिज्म और अवसाद परिवहन बढ़ जाते हैं जब अवसाद खाई के नजदीक बुल्डोजर के तौर से खुरचे जाते हैं और प्रत्यावर्तित अवसादों और समुद्रीय पहल को प्रत्यावर्तन अपकर्तन के उथले भागों के नीचे बिछा देते हैं। अभिसारी सीमांत के अग्रिम प्रोद्भवन से नवीन अवसाद उत्पन्न होते हैं जो प्रोद्भावी प्रिज्म के सबसे बाहरी भाग और प्राचीनतम अवसादों के सबसे भीतरी भागों को निरूपित करते हैं। प्रोद्भावी प्रिज्म के भाग जितने पुराने होंगे उतने ही लचीले होंगे और नवीन भागों की अपेक्षा संरचना में सीधी चढ़ान वाले होंगे। आधुनिक प्रत्यावर्तन क्षेत्रों में अधोप्लेटिंग का पता लगाना कठिन है परंतु प्राचीन प्रोद्भावी प्रिज्मों में इसे आसानी से रिकॉर्ड किया जा सकता है जैसे कैलीफोर्निया के फ्रांसिस्कन समूह में विवर्तनिक मिश्रण और दोहरी संरचना। खाई के आंतरिक ढलान की परिवर्तनशीलता में विभिन्न प्रकार के प्रोद्भावों को दर्शाया गया है जो तीन परिवर्तनशील प्रांतों को प्रदर्शित करता है। न्यून ढलान में कोरछादी प्रज्ञात पेटियों से बने होते हैं जो श्रृंखला बनाती है। मध्य प्लान में बेंच या मध्य ढलान में बेंच या बेदिका अभिसरण होते हैं। ऊपरी ढलान चिकनी होती है परंतु उपसमुद्री ढलान कैनयन से कटती रहती है। क्योंकि प्रोद्भावी अभिसारी सीमांतों में उच्च उभार रहता है इसीलिए ये निरंतर विकृत होती रहती हैं और अपने में बड़ी मात्रा में अवसाद समा लेती हैं। इस प्रकार ये अवसादों को समाने और उसे विसर्जित करने के बड़े भंडार होते हैं। अवसादों का परिवहन उपसमुद्रीय भूमिस्खलनों, मलबों, प्रवाहों, गंदलापन और बाह्याकृतियों द्वारा नियंत्रित होते हैं। उपसमुद्री केनयन समुद्री तटों और नदियों से अवसाद का परिवहन

करते हैं और ऊपरी ढलान में बिछा देते हैं। ये केन्यन विभिन्न प्रवाहों को छिन्न-भिन्न कर देते और इनकी गहराई कम हो जाती है क्योंकि निरंतर रुकावट के कारण उपधाराई प्रवाहों में रुकावट आ जाती है। अवसाद नदी के नीचे प्रवाहों और रुकावट नियंत्रित बेसिनों की प्रवाह श्रृंखलाओं की वजह से संचालित होते हैं। खाई स्वयं ही अवसाद परिवहन का काम करती है। यदि खाई में अदिक अवसाद जाता है तो यह पूर्ण रूप से भर सकती है और स्तब्ध धाराएं अवसाद को खाई से बाहर ले जा सकती हैं और यहां तक कि बाहरी स्फीति बाहर ले जा सकती है। दक्षिण पश्चिम कनाडा और उत्तर पश्चिम यूएसए की नदियों से लाया गया अवसाद कसकदिया खाई से जुआन दि फुका प्लेट तक फैल जाता है जो पश्चिम में सैकड़ों मील तक श्रेणियों का जाल बिछा देते हैं।

एक संवर्द्धन विचलन सीमा के आंतरिक खाई ढलान के संवर्द्धित प्रिज्म की चौड़ाई एवं मोटाई के लिए सतत सामंजस्य प्रतिबिम्बित करते हैं। प्रिज्म एक 'नाजुक शंकुकार' उपयुक्त पदार्थों के लिए मोहर कोलोम्ब सिद्धांत के साथ सहमति स्थापित करते हैं। तलछटों का एक पैकेज नीचे फैलती स्थल मंडलीय प्लेट का अपोदघर्षण करते हुए जब तक यह एवं संवर्द्धन प्रिज्म जो इससे नाजुक शंकुकार ज्यामिती को प्राप्त करने के लिए इसके साथ संयोजित किया गया है विकृत करेगी। एक बार जब नाजुक शंकुकार ज्यामिती को प्राप्त कर लिया जाता है, कीलक स्थिर रूप से इसके आधार अपरवर्तन के साथ फिसलता है। तनावदार एवं भूजलीय संपत्तियां संवर्द्धन प्रिज्म की शक्ति को मजबूती से प्रभावित करेंगी और इस प्रकार नाजुक शंकुकार के कोण को द्रव्य छिद्र दाब चट्टान शक्ति का आंशिक परिवर्तन करती है एवं नाजुक शंकुकार कोण का महत्वपूर्ण नियंत्रण है। निम्र पारगम्यता एवं तीव्र विघटन छिद्रों के दाब में परिमाणित हो सकता है जो स्थलस्थिरता दाब एवं एक सापेक्ष रूप से कमजोर संवर्द्धन प्रिज्म एक छिछले रूप से शंकुकार ज्यामिती संहिता का वर्द्धन करता है। जबकि उच्च पारगम्यता एवं मद्धिम विचलन निम्र छिद्र सशक्त प्रिज्म एवं सीधा खड़ी ज्यामिती में परिणिति देता है।

हिल्लेनिक खाई प्रणाली असमान्य है क्योंकि यह विचलन सीमा वाष्पकों को परिवर्तित करता है। भूमध्यसागरीय श्रृंखला के दक्षिणी पार्श्व (इसके संवर्द्धनी प्रिज्म) के धरातल के ढलान निम्र है, लगभग 1 डिग्री, जो बहुत निम्र मुंडन दाब के आधार पर अपवर्तन पर इंगित करता है। वाष्पक संवर्द्धन संकुल के नाजुक शंकुकार को प्रभावित करते हैं जैसे कि उनकी यांत्रिक संपत्तियां तलछटों से भिन्न है एवं उनके द्रव्य दाबों एवं द्रव्य बहाव या प्रमाण, जो प्रभावशाली दाब को नियंत्रित करते है के कारण है। 1970 में हिल्लेनिक खाई के कम गहराई क्रेटे के दक्षिण को अन्य उप परावर्तन क्षेत्रों पर खाइयों की समानता के लिए भाषांतरित किया गया परंतु इस विचार के साथ कि भूमध्यसागरीय श्रृंखला एक संवर्द्धन संकुल है, यह स्पष्ट हो गया कि हिल्लेनिक खाई वास्तव में एक अग्रिम चापथाला है, एवं प्लेट सीमा भूमध्यसागर श्रृंखला के दक्षिण में पड़ती है।

जल एवं जैव मंडल

अग्रिम चाप के नीचे से पलायन कर रहे जल का आयतन जलीय द्रव्यों एवं चट्टानों के मध्य पेचीदा पारस्परिक क्रियाओं एवं पृथ्वी की गतिमानता में परिमाणित होता है। इनमें से अधिकतम जल छिद्रों में उच्च स्थल मंडल में मोचों एवं परावर्तित प्लेट के तलछट में फंस जाता है। औसत अग्रिम चाप महासागरीय तलछट जो 400 मी. गहरी है एक ठोस आयतन द्वारा अधिघावन है। यह तलछट 50-60 प्रतिशत छिद्रलता वाली खाई में प्रवेश

करती है। ये तलछट उन्नत रूप से संपीड़ित हैं जैसे वे परावर्तित हैं, शून्य स्थल को हटाते हुए एवं द्रवों को अपवर्तन के साथ बाहर करते हुए बाध्य करता है।

प्रत्यावर्तन क्षेत्र के उथले भागों से रिसने वाला भाग तरल प्लेट की सीमा से रिस सकता है परंतु इसे खाई के अक्ष से निकास होते हुए बहुत ही कम पाया जाता है। इन सभी तरलों में पानी की प्रबलता अधिक रहती है परंतु साथ ही इसमें घुले हुए मापन एवं जैविक कणों और विशेष तौर पर मिथेन की मात्रा भी पाई जाती है। मिथेन प्रायः अग्रचाप में बर्फ जैसी स्थिति में भी जमा रहता है (मिथेन क्लैथ्रेट जिसे हाइड्रेट भी कहते हैं)। ये स्थैतिक ऊर्जा के स्रोत होते हैं और तेजी से हट सकते हैं। विगत समय में गैस हाइड्रेटों के अस्थितीकरण से वैश्विक तापन बढ़ गया था और भविष्य में भी ऐसा हो सकता है। जहां अग्रचाप से ठंडे तरल रिसते हैं वहां पर रसोसंश्लेषी अवयव पाए गए हैं। पश्चिमी प्रशांत में विशेष तौर पर जापान के आस–पास उत्तरी, केंद्रीय और दक्षिणी अमेरिका के एल्यूटियन तटों से लेकर पेरू–चिली खाइयों तक पूर्वी प्रशांत में, बार्बोडोस प्रिज्म, भूमध्यसागर और मकरान एवं सुंडा अभिसारी सीमांत के साथ हिंद महासागर में ठंडे रिसते हुए अवयव खाइयों की ढलान में 6000 मीटर तक की गहराइयों में पाए गए हैं। इन अवयवों पर द्रव तापीय सुराखों से जुड़े रसोसंश्लेषी अवयवों की अपेक्षा कम ध्यान दिया जाता है। रसोसंश्लेषी अवयव अनेक भूगर्भीय स्थितियों में पाए जाते हैं जैसे प्रोद्भावी प्रिज्मों में अति दाबित अवसादों के ऊपर जहां तरल कीचड़ युक्त ज्वालामुखियों या श्रेणियों से निष्कर्षित होता है (बार्बाडोस, नानकाइ और कासकाडिया), भ्रंश सहित सक्रिय क्षरणीय सीमांतों के साथ और मलबा खिसकने से बने कगारों पर (जापान खाई, पेरूवियी सीमांत)। धरातलीय रिसावों का संबंध अत्यधिक हाइड्रेट जमावों और आस्थिरीकरण (जैसे कसकादिया सीमांत) से हो सकता है। तरलों में मिथेन और सल्फाइड की अधिक मात्रा का समुद्री तल से रिसाव होना ही रसोसंश्लेषी के लिए प्रमुख ऊर्जा स्रोत बन जाता है।

खाली खाई और प्रत्यावर्तन क्षरण

किसी महाद्वीपीय तलछटों से दूर खाइयों में अभिवर्धी प्रिज्म नहीं होता है, और ऐसी खाइयों की आन्तरिक ढलान साधारणतया कायांतरित या आग्नेय चट्टानों से बनी होती है। अन–अभिवर्धी अभिसारी छोर प्रीमिटिव आर्क प्रणाली (लेकिन सीमित नहीं) की विशेषता होती है। प्रीमिटिव आर्क ऐसी होती है जो महासागरीय भूर्पटी पर बनी होती है, जैसे इजु–बोनिन मैरीयाना, टोंगा-करमाडेक, और स्कॉशिया (साउथ सैंडपिच) आर्क सिस्टम। इन अभिसारी छोरों के आन्तरिक खाई ढलान, फोरआर्क के पर्पटी सहित बसाल्ट, गैबरो और सर्पेन्टाइना इज्ड मैंटल पेरिडोटाइट को दर्शाता है। ऐसे अनावरण से महासागर के निचले पर्पटी और ऊपर के मैंटल का अध्ययन किया जाता है और प्रत्यावर्तन क्षेत्रों की शुरुआत से संबंधित चुम्बकीय उत्पादों के अध्ययन करने का अनोखा अवसर प्राप्त होता है। अधिकांश ओफिओलाइटों की उत्पति शायद प्रत्यावर्तन की शुरुआत के फोरआर्क वातावरण में होती है, और यह सेटिंग, मोडी पर्पटी के ब्लॉकों से टकराते समय ओफियोलाइट अभिस्थापन की सहायता करती है। सभी अन–अभिवर्धी अभिसारी हासिया प्रीमिटिव आर्क से संबंधित नहीं होते हैं। कुछ महाद्वीप ऐसे हैं जहां की नदियां थोडे तलछटों को बहाकर लाती हैं, ऐसे महाद्वीपों के सामने वाली खाइयों जैसे पेरु–चिली फ्रेन्च के मध्यभाग में भी अभिवर्धी प्रिज्म नहीं हो सकता है।

किसी अन्–अभिवर्धी फोरआर्क के आग्नेय भूगृह में प्रत्यावर्तन क्षरण बराबर हो सकता है। इससे पदार्थ, फोरआर्क से प्रत्यावर्तित होने वाले प्लेट में परिवर्तित होता है और इसका समापन फ्रॉन्टल क्षरण या आधारीय क्षरण द्वारा हो सकता है। समुद्री टीले जब फोरआर्क के नीचे प्रत्यावर्तित होते हैं उसके बाद फ्रॉन्टल क्षरण काफी सक्रिय हो जाता है। बड़ी इमारतों के प्रत्यावर्तन (समद्री टीले में सुरंग) से फोरआर्क में ज्यादा ढलाव बन जाता है, जिसके कारण यह बड़े पैमाने पर टूटता है और अन्तत: मलबा खाई में आ जाता है। यह मलबा, नीचे जाने वाले प्लेट के ग्रैबेन में जमा हो सकता है और इसके साथ यह प्रत्यावर्तित हो सकता है। इसके विपरीत फोरआर्क के तल में प्रत्यावर्तन क्षरण से बनी संरचनाओं को भूकंपीय परावर्तन प्रोफाइल से इसकी पहचान करना मुश्किल होता है, इसलिए आधारीय क्षरण की पुष्टि करने की संभावना में कठिनाई होती है। प्रत्यावर्तन क्षरण भी किसी मजबूत वन्स-रॉबस्ट अभिवर्धी प्रिज्म को कम कर सकता है, यदि तलछटों का बहाव खाई में कम होता है।

ज्वालामुखी के सर्पिली कीचड़ के स्थान में अन्–अभिवर्धी फोरआर्क भी हो सकता है। यह नीचे जाने वाला प्लेट परकोट से बहने वाले तरल पदार्थ से बनता है। ये वहां बनते हैं जहां नीचे जानेवाला प्लेट परकोलेट से बहने वाला तरल पदार्थ ऊपर जाता है और फोरआर्क के मैन्टल भूर्पटी के साथ मिलता है। मैन्टल पेरिडोटाइट सर्पेन्टीनाइट, जो पेरिडोटाइट से कुछ अधिक गाढ़ा होता है, में घुल जाता है और इस तरह जब उसे मौका मिलता है तो ऊपर की ओर उठेगा। कुछ अन्–अभिवर्धी फोरआर्क में मजबूती से विस्तार होता है, उदाहरणार्थ मैरियाना, और इससे प्लवनज़ील सर्पेन्टीनाइट समुद्री सतह तक उठ जाता है जहां वह ज्वालामुखीय सर्पिली कीचड़ बन जाता है।

खाई की गहराई को प्रभावित करने वाले कारक

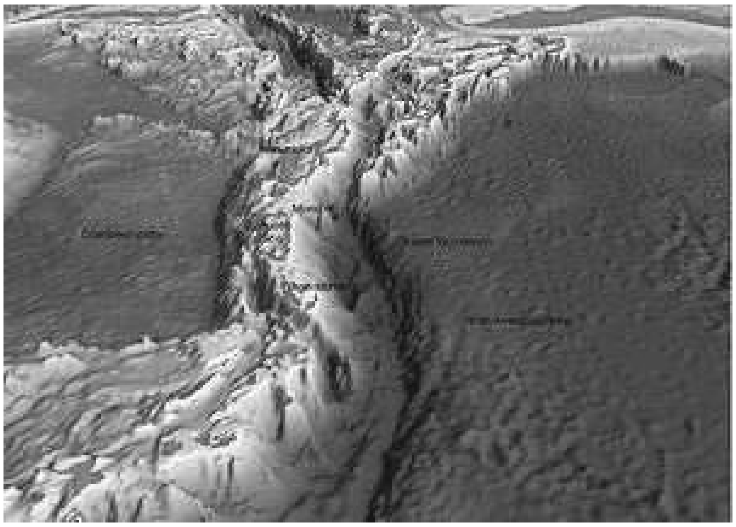

पोर्टो रिको ट्रेन्च

खाइयों की गहराइयों को नियंत्रित करने वाले कई कारक होते हैं। सबसे महत्वपूर्ण नियंत्रक तलछट की आपूर्ति होती है जो खाई को भरता है ताकि अनुगंभीर अभिव्यक्ति नहीं हो। अत: यह अश्चर्यजनक नहीं है कि सबसे गहरी खाइयां (8000 मीटर से अधिक गहरी) सभी अन्–अभिवर्धी होते हैं। इसके विपरीत, बढ़ती अभिवर्धी प्रिज्मों वाली सभी खाइयां 8000 मीटर से ज्यादा छिछली होती हैं। खाई की गहराई पर नियंत्रण रखने वाला

दूसरा कारक है-प्रत्यार्वन के समय तक भूर्पटी की आयु। क्योंकि महासागरीय भूर्पटी अपनी आयु के अनुसार ठंडा और मोटा हो जाता है। यह नीचे बैठ जाता है। समुद्री सतह जितनी ठंडी होती है उतना ही यह गहरी होती है, और यह कम से कम गहराई का निर्धारण करता है जिससे समुद्री सतह अपना वंशानुक्रम शुरू करती है। इस प्रत्यक्ष परस्पर संबंध को सापेक्ष गहराई, क्षेत्रीय समुद्री सतह की गहराई और खाई की अधिकतम गहराई के बीच के अन्तर को देखकर हटाया जा सकता है। सापेक्ष गहराई को खाई की भूर्पटी की आयु केन्द्राभिगामिता की दर और मध्यवर्ती गहराई पर प्रत्यावर्तित स्लैब की गहराई द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है। अंततः पतले स्लैब डूब सकते हैं और बड़े प्लेटों से अधिक तेज वापस आ सकते हैं। क्योंकि अन्तर्निहित दुर्बलता मंडल के डूबते प्लेट के किनारे पर बहने में अधिक आसानी होती है। ऐसे स्लैब सापेक्ष छिछले गहराई पर ढलवा हो सकते हैं और इसलिए ये गहरी खाइयों से कभी-कभी संबंधित हो सकता है जैसे चैलेन्जर डीप।

तालिका : बड़ी महासागरीय खाइयां

खाई	**महासागर**	**गहराई**
मैरियना ट्रेन्च	प्रशान्त महासागर	11,033 मीटर
टोंगा ट्रेन्च	प्रशान्त महासागर	10,882 मीटर
कुरील-कामचटका ट्रेन्च	प्रशान्त महासागर	10,542 मीटर
पिफलिपिन ट्रेन्च	प्रशान्त महासागर	10,540 मीटर
करमाडेक ट्रेन्च	प्रशान्त महासागर	10,047 मीटर
इजू-बोनिन ट्रेन्च (इजु ओगासवारा ट्रेन्च)	प्रशान्त महासागर	9,780 मीटर
जापान ट्रेन्च	प्रशान्त महासागर	9,000 मीटर
पोर्ट रिको ट्रेन्च	अटलान्टिक महासागर	8,605 मीटर
पेरू	प्रशान्त महासागर	8,065 मीटर

ट्रेन्च	**स्थिति**
एलिउशीयन ट्रेन्च	अलास्का के पश्चिम में
बोगैनवाइल ट्रेन्च	न्यूगिनी के दक्षिण में
कैमान ट्रेन्च	कैरिबियन सागर के पश्चिम में
सेडरोज ट्रेन्च (सुषुप्त)	बाजा कैलिफोर्निया के फैसिलिक तट पर
हिकुरंगी ट्रेन्च	न्यूजीलैंड के पूरब में
इजू-ओगासवारा ट्रेन्च	इजू और बोनिन द्वीपसमूह के नजदीक
जापान ट्रेन्च	पूर्वोत्तर जापान में
करमाडेक ट्रेन्च	पूर्वोत्तर न्यूजीलैन्ड में
कुरील-कामचटका ट्रेन्च	कुरील द्वीपसमूह के समीप
मनीला ट्रेन्च	पिफलिपिन्स के लुजोन के पश्चिम में
मैरियाना ट्रेन्च (महासागर के ज्ञात सबसे गहरा भाग)	प्रशान्त महासागर के पूर्व (मैरियाना द्वीपसमूह के पूर्व में
मिडल अमेरिका ट्रेन्च	प्रशान्त महासागर के पूर्वी भाग (ग्वाटेमाला, एल सल्वाडोर, निकारागुआ, कोस्टारिका के तट से अलग
न्यू हेबराइड्स ट्रेन्च	वानुआतु के पश्चिम (न्यू हेबराइड्स द्वीपसमूह) इस्पीरिटू सेन्टो द्वीप के द्वारा 2 भागों विभाजित; उत्तरी भाग उत्तर और उत्तर पश्चिम की ओर सोलोमन द्वीपसमूह तक पफैला है दक्षिणी भाग दक्षिण और दक्षिणपूर्व की ओर फिजी द्वीपसमूह तक

पेरु–चिली ट्रेन्च	प्रशान्त महासागर के पूर्व; पेरु और चिली के तट से अलग
फिलिपीन ट्रेन्च	फिलिपीन द्वीपसमूह के पूर्व में पोर्ट रिको ट्रेन्च
(अटलांटिक महासागर के ज्ञात सबसे गहरा भाग)	कैरिबियन सागर और अटलांटिक महासागर के सीमा पर
पाइसेगुर ट्रेन्च	न्यूजीलैंड के दक्षिण पश्चिम में
रूकू ट्रेन्च	जापान के रूकू द्वीपसमूह के पूर्वोत्तर छोर पर
साउथ सैन्डविच ट्रेन्च	
सून्डा आर्क और जावा ट्रेन्च	
टोन्गा ट्रेन्च	टोन्गा के समीप
याप ट्रेन्च	प्रज्ञान्त महासागर के पूर्वोत्तर (पालॉ द्वीपसमूह और मैरियाना ट्रेन्च के बीच में

प्राचीनकाल की महासागरीय खाइयां

ट्रेन्च	स्थिति
इनटरमोन्टेन ट्रेन्च	उत्तरी अमेरिका के पश्चिमोत्तर में; इन्टरमोन्टेन द्वीपसमूह और उत्तरी अमेरिका के मध्य में
इन्सुलर ट्रेन्च	उत्तरी अमेरिका के पश्चिमोत्तर में; इन्सुलर द्वीपसमूह और इन्टरमोन्टेन द्वीपसमूह के मध्य में
फारालोन ट्रेन्च	उत्तरी अमेरिका के पश्चिमोत्तर में
टेथायान ट्रेन्च	टर्की, इरान, तिब्बत और दक्षिण पूर्व एशिया के दक्षिण में

अपनी प्रगति जांचिए

5. किस महासागर की आकृति अंग्रेजी के 'S' अक्षर जैसी है?
   (क) हिंद महासागर (ख) अटलांटिक महासागर
   (ग) प्रशांत महासागर (घ) इनमें से कोई नहीं
6. हिंद महासागर की औसत गहराई कितनी है?
   (क) 3540 मी. (ख) 3680 मी.
   (ग) 3950 मी. (घ) 3980 मी.

4.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ख)
2. (ग)
3. (ख)
4. (क)
5. (ख)
6. (ग)

4.7 सारांश

समुद्र विज्ञान भौतिक भूगोल की एक महत्वपूर्ण शाखा है। जिसका एक स्वतंत्र विज्ञान के रूप में विकास हो रहा है। समुद्र विज्ञान आज बहुत ही महत्वपूर्ण विषय है। क्योंकि हम लोग इस पृथ्वी के लगभग 29.2 प्रतिशत भाग पर निवास करते है। शेष पृथ्वी के 70.8 प्रतिशत भाग पर जल राशियां हैं। पृथ्वी पर हमारी जनसंख्या बढ़ रही है। क्योंकि समुद्र ही मानव की भविष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति का स्रोत है। साथ ही अतुल संपदा का भंडार है। दूसरी तरफ ग्लोबल वार्मिंग हो रही है जिसके कारण समुद्र पृथ्वी पर अतिक्रमण कर रहा है। इस तरह से समुद्री प्रदूषण और समुद्र के आगे बढ़ने को कैसे रोका जा सकता है। इसका अध्ययन करना आवश्यक हो गया है। इतना ही नहीं पृथ्वी पर मानव जीवन को प्रभावित करने में जल का महत्वपूर्ण स्थान है। सर्वप्रथम जीव की उत्पत्ति समुद्रों से ही मानी जाती है। जब समुद्रों का उद्भव हुआ तो कार्बन के भौतिक अथवा हाइड्रोकार्बन के एकीकरण से जीवाणु युक्त पदार्थों का निर्माण एवं विकास हुआ। समुद्र विज्ञान (oconography) में सागर महासागर का सामान्य चित्रण का अध्ययन भौगोलिक दृष्टि से किया जाता है।

समुद्र विज्ञान की एक क्रमबद्व विज्ञान के रूप में नींव प्राचीन काल में समुद्री खोज यात्राओं के द्वारा रखी गई थी। बाद में समुद्री विज्ञान का विकास 15वीं एवं 16वीं शताब्दी में व्यापक स्तर पर खोज एवं अन्वेषण के दौर से प्रारंभ हुआ। इस युग को खोज एवं अन्वेषण का महायुग कहा गया। परंतु उसका वैज्ञानिक रूप से विकास 19वीं सदी की देन है, क्योंकि सागरों, महासागरों के रहस्यों को जानने के लिए कई सागरीय यात्राएं, आधुनिक जलपोत, संयंत्रों, शोधों की नई प्रवृत्तियों के साथ समुद्र विज्ञान का तेजी से विकास हुआ। हर्डमैन के अनुसार, समुद्र विज्ञान का विकास वर्तमान युग में हुआ। किंतु इसकी उत्पत्ति अत्यंत प्राचीन है।

21वीं सदी में समुद्र विज्ञान की प्रवृत्ति, पर्यावरण तथा पारिस्थितिकी के रूप में विकास हुआ। अनेक देशों ने अनेक शोध कार्य किए तथा संस्थाओं के माध्यम से विभिन्न पर्यावरणीय ह्रास से संबंधित शोध कार्य शुरू किए गए। साथ ही सागरों के सामरिक महत्व एवं व्यावहारिक समुद्र विज्ञान पर अधिक बल दिया। 2004 की भारत–सुमात्रा की सुनामी की भयावह घटनाओं ने सामुद्रिक शोध कार्य को और भी आगे बढ़ाया। साथ ही जलवायु की मॉनिटरिंग के लिए वायुमंडल और महासागर का अध्ययन महत्वपूर्ण विषय बन गया। कंप्यूटर उपग्रह की सहायता से आंकड़ों की प्रोसेसिंग में सहायता प्राप्त हुई।

अंतर्राष्ट्रीय हिंद महासागर अभियान के अंतर्गत भारत में समुद्र विज्ञान संबंधी अनुसंधान शुरू किया गया। भारत में राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान नई दिल्ली में है जिसका उद्देश्य हिंद महासागर के बारे में जानकारी प्राप्त करना है। इस संस्थान के चार संभाग हैं तथा दो प्रमुख इकाइयां हैं। भारत ने सितंबर 1962 से दिसंबर 1965 तक अंतर्राष्ट्रीय हिंद महासागरीय खोज में सक्रिय सहयोग दिया।

पृथ्वी पर जीवन के अस्तित्व के लिए जल परमावश्यक वस्तु है। सौरमंडल में पृथ्वी ही एक ऐसा ग्रह है जहां जल पाया जाता है। पृथ्वी पर 71% भाग पर जल का

विस्तार है तथा 29% पर स्थल भाग है। इस 71% भाग में पाए जाने वाले जल में भी 97% भाग महासागरों, सागरों में पाया जाता है। इन महासागरों को जल का विशाल भंडार कहा जाता है। वायुमंडल में जलवाष्प की मात्रा इसी विशाल भंडार से वाष्पन के द्वारा प्राप्त होती है।

ग्लोब के धरातल के सबसे ऊंचे क्षेत्र की ऊंचाई 8848 मीटर आंकी गई है जबकि सबसे गहरे भाग क्षेत्र की गहराई 11035 मीटर है। सेलिसबरी के अनुसार, महाद्वीप एवं महासागर पृथ्वी के प्रथम श्रेणी के उच्चावच के लक्षण हैं। इसी तरह स्थल की औसत ऊंचाई 840 मीटर पाई जाती है। जबकि महासागरों की औसत गहराई 3800 मीटर है। भूपृष्ठ की औसत ऊंचाई तथा गहराई के कारण ही पृथ्वी पर संतुलन स्थित हुआ है क्योंकि इस ऊंचे एवं गहरे क्षेत्रों के मध्यस्थ एक ऐसी पेटी स्थित है, जहां पर सबसे नीचे एवं सबसे ऊंचाई के पदार्थ का संतुलन स्थापित हुआ है, जो क्षति पूर्ति का कटिबंध (Zone of compensation) कहलाता है।

4.8 मुख्य शब्दावली

- **अतिक्रमण** : अनधिकृत कब्जा करना।
- **उद्भव** : जन्म, उत्पत्ति।
- **धरातल** : पृथ्वी।
- **अतीत** : भूतकाल।
- **निक्षेपित** : नीचे बैठ जाना।
- **लवणता** : खारापन, नमक मिश्रित।
- **भित्ति** : दीवार।
- **कंदरा** : गुफा।
- **अन्वेषण** : खोज।
- **क्षीरोद** : दूध, दुग्ध।
- **घृत** : घी।
- **वितरण** : बांटना।
- **कृत्रिम** : बनावटी।

4.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. समुद्र विज्ञान किसे कहते हैं? परिभाषित कीजिए।
2. समुद्र विज्ञान की प्रमुख शाखाओं के नाम लिखिए।
3. समुद्र विज्ञान के ऐतिहासिक विकास को कितने भागों में बांटा गया है?

4. विश्व के प्रमुख महासागरों के नाम लिखिए।
5. प्लेट विवर्तनिकी से आप क्या समझते हैं?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. समुद्र विज्ञान की प्रकृति एवं क्षेत्रों का वर्णन कीजिए।
2. समुद्र विज्ञान के इतिहास की व्याख्या कीजिए।
3. पृथ्वी पर भू–जल वितरण की प्रक्रिया को समझाइए।
4. महासागरीय तलों की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
5. पृथ्वी की संरचना एवं समुद्री खाइयों का विश्लेषण कीजिए।

4.10 सहायक पाठ्य सामग्री

1. सिंह सविंद्र, 2020, समुद्र विज्ञान, प्रवालिका पब्लिकेशन्स, प्रयागराज।
2. नेगी बी. एस., जलवायु विज्ञान तथा समुद्र विज्ञान, केदारनाथ रामनाथ, मेरठ।
3. सिंह सविंद्र, 2020, जलवायु विज्ञान, प्रवालिका पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद।
4. लाल डी. एस. 2013, जलवायु एवं समुद्र विज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज।
5. गौतम अलका, 2017, जलवायु एवं समुद्र विज्ञान, रस्तोगी पब्लिकेशन्स, मेरठ।
6. तिवाड़ी अनिल कुमार एवं शर्मा बी. एल., 2008, जलवायु विज्ञान के मूल तत्व, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर।
7. कुमार अमित, 2011, जलवायु विज्ञान, विश्व भारती पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
8. वर्णवाल महेश कुमार, 2016, भूगोल एक समग्र अध्ययन, कॉ समॉस पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
9. खुल्लर डी. आर., 2014, भूगोल मुख्य परीक्षा, मैक्ग्रा–हिल प्रा. लि., नई दिल्ली।
10. भारती नीरज, अली अब्बास, मैकाबुक भारत एवं विश्व का भूगोल, अरिहंत पब्लिकेशन्स (इण्डिया) लिमिटेड, मेरठ।
11. ओझा एन. एस., 2016, वैकल्पिक भूगोल, क्रोनिकल पब्लिकेशंस प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।
12. मामोरिया चतुर्भुज सिसोदिया एम.एस., जलवायु विज्ञान एवं समुद्र विज्ञान, एस. बी. पी.डी. पब्लिकेशन हाउस आगरा।
13. हुसैन माजिद, संक्षिप्त भूगोल, टाटा मैकग्रा हिल एजुकेशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।
14. कुमार संजीत, कुमार अजीत, नेट/जे.आर.एफ./सेत भूगोल, पेपर–2, अरिहंत पब्लिकेशंस इंडिया लिमिटेड नई दिल्ली।
15. चतुर्भुज मामोरिया, सिंह कोमल, 2020, भूगोल बी.ए. तृतीय वर्ष, एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन आगरा।

16. खन्ना सी.एल., यूनिफाइड भूगोल, बी.ए. तृतीय वर्ष, शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी, इंदौर।
17. न्याती जानकीलाल खन्ना, सी.एल., यूनिफाइड भूगोल, तृतीय सेमेस्टर शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी, इंदौर।
18. गर्ग एच. एस., सिंह कोमल, 2019–20, भूगोल, NCERT] एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन आगरा।
19. सिंह राजेश कुमार, 2014, विश्व का भूगोल, लुसेंट पब्लिकेशन, पटना, बिहार।
20. खुल्लर डी.आर., 1996, भूगोल, सरस्वती हाउस प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली।

इकाई 5 सागरीय जल : विशेषताएं, परिसंचरण तंत्र, जैविक क्षेत्र एवं खनिज संसाधन

संरचना

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 सागरीय जल के भौतिक और रासायनिक गुण
5.3 सागरीय एवं वायुमंडलीय परिसंचरण तंत्र में अंतर्संबंध
5.4 महासागरीय सतह की धाराएं
5.5 थर्मोहेलाइन लहर और ज्वार
5.6 महासागरीय निक्षेप : प्रवाल भित्तियां
5.7 सामुद्रिक जैविक पर्यावरण
5.8 सागरीय जीवों के प्रकार
    5.8.1 जंतु प्लेंक्टन
    5.8.2 नेक्टन समुदाय
    5.8.3 बेंथोस पादप
5.9 भविष्य हेतु संसाधनों के भंडार के रूप में महासागर
5.10 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
5.11 सारांश
5.12 मुख्य शब्दावली
5.13 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.14 सहायक पाठ्य सामग्री

5.0 परिचय

समुद्र विज्ञान समुद्र के प्राचीन इतिहास, इसकी वर्तमान स्थिति और इसके भविष्य सहित समुद्र की भौतिक, रासायनिक और जैविक विशेषताओं का अध्ययन है। ऐसे समय में जब समुद्र को जलवायु परिवर्तन और प्रदूषण से खतरा है, समुद्र तट का क्षरण हो रहा है, और समुद्री जीवन की पूरी प्रजाति विलुप्त होने का खतरा है, समुद्र विज्ञान की भूमिका अब पहले से कहीं अधिक महत्वपूर्ण हो सकती है।

दरअसल, आज समुद्र विज्ञान की सबसे महत्वपूर्ण शाखाओं में से एक को जैविक समुद्र विज्ञान के रूप में जाना जाता है। यह समुद्र के पौधों और जानवरों एवं समुद्री पर्यावरण के साथ उनके व्यवहार का अध्ययन है। लेकिन समुद्र विज्ञान केवल अध्ययन और अनुसंधान के बारे में ही नहीं है यह उस जानकारी का उपयोग करने के बारे में भी है जिससे वैश्विक नेतृत्व को समुद्र के स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाली नीतियों के बारे में स्मार्ट विकल्प बनाने में मदद मिलती है। समुद्र विज्ञान के माध्यम से सीखे गए सबक मानव द्वारा परिवहन, भोजन, ऊर्जा, पानी और अन्य विषयों हेतु समुद्र का उपयोग करने के तरीकों को प्रभावित करते हैं।

इस इकाई में सागरीय जल के भौतिक और रासायनिक गुण, सागरीय एवं वायुमंडलीय परिसंचरण तंत्र में अंतर्संबंध, पृष्ठीय धाराओं, निक्षेपों, प्रवाल भित्तियों, जैविक

पर्यावरण, सागरीय जीवों के प्रकारों तथा समुद्र के खाद्य और खनिज संसाधनों का अध्ययन किया जा रहा है।

5.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- सागरीय जल के भौतिक और रासायनिक गुणों को समझ पाएंगे;
- सागरीय एवं वायुमंडलीय परिसंचरण तंत्र में अंतर्संबंध के बारे में जान पाएंगे;
- पृष्ठीय धाराओं के प्रकारों का अध्ययन कर पाएंगे;
- महासागरीय निक्षेप एवं प्रवाल भित्तियों से संबद्ध विभिन्न पक्षों की व्याख्या कर पाएंगे;
- समुद्री जैविक पर्यावरण की विवेचना कर पाएंगे;
- जीवों के प्रकार एवं समुद्र से भोजन, खनिज तथा ऊर्जा की संभावनाओं को जान पाएंगे।

5.2 सागरीय जल के भौतिक और रासायनिक गुण

महासागरीय जल के भौतिक एवं रासायनिक गुण होते हैं, भौतिक गुणों के अंतर्गत तापमान तथा घनत्व को जबकि रासायनिक गुण के अंतर्गत लवणता को शामिल किया जाता है। जल के अणु में परमाणुओं का विन्यास ही इसकी भौतिक एवं रासायनिक विशेषताओं का मूल कारण है। इसके अंतर्गत न केवल सागरीय जल में पाए जाने वाले तत्वों का विश्लेषण किया जाता है अपितु उनकी उत्पत्ति, जल, वायु तथा जीव जगत पर पड़ रहे प्रभावों एवं परिणामों की भी विवेचना की जाती है। सागरीय जल में कई प्रकार के खनिज तत्व एवं गैसें घुलित अवस्था में पाए जाते हैं। सागरीय जीवों तथा सागरीय जीवों की प्रतिक्रियाओं का भी सागरीय रसायनिकी में अध्ययन करते हैं। सागरीय जल के रासायनिक गुणधर्म जल के संचरण (Circulation) तथा गतियों को भी प्रभावित करते हैं। समुद्री जल के भौतिक तथा रासायनिक गुण अक्षांश, गहराई, भूमि से निकटता और ताजे पानी के अनुसार भिन्न होते हैं। समुद्री जल सर्वमान्य उत्तम घोलक है इसमें खनिज एवं गैसे खुली हुई अवस्था में हैं। लगभग 3.5 प्रतिशत समुद्री जल घुले हुए योगिक से बना है जबकि अन्य 96.5 प्रतिशत शुद्ध पानी है। समुद्री जल की रासायनिक संरचना चट्टान, तलछट के क्षरण, ज्वालामुखी गतिविधि, वातावरण के साथ गैस विनिमय जीवों के अवशेष और वर्षा जैसी प्रतिक्रियाओं को दर्शाती है। घुले हुए अकार्बनिक पदार्थ, कार्बनिक पदार्थ जीवों के लिए पोषण तत्वों में शामिल नाइट्रोजन, फास्फोरस समुद्री जल के सामान्य घटक हैं। अन्य महत्वपूर्ण तत्वों में सिलिकॉन, रेडियोलेरियन और डायटम के कंकाल कैल्शियम आदि प्रमुख तत्व हैं।

समुद्री जल की भौतिक एवं रासायनिक विशेषताएं (The Physical and Chemical Characteristics of Ocean Water)

समुद्री जल की भौतिक एवं रासायनिक विशेषताएं निम्नांकित हैं–

- वायुमंडल में जलवाष्प की मात्रा जल के इसी विशालतम भंडार से वाष्पन क्रिया द्वारा निरंतर प्राप्त होती है।

- महासागरीय जल तथा स्वच्छ जल में विशेष अंतर होता है जिसके कारण समुद्री जल अपेय होता है। दूसरा स्वच्छ जल पेय होने के साथ ही संपूर्ण जलराशि का 3 प्रतिशत भाग धरातल पर विभिन्न रूपों में उपलब्ध है।
- जल ही एकमात्र ऐसा पदार्थ है जो द्रव्य, गैस तथा ठोस तीनों अवस्थाओं में पाया जाता है।
- जल एक ऐसा प्राकृतिक अजैविक पदार्थ है जो प्रसामान्य तापमान एवं वायुदाब पर तरल एवं दृश्य रूप में पाया जाता है।
- जल का पृष्ठ तनाव अधिक होता है तथा किसी अन्य द्रव्य की अपेक्षा इसमें ऊष्मा को अवशोषित करने की क्षमता अधिक होती है।
- जल को तीन विभिन्न अवस्थाओं में गैस, ठोस, द्रव्य में परिवर्तित करने के लिए अधिक मात्रा में ऊष्मा की आवश्यकता होती है।
- हाइड्रोजन के दो अणु तथा ऑक्सीजन के एक अणु के सम्मिश्रण से जल के अणु की रचना हुई है।
- जल की अन्य विशेषता इसका शक्तिशाली विलेयक (Solvent) होना है इसकी विलेयक शक्ति का कारण जल के अणुओं की ध्रुवण क्षमता (Polarizing Power) है।
- जल के अणुओं में धनात्मक एवं ऋणात्मक सिरे होते हैं। धनात्मक सिरे ऋणात्मक चार्ज वाले कणों को अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं जबकि ऋणात्मक सिरे धनात्मक चार्ज वाले कणों को अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। जल का संपर्क जब ऐसे यौगिक से होता है जिसके मूल तत्व (Elements) परस्पर विरोधी विद्युत आवेश के आकर्षण से परस्पर जुड़े रहते हैं तब जल के पोलर अणु उस यौगिक (Compounds) के संघटक तत्वों को एक दूसरे से अलग कर देते हैं। यही कारण है कि जल सरलतापूर्वक विभिन्न प्रकार के यौगिकों को घोल रूप में बदल देता है यह विशेषता अन्य द्रवों में नहीं पाई जाती।
- अन्य किसी द्रव की अपेक्षा जल गर्म होने और शीतल होने में अधिक समय लेता है। इस विशेषता के कारण धरातल के तापमान को कम करने में जल की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

समुद्री जल के भौतिक गुणधर्म (Physical Properties of Sea water)

प्रकृति में जल ही एकमात्र पदार्थ है जो गैस, द्रव तथा ठोस तीनों रूपों में पाया जाता है। यह पृथ्वी के धरातल पर सर्वाधिक मात्रा में पाया जाता है। भूपटल पर सबसे ज्यादा खनिज फेल्सपार है किंतु इसकी तुलना में जल की मात्रा 6 गुना है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता कुछ पारदर्शिता (Transparency) है। जिसके कारण सूर्य का प्रकाश इसके भीतर प्रवेश कर पाता है तथा प्रकाश संश्लेषण (Photosynthesis) प्रक्रिया द्वारा जीवन का माध्यम बनता है। इसी पारदर्शिता के कारण समुद्री जीव जंतु अपने भोजन को तलाश कर पाते हैं। पारे को छोड़कर जल ही ऊष्मा (Heat) का सर्वोत्तम तरल संचालक है।

सागरीय जल के सामान्य भौतिक गुणों के अंतर्गत निम्न को सम्मिलित किया जाता है–

- ऊष्मा तथा तापमान (तापीय दशा)
- घनत्व
- रंग
- गंध आदि

समुद्री जल के तापमान का महत्व

समुद्री जल के तापमान का महत्व निम्नांकित है–

1. महासागर ऊष्मा ऊर्जा के वृहद भंडार हैं।
2. सागरीय सौर ऊर्जा फाइलो प्लेंक्टन पौधों द्वारा प्रकाश संश्लेषण में सहायक होता है।
3. सागरीय तापमान भूमंडलीय विकिरण संतुलन एवं ऊष्मा बजट को प्रभावित करता है।
4. महासागरीय तापमान ग्रहीय पवन एवं महासागरीय जलधाराओं को निर्धारित एवं नियंत्रित करता है।
5. समुद्री तापमान जल समीर एवं वाष्पीकरण आद्रता द्वारा जलवायु को प्रभावित करता है।
6. भूमंडलीय जलीय चक्र को सागरीय तापमान प्रभावित करता है।
7. महासागरीय तापमान वर्षण एवं वाष्पीकरण की प्रक्रियाओं का निर्धारण करता है।
8. सागरीय जल की लवणता, घनत्व तथा तापमान में घनिष्ठ संबंध है।

महासागरीय ऊष्मा के स्रोत

सूर्य से प्राप्त सूर्यातप महासागरीय जल की ऊष्मा तथा तापमान का प्रधान स्रोत है। सूर्य की बाह्य सतह प्रकाश मंडल (Photosphere) इलेक्ट्रोमैग्नेटिक लघु तरंग के रूप में विकिरण तथा महासागरीय सतह पर प्राप्त ऊर्जा को सूर्यातप कहते हैं। इसके अलावा कुछ ऊर्जा यद्यपि सूक्ष्म मात्रा में महासागरीय नितल के नीचे भूतापीय ऊर्जा के रूप में प्राप्त होती है। सागरीय सतह पर प्राप्त होने वाली सूर्यातप की मात्रा सूर्य की किरणों के कोण, दिन की अवधि सूर्य एवं पृथ्वी के बीच की दूरी तथा वायुमंडल के प्रभाव पर निर्भर करती है। क्योंकि सूर्य की विकिरण तरंगों को वायुमंडल की मोटी परत से गुजरना पड़ता है। अतः वायुमंडल निम्न प्रक्रियाओं द्वारा महासागरीय सतह पर प्राप्त होने वाली सूर्यातप की मात्रा को प्रभावित करता है।

- प्रत्यावर्तन (Reflection)
- विसरण या प्रत्यावर्तन (Diffusion or Diffused Reflection)
- अवशोषण (Absorption)
- प्रकीर्णन (Scattering)

प्रत्यावर्तन (Reflection)– किसी भी वस्तु की सतह पर पहुंचने वाले विकिरण (ऊर्जा) के जितने भाग का वापस परिवर्तन हो जाता है उसे अलबिडो (Albedo) या प्रत्यावर्तन गुणांक कहते हैं। इसे प्रतिशत में व्यक्त किया जाता है। उदाहरण के लिए 100 प्रतिशत

ऊर्जा का 30 प्रतिशत भाग। अलबीडो का अर्थ है किसी वस्तु की सतह पर आने वाली सकल ऊर्जा का 30 प्रतिशत भाग प्रत्यावर्तित कर दिया जाता है, लौटा दिया जाता है वह सतह प्रवेशी सकल ऊर्जा का मात्र 70 प्रतिशत भाग ही ग्रहण कर पाती है।

टिप्पणी

विसरण या प्रत्यावर्तन (Diffusion or Diffused Reflection) – धूलि कणों तथा जल कणों द्वारा विद्युत चुंबकीय लघुतरंग सौर्यिक विकिरण के प्रकीर्णन (Scattering) को मिश्रित प्रत्यावर्तन कहते हैं। इस प्रक्रिया द्वारा प्रवेशी सौर्यिक विकिरण की कुछ ऊर्जा शून्य में वापस लौट जाती है तथा कुछ वायुमंडल में रहती है। वायुमंडल में इसी विस्तृत ऊर्जा के कारण चंद्रमा के अंधेरे भाग को हम देख सकते हैं तथा इसी विस्तृत ऊर्जा को आकाश का नीला प्रकाश या दिवा प्रकाश (Diffused Day light) कहते हैं।

अवशोषण (Absorption) – प्रवेशी विकिरण ऊर्जा के कुछ भाग को किसी तत्व या वस्तु द्वारा आत्मसात या धारण करने तथा उसे ऊष्मा ऊर्जा में बदलने की प्रक्रिया को अवशोषण कहते हैं।

प्रकीर्णन (Scattering) – वायुमंडल में स्थित कणिकीय पदार्थों तथा गैसों के अणुओं द्वारा प्रवेशी सौर्यिक विकिरण के कुछ भाग विभिन्न दिशाओं में विसरण या फिर बिखराव की प्रक्रिया को प्रकीर्णन प्रक्रिया कहते हैं।

जल के भौतिक गुणधर्म निम्नलिखित तालिका में दिए गए हैं–

जल के भौतिक लक्षण (Physical Properties of Sea Water)

	लाक्षणिक तत्व	जल $(H_2O)^n$	सामान्य द्रवीयता (Normal HeptaneIC7 H16)
1.	अणु भार	$(18)^n$	100
2.	घनत्व	1.8	0.73
3.	क्थनांक बिंदु	100° सें. ग्रे.	98.4° सें. ग्रे.
4.	द्रवणांक (हिमांक बिंदु)	0° सें. ग्रे.	–97° सें. ग्रे.
5.	सापेक्षिक ऊष्मा (0° सें. ग्रे./कैलोरी ग्राम)	1	0.5
6.	ताप का वाष्पीकरण (कैलोरी/ग्राम)	540	76
7.	धरातलीय तनाव (20° सें. ग्रे. डायन/से.मी.)	73	25
8.	श्यानता या सांद्रता (Viscosity) 20° सें. ग्रे. (पोज)	0.01	0.005

स्रोत : डिट्रिच (Dietrich) के अनुसार

महासागरीय जल का घनत्व

घनत्व का सामान्य अर्थ है किसी भी तत्व के प्रति इकाई आयतन के दृश्यमान (Mass) की मात्रा। घनत्व का मापन प्रति सें. मी. आयतन ग्राम (द्रव्यमान की मात्रा) (g/cm^3) में किया जाता है। शुद्ध जल का घनत्व $1.00 g/cm^3$ होता है 4° से. ग्रे. तापमान पर। अन्य तत्वों के घनत्व के मापन के लिए शुद्ध जल मानक के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। महासागरीय जल का औसत घनत्व $1.0278 g/cm^3$ ($1.02677 g/cm^3$) होता है जो कि

शुद्ध जल के घनत्व से 2 से 3 प्रतिशत अधिक है (4°C) तापमान पर। सागरीय घनत्व जल का अति महत्वपूर्ण भौतिक गुण है क्योंकि यह महासागर की गतियों को निर्धारित करता है। सागरीय जल के घनत्व के नियंत्रक कारक निम्न हैं–

- तापमान → तापीय प्रसार (Thermal Expansion)
- दबाव → संपीड़नात्मक (Compressive) प्रभाव
- लवणता → घुले तत्वों का योग (Addition)

घनत्व तापमान एवं लवणता का अंतर्संबंध

सागरीय जल के घनत्व एवं तापमान में विपरीत संबंध होता है। अर्थात यदि सागरीय जल के तापमान में वृद्धि होती है तो जल के घनत्व में कमी होती है तथा तापमान में कमी होने पर घनत्व बढ़ता है। सागरीय जल के तापमान में 300 मीटर से 1000 मीटर की गहराई तक ऊष्ण एवं उपोष्ण कटिबंधीय सागरों में तेजी से कमी होती है। परंतु 1000 मीटर से आगे जल की गहराई में वृद्धि के साथ तापमान में परिवर्तन नहीं होता। दूसरी तरफ उच्च अक्षांशों में महासागरीय जल के तापमान में गहराई के साथ कोई परिवर्तन नहीं होता।

थर्मोक्लाइन (Thermocline)– 300 मीटर से 1000 मीटर वाले सागरीय मंडल जिसमें तापमान में तेजी से परिवर्तन होता है उसे थर्मोक्लाइन कहते हैं।

हैलोक्लाइन (Halocline)– ऊष्ण एवं उपोष्ण कटिबंध में महासागर में 300–1000 मीटर गहराई वाले भाग, जिसमें सागरीय लवणता में तेजी से परिवर्तन (ह्रास) होता है उसे हैलोक्लाइन कहते हैं।

पाइकोक्लाइन (Pycnocline)– ऊष्ण एवं उपोष्ण कटिबंध में महासागर में 300–1000 मीटर गहराई वाले भाग, जिसमें सागरीय जल के घनत्व में तेजी से परिवर्तन होता है उसे पाइकोक्लाइन कहते हैं।

पाइकोक्लाइन में हैलोक्लाइन (लवणता प्रवणता) और थर्मोक्लाइन (तापमान प्रवणता) दोनों शामिल हैं। पाइकोक्लाइन गहराई के साथ घनत्व में तेजी से परिवर्तन को संदर्भित करता है। चूंकि घनत्व तापमान और लवणता का एक प्रकार्य है अतः पाइकोक्लाइन थर्मोक्लाइन और हैलोक्लाइन का एक प्रकार्य है।

समुद्री जल की रासायनिक संरचना (Chemical Properties of Sea Water)

समुद्री जल की रासायनिक रचना में कई तत्वों का योग होता है। सागरीय जल की रासायनिक संरचना सर्वत्र एक सी नहीं पाई जाती है। डिटमर (Ditmar 1884) ने चैलेंजर शोध पोत (1874) द्वारा विभिन्न स्थानों से एकत्रित किए गए जल के 77 नमूनों का सूक्ष्म विश्लेषण किया, उन्होंने विभिन्न गहराइयों और विभिन्न क्षेत्रों के आधार पर 1940 में मुख्य अन्वेषण किया जो निम्न सारणी से स्पष्ट है–

समुद्री जल की संरचना (प्रतिशत में)

तत्व (आयन (Ion) के रूप में)	डिटमर के अनुसार	1940 के अन्वेषणों के आधार पर
क्लोराइड	55.29	55.04
ब्रोमीन	0.19	0.19
सल्फेट	7.19	7.68
कार्बोनेट	0.21	–

बाइकार्बोनेट	–	0.41
फ्लोरीन	–	–
बोरिक एसिड	–	00.7
मैग्नीशियम	3.72	3.69
कैल्शियम (परिवर्तनशील)	1.20	1.16
स्ट्रांशियम	–	0.04
पोटेशियम	1.10	1.10
सोडियम	30.59	30.61

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि कार्बन–डाई–ऑक्साइड बाइकार्बोनेट के रूप में स्वतंत्र रहती है। इसी प्रकार स्ट्रांशियम, कैल्शियम से पृथक रहता है। क्लोराइड तथा सोडियम की मात्रा समुद्री जल में सबसे अधिक है। इसमें सबसे कम मात्रा स्ट्रांशियम एवं बोरिक एसिड की है।

डिटमर ने चैलेंजर शोध पोत (1874) में जल के सूक्ष्म नमूनों का विश्लेषण किया जो निम्न तालिका से स्पष्ट है–

समुद्री जल की संरचना के कुल तत्व (डिटमर Dittmar 1884)

तत्व	केंद्रितता मिलियन ग्राम (दस लाख प्रति अंश) संकेंद्रण mg/1 ppm	स्थायित्व का समय वर्षों में
हाइड्रोजन (H)	108,000	–
हीलियम (He)	0.000005	–
लीथियम (Li)	0.17	2.0×10^{7}
बेरीलियम (Be)	0.000006	1.5×10^{2}
बोरोन (B)	4.6	–
कार्बन (C)	28	–
नाइट्रोजन (N)	0.5	–
ऑक्सीजन (O)	857,000	–
फ्लोरीन (F)	1.3	–
नियोन (Ne)	0.0001	–
सोडियम (Na)	10.500	2.6×10^{8}
मैग्नीशियम (Mg)	1350	4.5×10^{7}
एलुमिनियम (Al)	0.01	1.0×10^{2}
सिलिकन (Si)	3	8.0×10^{3}
फास्फोरस (P)	0.07	–
क्लोरीन (Cl)	19.000	–
आर्गन (Ar)	0.6	–
पोटैशियम (K)	380	1.1×10^{7}
कैल्शियम (Ca)	400	8.0×10^{6}
स्केन्डियम (Sc)	0.0004	5.6×10^{3}
टाइटेनियम (Ti)	0.001	1.6×10^{2}
वेनेडियम (V)	0.002	1.0×10^{4}
क्रोमियम (Cr)	0.00005	3.5×10^{2}

मैगनीज (Mn)	0.002	1.4×10^{3}
फेरम (Fe)	0.01	1.4×13^{2}
कोबाल्ट (Co)	0.005	1.8×10^{4}
निकिल (Ni)	0.002	1.8×10^{4}
कॉपर (Cu)	0.003	5.0×10^{4}
जिंक (Zn)	0.01	1.8×10^{5}
गैलियम (Ga)	0.00003	1.4×10^{3}
जर्मेनियम (Ge)	0.00007	7.0×10^{3}
आर्सेनिक (As)	0.003	–
सिलिनियम (Se)	0.004	–
ब्रोमीन (Br)	65	–
क्रिप्टन (Kr)	0.0003	–
रूबीडियम (Rb)	0.12	2.7×10^{5}
स्ट्रोन्शियम (Sr)	8	1.9×10^{7}
यट्रियम (Y)	0.0003	7.05×10^{3}
जिर्कोनियम (Zr)	–	–
निओलियम (Nb)	0.00001	3×10^{2}
मॉलिटडेनम (Mo)	0.01	5.0×10^{5}
टक्रटियम प्लेडियम (Te Pd)	–	–
चांदी (Ag)	0.0003	2.1×10^{6}
कैडिमियम (Cd)	0.00011	5.0×10^{5}
इण्डियन (In)	< 0.02	–
टिन (Sn)	0.003	5.0×10^{5}
एण्टीमनी (Sb)	0.005	3.5×10^{5}
आयोडीन (I)	0.06	–
जेनोन (Xe)	0.0001	–
केसियम (Cs)	0.0005	4.0×10^{4}
बेरियम (Ba)	0.03	8.4×10^{4}
लेंथेनियम (La)	0.0003	1.1×10^{4}
सीरियम (Ce)	0.0004	6.1×10^{3}
टंग्स्टन (W)	0.0001	1.0×10^{3}
सोना (Au)	0.000004	5.6×10^{5}
पारा (Hg)	0.00003	4.2×10^{4}
थेलियम (Tl)	< 0.00001	–
सीसा (Pb)	0.00003	2.0×10^{3}
बिस्मिथ (Bi)	0.00002	4.5×10^{5}
रेडोन (Rn)	–	0.6×10^{-15}
रेडियम (Ra)	–	1.0×10^{-10}
थोरियम (Th)	0.00005	3.5×10^{2}
प्रोटेक्टीनियम (Pa)	–	2.0×10^{-9}
यूरेनियम (U)	0.003	5.0×10^{5}

समुद्री जल संघटक (Consituents of Sea water)

महासागरीय जल के निम्न संघटक पाए जाते हैं–

- सागरीय जल में विलेय (Solutes) अर्थात नमक
- पोषक तत्व (Nutrients)
- गैस (Gases)
- सूक्ष्म मात्रिक तत्व (Trace Elements)
- कार्बनिक यौगिक (Organic Compounds)

सागरीय जल में विलेय– सोडियम, क्लोरीन सर्वाधिक महत्वपूर्ण विलेय हैं। ये 85 प्रतिशत भाग का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये सागरीय जल में लवणता के लिए जिम्मेदार माने जाते हैं। यदि सोडियम क्लोरीन के साथ कैल्शियम, मैग्नीशियम, पोटेशियम और सल्फेट को एक साथ देखा जाए तो ये 99 प्रतिशत भाग बन जाते हैं। जो सागरीय जल की लवणता के लिए उत्तरदायी होते हैं। सागरीय जल में प्रायः सभी प्राकृतिक तत्व मौजूद रहते हैं। सारणी से स्पष्ट है कि अब तक 70 से भी अधिक तत्वों की पहचान कर ली गई है। प्रत्येक तत्व एक निश्चित अवधि तक सागरीय जल में रहता है। फिर रासायनिक अवशेषण द्वारा पृथक हो जाता है। स्वेरड्रुप (Sverdrup 1942) के अनुसार समुद्र के खारे जल में निम्न प्रधान तत्वों का अंशदान होता है। ये 11 तत्व निम्नलिखित हैं–

समुद्री जल के प्रमुख विलेय संघटक (Solute Constituents)

लवण आयन	भार (weight) (सागर जल के 1 कि. ग्रा. जल में ग्रा. में भार)	प्रतिशत	संचयी (Comulatire) प्रतिशत
1. क्लोराइड	18.980	55.04	55.04
2. सोडियम	10.556	30.61	85.65
3. सल्फेट	2.649	7.68	93.33
4. मैग्नीशियम	1.272	3.69	97.02
5. कैल्शियम	0.400	1.16	98.18
6. पोटेशियम	0.380	1.10	99.28
7. बाईकार्बोनेट	0.140	0.41	99.69
8. ब्रोमाइड	0.065	0.19	99.88
9. बोरिक एसिड	0.026	0.07	99.95
10. स्ट्रांशियम	0.013	0.04	99.99
11. फ्लोराइड	0.001	0.00	99.99
योग	34.482	99.99	99.99

स्रोत : H.U. Sverdrup, M.W. Johnson, and R.H. Fleming, The Oceans, 1942 P.R. Print 2000.

1. **क्लोराइड (Choloride)**– समुद्री जल में घुले हुए पदार्थों की मात्रा का आधे से अधिक भाग क्लोराइड पाया जाता है। इसे 1 किलोग्राम सागरीय जल में हेलोजन की मात्रा के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। यह क्लोरीन,

ब्रोमीन तथा आयोडीन का योग होता है। इसकी उत्पत्ति ज्वाला के उदगार से मानी जाती है।

2. **सोडियम (Sodium)**– परतदार चट्टानों से बहुत सा सोडियम नदियों द्वारा समुद्र में जमा किया जाता है जो समुद्र के पानी को सुखाकर नमक कणों के रूप में पाया जाता है। सोडियम की 60 प्रतिशत मात्रा नदियों द्वारा एकत्रित की जाती है। जोली के अनुसार एक वर्ष में जमा की गई मात्रा का 1.56×10^{14} ग्राम सोडियम एकत्रित होता है। इस दर से समुद्र में मौजूद सोडियम की कुल मात्रा 1.26×10^{22} ग्राम है। इसके अनुसार सागर की आयु लगभग 18 करोड वर्ष हुई।

3. **गंधक (Sulphur)**– नदी के मुहाने पर इसका जमाव अधिक पाया जाता है। उच्च अक्षांशीय महासागरों में हिम के साथ इसकी मात्रा अधिक मिलती है। यह तीसरा महत्वपूर्ण तत्व है।

4. **मैग्नीशियम (Magnesium)**– डोलोमाइट, कैल्साइट आदि खनिजों के साथ मैग्नीशियम तथा कैल्शियम पाए जाते हैं।

5. **कैल्शियम (Calcium)**– जीवों के शरीर के ढांचे तथा खनिज अवक्षेप के रूप में इसका महत्व है। कैल्शियम जैविक एवं अजैविक क्रिया का परिणाम है। यह कैल्शियम सल्फेट के रूप में पाया जाता है। कई जीवों के लिए कैल्शियम मुख्य खनिज तत्व है। प्रवालों की उत्पत्ति एवं शैवालों के विकास के लिए कैल्शियम मुख्य खनिज तत्व है।

6. **पोटेशियम (Potassium)**– पोटेशियम भी मुख्य तत्व है जो लवणता की मात्रा में समान अंश में विद्यमान रहता है। क्ले के द्वारा पोटेशियम के आयन का शोषण हो जाता है। क्ले खनिज पोटेशियम एवं लौहांशों से भरपूर रहते हैं। इस प्रकार समुद्री जल में पोटेशियम का ह्रास होता रहता है। पोटेशियम से खनिज ग्लूकोनाइट की उत्पत्ति मुख्य स्थान रखती है। समुद्री वनस्पतियों में खनिज की मात्रा सम्मिलित रहती है। जब ये पौधे शुष्क रहते हैं तो 15 प्रतिशत तक पोटेशियम की मात्रा ग्रहण कर लेते हैं।

7. **बाइकार्बोनेट (Bicarbonates)** कार्बोनेट के विभिन्न स्वरूपों में कार्बोनेट एसिड, बाइकार्बोनेट आयन तथा कार्बोनेट आयन है। 25° सेल्सियस तापमान में 0.001 मीटर की गहराई पर बाइकार्बोनेट प्राप्त किया जाता है।

8. **ब्रोमाइट या ब्रोमीन (Bromine)** समुद्री जल में ब्रोमाइट मुख्यतया ब्रोमाइन आयन के रूप में मिलता है। यह अत्यधिक मात्रा में नहीं मिलता। यह क्लोरीन एवं एनिलाइन के साथ निकाला जाता है। सिल्वर नाइट्रेट के साथ यह निथर कर समुद्रों में एकत्रित होता रहता है।

9. **बोरिक एसिड (Boric Acid)** समुद्री जल में बोरिक एसिड भी एक मुख्य तत्व है, जो क्लोरीन के साथ मिलता है, जो बोरोन कहलाता है। यह कई समुद्री जीवों एवं जंतुओं के विकास में सहायक होता है।

10. **स्ट्रांशियम (Strontium)**– कैल्शियम कार्बोनेट के साथ बहुत बड़ी मात्रा में स्ट्रांशियम मिलता है। यह कई मृतक जीवों एवं वनस्पतियों से निथर कर एकत्रित होता रहता है। यह लाल एवं हरे शैवालों के रूप में समुद्र में मिलता है। इसके अलावा आर्कटिक महासागरों में समुद्री घोघों एवं कवचों के निर्माण में स्ट्रांशियम का प्रमुख स्थान है।

11. **फ्लोरीन (Flourine)**– फ्लोरीन मुख्यतः रंग–रोगन के साथ प्रयोग किया जाता है। ये समुद्रों के जीवों तथा कवचों से मिलता है, धात्विक सम्मिश्रणों के साथ मिलता है।

समुद्री जल के गौण संघटक (तत्व) (Minor Constituents of Sea water)

कुछ संघटक या तत्व जीवित जीवों के लिए एवं आर्थिक उपयोग की दृष्टि से महत्वपूर्ण होते हैं जो निम्न हैं–

1. **एल्युमिनियम (Aluminium)**– एलुमिनियम तटवर्ती क्षेत्रों में नदियों के द्वारा जल की मात्रा में परिवर्तन के साथ अपक्षयित रूप में समुद्रों में पाया जाता है।
2. **आर्सेनिक (Arsenic)**– आर्सेनिक समुद्र में पाया जाता है। यह मुख्य रूप से मोलस्क, आर्थोपॉड तथा लॉब्स्टार जीवों में अधिक पाया जाता है।
3. **बेरियम (Barium)**– समुद्री जीवों तथा वनस्पति के साथ बेरियम की मात्रा अवसादों के रूप में मिलती है।
4. **तांबा (Copper)**– सीपियों घोंघों के कवच में, तथा अयस्टार की रक्त कोशिकाओं में 0.5 प्रतिशत, नदियों के मुहानों तथा खारे जल में अधिक पाया जाता है।
5. **सोना (Gold)**– समुद्री जल तथा नदियों के द्वारा बहाकर लाये हुए जल में सोना आयन तथा कोलॉइडल (Colloidal) के रूप में प्राप्त होता है।
6. **लोहा (Iron)**– चट्टानों के अपक्षय एवं क्षरण होने से लोहा, तथा चौक के साथ समुद्र में संचित होने से इसके अलावा मैगनीज ग्रंथियों में 30 प्रतिशत तक लोहा पाया जाता है।
7. **मैगनीज (Manganese)**– महासागरों की तली मैगनीज ग्रंथियों तथा प्राणियों में मैगनीज पाया जाता है।
8. **सिलिकन (Silicon)**– डायटम, रेडियोलोरियन जीवों द्वारा सिलिकन को ग्रहण किया जाता है।

पोषक तत्व (Nutrients)

सागरीय जल में मुख्य पोषक तत्व नाइट्रोजन (0.5 ppm) सिलिकन (3 ppm) फास्फोरस (0.07 ppm) के यौगिक को सम्मिलित किया जाता है। इन पोषक तत्वों में सागरीय पौधे तथा सूक्ष्म जीवों सहित जंतु आदि फास्फेट एवं नाइट्रेट का उपयोग करते हैं। क्योंकि ये नाइट्रोजन एवं फास्फोरस का उपयोग नहीं कर पाते। समुद्री जीवो की मृत्यु के पश्चात् फास्फोरस की उत्पत्ति होती है।

गैस (Gasses)

नाइट्रोजन N_2 सागरीय जल में नाइट्रोजन नाइट्रेट, नाइट्राइट, अमोनिया तथा जैविक नाइट्रोजन के रूप में पाया जाता है। ऑक्सीजन (O_2), कार्बन डाइ ऑक्साइड (CO_2), हाइड्रोजन (H_2) तथा कुछ गौण गैसे यथा–आर्गन, नियान, हीलियम आदि सागरीय फाइटोप्लेंक्टन द्वारा प्रकाश संश्लेषण में केवल घुली ऑक्सीजन एवं कार्बन डाइ ऑक्साइड की ही महत्वपूर्ण भूमिका है। महासागर वायुमंडलीय कार्बन डाइ ऑक्साइड का अवशोषण करने वाला स्थलीय वनों के बाद दूसरा स्थान महासागरीय वनस्पतियों का है।

सूक्ष्म मात्रिक तत्व (Trace Elements)

सूक्ष्म मात्रिक तत्वों के अंतर्गत मैगनीज सीसा, मरकरी सोना लोहा, आयोडीन प्रमुख है। इनकी साद्रणता (1 ppm) (Part for Million) (1ppb) (Part Per billion) या (1ppt) (Part Per Trillion) होता है।

कार्बनिक यौगिक (Organic Compounds)

इसके अंतर्गत सागरीय सतह के जीवों के अवशेष प्रोटीन कार्बोहाइड्रेटस विटामिन, हार्मोन आदि सागरीय जीवों से उत्पन्न होते हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

1. महासागरीय जल के रासायनिक गुण के अंतर्गत किसको शामिल किया जाता है?

   (क) लवणता (ख) तापमान

   (ग) घनत्व (घ) गन्ध

2. वायुमंडल किस प्रक्रिया द्वारा महासागरीय सतह पर प्राप्त होने वाली सूर्यातप की मात्रा को प्रभावित करता है?

   (क) तापमान (ख) प्रत्यावर्तन

   (ग) दबाव (घ) लवणता

5.3 सागरीय एवं वायुमंडलीय परिसंचरण तंत्र में अंतर्संबंध

वायुमंडल और महासागर विभिन्न भौतिक एवं रासायनिक प्रक्रियाओं के द्वारा जैसे ऊष्मा प्रवाह, वर्षण, पवन संचरण, वायुमंडलीय तापमान, वायुदाब आदि के द्वारा भिन्न–भिन्न रूप में आपस में अंतर्संबंध होता है। धरातल की भांति महासागरीय क्षेत्रों में जलीय जीवों का वास होता है। अतः उनके लिए भी स्थलीय जीवों की भांति तापमान की आवश्यकता होती है। महासागरीय जल भी भूमि की तरह सौर ऊर्जा से गर्म होता है। किंतु स्थल की तुलना में जल के तापन और शीतलन की प्रक्रिया मंद होती है। अतः वायुमंडल और महासागर के संघटक अंतर्संबंधित होते हैं। उदाहरण के लिए वायुमंडल पवन संचरण के द्वारा महासागरों में सतही धाराओं को जन्म देते हैं तो दूसरी ओर वायुमंडलीय तूफानों से चक्रवातों को जन्म देते हैं। इसी तरह से भूमंडलीय जलीय चक्र महासागरों से वायुमंडल, वायमुंडल से महाद्वीप और महाद्वीप से पुनः महासागरों में जल वापिस कर देते हैं। यह क्रिया निरंतर चलती रहती है। सौर ऊष्मा से सागरीय जल का वाष्पीकरण होता है और वायुमंडलीय हवाओं द्वारा महासागरों की आद्रता को महाद्वीपों के ऊपर वर्षा के रूप में देता है तथा वर्षा का यह जल नदियों के परिवहनों द्वारा पुनः सागरों में उड़ेल देता है। इस तरह यह जल चक्र चलता रहता है।

वायुमंडल महासागर तंत्र के संघटकों में अंतर्क्रियाओं के द्वारा मौसम प्रतिरूपों का निर्धारण होता है। जैसे वायुमंडल से होकर महासागरों में सौर्यिक विकिरण को

निवेश वाष्पीकरण के माध्यम से महासागरीय जल के वाष्प के रूप में वायुमंडल में, तथा महासागरों की सतह के जल का सौर ऊर्जा के द्वारा गर्म होना तथा वायु दाब एवं पवन मेखलाओं का निर्माण आदि, द्वारा वायुमंडल में ऊर्जा का आदान–प्रदान होता रहता है।

वायुमंडल में मौसमी घटनाएं जैसे चक्रवात, तूफान, बाढ, सूखा, आदि महासागर की सतह की भौतिक घटनाओं से संबंधित हैं 'मानसून', 'अल–निनो' आदि घटना। 'वाकर' परिसंचरण 'दक्षिणी दोलन' वायुमंडल और महासागरों की परस्पर निर्भरता का परिणाम है। कार्बन डाइ ऑक्साइड के वृहद भंडार वायुमंडल को महासागर की फाइटों प्लेंक्टन के प्रकाश संश्लेषण क्रिया द्वारा प्राप्त होते हैं।

इस तरह से वायुमंडल एवं महासागरों की परस्पर निर्भरता स्पष्ट होती है। वायुमंडल और महासागर की परस्पर निर्भरता के निम्नलिखित कारक हैं–

1. सूर्यातप द्वारा स्थलीय तथा महासागरीय सतहों एवं वायुमंडल का ऊष्मन तथा शीतलन (Heating and Cooling)।
2. वायुमंडलीय वायुदाब एवं वायुदाब पेटियां।
3. वायुमंडलीय परिसंचरण का महासागरीय परिसंचरण पर प्रभाव।
4. वायुमंडल एवं महासागर में मौसमी परिवर्तन जैसे अल–निनो, परिघटना, वाकर संचरण, दक्षिणी दोलन, मानसून।
5. प्रादेशिक स्तर पर मौसमी दशाएं–मानसून।
6. ऊष्ण कटिबंधीय चक्रवात आदि।

सौर विकिरण या सूर्यातप (Solar Radiation or Insolation)

पृथ्वी के धरातल पर प्राप्त होने वाली ऊर्जा का अधिकतम भाग सूर्य से लघु तरंगदैर्ध्य के रूप में आता है। पृथ्वी के धरातल पर प्राप्त होने वाली ऊर्जा को सौर विकिरण या सूर्यातप कहा जाता है। सूर्य की बाह्य सतह अर्थात प्रकाश मंडल (photos phere) से इलेक्ट्रोमैग्नेटिक लघु तरंग के रूप में विकीर्ण तथा महासागरीय सतह पर प्राप्त ऊर्जा को सूर्यातप कहते हैं। इसके अलावा कुछ ऊर्जा, भूतापीय ऊर्जा के रूप में प्राप्त होती है।

सौर विकिरण से प्राप्त ऊर्जा पृथ्वी की सतह को गर्म करती है, परिणामस्वरूप पवन संचार महासागरीय धाराएं एवं जल चक्र का क्रियान्वयन होता है।

सामान्यतः धरातल पर प्राप्त सूर्यातप की मात्रा सूर्य की किरणों का कोण, (सापेक्ष तिरछापन) दिन की अवधि सूर्य से पृथ्वी की दूरी तथा वायुमंडल के प्रभाव (अवशोषण, प्रकीर्णन, प्रत्यावर्तन) पर भी निर्भर करता है। साधारणतः तिरछी सौर्यिक किरणों की तुलना में सीधी किरणें अधिक सूर्यातप लाती हैं अर्थात भूमध्य रेखा से ध्रुवों की ओर जाने पर सूर्यातप कम होता जाता है।

इसी तरह से अक्षांश पर प्राप्त सूर्यातप की मात्रा में अधिक परिवर्तन भी होते हैं।

धरातल पर सूर्यातप का वितरण (Distribution of Insolation on Earth)

ग्लोब पर वार्षिक सूर्यातप का अक्षांशीय वितरण–

1. **निम्न अक्षांशीय आयन वृत्तीय मंडल**– सूर्यातप की सर्वाधिक मात्रा भूमध्य रेखा के पास होती है। यहां दिन और रात की लंबाई भी बराबर होती है। परंतु

टिप्पणी

सूर्य के उत्तरायण एवं दक्षिणायन की स्थितियों के कारण अत्यधिक सूर्यातप भूमध्य रेखा के दोनों ओर खिसकता रहता है। सूर्यातप की मात्रा कर्क और मकर रेखाओं के बीच पाई जाती है। इस मंडल में साल भर ऊंचा ताप रहता है। यहां प्रत्येक स्थान पर वर्ष में दो बार लंबवत किरणें पड़ती हैं।

2. **मध्य अक्षांशीय मंडल**– इस मंडल का विस्तार 23.5 डिग्री से 60 डिग्री अक्षांश के बीच दोनों गोलार्द्ध में पाया जाता है। इस मंडल में वर्ष में एक बार अधिकतम और एक बार न्यूनतम सूर्यातप प्राप्त होता है। यहां वर्ष के किसी भी समय सूर्यातप अनुपस्थित नहीं हो पाता है। यहां ऋतु में असमानता अधिक पाई जाती है।

3. **ध्रुवीय मंडल (न्यूनतम सूर्य ताप मंडल)**– यहां वर्ष में एक बार अधिकतम एवं एक बार न्यूनतम सूर्यातप प्राप्त होता है। यहां वर्ष के कुछ समय में सूर्य की प्रत्यक्ष किरणों के अभाव में सूर्यातप शून्य हो जाता है।

वायुमंडल महाद्वीपों तथा महासागरों की सतह पर पहुंचने वाली सौर ऊर्जा की मात्रा को प्रत्यावर्तन, अवशोषण कथा प्रकीर्णन की प्रक्रियाओं द्वारा प्रभावित करता है।

सूर्यातप के वितरण को प्रभावित करने वाले कारक (Factors Affecting the Distribution of Insolation)

धरातल पर सूर्यातप की मात्रा का भूमध्य रेखा से ध्रुवों की ओर परिवर्तन होता है। सूर्यातप के वितरण में ऋतुओं के अनुसार भी परिवर्तन होता है। सूर्यातप को निम्न कारक प्रभावित करते हैं–

1. **सूर्य की किरणों का सापेक्ष तिरछापन**– पृथ्वी के गोलाकार रूप के कारण सूर्य की किरणें सर्वत्र समान कोण पर नहीं पड़ती, भूमध्य रेखा से ध्रुवों की ओर किरणों का तिरछापन बढ़ता जाता है। किरणों के तिरछापन के प्रभाव–

   (i) लंबवत किरणें धरातल के कम क्षेत्र पर पड़ती हैं, जिस कारण उसका ताप बढ़ जाता है जबकि तिरछी किरणें अपेक्षाकृत अधिक भाग को घेरती हैं परिणामस्वरूप ऊष्मा कम हो जाती है।

   (ii) सीधी किरणों को वायुमंडल की अपेक्षाकृत पतली परत को पार करना पड़ता है, इसके विपरीत तिरछी किरणों को वायुमंडल की मोटी परत को पार करते समय अधिक दूरी तय करनी पड़ती है अतः ताप की अधिकांश मात्रा वायुमंडल में नष्ट हो जाती है।

सूर्य की तिरछी किरणें

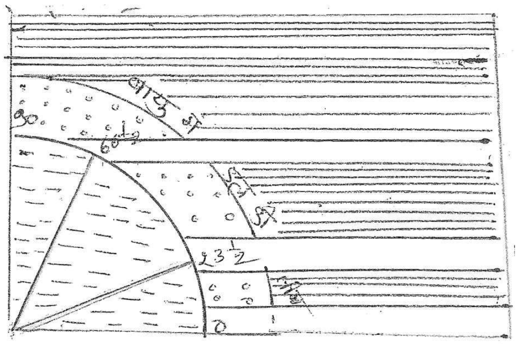

सूर्य की किरणों के तिरछेपन का सूर्यातप के वितरण पर प्रभाव

2. **दिन की लंबाई**– यदि अन्य दशाएं समान हों तो दिन की लंबाई जितनी लंबी होगी सूर्यातप की मात्रा भी उतनी ही अधिक होगी। विश्व के सभी भागों में दिन और रात की लंबाई संपूर्ण वर्ष एक समान नहीं होती क्योंकि हमारी पृथ्वी 23 1/2 डिग्री के कोण पर झुकी हुई है–

- केवल 21 मार्च एवं 23 सितंबर को ही सूर्य लंबवत चमकता है। अतः विश्व भर में इन तिथियों में दिन और रात बराबर होते हैं।
- जबकि 22 दिसंबर एवं 21 जून को सूर्य क्रमशः मकर एवं कर्क रेखा पर सीधा चमकता है। अतः क्रमशः दक्षिणी एवं उत्तरी गोलार्द्ध में दिनों की लंबाई तेजी से बढ़ती है।
- 21 जून को विश्वत रेखा से उत्तरी ध्रुव की ओर दिन की लंबाई बढ़ती जाती है। कर्क रेखा पर 13 घंटे 48 मिनट ध्रुवीय वृत (66 डिग्री 30′) पर 24 घंटे एवं उत्तरी ध्रुव पर 6 माह का दिन (21 मार्च को सूर्योदय एवं 23 सितंबर सूर्यास्त) हो जाता है। ठीक यही स्थिति 22 दिसंबर को दक्षिणी गोलार्द्ध में रहती है।
- जहां दिन की अवधि अधिक होगी वहां सूर्य की किरणें सीधी होने के कारण अधिक ताप प्राप्त होता है।

तालिका : अक्षांश एवं दिन की अवधि

अक्षांश	0°	17°	41°	49°	63°	66.5°	67°21'	70°11'	90°
दिन की अवधि	12 घं	13 घं	15 घं	16 घं	20 घं	24 घं	1 माह	4 माह	6 माह

पृथ्वी से सूर्य की दूरी– हमारी पृथ्वी 365 1/4 दिन में अंडाकार पथ पर सूर्य की परिक्रमा करती है। इस क्रम में वह एक बार (3 जनवरी) सूर्य के निकट होती है और एक बार (4 जुलाई) सूर्य से दूर। सूर्य से पृथ्वी के निकट होने की स्थिति को उपसौर और दूर होने की स्थिति को अपसौर कहते हैं। साधारण विनियम के अनुसार जब पृथ्वी सूर्य से निकट दूरी पर होती है तो उस समय अधिक ताप और अधिकतम दूरी होने पर न्यूनतम ताप मिलना चाहिए। परंतु जनवरी महीने में जब पृथ्वी सूर्य से निकटतम दूरी पर होती है उत्तरी गोलार्द्ध में ग्रीष्म काल होने के बजाय शीतकाल होता है। इसी तरह 4 जुलाई को शीतकाल के बजाय ग्रीष्म काल होता है।

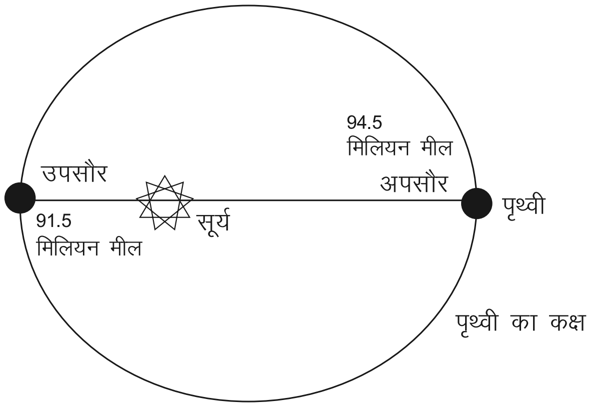

पृथ्वी और सूर्य के बीच की दूरी

3. **सौर कलंकों की संख्या**– जब सूर्य की सतह पर कुछ धब्बे दिखाई देते हैं इन्हीं धब्बों को सौर कलंक कहते हैं। जब ये धब्बे दिखाई देते हैं तब सूर्य से अधिक ऊर्जा प्राप्त होती है। ये प्रति 11 वर्ष में दिखाई देते हैं। जबकि अन्य वर्षो में सामान्य ताप ही प्राप्त होता है।

4. **वायुमंडल का प्रभाव**– सूर्यातप के वितरण में सौर्यिक विकिरण तरंगों को वायुमंडल की सबसे मोटी परत से गुजरना पड़ता है परिणामस्वरूप मार्ग में सौर ऊर्जा का बड़ा भाग नष्ट हो जाता है जिस कारण उसका प्रकीर्णन, परावर्तन तथा अवशोषण होता रहता है।

   - **प्रत्यावर्तन (Reflection)**– किसी भी वस्तु की सतह पर पहुंचने वाले विकिरण (ऊर्जा) के जितने भाग का वापस परावर्तन हो जाता है उसे अलविडो (albedo) या प्रत्यावर्तन गुणांक (Reflection Coefficient) या प्रत्यावर्तिता कहते हैं। इसे प्रतिशत में व्यक्त करते हैं। पृथ्वी की सतह का औसत अलबिडो 24 से 31 प्रतिशत के बीच माना जाता है। अलबिडो एक सतह से दूसरी सतह, प्रातः काल से सायंकाल एवं एक मौसम से दूसरे मौसम में परिवर्तित होता रहता है।
   - **विसरण या विसरित प्रत्यावर्तन (Diffusion or Diffused Reflection)**– धूल के कणों तथा जलकणों के द्वारा प्रवेशी सौर्यिक विकिरण तरंग दैर्ध्य से बड़ी होती है, को विसरित प्रत्यावर्तन कहते हैं। इस प्रक्रिया द्वारा सौर्यिक विकिरण का कुछ भाग शून्य में वापस लौट जाता है तथा कुछ अंश निचले वायुमंडल में बना रहता है। इस विसरित ऊर्जा को आकाश विसरित नीला प्रकाश या विसरित दिवा प्रकाश कहते (Diffused Daylight) हैं।
   - **अवशोषण (Absorption)**– प्रवेशी विकिरण ऊर्जा के भाग को किसी तत्व या वस्तु द्वारा धारण करने तथा उसे ऊष्मा ऊर्जा (Sensible heat) में बदलने की प्रक्रिया को अवशोषण कहते हैं।
   - **प्रकीर्णन (Scattering)**– वायुमंडल में स्थित कणिकीय पदार्थ या धुलि कण तथा गैसों के अणुओं द्वारा प्रवेशी सौर्यिक विकिरण के कुछ भाग के विभिन्न दिशाओं में विसरण (Diffusion) या बिखराव को प्रकीर्णन कहते हैं।

चूंकि महासागरीय सतह पृथ्वी की समस्त सतह के 70.8 प्रतिशत भाग में फैली है। अतः सौर्यिक विकिरण के प्रत्यावर्तन, अवशोषण का महत्व अधिक हो जाता है। जैसे– महासागरीय सतह का अलग–अलग ऊष्मन, वायुमंडल तथा वायुमंडलीय वायु सिस्टम, महासागरीय गतियां, सागरीय तरंग, महासागरीय धाराएं महासागरीय जल राशियों का संचलन आदि।

धरातलीय तथा महासागरीय सतहों एवं वायुमंडल का ऊष्मन एवं शीतलन (Heating and Cooling of the Land Ocean and Atmosphere)

पृथ्वी की धरातलीय सतह सौर्यिक से प्राप्त होने वाली ऊर्जा का केवल 14 प्रतिशत भाग सीधे वायुमंडल में अवशोषित होता है और अधिकांश भाग पृथ्वी पर पहुंचता है। सूर्य से प्राप्त लघु तरंगों से पृथ्वी तल गर्म होता है। गर्म पृथ्वी तल के संपर्क से वायुमंडल गर्म होता है।

वायुमंडल का गर्म एवं ठंडा होना निम्न प्रक्रिया द्वारा होता है–

1. **सूर्यातप की सीधी प्राप्ति / सौर विकिरण (Direct Absorption of Insolation/ Radiation)**– सूर्य से केवल 14 प्रतिशत भाग वायुमंडल प्रत्यक्ष रूप से अवशोषित करता है। वायुमंडल में विद्यमान जलवाष्प इस गर्मी को सोख लेता है। सूर्य से सीधे रूप से प्राप्त गर्मी को विकिरण (Radiation) कहते हैं। इस प्रक्रिया में सूर्य की गर्मी बिना किसी माध्यम के शून्य से होकर पृथ्वी पर पहुंचती है।
2. **संचालन (Conduction)**– किसी भी वस्तु में पदार्थों के अणुओं द्वारा ऊष्मा के स्थानांतरण एवं गमन को संचालन कहते हैं। इस क्रिया के अंतर्गत एक अणु स्पर्श से दूसरे अणु को ऊष्मा प्रदान करता है। वायुमंडल की निचली परत इसी विधि से गर्म होती है। रात्रि को धरती विकिरण प्रक्रिया से ठंडी होती है। इसके संपर्क में आने से वायुमंडल के नीचे का भाग इनकी संचालन प्रक्रिया से ठंडा होता है।
3. **पार्थिव विकिरण (Terrestrial Radiation)**– पृथ्वी द्वारा प्राप्त प्रवेशी सौर विकिरण जो लघु तरंगों के रूप में होता है, पृथ्वी की सतह को गर्म करता है। पृथ्वी स्वयं गर्म होने के बाद विकिरण पिंड बन जाती है और वायुमंडल को दीर्घ तरंगों के रूप में उर्जा का विकिरण करने लगती है। यह ऊर्जा वायुमंडल को नीचे से गर्म करती है। इस प्रक्रिया को पार्थिव विकिरण कहा जाता है।

जो वस्तु अपनी ओर आने वाली संपूर्ण विकिरण का अवशोषण करती है तथा किसी भी तापमान पर अधिकतम उर्जा का विकिरण करती है उसे पूर्ण कृष्णिका (Black body) कहते हैं। जब वायुमंडल जलवाष्प जो कि प्रवेशी तथा बहिर्गामी दोनों प्रकार के सौर्यिक तथा पार्थिव विकिरण का अधिक अवशोषण करता है, केवल वायुमंडल के निचले भाग में ही केंद्रित होता है तथा ऊंचाई के साथ–साथ प्रवेशी और बहिर्गामी दोनों विकिरण बढ़ जाता है, तो उसे पर्वतों की पृथ्वी की 'विकिरण खिड़की' कहते हैं।

संवहन (Convection)– पृथ्वी के संपर्क में आयी वायु गर्म होकर धाराओं के रूप में लंबवत उठती है और वायुमंडल में ताप का संचरण करती है। वायुमंडल के लंबवत ताप की यह प्रक्रिया संवहन कहलाती है। इसके विपरीत ऊपर स्थित वायु अपेक्षाकृत ठंडी होने के कारण भारी होने से नीचे उतरती है जिस कारण नीचे उतरने से सिकुड़कर भारी होने से तथा धरातलीय तापमान से गर्म होती है। पुनः हल्की होकर ऊपर उठती है इस तरह वायुमंडल में संवहन तरंगों की उत्पत्ति होती है। जिससे ऊष्मा का स्थानांतरण होते रहने से वायुमंडल ऊंचाई तक गर्म हो जाता है।

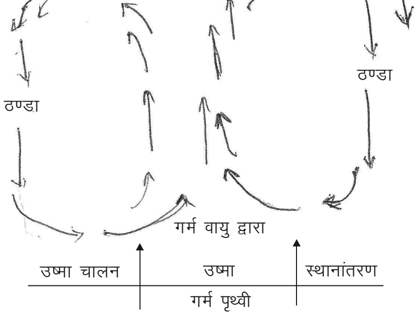

ऊष्मा स्थानांतरण–द्रव गैस में संवहनी संचलन

संघनन की गुप्त ऊष्मा (Latent Head of Condensation)– वृष्टि के समय जो संघनन की क्रिया होती है, उससे वाष्प कण तरल या ठोस अवस्था में बदल जाते हैं। इससे वाष्प कणों में छिपी गर्मी मुक्त होती है और वायुमंडल गर्म होता है।

ऐडियाबेटिक विधि द्वारा वायुमंडल का गर्म एवं ठंडा होना– ऐडियाबेटिक क्रिया विधि से वायुमंडल गर्म एवं ठंडा होना वायु के ऊपर उठने तथा नीचे बैठने से होता है। जब किसी वस्तु में ऐसा परिवर्तन होता है कि वह वस्तु न तो बाहरी माध्यम को ऊष्मा दे न ही उससे ऊष्मा ले, परंतु उसका ताप बदल जाए तब ऐसे परिवर्तन को रूद्धोष्म परिवर्तन (Adiabatic Change) कहा जाता है। इस प्रकार रूद्धोष्म परिवर्तन में किसी वस्तु की ऊष्मा ऊर्जा में, बिना ताप के परिवर्तन के ही परिवर्तन हो जाता है।

जब कोई हवा गर्म होकर ऊपर उठती है तो दबाव में कमी के कारण उसके आयतन में वृद्धि होती है। जब कोई वस्तु फैलती है, तब उस ऊष्मा की आवश्यकता पड़ती है। यदि अपेक्षित ऊष्मा बाहर से नहीं मिल पाती तो उस वस्तु की अपनी आंतरिक ऊष्मा का व्यय करना पड़ता है जिससे वह ठंडी होने लगती है। इस प्रकार आरोही वायु क्रमशः फैलती है एवं शीतल होती जाती है। इन परिस्थितियों में आरोही वायु 1 डिग्री सेल्सियस प्रति 100 मीटर की दर से ठंडी होने लगती है। (10 / 1000) इस ताप ह्रास दर को एडियाबेटिक या रूदोष्म ताप ह्रास दर कहा जाता है। इस प्रकार इस प्रक्रिया के अंतर्गत आरोही और अवरोही वायु के तापमान में परिवर्तन के बावजूद इसकी ऊष्मा की मात्रा में कोई परिवर्तन नहीं होता।

इस प्रकार, अवरोही वायु राशि अधिक दबाव के क्षेत्र में आने के कारण संपीड़ित एवं गर्म होती है। अवरोही वायु के तापमान में 1 डिग्री सेल्सियस प्रति 100 मीटर की दर से वृद्धि होती है। अतः आरोहण अथवा अवरोहण के कारण गतिशील वायु में होने वाले प्रसरण अथवा संकुचन से उत्पन्न ताप परिवर्तन को रूदोष्म ताप परिवर्तन कहा जाता है। तापमान का ऐडियाबेटिक परिवर्तन दो प्रकार का होता है।

1. शुष्क ऐडियाबेटिक– किसी शुष्क वायु राशि के ऊपर उठने तथा नीचे उतरने के कारण उसके तापमान में एक निश्चित दर से परिवर्तन होता है उसे शुष्क रूदोष्म परिवर्तन कहा जाता है। दर 10°C/1000 मीटर। यहां वायु का सामान्य ताप पतन पर 6.5°/1000 मीटर है।
2. आर्द्ध रूदोष्म ताप परिवर्तन– वायुमंडल में ऊपर उठते समय संतृप्त वायु राशि जिस दर से शीतल होती है उसे आद्र रूदोष्म ताप ह्रास दर कहा जाता है। ताप ह्रास दर में इस कमी का कारण संघनन की गुप्त ऊष्मा है। आर्द्र ताप रूदोष्म ताप परिवर्तन की दर 3°C/1000 फीट या 6°C/1000 मीटर है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वायुमंडल का ऊष्मन एवं शीतलन उसके धरातल के बीच ऊष्मा के आदान–प्रदान की अत्यंत जटिल प्रक्रिया का प्रतिफल है।

महासागरीय एवं स्थलीय सतह का विभेदी ऊष्मन एवं शीतलन (Differential Heating and cooling)

स्थलीय भाग जलीय भाग की अपेक्षा शीघ्र गर्म तथा शीघ्र ठंडा हो जाता है। इसी कारण स्थल तथा जल पर सूर्यातप की समान मात्रा मिलने पर भी स्थल का तापमान जल से अधिक होता है। स्थल जल की अपेक्षा शीघ्र गर्म एवं ठंडा हो जाता है। इसका मुख्य कारण है–

- स्थलीय भाग सौर विकिरणों के लिए अपारदर्शी होता है। सूर्य की किरणें धरातल पर 1 मीटर तक ही जा पाती हैं जबकि जल में कई (20 मीटर) मीटर तक गहराई में प्रवेश करती हैं, जिसके कारण स्थल भाग शीघ्र ही गर्म हो जाते हैं और शीघ्र ही ठंडे जबकि महासागरीय भाग देर से गर्म और देर से ठंडे होते हैं। यही कारण है कि दिन में समान क्षेत्र वाली सतह का तापमान सागरीय क्षेत्र की तुलना में अधिक हो जाता है। यद्यपि दोनों में समान मात्रा में सूर्यातप मिलता है इसके विपरीत स्थिति रात में होती है।
- स्थलीय भाग पर ऊष्मा एक स्थान पर केंद्रित होती है क्योंकि स्थल स्थायी होता है। अतः नीचे की ओर तापमान 10 सेंटीमीटर की गहराई तक प्रभावी होता है जबकि महासागर में जल गतिशील होता है। जिसके कारण सागरीय जल का ऊपरी भाग गर्म होकर हल्का तथा स्थानांतरित हो जाता है तथा नीचे से ठंडी जलराशि ऊपर आ जाती है। सागरीय जल में लहरें ज्वार–भाटा आदि गतियां भी ऊष्मा को स्थानांतरित करती हैं।
- सागरीय जल में वाष्पीकरण अधिक होने से सूर्यातप अधिक खर्च होता है जबकि स्थलीय भाग पर अपेक्षाकृत कम वाष्पीकरण होता है।
- स्थलीय सतह की अपेक्षा सागरीय सतह का अलबिडो अधिक होता है।
- स्थलीय सतह का तापान्तर जलीय सतह की तुलना में अधिक होता है कारण सागरीय भाग अधिकतर मेघाच्छादित रहते हैं।

वायुमंडलीय वायुदाब (Atmospheric Pressure)

वायुमंडल में उपस्थित गैस के भार से पृथ्वी पर पड़ने वाले दबाव को वायुमंडलीय दाब (Atmosphere Pressure) कहते हैं। इसे प्रति इकाई क्षेत्रफल पर पड़ने वाले बल के रूप में व्यक्त किया जाता है, जिसे बैरोमीटर (Barometer) द्वारा मापा जाता है। जलवायु वैज्ञानिकों ने इसके लिए मिलिबार इकाई माना है। एक मिलिबार एक वर्ग सेंटीमीटर पर 1 ग्राम भार का बल है।

वायुमंडलीय दाब के वितरण को समदाब रेखाओं (Isobar) के द्वारा दर्शाया जाता है। वायुमंडलीय दाब को मौसम के पूर्वानुमान का एक महत्वपूर्ण सूचक माना जाता है।

वायुदाब पेटी का वितरण (Distribution of Atmospheric Pressure)

पृथ्वी के धरातल पर सामान्यतः सागर तल पर वायुदाब सर्वाधिक होता है तथा सागर तल से ऊंचाई बढ़ने पर वायुदाब क्रमशः कम होता जाता है। वायुदाब की यह ह्रास दर 10 मीटर पर 1 मिलीवाट होती है। वायुदाब पर वायु के घनत्व, वायु के तापमान तथा पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण बल का प्रभाव पड़ता है। पृथ्वी पर वायुदाब की निम्न पेटियां हैं–

1. **विषुवत रेखीय निम्न वायुदाब पेटी (Equatorial Loco Pressure Belt)(10°N–10°S)**
   - विषुवत रेखा के दोनों ओर 5 डिग्री उत्तर और 5 डिग्री दक्षिण के बीच भूमध्य रेखीय न्यून वायुदाब पेटी पाई जाती है। पेटी पर वर्ष भर सूर्य की किरणें सीधी चमकती हैं जिस कारण तापमान ऊंचा होता है और वायुदाब निम्न पाया जाता है।

- इस पेटी में दोनों गोलार्द्ध से चलने वाली व्यापारिक हवाएं अभिसरण कर ऊपर उठती है तथा धरातल पर वायु शांत अथवा हल्की तथा निश्चित दिशा से चलती है। इसी कारण इस बेटी को डोलड्रम्स (Doldrums) की संज्ञा दी गई है। सूर्य के उत्तरायन एवं दक्षिणायन होने के साथ ही यह पेटी क्रमशः 10 डिग्री उत्तर और 10 डिग्री दक्षिण की ओर स्थापित हो जाती है।

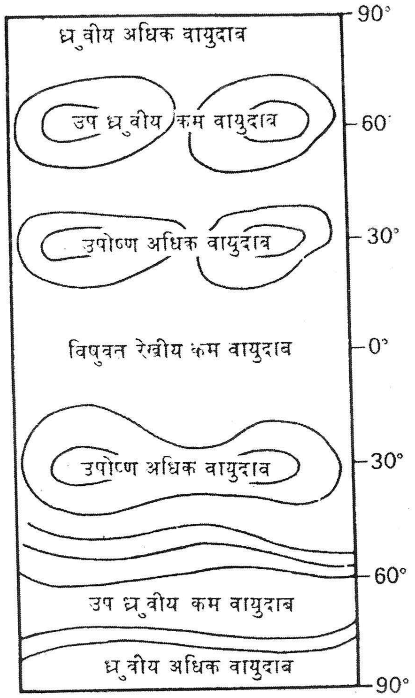

वायुदाब पेटियां (आदर्श वितरण)

2. **उपोषण उच्च वायुदाब पेटी (Sub Tropical High Pressure Belts 23 1/2° –35°N-S)**

- यह पेटी दोनों गोलार्धों के 30°–35° अक्षांशों के मध्य विकसित होती है। इस पेटी के क्षेत्र में शीतकाल के दो माह को छोड़कर वर्ष भर तापमान ऊंचा रहता है। इसके बावजूद यहां 'उच्च वायुदाब पेटी' का निर्माण होता है जबकि यहां 'निम्न वायुदाब' होना चाहिए।
- इस पेटी का संबंध तापमान से न होकर पृथ्वी की दैनिक गति तथा वायु के अवतलन से संबंधित है। अतः दैनिक गति के कारण वायु की विशाल राशियां उपोष्ण प्रदेशों में एकत्रित हो जाती हैं, जिससे वहां उच्च वायुदाब उत्पन्न हो जाता है।
- भूमध्य रेखीय क्षेत्र से उठी वायु गर्म होकर ऊपर उठने वाली वायु उत्तरोत्तर ठंडी और भारी होती जाती है और ऊपर पहुंचकर भू–घूर्णन फलस्वरूप उत्तर तथा दक्षिण दिशा में मुड़ जाती है। 30° उत्तरी तथा दक्षिणी अक्षांश तक पहुंचते–पहुंचते यह वायु पूरी तरह घूम कर नीचे उतर आती है। इस वायु के भार से 30 से 35 अक्षांशों के बीच उच्च वायु उच्च वायुदाब उत्पन्न होता है। इस पेटी को 'शांत पेटी' एवं इन अक्षांशों को 'अश्व अक्षांश' भी कहते हैं।

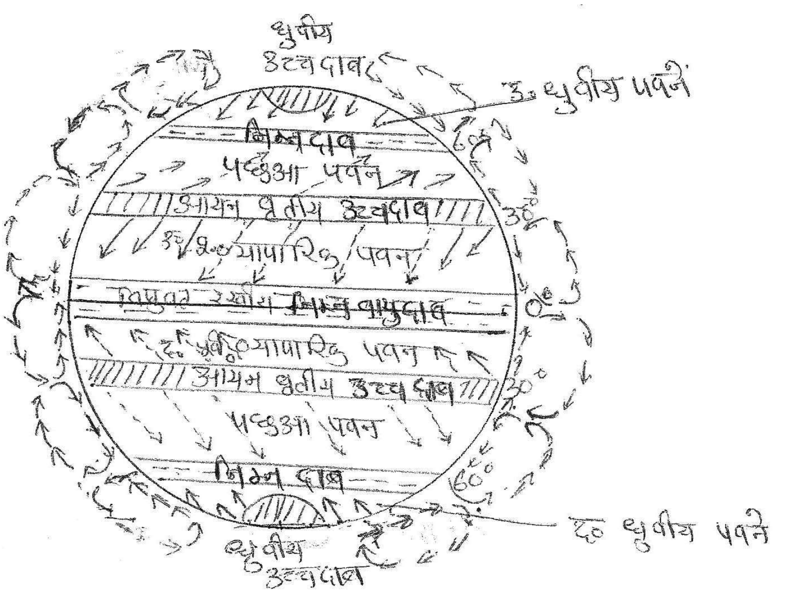

वायुदाब पेटियां

3. उपध्रुवीय निम्न वायुदाब पेटी (Subpolar Low Pressure Belts) (N-5)

इस पेटी का विकास दोनों गोलार्द्धों के 60°–65° अक्षांशों के बीच पाया जाता है। वर्षभर तापमान कम होने के बावजूद यहां निम्न वायुदाब मिलता है। अतः इस पेटी का सम्बन्ध तापमान से नहीं है। पृथ्वी की दैनिक गति के कारण निम्न दाब मिलता है। इन अक्षांशो से वायु फैलकर स्थानांतरित हो जाती है। जिस कारण गति जन्य कम वायु का आविर्भाव होता है।

उपध्रुवीय निम्न वायुदाब की मेखला का दक्षिणी गोलार्द्ध में अधिक विकास हुआ है। इसका मुख्य कारण उत्तरी गोलार्द्ध में स्थल भाग तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में जल भाग अधिक है। उत्तरी गोलार्द्ध में ग्रीष्म काल में महाद्वीपीय एवं महासागरीय भागों में तापमान में भारी विभिन्नता होने के कारण निम्न वायुदाब की पेटी खंडित हो जाती है तथा महासागरीय क्षेत्र में दक्षिणी गोलार्द्ध में क्रमबद्धता पाई जाती है।

4. ध्रुवीय उच्च वायुभार पेटी (Polar High Pressure Belts) (30 ध्रुव एवं दक्षिणी ध्रुव)

ध्रुवीय प्रदेशों में कठोर सर्दी, बर्फीले क्षेत्रों का विस्तार निरंतर हिमपात एवं सौर ऊर्जा की विशेष कमी आदि कारणों से तापमान हिमांक बिंदु से नीचे पाए जाते हैं। इस कठोर सर्दी के प्रभाव से वहां निरंतर उच्च वायु भार वाली सघन वायु की पेटी पाई जाती है। दक्षिणी गोलार्द्ध में अण्टार्कटिका महाद्वीप एवं उत्तरी गोलार्द्ध में ग्रीनलैंड के निकट द्वीपों में बर्फ का स्थाई विस्तार पाया जाता है। अतः यह ध्रुवीय उच्च वायु भार की पेटी तथा निम्न तापमान का होना है।

वायुमंडल की गतियां (Atmospheric Motions)

पृथ्वी के धरातल पर वायुदाब क्षैतिज विषमताओं के कारण हवा उच्च वायुदाब से निम्न वायुदाब क्षेत्र की ओर बहती है। इस गतिशील हवा को 'पवन' कहते हैं। लगभग ऊर्ध्वाधर दिशा में गतिमान हवा को 'वायुधारा' (Air Current) कहते हैं। पवन एवं

वायुधाराएं मिल कर वायुमंडल में संचार तंत्र स्थापित करते हैं। वायुमंडल में वायु सदा एक ही दिशा में, समान वेग से गतिशील नहीं है बल्कि तापमान एवं वायुदाब की दिशाओं में परिवर्तन होने के कारण वायु के प्रवाह की दिशा एवं वेग में परिवर्तन होता रहता है। वायु की दिशा और गति के कई कारक हैं–

1. वायुदाब प्रवणता एवं पवन संचरण (Pressure Gradient and Air Circulation)

दो स्थानों के मध्य दाब प्रवणता जितनी अधिक होगी, पवन उतनी तीव्र गति से बहेगी। वायु की दाब प्रवणता से पवन के चलने के लिए बल मिलता है। तापमान अधिक तो वायुदाब कम, तापमान कम तो वायुदाब अधिक होता है। अतः वायुदाब में अंतर या विभिन्नता स्थल एवं जल की सतहों के गर्म होने या ठंडे होने की प्रक्रिया एवं उनकी प्रकृति तथा दरों में विभिन्नता के कारण है।

वायुमंडलीय परिसंचरण का दाब प्रवणता से घनिष्ठ संबंध है। दाब प्रवणता जितनी अधिक होगी, वायु का वेग उतना ही अधिक होगा, दाब प्रवणता जितनी कम होगी वायु का वेग उतना ही कम होगा। अतः वायु संचरण की दिशा दाब प्रवणता पर निर्भर करेगी अर्थात वायु की दिशा उच्च वायुदाब से न्यून वायुदाब की ओर होती है।

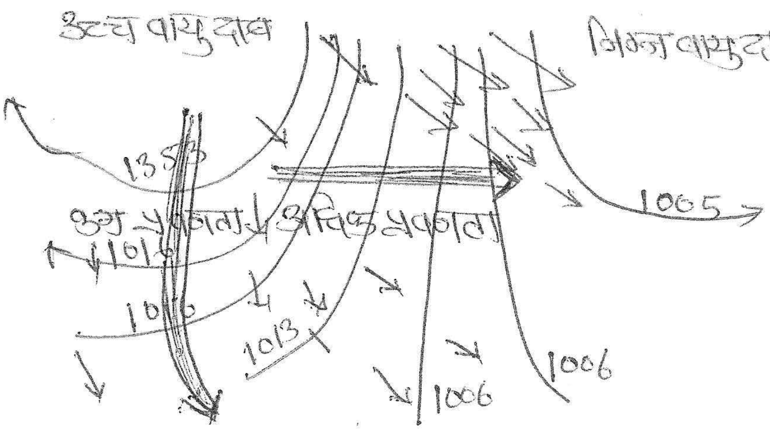

वायुदाब प्रवणता और पवन की दिशा तथा वेग (अंक मिलिबार में)

2. कोरिऑलिस प्रभाव (Coriolis Effect)

पृथ्वी की घूर्णन गति के कारण पवन अपनी मूल दिशा से विक्षेपित हो जाती है। इसे कोरिऑलिस बल कहा जाता है। 1844 ई. में फ्रांसीसी वैज्ञानिक ''कोरिऑलिस'' ने इस विषय पर वर्णन प्रस्तुत किया। इन्हीं के नाम पर इस बल को कोरिऑलिस बल कहा जाता है। इस प्रभाव से पवनें ने उत्तरी गोलार्द्ध में अपनी मूल दिशा से दाहिनें ओर व दक्षिणी गोलार्द्ध में अपने बाईं ओर विक्षेपित हो जाती हैं। जब पवनों का वेग अधिक होता है। तब इसका विक्षेपण भी अधिक होता है। कोरिऑलिस बल ध्रुवों पर सर्वाधिक और विषुवत रेखा पर अनुपस्थित होता है। कोरिऑलिस बल वायु की दिशा को प्रभावित करता है न कि उसके वेग को क्योंकि यह बल हवा की वास्तविक दिशा को विक्षेपित करता है।

टिप्पणी

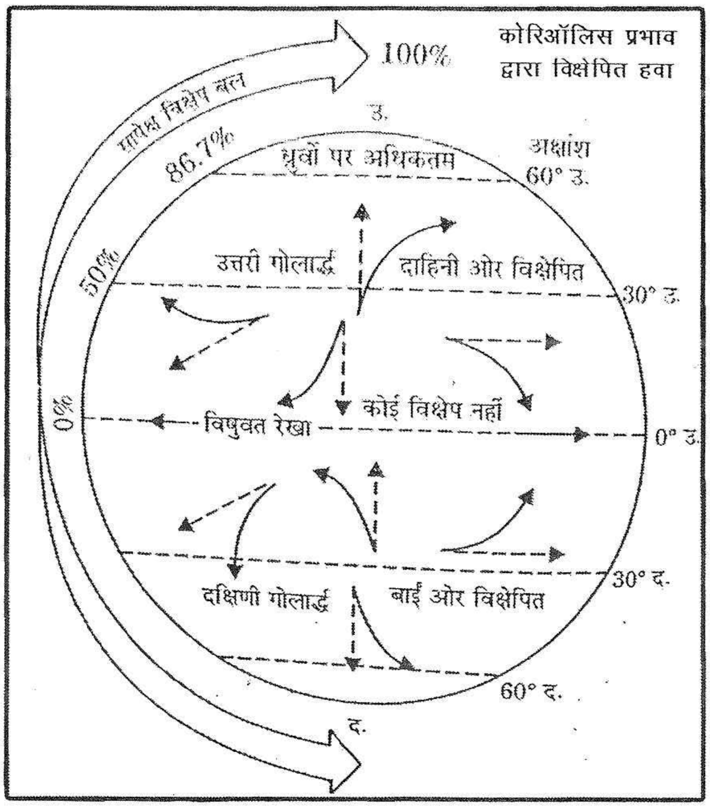

कोरिऑलिस प्रभाव द्वारा विक्षेपित हवा

3. पवन संचार के नियम (Blowing of Winds law)

पृथ्वी पर प्रवाहित हवाओं की दिशा वायुदाब तथा पृथ्वी की घूर्णन गति द्वारा निर्धारित होती है मुख्य नियम निम्न हैं–

1. **फेरल का नियम** (Ferrel's Law)– 1855 ई. में अमेरिकी वैज्ञानिक फेरल के पृथ्वी के परिभ्रमण एवं वायु के दिशा सम्बन्धी नियम के अनुसार धरातल पर स्वतंत्र रूप से चलने वाली हवाएं पृथ्वी की गति के कारण उत्तरी गोलार्द्ध में दायीं ओर तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में बायीं ओर मुड़ जाती हैं। उन्होंने कहा ''जिस दिशा में पवन प्रवाहित हो रही हैं यदि उस दिशा में मुख करके (अथवा जिस दिशा से पवन आ रही हों, उस दिशा की ओर पीठ करके) खड़े हो जाएं तो हवाएं शरीर से टकराकर उत्तरी गोलार्द्ध में बायीं ओर तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में दायीं ओर मुड़ जाती हैं''।
2. **बॉयज बैलट का नियम** (Buys Ballot's Law) (1857)– भूमध्य रेखा पर हवाओं की दिशा पृथ्वी की अक्षीय गति (घूर्णन गति) का प्रभाव नगण्य होता है। इनके अनुसार, ''जिस दिशा में हवा चल रही हो, यदि उस दिशा में मुंह करके खड़ा हुआ जाए तो उत्तरी गोलार्द्ध में न्यून वायुदाब बायीं ओर तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में दायीं ओर होगा''।

4. अभिकेंद्रीय त्वरण (Centripetal Acceleration)

पृथ्वी पर घूर्णन के केंद्र की दिशा में वायु के अंदर की ओर होने वाले बल के कारण, पवन के लिए स्थानीय निम्न वायुदाब या उच्च वायुदाब के चारों ओर समदाब रेखाओं के समांतर एक वक्र पक्ष बनाए रखना संभव है। इसे अपकेंद्रीय बल या त्वरण कहते हैं।

5. भू–घर्षण बल (Land Friction Force)

भू–तल पर विषमताएं पाई जाती हैं। जिसके कारण पवनों में घर्षण की उत्पत्ति होती है। जो पवन की गति तथा दशा को प्रभावित करती है। पर्वत, पठार आदि धरातलीय आकृतियां पवनों की दिशा में परिवर्तन ला देती हैं। महाद्वीपों की अपेक्षा महासागरों में पवन अधिक गति से चलती है। पवनों की गति एवं दिशा पवनों को उत्पन्न करने वाले बल पर निर्भर करती है। धरातल से 2–3 कि. मी. की ऊंचाई पर धरातलीय घर्षण समाप्त हो जाता है।

वायुमंडल का सामान्य परिसंचरण (General Atmoshpheric Circulation)

वायुमंडल में वायु के सामान्य परिसंचरण का बहुत महत्व है। इसका मुख्य कारण है कि महासागरीय जल को वाष्पीकरण के माध्यम से महाद्वीपों के विभिन्न भागों तक ले जाया जाता है। जहां पर संघनन की क्रिया से बादल बनते हैं और वर्षा होती है। इसके अतिरिक्त वायुमंडल परिसंचरण से बड़ी मात्रा में ऊष्मा ऊष्णकटिबंधीय क्षेत्रों से ध्रुवीय क्षेत्रों की ओर प्रवावित होती है। वायुमंडलीय परिसंचरण स्थायी न होकर परिवर्तनशील है।

ऋतु परिवर्तन के कारण वायुमंडलीय परिसंचरण सबसे अधिक परिवर्तनशील है। ऊष्ण कटिबंध में सूर्य से प्राप्त होने वाला सूर्यातप अधिक तथा भौमिक विकिरण से ऊष्मा का ह्रास अधिक होता है। ध्रुवीय प्रदेशों में सूर्य से प्राप्त ऊष्मा की अपेक्षा भौमिक विकिरण से ऊष्मा का ह्रास अधिक होता है। अतः ऊष्ण कटिबंधीय इलाकों में ऊष्मा की अधिकता तथा ध्रुवीय इलाकों में ऊष्मा का अभाव बना रहता है। इस संतुलन को दूर करने के लिए ऊष्ण कटिबंधीय इलाकों की अतिरिक्त ऊष्मा को अभाव वाले ध्रुवीय इलाकों तक ले जाना आवश्यक है। इस कार्य को वायुमंडल तथा महासागरीय जल का परिसंचरण भली–भांति करते हैं। वायु तथा महासागरीय धाराएं बड़ी मात्रा में ऊष्मा को ऊष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों से ध्रुवीय क्षेत्रों की ओर ले जाती हैं और पृथ्वी के विभिन्न भागों में ऊष्मा का संतुलन बनाए रखने में सहायता देती हैं। ऊर्जा परिवहन में 60 प्रतिशत वायुमंडलीय परिसंचरण तथा 40 प्रतिशत महासागरीय परिसंचरण द्वारा किया जाता है।

वायुमंडलीय परिसंचरण में निम्न पवन प्रारूप हैं–

1. वायुमंडलीय ताप में अक्षांशीय विभिन्नता।
2. वायुदाब पेटियों की उपस्थिति।
3. वायुदाब पेटियों का सौर किरणों के साथ विस्थापन।
4. महाद्वीप व महासागरों का वितरण।
5. पृथ्वी की घूर्णन गति।

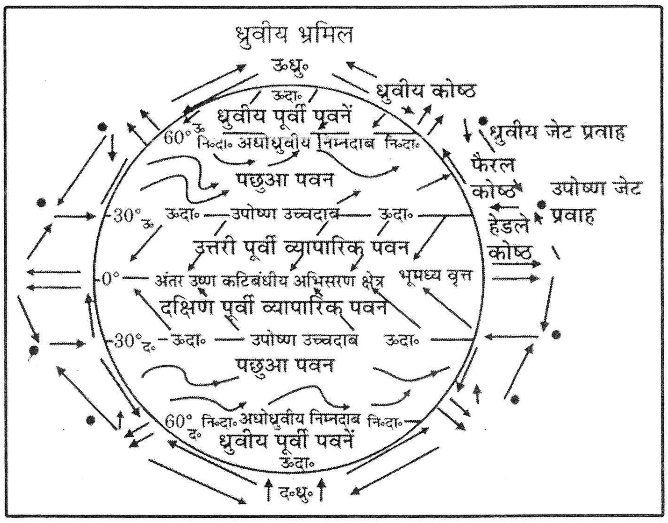

वायु मंडल का सामान्य परिसंचरण

भूमंडलीय वायुदाब पेटियां एवं क्षैतिज परिसंचरण (Global Wind Belts and Horizontal Circulation)

वायुमंडल परिसंचरण सामान्यतः दो दिशाओं में होता है, जिन्हे क्रमशः ऊर्ध्वाधर व क्षैतिज परिसंचरण के नाम से जाना जाता है।

पृथ्वी तल पर तापीय और गत्यात्मक कारणों से कुल 7 वायुदाब पेटियां पायी जाती हैं। चूंकि पवन प्रवाह वायु दाब प्रवणता से नियंत्रित होता है। इसलिए दोनों गोलार्द्धों में प्रचलित पवनों की कुल 6 पेटियां पायी जाती हैं। इनमें से प्रत्येक पवन पेटी में धरातलीय पवन, ऊर्ध्वाधर पवन और उच्च वायुमंडलीय पवन गतियों द्वारा वायुमंडलीय परिसंचरण के एक पूर्ण कोश का निर्माण होता है। अतः प्रत्येक गोलार्द्ध में ध्रुवीय क्षेत्र और विषुवत क्षेत्र के मध्य वायुमंडलीय परिसंचरण त्रिकोशीय होता है।

1. ऊष्ण कटिबंधीय परिसंचरण (संमार्गी पवनों की पेटी–हेडली कोश)
2. मध्य अक्षांशीय परिसंचरण (पछुआ पवनों की पेटी–फेरल कोश)
3. ध्रुवीय परिसंचरण (ध्रुवीय पवनों की पेटी–पोलर कोश)

1. **ऊष्ण कटिबंधीय परिसंचरण**– विषुवत रेखीय निम्न वायुदाब पेटी के दोनों ओर 5° तथा 30° उत्तरी तथा 5° से 30° दक्षिणी अक्षांशों के बीच संमार्गी पवनों की पेटियां पायी जाती हैं। दोनों गोलार्द्धों में स्थित अश्व अक्षांशों से भूमध्य रेखा की ओर उत्पन्न वायुदाब प्रवणता के कारण इन व्यापारिक भवनों की उत्पत्ति होती है। समस्त आयन वर्तीय भाग में मौसम संबंधी दशाएं समान होती हैं तथा भूमध्य रेखा के पास डोलड्रम या शांत पेटी होती है। जहां पर हवाएं शांत होती हैं।

   (क) डोलड्रम की पेटी– भूमध्य रेखा के दोनों ओर 5° अक्षांशों तक निम्न वायुदाब की मेखला होती है। यहां हवाएं शांत होती हैं। अतः इसे शांत पेटी या डोलड्रम कहते हैं। इनके मौसम के अनुसार स्थिति में परिवर्तन आता है। सूर्य उत्तरायण होने पर यह थोड़ी उत्तर में तथा दक्षिणायन होने पर थोड़ी दक्षिण में खिसक जाती है। डोलड्रम पेटी में दिन के समय संवहन धाराएं उठती है तथा दोपहर के बाद गरज एवं बिजली की चमक के साथ

वर्षा कर देती हैं। डोलड्रम में हवाएं पश्चिम से पूर्व की ओर चलती हैं इन्हें फ्लॉन महोदय ने विषुवत रेखीय पछुआ हवाएं नाम दिया। द. प. मानसून की उत्पत्ति की हवाएं विषुवत रेखीय पछुआ हवाएं ही हैं। इसे उत्तरी गोलार्द्ध में उत्तरी अंतरा आयनवर्तीय अभिसरण (NITC) तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में द. अंतरा आयनवर्तीय अभिसरण (SITC) कहते हैं।

(ख) **व्यापारिक हवाएं या सन्मार्गी हवाएं–** (5°–30° उत्तरी एवं दक्षिणी गोलार्द्ध) ये हवाएं एक निश्चित गति एवं निश्चित दिशा में चलती हैं। प्राचीन काल में समुद्रों पर नावों से पश्चिम की ओर यात्रा में बड़ी सहायता मिलती थी इस पवन पेटी में मौसम प्रायः साफ रहता है। इन भागों में कभी–कभी भीषण चक्रवात आते हैं। कोरिऑलिस प्रभाव के कारण तथा फेरल के नियम के अनुसार ये हवाएं उत्तरी गोलार्द्ध में दाहिनी ओर तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में बायीं ओर मुड़ जाती हैं। दोनों गोलार्द्धों में स्थित अश्व अक्षांशों की ओर हवा चलती है। गर्मियों में स्थलीय भागों पर मुख्यतः एशिया एवं दक्षिणी अमेरिका अधिक ताप के कारण अंतर ऊष्ण अभिसरण उत्तर की ओर खिसक जाता है। जिसके कारण उत्तर पूर्वी वाणिज्य पवन लुप्त हो जाती है। परंतु शीत ऋतु में उत्तरी गोलार्द्ध में भी ये हवाएं व्यवस्थित रूप से चलती हैं। विषुवत रेखीय क्षेत्र के समीप दोनों वाणिज्य पवनें आपस में टकराती हैं और ऊपर उठकर मूसलाधार वर्षा करती हैं। वायुमंडल की अन्य गतियों की भांति सन्मार्गी पवनों मे भी अनियमितताएं पाई जाती हैं। यहां तटवर्ती क्षेत्रों में इन पर सागर एवं स्थल समीर का प्रभाव पड़ता है। इस पेटी में न्यून दाब गर्तों के द्वारा अनेक भ्रमणशील प्रतिचक्रवात पाए जाते हैं। जिससे भीषण चक्रवात आते हैं। सन्मार्गी पवनों की गहराई काल और स्थान के अनुसार बदलती रहती है। व्यापारिक पवन मेखला को हेडली कोशिका भी कहते हैं। व्यापारिक पवन के ऊपर, ऊपरी क्षोभमंडल में ''प्रति व्यापारिक'' परिसंचरण होता है अर्थात धरातलीय सतह पर उत्तरी पूर्वी (उत्तरी गोलार्द्ध) एवं दक्षिणी पूर्वी (दक्षिणी गोलार्द्ध) व्यापारिक पवन परिसंचरण के विपरीत दिशा में ऊपरी क्षोभमंडल में पश्चिम से पूर्व दिशा में वायुमंडलीय परिसंचरण होता है।

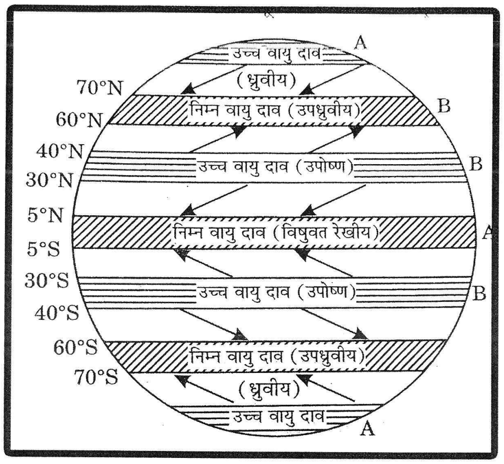

ग्रहीय वायुदाब

2. मध्य अक्षांशीय परिसंचरण (पछुआ पवनों की पेटी)– पछुआ पवन पेटियों का विस्तार दोनों गोलार्द्धों में 35° से 60° उत्तरी तथा दक्षिणी अक्षांशों के बीच पाया जाता है। अश्व अक्षांशों के ध्रुवीय किनारों से दोनों गोलार्द्धों में स्थित उप ध्रुवीय निम्न वायु क्षेत्रों की ओर पवन प्रवाह होता है। पछुआ पवनों का सर्वोत्तम विकास 40° से 65° दक्षिणी गोलार्द्ध अक्षांशों के बीच होता है। जहां इसे 40° पर गरजता चालीसा, 50° पर प्रचंड पचासा तथा 60° पर चीखता साढा के नाम से जाना जाता है। कोरिऑलिस बल प्रभाव के कारण यह पवन अपने पद से मुड़कर उत्तरी गोलार्द्ध में दक्षिणी पश्चिम तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में उत्तर पश्चिम पवनों का रूप धारण कर लेती है। इस पेटी में चक्रवातों के चलने के कारण पवन की दिशा में परिवर्तन होता रहता है। किंतु सामान्य पवन प्रवाह पश्चिम से पूर्व को ही होता है। जहां से गर्म पछुआ पवनें ध्रुवों की ओर से आने वाली ठंडी पवन से मिलती हैं वहां वाताग्र का निर्माण करते हैं एवं शीतोष्ण चक्रवात की उत्पत्ति होती है। यह पवन अन्य स्थाई पवनों के विपरीत गर्म अक्षांशों से ठंडे अक्षांशों की ओर चलती है एवं महाद्वीपों के पश्चिमी तटीय भागों में वर्ष भर वर्षा करती हैं। पछुआ पवन पेटी की ध्रुवीय सीमाओं का विस्थापन न केवल मौसमी अपितु अल्पकालिक होता है।

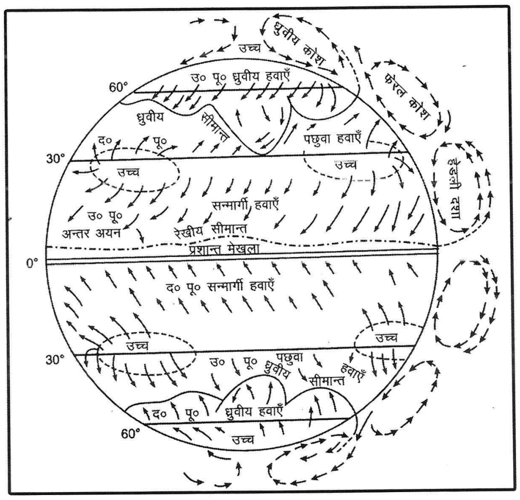

वायुदाब पेटियां एवं पवन प्रवाह

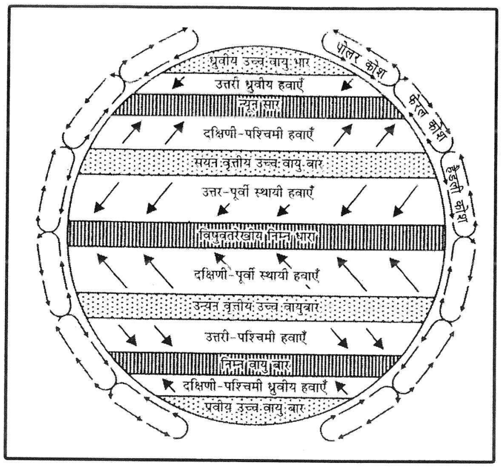

पवन प्रवाह प्रणाली एवं पवन पेटियां

टिप्पणी

3. **ध्रुवीय परिसंचरण (ध्रुवीय पवनों की पेटी)**– ध्रुवीय परिसंचरण मंडल ध्रुवीय क्षेत्रों से 60°–65° अक्षांशों के बीच पूर्वी पवन मुख्य रूप से चलती हैं। ये पवनें ध्रुवीय उच्च वायुदाब क्षेत्र से उप ध्रुवीय निम्न वायुदाब पेटी की ओर चलने वाली पवनें उत्तरी गोलार्द्ध में उत्तर –पूर्वी तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में दक्षिणी–पूर्वी पवन कहलाती हैं। बहुत कम तापमान वाले क्षेत्र से अपेक्षाकृत अधिक तापमान वाले क्षेत्र की ओर बहने के कारण पवन शुष्क होती है। जिस प्रकार भूमध्य रेखा में उच्च तापमान की अधिकता के कारण वायुदाब न्यून है। उसी प्रकार ध्रुवों की समीप उच्च वायुदाब का कारण तापमान की न्यूनता है।

न्यून वायुदाब की मेखला ग्रीष्म ऋतु में अधिक स्थाई तथा शरद ऋतु में लुप्त हो जाती है। शीतकाल में उत्तरी महासागर के ऊपर हिम की कठोर चादर और मोटी परत जम जाती है, किंतु ग्रीष्म काल में आंशिक रूप से खुला रहता है। शीत ऋतु में उत्तरी साइबेरिया, उत्तरी कनाडा तथा ग्रीनलैंड के मध्यवर्ती भाग पृथ्वी के सबसे ठंडे क्षेत्र हो जाते हैं। एक उच्च वायुदाब पेटी इस बेसिन को ध्रुव से बेरिंग जल डमरू मध्य की ओर पार करती है। जिसके द्वारा एशियाई और अमेरिकी चक्रवात परस्पर मिल जाते हैं। वायुदाब महाद्वीपों की अपेक्षा महासागरों पर स्थित आईलैंड तथा अन्य मिशन निम्न वायु क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक होता है। इसे आर्कटिक पवन विभाजक कहते हैं।

एक कोशिकीय परिसंचरण मॉडल (घूर्णन रहित) (Unicellular Circulation Model)(Rotation Less)

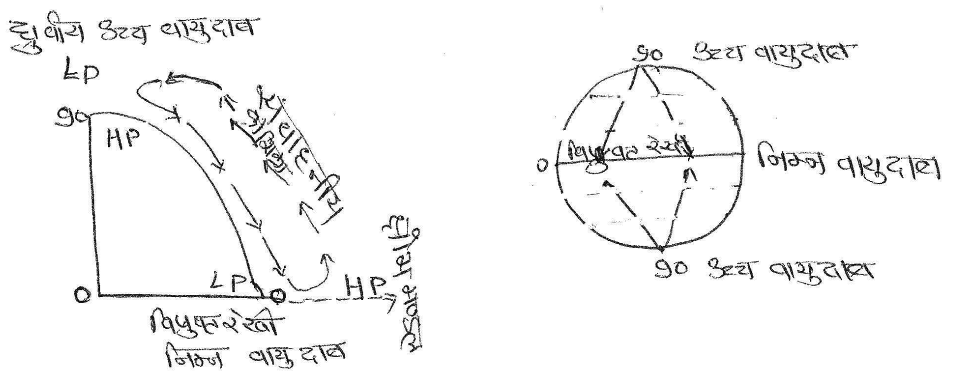

एक कोशिकीय परिसंचरण मॉडल (हेडली)

पवनों का काम है ध्रुवीय क्षेत्रों और भूमध्य रेखीय क्षेत्रों में ऊष्मा का आदान–प्रदान करना। हेडली महोदय ने सबसे पहले पृथ्वी को स्थिर मानकर वायुमंडलीय परिसंचरण की क्रिया विधि से संबंधित एक कोशिकीय परिसंचरण मॉडल दिया। इस मॉडल में मान लेते हैं कि पृथ्वी घूर्णन नहीं कर रही है। ऐसे में ध्रुवीय क्षेत्र सबसे ठंडे और विषुवतीय क्षेत्र सबसे गर्म हो जाएंगे। विषुवतीय क्षेत्रों में औसत तापमान अधिक होता है तथा ध्रुवीय क्षेत्रों में औसत तापमान सबसे कम होगा। परिणामस्वरूप अगर पृथ्वी घूर्णन नहीं करती तो ध्रुवीय क्षेत्रों में उच्च वायुदाब का विकास हो जाता और विषुवतीय रेखीय क्षेत्रों में निम्न वायुदाब का विकास हो जाता। अगर पृथ्वी घूर्णन नहीं करती तो तापीय कारणों से पृथ्वी पर तीन वायुदाब पेटियां पाई जाती– एक निम्न वायुदाब की पेटी और दो उच्च वायुदाब की पेटी (ध्रुवों पर)। ऐसे में हवाएं ध्रुवीय उच्च वायुदाब क्षेत्र से विषुवत रेखीय निम्न वायु क्षेत्र की ओर प्रवाहित होती हैं और परिणामस्वरूप पुनः जब ये हवाएं ध्रुवीय

उच्च वायुदाब से विषुवत रेखीय निम्न वायुदाब की ओर प्रवाहित होती तो विषुवत रेखीय क्षेत्र चूंकि गर्म होता है तो ये हवाएं गर्म होकर विषुवतरेखीय क्षेत्र से ऊपर उठती और ऊपरी वायुमंडल में धारा के रूप में ये हवाएं फिर से ध्रुवों पर पहुंचती और पुनः ध्रुवों पर पहुंचकर ये हवाएं ठंडी होती और ठंडी होकर नीचे बैठती और फिर से ध्रुवीय उच्च वायुदाब से निम्न वायुदाब क्षेत्रों की ओर प्रवाहित होती। अतः वायुमंडलीय क्षेत्र में एक ही वायुमंडलीय कोष से ऊष्मा का आदान–प्रदान होता। किंतु पृथ्वी के घूर्णनशील को शामिल नहीं किया गया। अतः इस मॉडल को स्वीकार नहीं किया गया।

वायुमंडल का त्रिकोशिकीय देशांतरीय परिसंचरण (Tricellular Meridional Circulation of the Atmosphere)

घूर्णन करती हुई पृथ्वी का एककोशिकीय परिसंचरण का मॉडल सबसे पहले 1735 ई. में जॉर्ज हेडली ने दिया। पृथ्वी के घूर्णन के प्रभाव से कोरिऑलिस बल को सम्मिलित करते हुए अपने मॉडल का प्रतिपादन किया। इनका मॉडल भी एकांकी संवहनीय कोशिका पर आधारित था। बाद में 1856 ई. में वायुमंडलीय परिसंचरण के हेडली के एक कोशिकीय परिसंचरण मॉडल में परिमार्जन एवं सुधार किया एवं तीन कोशिकीय मॉडल का प्रतिपादन किया। विशुद्ध तापीय कारणों से केवल तीन ही वायुदाब पेटियां पाई जाती तो गर्म विषुवत रेखीय क्षेत्रों और ध्रुवीय ठंडे क्षेत्रों से ऊष्मा का आदान–प्रदान प्रत्येक गोलार्द्ध में केवल एक कोशिकीय माध्यम से संपन्न होता, लेकिन पृथ्वी घूर्णन गति के कारण चार अन्य वायुदाब पेटियां पाई जाती हैं। तो तापीय और गत्यात्मक कारणों से, उपोष्ण उच्च वायुदाब पेटी, उप ध्रुवीय निम्न वायुदाब पेटी, उत्तरी एवं दक्षिणी गोलार्द्ध में पाई जाती हैं। तापीय कारणों से 3 पेटियां एवं गत्यात्मक कारणों से चार वायुमंडलीय पेटियां पाई जाती हैं। अतः तापीय एवं गत्यात्मक कारणों से 7 वायुमंडलीय दाब पेटियां पाई जाती है, इसलिए विशुद्ध तापीय कारणों के एक कोशिकीय वायुमंडलीय परिसंचरण व्यवस्था का लोप हो जाता है और प्रत्येक गोलार्द्ध में वायुमंडलीय संचरण तीन कोशिकीय रूप में संपन्न होता है अर्थात तीन दक्षिणी गोलार्द्ध में और तीन उत्तरी गोलार्द्ध में।

सन्मार्गी पवन पेटी, पछुआ पवन पेटी, ध्रुवीय पवन पेटी इनमें से प्रत्येक पवनों की पेटी में– धरातलीय पवन, ऊपरी वायुमंडल में प्रवाहित होने वाली पवन, ऊपर उठने वाली पवन, नीचे उतरने वाली पवन गतियों के माध्यम से वायुमंडलीय परिसंचरण के माध्यम से एक पूर्ण कोश की स्थापना होती है। अतः वायुमंडल में ऊष्मा का आदान–प्रदान एक कोश में संपन्न न होकर 3 कोश में संपन्न होता है।

1. सन्मार्गी पवन पेटी में – हेडली कोश
2. पछुआ पवन पेटी में – फेरल कोश
3. ध्रुवीय पवन पेटी में – पोलर कोश

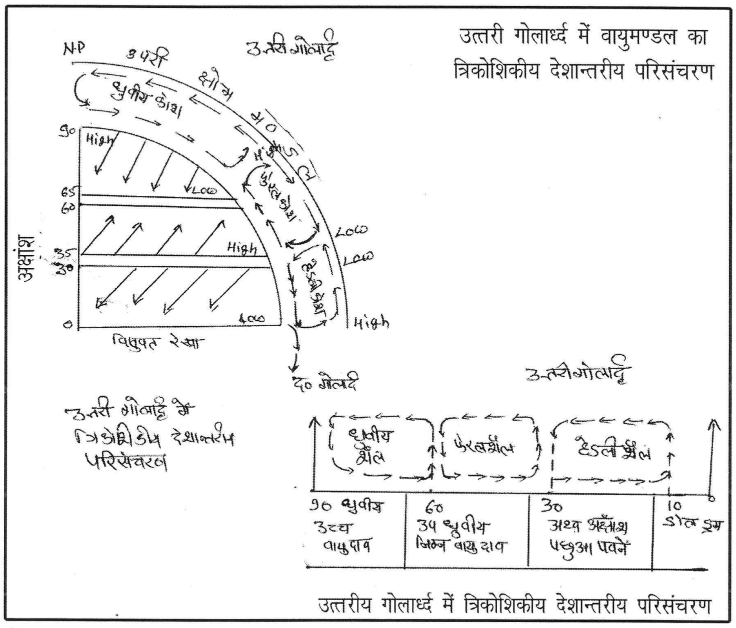

(अ) त्रिकोशकीय देशांतरीय परिसंचरण उत्तरीय गोलार्द्ध

(ब) त्रिकोशकीय परिसंचरण उत्तरीय गोलार्द्ध

1. **सन्मार्ग पवन पेटी हेडले कोश**– हेडली कोश की उत्पत्ति विषुवतीय निम्न वायुदाब क्षेत्र और उपोष्ण उच्च वायुदाब क्षेत्र अर्थात अश्व अक्षांश के मध्य सन्मार्गी पवन की पेटी में होती है। भूमध्य रेखा में सूर्याभिताप की अधिक मात्रा होने के कारण धरातल गर्म हो जाता है और साल भर हवाएं ऊपर उठती हैं परिणामस्वरूप साल भर संवहन धाराओं की उत्पत्ति होती है। विषुवत रेखीय प्रदेश में ऊपर उठी वायु राशियां क्षोभमंडल की बाह्य सीमा पर पहुंचती हैं तो वायुमंडल के वायु भार को बढ़ा देती हैं। और वायुमंडल में पहुंचकर ये पवनें क्षैतिज पवन प्रवाह का रूप ले लेती हैं और एक शाखा उत्तरी ध्रुव की तरफ तथा दूसरी शाखा दक्षिणी ध्रुव की तरफ जाती है। इस तरह से वायुमंडल में पहुंचकर क्षैतिज पवन प्रवाह का रूप ले लेती है। जब ये पवनें उत्तरी गोलार्द्ध की तरफ बढ़ती हैं तो इनकी दिशा फेरल के नियम के अनुसार अपनी दाएं और घूम जाती है जिस कारण उनकी दिशा व्यापारिक पवनों के विपरीत हो जाती है। अतः इन्हें प्रति सन्मार्गी पवनें कहते हैं। 30° अक्षांशों के निकट विकिरण के कारण इनका तापमान इतना कम हो जाता है कि इनका घनत्व बढ़ जाता है तथा कुछ भाग नीचे की ओर उतरने लगता है। कोरिऑलिस बल के प्रभाव से इस अक्षांश के निकट ऊपरी पवन धाराओं की दिशा ध्रुवों की ओर न होकर अक्षांश रेखा के सामांतर हो जाती है। इसके फलस्वरूप 30° से 35° अक्षांशों के निकट ऊपरी वायुमंडल में एकत्रित हो जाती है। इस कारण धरातल पर उच्च दाब क्षेत्र का निर्माण करती है। ऊपरी पवन धाराओं का कुछ भाग सीधे ध्रुवों की ओर प्रवाहित होता है तथा अश्व अक्षांश पर अवरोही वायु का कुछ भाग विषुवत रेखा की ओर अग्रसर होता है। विषुवत रेखा की ओर चलने वाली पवन फेरल के नियमानुसार उत्तरी तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में क्रमशः अपने दाएं तथा बाएं और मुड़ जाती है। इस प्रकार उत्तरी गोलार्द्ध में सन्मार्गी पवन उत्तर–पूर्व तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में दक्षिण–पूर्व प्रवाहित होती है। धरातल के निकट सन्मार्गी पवनें उनके ऊपर

टिप्पणी

चलने वाली प्रति सन्मार्गी पवनें, विषुवत रेखीय क्षेत्र में उत्पन्न अवरोही पवनें तथा अश्व अक्षांशीय अवरोही पवन तरंग मिलकर सन्मार्गी पवन पेटी स्थित प्रथम परिसंचरण कोष का निर्माण करती है। इसे प्रत्यक्ष कोश या हेडली कोश भी कहा जाता है।

2. **पछुआ पवन पेटी या फेरल कोश**– परिसंचरण की दूसरी कोशिका को फेरल कोशिका कहते हैं। अश्व अक्षांश से 60°–65° अक्षांश (उपध्रुवीय न्यून वायु दाब क्षेत्र) के मध्य पछुआ पेटी में स्थित है। अश्व अक्षांशीय उच्च दाब क्षेत्र से ध्रुवों की ओर प्रवाहित होने वाली पवन धाराएं विक्षेपक बल के कारण उत्तरी तथा दक्षिणी गोलार्द्धों में क्रमशः अपने पथ के दाऐं तथा बाऐं मुड़ जाती है। उत्तरी गोलार्द्ध में इनकी दिशा दक्षिण–पश्चिम से उत्तर–पूर्व तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में उत्तर–पश्चिम से दक्षिण–पूर्व होती है। फेरल कोश का निर्माण गत्यात्मक कारणों से होता है पृथ्वी के घूर्णन बल के कारण पवन ऊपर उठती है इसे अप्रत्यक्ष कोश भी कहते हैं। वायु दाब प्रवणता के कारण हवाएं अश्व अक्षांश से तेजी से उप ध्रुवीय निम्न वायुदाब भरने के लिए प्रवाहित होती हैं परिणामस्वरूप धरातल से ऊपर उठकर कोरिऑलिस बल के कारण हवाएं ऊपर उठ जाती हैं, और जैसे ही हवा 60° से 65° पहुंची हवा विक्षेपित होकर ऊपर उठ गयी और जब ये हवाएं वायुमंडल में ऊपर उठकर ऊपरी मंडल के वायुदाब को बढ़ा देती हैं तब धरातल पर न्यून दाब तथा ऊपर उच्च वायुदाब का निर्माण करती हैं। ऊपरी वायुमंडल में ये हवाएं क्षैतिज पवन के रूप में दो दिशाओं को चलती हैं। एक चली जाती है उत्तरी ध्रुव की तरफ तथा दूसरी विषुवत रेखा की तरफ जाती है तो इनकी दिशा पछुआ पवनों से विपरीत होती है। अतः इन्हें प्रति पक्षुआ पवन कहते हैं। इस प्रकार पछुआ पवन ऊपरी वायुमंडल में प्रति पछुआ पवन, अश्व अक्षांशों में अवरोही पवन, और उप ध्रुवीय निम्न वायुदाब के क्षेत्रों में आरोही पवन अर्थात ऊपर उठने वाली पवन इन चार पवन गतियों को मिलाकर वायुमंडलीय दूसरे कोश का निर्माण होता है। जिसे हम फेरल कोश कहते हैं।

3. **ध्रुवीय या पोलर कोश**– 60° उत्तरी अक्षांश से ध्रुवों के मध्य पाये जाने वाले कोश पोलर या ध्रुवीय कोष कहलाते हैं। जैसे–जैसे हम भ–ूमध्य रेखा से ऊपर जाते हैं, कोरिऑलिस मान में वृद्धि होती जाती है। फेरल के अनुसार विषुवत रेखा पर कोरिऑलिस मान शून्य होता है तथा ध्रुवों पर सबसे अधिक होता है। ध्रुवीय क्षेत्र ठंडे होने के कारण हवाएं ठंडी होकर नीचे बैठने लगती हैं इसके परिणामस्वरूप ध्रुवीय क्षेत्रों में उच्च वायुदाब पाया जाता है। परिणामस्वरूप ध्रुवीय उच्च वायुदाब से हवाएं उपध्रुवीय निम्न वायुदाब की ओर चलती है। जब यह 60 से 65 अक्षांश पर पहुंचती है तो तापमान बढ़ने लगता है परिणामस्वरूप कोरिऑलिस बल काम करने लगता है और कोरिऑलिस बल के प्रभाव से ये हवाएं विक्षेपित होकर ऊपर वायुमंडल में जाती हैं और धरातल छोड़ देती हैं परिणामस्वरूप ऊपरी वायुमंडल में उच्च वायुदाब बढ़ जाता है। यहां से हवाएं पुनः ध्रुवीय क्षेत्रों की ओर प्रवाहित होने लगती हैं। क्योंकि ध्रुवीय क्षेत्रों के ऊपर निम्न वायुदाब पाया जाता है। ध्रुवीय क्षेत्रों में पहुंचकर ये हवाएं पुनः ठंडी होने लगती हैं और उप ध्रुवीय क्षेत्रों में उतरती हैं तथा उच्च वायु भार की स्थिति को कायम रखती हैं।

वायुमंडलीय परिसंचरण का महत्व (Significance of Meridinal Circulation)

वायुमंडलीय त्रिकोशिकीय परिसंचरण के माध्यम से ही ध्रुवीय ठंडे क्षेत्रों और विषुवतीय गर्म क्षेत्रों के मध्य ऊष्मा का आदान प्रदान संभव हो पाता है जिससे ध्रुवीय क्षेत्र न अधिक ठंडे तथा विषुवतीय क्षेत्र न अधिक गर्म हो पाते हैं क्योंकि विषुवतीय क्षेत्र की ऊष्मा ध्रुवीय प्रदेशों में, क्योंकि यहां के कम ताप की स्थिति विषुवत रेखीय क्षेत्र में पहुंच जाती है इस प्रकार से पूरी पृथ्वी पर जीवन धारण करने की परिस्थितियां बन जाती हैं। अतः त्रिकोशिकीय संचरण के द्वारा तापमान, गैसों, और जल का संचरण होता है जो कि हमारी जलवायु को प्रभावित करता है।

केंड्रयू के अनुसार रेखांकित विनिमय के सर्वाधिक प्रभावकारी मार्ग वायुदाब की अनियमितताओं तथा उच्च एवं निम्न दाब केंद्रों आदि के द्वारा उपलब्ध होते हैं। भूतल पर स्थित विभिन्न अभिसरण तथा अपसरण क्षेत्र रेखांकित पवन प्रवाह के संदर्भ में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

एल–निनो – ला–निनो परिघटना : वायुमंडलीय महासागर परिसंचरण के अंतर्संबंध का परिणाम है जो मौसम की एक महत्वपूर्ण घटना है जिसकी उत्पत्ति दक्षिणी अमेरिका के पश्चिमी तट, मुख्यतः पेरू के तट के समीप पूर्वी प्रशांत महासागर में होती है। एल–निनो (EL–NINO) एक जटिल मौसमी परिघटना है, जो 5 या 10 साल बाद प्रकट होती रहती है। इसके कारण संसार के विभिन्न भागों में सूखा, बाढ़ और मौसम की चरम अवस्थाएं आती हैं। इस तंत्र में महासागरीय और वायुमंडलीय परिघटनाएं शामिल हैं। इससे भारत सहित अनेक स्थानों का मौसम प्रभावित होता है। एल–निनो परिघटना का सर्वप्रथम अवलोकन 1541 ई. में किया गया था तथा ला–निनो का निर्धारण 1986 ई. में किया गया।

एल–निनो एक स्पेनिश नाम है जिसका शाब्दिक अर्थ है "छोटा बच्चा" (Child Christ) या बालक ईशा, क्योंकि यह धारा दिसंबर महीने में क्रिसमस के आसपास पैदा होती है। इसके प्रभाव से इस महासागरीय क्षेत्र में मछलियां विलुप्त हो जाती हैं। इसे उन्होंने क्रिसमस के बच्चे की धारा का नाम दिया।

सामान्यतः एल–निनो भूमध्य रेखीय ऊष्ण समुद्री धारा का विस्तार मात्र माना जाता है, जो अस्थाई रूप से ठंडी पेरूवियन अथवा हम्बोल्ट धारा पर प्रतिस्थापित हो जाती है यह धारा पेरू तक के जल का तापमान 10 सेल्सियस तक बढ़ा देती है, एल–निनो के दौरान व्यापारिक पवनें मध्य एवं पश्चिमी प्रशांत महासागर में शांत होती हैं। जिससे गर्म जल की सतह पर इकट्ठा होने में मदद मिलती है और ठंडी जलधारा/जल के कारण उत्पन्न हुए पोषक तत्व नीचे खिसक जाते हैं। फलस्वरूप अनेक समुद्री पक्षी, प्लवक जीव, प्लंकटन वनस्पतियां, मछलियों आदि की मृत्यु हो जाती है।

- अक्टूबर–नवंबर में पश्चिमी प्रशांत महासागरीय निम्न वायुदाब का पूर्वी प्रशांत महासागरीय भाग की ओर स्थानांतरण हो जाता है। इस समय व्यापारिक हवाएं मंद पड़ जाती हैं, परिणामस्वरूप व्यापारिक हवाओं के कारण पूर्वी प्रशांत महासागरीय जल का जो पश्चिमी प्रशांत महासागरीय भाग की ओर बहाव हो गया था, वह अब दक्षिणी–पूर्वी प्रशांत महासागर की ओर लौट आता है।
- इस तरह दक्षिणी पूर्वी प्रशांत महासागर खासकर दक्षिणी अमेरिका के पश्चिमी तटीय भाग (पेरू एवं इक्वेडोर तट) के पास गर्म जलराशि के आने के कारण

निम्न वायुदाब बन जाता है। नीचे से ठंडी जलराशि का ऊपर आना रुक जाता है हवा ऊपर उठने लगती है तथा उसके अस्थिर हो जाने से संघनन से वर्षा प्रारंभ हो जाती है इस प्रभाव को एल–निनो घटना कहते हैं।

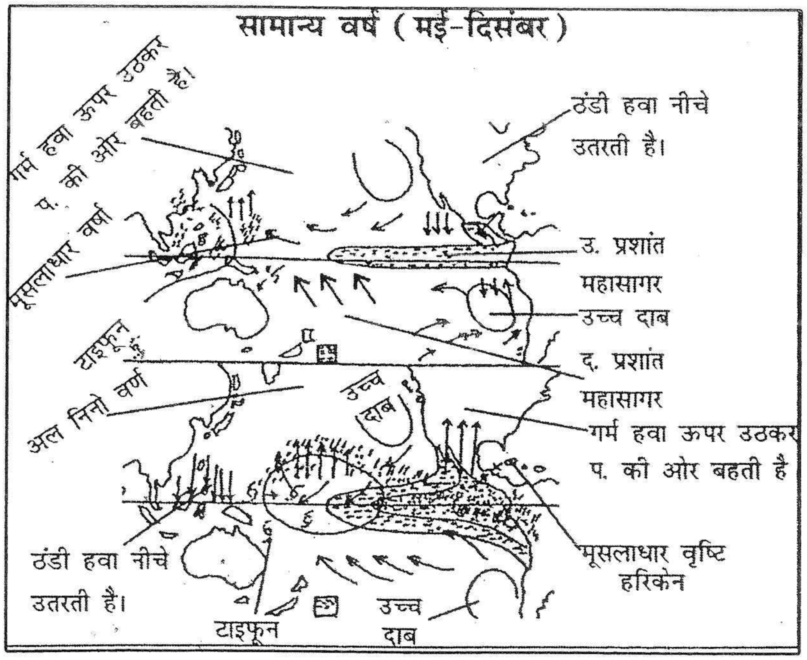

एल–निनो एवं ला–निनो (सामान्य वर्ष)

एल–निनो घटना के दौरान हिंद महासागर, इंडोनेशिया और ऑस्ट्रेलिया पर हवा के दबाव में वृद्धि होती है। मध्य और पूर्वी प्रशांत महासागर के बाकी भागों में हवा के दबाव में गिरावट आती है। दक्षिणी प्रशांत महासागर में व्यापारिक हवा कमजोर हो जाती है और गर्म जल पश्चिम प्रशांत से पूर्व हिंद महासागर से पूर्वी प्रशांत महासागर में फैल जाता है। इससे पश्चिमी प्रशांत महासागर क्षेत्र ऑस्ट्रेलिया के पूर्वी तट तथा इंडोनेशिया में सूखा तथा इसके विपरीत शुष्क एवं पूर्वी प्रशांत महासागर क्षेत्र दक्षिणी अमेरिका के तटीय क्षेत्रों में वर्षा होती है।

ला–निनो की परिघटना के सक्रिय होने पर दक्षिणी दोलन तथा वाकर परिसंचरण सक्रीय एवं संवर्द्धित हो जाता है।

ला–नीना (LA - NINA)– ला–नीना भी एल–निनो की तरह स्पैनिश नाम है किंतु इसका प्रभाव एल–निनो के ठीक विपरीत पड़ता है। ला–नीना एक प्रति सागरीय धारा है। इसका आविर्भाव ऊष्णकटिबंधीय पश्चिमी प्रशांत महासागर में उस समय होता है जब पूर्वी प्रशांत महासागर में एल–निनो का प्रभाव समाप्त हो जाता है। ला–निनो पश्चिमी प्रशांत महासागर में एल–निनो से उत्पन्न सूखे की स्थिति को बदल देती है और आर्द्र मौसम को जन्म देती है। यह घटना तब होती है जब व्यापारिक पवनें मजबूत होती हैं और दक्षिणी अमेरिका के तट के पास गर्म पानी की जगह लेने के लिए समुद्र की सतह के ठंडे पानी को ऊपर धकेल देती है तथा गर्म पानी को पश्चिम की ओर उड़ेल देती है। इसलिए आंशिक रूप से व्यापारिक पवनें इसके लिए जिम्मेदार मानी जाती हैं। ला–निनो के दौरान पूर्वी और मध्य प्रशांत महासागर में समुद्र की सतह का तापमान 3–5° सेल्सियस के मध्य कम हो जाता है। इसके विपरीत पश्चिमी प्रशांत

महासागर के ऊष्णकटिबंधीय भागों में तापमान में वृद्धि होने से वाष्पीकरण अधिक होता है एवं इंडोनेशिया तथा समीपवर्ती भागों में सामान्य से अधिक वर्षा होती है। भारत में भी ग्रीष्मकालीन मानसून अधिक सक्रिय हो जाता है। 1998 में ला–निनो के अधिक सक्रिय होने के कारण सामान्य से बहुत अधिक वर्षा के प्राप्त होने से भारत, चीन, बांग्लादेश में प्रचंड बाढ़ की स्थिति पैदा हो गई थी।

वाकर संचरण तथा एल–निनो–दक्षिणी दोलन (इन्सो) (Walker Circulation and EL Nino & Southern Oscillation (ENSO)

वाकर संचरण (Walker Circulation) वायुमंडल के सामान्य संचरण व्यवस्था, यथा धरातलीय व्यापारिक पछुआ तथा ध्रुवीय पवन संचरण एवं देशांतरीय त्रिकोशिकीय पवन संचरण में कतिपय विचलन पाया जाता है, जैसे स्थानीय एवं मानसूनी हवाएं। इन विचलनों में पूर्व–पश्चिम दिशा में ऊष्णकटिबंधीय पवन प्रवाह अधिक महत्वपूर्ण है। इस पूर्व–पश्चिम पवन संचरण को वाकर संचरण कहते हैं।

इसका नामकरण वैज्ञानिक जी.टी. वाकर के नाम के आधार पर किया गया है। वाकर संचरण पवन संचार की एक संवहनीय कोशिका (Convective Cell) है। जिसका निर्माण ऊष्णकटिबंधीय प्रशांत महासागर में भूमध्य रेखा के साथ–साथ पूर्व से पश्चिम दिशा में दाब प्रवणता के कारण होता है।

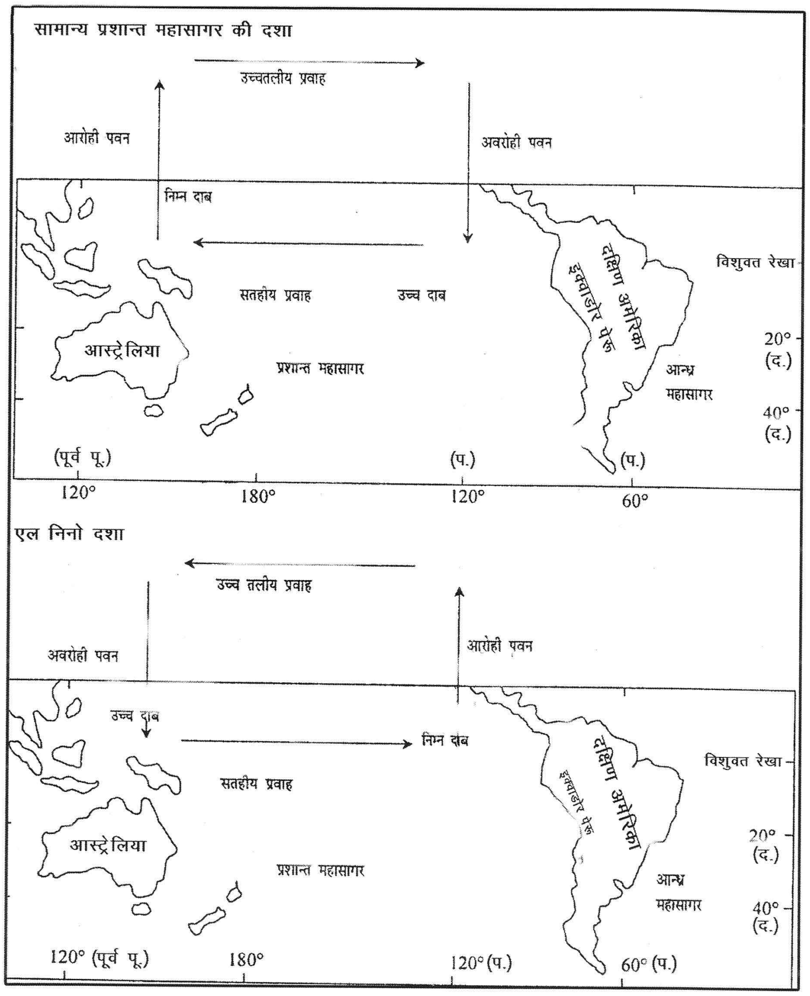

दक्षिणी दोलन (Southern Oscillation) वाकर संचरण तथा एल–निनो)

दक्षिणी दोलन (Southern Oscillation)

प्रशांत महासागर के घटते बढ़ते वायुमंडलीय बदलाव के प्रतिरूप को दक्षिणी दोलन कहा जाता है। भारतीय मौसम विज्ञान संस्थान के प्रथम महा निर्देशक सर गिलबर्ट वाकर ने 1924 में दक्षिणी दोलन शब्द का प्रयोग किया। जब भी प्रशांत महासागर में वायुदाब अधिक होता है, तब हिंद महासागर में वायुदाब कम होता है क्योंकि वायुदाब का वर्षा के साथ प्रतिलोम संबंध है। इसलिए जब हिंद महासागर में निम्न वायुदाब होता है तब इस क्षेत्र में मानसून प्रबल होता है और भारी वर्षा होती है अर्थात अच्छे मानसून की संभावनाएं बनती हैं। इसके विपरीत जब प्रशांत महासागर में वायुदाब कम होगा तो हिंद महासागर में वायुदाब अधिक होगा तब ऐसी स्थिति में मानसून कमजोर होगा। दक्षिणी दोलन की अवधि 2 से 7 वर्ष तक होती है। इसकी तीव्रता को समुद्र तल पर दाब के अंतर द्वारा मापा जाता है।

दक्षिणी दोलन वाकर परिसंचरण के साथ जुड़ा हुआ है। भूमंडलीय पवन के संदर्भ में वाकर परिसंचरण दोनों गोलार्द्धों के व्यापारिक पवनों के मध्य एक ठोस अभिसरण क्षेत्र की ओर संकेत करता है जो विषुवत रेखा के उत्तर में स्थित होगा। इन व्यापारिक पवनों के कारण पश्चिमी प्रशांत महासागर में बड़ी मात्रा में गर्म जल एकत्रित हो जाता है जो इंडोनेशिया के तट से विषुवतीय प्रति धारा की उत्पत्ति तथा पेरू के तट के निकट शीतल पेरू धारा की उत्पत्ति का कारण है। इस प्रकार दक्षिणी दोलन सूचकांक उच्च होने पर निम्न स्थितियां प्रकट होती हैं।

- शीतल पेरू धारा, प्रबल व्यापारिक पवन, पश्चिमी प्रशांत महासागर में जल का एकत्रित होना जिसे विषुवतीय प्रति धारा संतुलित करती है।
- प्रशांत महासागर के पश्चिमी भाग से आगे बढ़ते हुए ताप प्रवणता की गहराई का ऊपर उठना।
- वाकर परिसंचरण का ऑस्ट्रेलिया तथा इंडोनेशिया पर अवरोही शाखा तथा दक्षिणी अमेरिका में अवरोही शाखा।

ऐसी सामान्य स्थिति के कारण भारत में दक्षिणी पश्चिमी मानसून का जन्म होता है। इसके विपरीत एल–निनो की उत्पत्ति प्रशांत महासागर में एक गर्म चरण को जन्म देता है जिसे नकारात्मक दक्षिणी दोलन कहते हैं।

मानसून : वायुमंडल–महासागरीय अंतर्संबंध का परिणाम

चांग चिया चेंग के अनुसार, "मानसून विस्तृत भौगोलिक क्षेत्र पर सामान्य वायुमंडलीय परिसंचरण का एक प्रवाह प्रतिरूप है, जिसके अंतर्गत संबंधित प्रदेश के प्रत्येक भाग में एक दिशा में प्रवाहित होने वाली स्पष्ट रूप से प्रमुख पवन होती है परंतु उसमें प्रचलित पवन की दिशा में शरद काल से ग्रीष्म काल एवं ग्रीष्म काल से शरद काल में विपरीत स्थिति हो जाती है।"

सामान्य रूप में मानसून हवाएं धरातल की संवाहनीय क्रम ही हैं, जिनका आविर्भाव स्थल तथा जल के विरोधी स्वभाव के कारण तथा तापीय विभिन्नता के कारण होता है। वे भाग जहां पर मानसून हवाओं का आधिक्य होता है मानसूनी प्रदेश कहलाते हैं। मानसून शब्द का प्रयोग किसी प्रदेश में प्रवाहित होने वाली उन हवाओं से है जिनकी दिशा वर्ष में दो बार पूर्ण परिवर्तित होती है। अरब सागर में बहने वाली हवा

जिसकी दिशा वर्ष के छः मास तक उत्तर पूर्वी से दक्षिणी पूर्वी तथा शेष छः माह दक्षिण पश्चिम से उत्तर पूर्व में प्रवाहित होती है।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

3. पृथ्वी की धरातल पर प्राप्त होने वाली ऊर्जा को क्या कहते हैं?
   (क) वायुमंडलीय परिसंचरण (ख) वायुमंडलीय वायुदाब
   (ग) सौर विकिरण या सूर्यातप (घ) मौसमी परिवर्तन
4. वायुमंडल किस प्रक्रिया के द्वारा गर्म व ठंडा होता है?
   (क) वायुदाब प्रवणता (ख) अभिकेंद्रित त्वरण
   (ग) कॉरिऑलिस प्रभाव (घ) संवहन

5.4 महासागरीय सतह की धाराएं

महासागरों में जल एक निश्चित दिशा में एक भाग से दूसरे भाग की ओर निरंतर प्रवाहित होता रहता है, जिसे महासागरीय धारा कहते हैं अर्थात सागरों का जल एक निश्चित दिशा में प्रवाहित होने की गति को धाराएं कहते हैं। धाराएं पृथ्वी के धरातल पर बहने वाली नदियों के समान होती हैं। महासागरों में होने वाली गतियों में धाराएं सर्वाधिक शक्तिशाली होती हैं। ये हजारों किलोमीटर तक महासागरीय जल को अपने साथ प्रवाहित करती हैं। इनसे अनेक प्रकार के सामाजिक, आर्थिक एवं पर्यावरणीय लाभ तथा हानियां होती हैं। धाराएं पृष्ठीय जल का ऊर्ध्वाधर एवं क्षैतिज प्रवाह होती हैं।

तापमान के आधार पर महासागरीय धाराएं दो प्रकार की होती हैं–

(i) ऊष्ण धारा (Warm Currents)

(ii) ठंडी धारा (Cold Currents)

(i) **ऊष्ण धारा (गर्म जलधारा)**– गर्म धाराओं का प्रवाह निम्न अक्षांशीय क्षेत्रों से उच्च अक्षांशीय क्षेत्रों की ओर होता है अर्थात गर्म जल धाराएं ऊष्मा का परिवहन ऊष्णकटिबंधीय क्षेत्रों से ध्रुवों की ओर करती हैं इनका तापमान वायुमंडलीय तापमान से अधिक होता है।

(ii) **ठंडी धारा (शीतल जलधारा)**– शीतल धाराओं का प्रवाह उच्च अक्षांशीय क्षेत्रों से निम्न अक्षांशीय क्षेत्रों की ओर होता है। ये धाराएं समुद्र की सतह पर प्रवाहित होती हैं और इनका तापमान वायुमंडल के सामान्य तापमान से कम होता है।

महासागरीय धाराओं के प्रकार–

1. महासागरीय सतह की धाराएं (Surface Ocean Currents)
2. गहरी महासागरीय धाराएं (Deep Ocean Currents)

1. महासागरीय सतह की धाराएं – इन जल धाराओं में संपूर्ण महासागरीय जल का 10% जल शामिल किया जाता है। महासागरों की सतह पर वायु के घर्षण से इन महासागरीय जल धाराओं की उत्पत्ति होती है। वायु द्वारा संचालित महासागरीय

धाराओं के द्वारा ऊष्मा ऊर्जा का निम्न अक्षांशीय क्षेत्रों से उच्च अक्षांशीय क्षेत्रों की ओर परिवहन होता है। सामान्य रूप से महासागरीय धाराओं में तथा वायु मेखलाओं (व्यापारिक पछुआ तथा ध्रुवीय) में सामंजस्य पाया जाता है। लेकिन इसके क्रम में कोरियॉलिस बल के कारण जटिलता आ जाती है। जिससे इन जल धाराओं के बीच जायर (Gyres) का निर्माण होता है।

2. गहरी महासागरीय धाराएं (Deep Ocean Currents)– लगभग 1000 मीटर से अधिक गहराई के नीचे प्रवाहित होने वाली महासागरीय धाराओं को गहरी धाराएं कहते हैं। इनकी उत्पत्ति सागरों के जल में घनत्व में भिन्नता के कारण होती हैं। क्योंकि अधिक घनत्व वाला जल महासागर के नितल की ओर चला जाता है जबकि कम घनत्व वाला जल महासागरीय सतह की ओर उठने लगता है। महासागरीय जल का घनत्व तापमान एवं लवणता के द्वारा नियंत्रित होता है। महासागर के नीचे परिसंचरण को थर्मोहेलाइन धारा या अपप्रवाह महासागरीय धारा भी कहते हैं।

महासागरीय धाराओं की उत्पत्ति के कारक

महासागरों में धाराओं की उत्पत्ति के निम्नलिखित कारक हैं–

1. पृथ्वी के परिभ्रमण से संबंधित कारक
2. बाह्य सागरीय कारक

महासागरीय धाराओं की उत्पत्ति के कारक

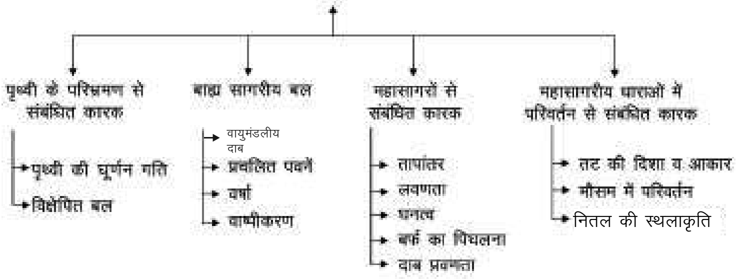

3. महासागरों से संबंधित कारक
4. महासागरीय धाराओं में परिवर्तन से संबंधित कारक

1. पृथ्वी के परिभ्रमण (Rotation of the Earth) से संबंधित कारक

(i) **पृथ्वी की घूर्णन गति** – पृथ्वी पश्चिम से पूर्व दिशा में अपनी अक्ष रेखा के साथ–साथ परिक्रमा करती है इस गति के कारण जल, स्थल का साथ नहीं दे पाता है, जिस कारण वह पीछे छूट जाता है। परिणामस्वरूप जल में पूर्व से पश्चिम दिशा में गति उत्पन्न हो जाती है। इस तरह विषुवत रेखीय धाराओं की उत्पत्ति होती है। पृथ्वी के परिक्रमण का धाराओं की दिशा पर भी प्रभाव पड़ता है।

(ii) **विक्षेपित बल**– पृथ्वी की परिक्रमण गति के कारण विक्षेपक बल उत्पन्न होता है। इस बल के कारण समुद्रों में जल राशियों का प्रवाह सीधे न होकर उत्तरी गोलार्द्ध में अपनी दिशा के दाईं ओर और दक्षिणी गोलार्द्ध में बाईं ओर होता है।

2. बाह्य सागरीय कारक– महासागरीय जल पर वायुमंडलीय दशाओं का पर्याप्त प्रभाव होता है। इनमें वायुमंडलीय दाब में भिन्नता, वायु की दिशा वर्षा, वाष्पीकरण आदि मुख्य कारक हैं।

(i) **वायुमंडलीय दाब**– जहां वायुदाब अधिक होता है वहां पर जल के आयतन में कमी के कारण जल–तल नीचा हो जाता है। इसके विपरीत कम वायुदाब वाले क्षेत्र में जल तल ऊंचा हो जाता है जिस कारण उच्च जल तल से निम्न जल तल की ओर जल गतिशील हो जाता है। परिणामस्वरूप धारा की उत्पत्ति हो जाती है।

(ii) **प्रचलित पवनें**– प्रचलित अथवा सनातनी पवनें धाराओं की उत्पत्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। जब हवा सागरीय जल के ऊपर से होकर चलती है तो वह अपनी रगड़ के कारण जल को भी अपने साथ बहा ले जाती है अटलांटिक महासागर में गल्फस्ट्रीम तथा प्रशांत महासागर क्यूरोशियो धारा पछुआ हवा की दिशा का अनुसरण करती है।

(iii) **वर्षा**– वर्षा अधिक होने से लवणता कम हो जाती है और सागरीय जल का घनत्व कम हो जाता है। परिणामस्वरूप जल का तल ऊंचा हो जाता है। इसके विपरीत न्यून वर्षा के कारण लवणता तथा घनत्व में वृद्धि हो जाती है। जिस कारण समुद्र का तल नीचा हो जाता है और उच्च तल से निम्न तल की ओर धाराएं चलने लगती हैं।

(iv) **वाष्पीकरण**– कम वाष्पीकरण और अधिक वर्षा से लवणता कम तथा अधिक वाष्पीकरण और न्यून वर्षा से लवणता अधिक होने से जल तल नीचा हो जाता है और धाराएं उच्च जल तल से निम्न जल तल की ओर चलने लगती हैं।

3. महासागरों से संबंधित कारक (Marine Factors) – सागरीय जल के तापमान लवणता, घनत्व आदि में स्थानीय परिवर्तन होते हैं जिस कारण धाराओं की उत्पत्ति होती है–

(i) **तापांतर**– विषुवत रेखीय भागों में अत्यधिक सूर्यातप के कारण जल का तापमान ऊंचा हो जाता है, परिणामस्वरूप जल का घनत्व अत्याधिक कम हो जाता है और विषुवत रेखीय जलधारा के रूप में गतिशील हो जाता है। इस तरह विषुवत रेखा पर जल की आपूर्ति के लिए ध्रुवों की ओर से विषुवत रेखा की ओर प्रवाह प्रारंभ हो जाता है।

(ii) **लवणता में भिन्नता**– समुद्री जल की लवणता और घनत्व में समानुपातिक संबंध होता है। जल की लवणता अधिक होने पर घनत्व भी अधिक होता है। और लवणता कम होने पर घनत्व भी कम होगा। अधिक लवणता वाले भाग में जल का घनत्व अधिक हो जाएगा जिस कारण जल नीचे बैठता है जबकि कम लवणता वाले भाग में जल का घनत्व अपेक्षाकृत कम होगा– जिस कारण कम खारे भाग से जल अधिक खारे भाग की ओर प्रवाहित होगा। अटलांटिक महासागर के जिब्राल्टर जल डमरू मध्य से होकर रूम सागर (भूमध्य सागर) की ओर धारा चलने का यही कारण है।

(iii) **घनत्व में भिन्नता**– तापमान तथा लवणता की भांति समुद्र जल का घनत्व भी धाराओं की उत्पत्ति का महत्वपूर्ण कारक है। ध्रुवीय भागों से न्यून सूर्यातप के फलस्वरूप कम तापमान के रूप में उच्च घनत्व पाया जाता है। परंतु हिम के पिघलने के कारण लवणता कम हो जाती है जिस कारण घनत्व कम हो जाता है परिणामस्वरूप ध्रुवों से ठंडी धाराएं विषुवत रेखा की ओर चलने लगती हैं।

(iv) **हिम का पिघलना**– ग्रीष्म ऋतु में ध्रुवीय क्षेत्रों में तापमान की अधिकता के कारण बर्फ पिघलने से समुद्रों को वृहद स्तर पर स्वच्छ जल की प्राप्ति होती है हिम के पिघलने के कारण जल के घनत्व में कमी आ जाती है तथा जल स्तर ऊंचा हो जाता है और उच्च जल स्तर से निम्न जल स्तर की ओर गतिशील होने लगता है।

(v) **दाब प्रवणता**– समुद्री धाराओं की उत्पत्ति में दाब प्रवणता भी महत्वपूर्ण कारक है। क्योंकि वायुदाब अधिक होगा तो दाब प्रवणता अधिक होगी। वायु उच्च दाब से निम्न वायुदाब की ओर गतिशील होती है जिसके कारण जल में भी गतिशीलता आ जाती है।

4. सागरीय धाराओं में परिवर्तन से संबंधित कारक– धाराओं की दिशा में प्रचलित पवन तथा पृथ्वी की परिक्रमण गति के अलावा महाद्वीपीय तट, उसकी आकृति तथा बनावट भी धाराओं के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। प्रमुख कारक निम्न प्रकार हैं–

(i) **तट की दिशा व आकार**– जब महाद्वीपीय भाग सागरीय धाराओं की दिशा में लंबवत रूप से पाए जाते हैं तो धाराओं के मार्ग में अवरोध उत्पन्न हो जाता है तब धाराएं महाद्वीपीय तट के समांतर चलने लगती हैं।

(ii) **मौसम में परिवर्तन**– कई स्थानों में बदलते मौसम के साथ धाराओं की दिशा में परिवर्तन हो जाता है जैसे भारत की मानसूनी हवाओं का मौसमी परिवर्तन हिंद महासागर की धाराओं की दिशा में परिवर्तन करता है।

(iii) **तलीय आकृति या नितल की स्थलाकृति**– महासागरीय तली की असमानताएं धाराओं के मार्ग को प्रभावित करती हैं जब इन धाराओं के मार्ग में अंतःसागरीय कारक होते हैं तो धाराएं कुछ दाहिनी ओर मुड़ जाती हैं।

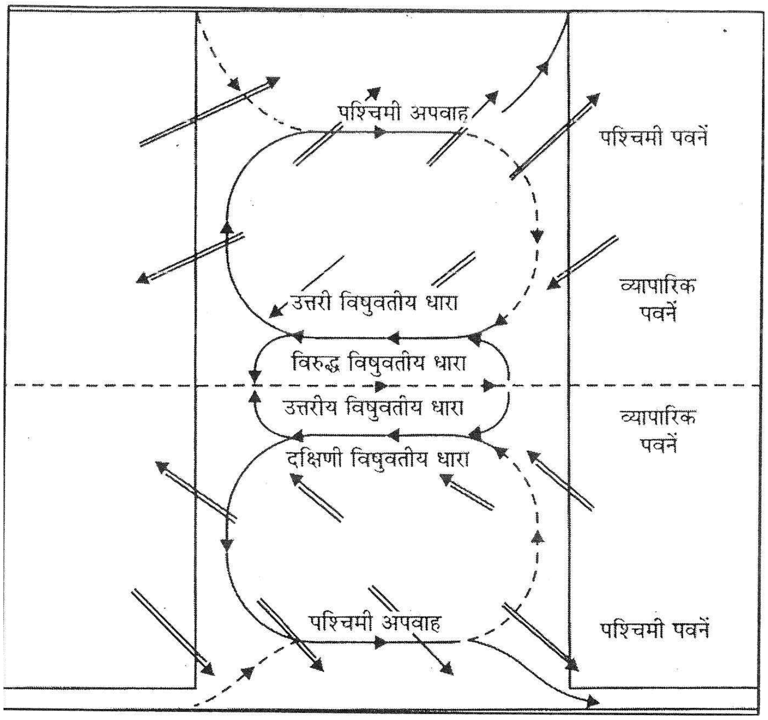

प्रचलित पवनें तथा महासागरीय धाराएं

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट होता है कि धाराएं प्रचलित पवनों का अनुसरण करती हैं किंतु उत्तरी गोलार्द्ध में कुछ धाराएं दाहिनी ओर तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में अपने बाईं ओर मुड़ जाती हैं। विषुवत रेखीय धाराएं जो कि जाइरे (घूर्णन) की उत्तरी या दक्षिणी सीमा पर होती हैं, सदा विषुवत रेखा के साथ पश्चिम की ओर चलती हैं। इन धाराओं के मध्य विषुवत रेखा पर जल में संतुलन लाने के लिए विपरीत विषुवतीय धारा पश्चिमी से पूर्व दिशा की ओर चलती है। पछुआ पवनों के क्षेत्र में धाराओं के चलने की दिशा पश्चिम से पूर्व होती है। धाराओं के संचार के निम्नलिखित नियम हैं–

(i) गर्म धाराएं ठंडे समुद्रों की ओर तथा ठंडी धाराएं गर्म समुद्रों की ओर बहती हैं।

(ii) निम्न अक्षांशों में महाद्वीपों के पूर्वी तटों पर गर्म धारा तथा पश्चिमी तटों पर ठंडी धाराएं बहती हैं किंतु उच्च अक्षांशों में गर्म धाराएं पश्चिमी तटों पर तथा ठंडी जलधाराएं पूर्वी तटों पर बहती हैं।

(iii) ठंडे समुद्रों का ठंडा व कम सघन जल उच्च अक्षांशों के पूर्वी तटों के साथ–साथ गर्म समुद्र की ओर प्रवाहित होता है।

(iv) महाद्वीप के पश्चिमी किनारों पर मध्य अक्षांशीय समुद्रों में व्यापारिक पवनों के क्षेत्र में ठंडा व अधिक सघन जल तली से उभरता है।

(v) जल की धारा का नामकरण जिधर जल जाता रहा है उस दिशा के नाम के आधार पर किया जाता है जैसे पश्चिमी हवा जल को पूर्व की तरफ गतिशील करेगी इसलिए इसको पूर्वी धारा कहेंगे।

(vi) धाराओं की औसत गहराई 1 मील से कम होती है।

अटलांटिक या अंध महासागर की धाराएं (Current of the Atlantic Ocean)
अटलांटिक महासागर अंग्रेजी के 'S' वर्ण की आकृति का है। इसके उत्तर में आर्कटिक महासागर, दक्षिण में अंटार्कटिक महासागर में मिलता है। इसके पूर्व में यूरोप और अफ्रीका महाद्वीप तथा पश्चिम में उत्तरी अमेरिका तथा दक्षिणी अमेरिका स्थित है। इसका नामकरण अफ्रीका के एटलस पर्वत के नाम पर रखा है।

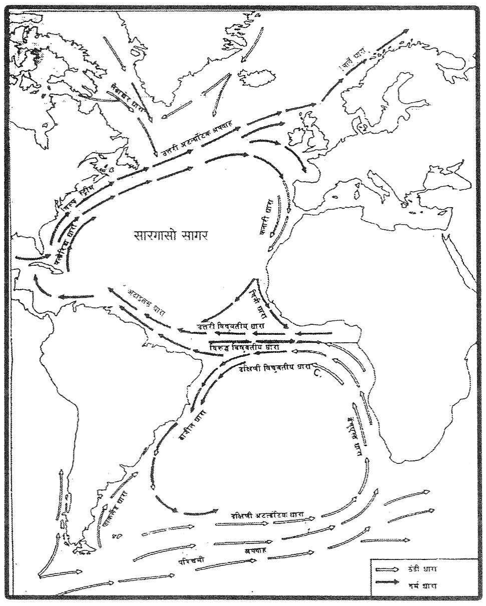

अटलांटिक महासागर की धाराएं

इस महासागर में धाराओं का प्रवाह क्रम पूर्ण एवं निश्चित प्रणाली प्रस्तुत करता है– अटलांटिक महासागर में धाराओं की तीन प्रणालियां हैं– 1. उत्तरी विषुवत रेखीय धारा 2. दक्षिणी विषुवत रेखीय धारा 3. प्रति विषुवत रेखीय धारा।

1. उत्तरी विषुवत रेखीय धारा (North Equatorial Current)

यह धारा 0°–10° उत्तर अक्षांशों के मध्य प्रवाहित होती है। यह अफ्रीका के पश्चिम तट से, जहां कैनरी की ठंडी धारा का जल इसे धकेलता है, यह धारा व्यापारिक हवाओं के प्रभाव से पूर्व से पश्चिम दिशा को भूमध्य रेखा के साथ–साथ प्रवाहित होती है। यह गर्म जलधारा है। गिनी के तट पर और ब्राजील के उत्तरी पूर्वी तट पर इसका गर्म प्रभाव होगा यह जल स्थल से टकराकर दो भागों में मुड़ जाती है। एक उत्तर की तरफ और दूसरा दक्षिण की तरफ का मुड़ा हुआ जल विपरीत विषुवत रेखीय धारा कहलाता है। इसका जल खारा होता है। दक्षिण अमेरिका के पूर्वी तट के आकार के कारण यह 15° उत्तरी अक्षांश के साथ–साथ दो भागों में विभाजित हो जाती है। पहली शाखा एंटलीस धारा में तथा दूसरी शाखा कैरेबियन सागर में प्रवेश करती है और कैरेबियन शाखा के नाम से यूकाटन चैनल तक पहुंचती है एवं आगे उत्तर पूर्व की ओर मुड़कर सारगेसो सागरीय भंवर का रूप धारण कर लेती है। इस धारा का यहां विक्षेप आंशिक रूप से स्थलीय बाधा के कारण तथा मुख्य रूप से पृथ्वी के घूर्णन से उत्पन्न विक्षेप बल के कारण है।

2. दक्षिणी विषुवत रेखीय धारा (South Equatorial Current)

यह धारा दक्षिणी अमेरिका और पश्चिमी अफ्रीका के तटों के मध्य 0° से 20° दक्षिण अक्षांशों के मध्य प्रवाहित होती है। ब्राजील तट के पास यह धारा दो भागों में विभक्त हो जाती है। एक त्रिनिडाड के पास और दूसरी ब्राजील धारा को जन्म देती है। उत्तरी विषुवतीय धारा की अपेक्षा यह धारा अधिक शक्तिशाली तथा निरंतर बहने वाली है। यह धारा भी पूर्व से पश्चिम की ओर बहती है। यह भी व्यापारिक पवनों के प्रभाव से उत्पन्न होती है।

3. प्रति विषुवत रेखीय धारा (Equatorial Counter Current)

प्रति विषुवत रेखीय धारा भूमध्य रेखीय भाग में पश्चिम से पूर्व दिशा की ओर प्रवाहित होती है। दो तीव्र विषुवत रेखीय धाराओं के मध्य एक शांत क्षेत्र है जहां विपरीत दिशा में जल बहता है। पूर्व में यह गिनी तट तक वर्ष पर्यंत प्रवाहित रहती है। इसलिए इसे गिनी की धारा भी कहते हैं। यह भी गर्म जलधारा है। इसकी उत्तरी और दक्षिणी सीमाएं निश्चित नहीं हैं अपितु बदलती रहती हैं। उत्तरी गोलार्द्ध की ग्रीष्म ऋतु में जब पवन की पेटियां दक्षिण की ओर खिसकती हैं तो यह धारा विषुवत रेखा के निकट आ जाती है। इसके चलने का प्रधान कारण यहां पश्चिम से पूर्व की ओर चलने वाली कमजोर पछुआ हवाएं हैं जो डोलड्रम के साथ–साथ चलती हैं।

वास्तव में ब्राजील तट के पास उत्तर तथा दक्षिण विषुवत रेखीय धाराओं के अभिसरण के कारण इतनी अधिक जलराशि एकत्रित हो जाती है कि पश्चिम से पूर्व की ओर सामान्य ढाल बन जाता है अतः अफ्रीका तट के पास कम जलराशि की पूर्ति के लिए क्षतिपूर्ति धारा के रूप में प्रवाहित होती है।

उत्तरी अटलांटिक महासागर की धाराएं

उत्तरी अटलांटिक महासागर की धाराओं को निम्न प्रकार से समझाया गया है–

1. **उत्तरी भूमध्य रेखीय गर्म धारा**– यह भूमध्य रेखा के समीप उत्तर में सन्मार्गी पवनों के प्रभाव से पूर्व में अफ्रीका के तट से पश्चिम द्वीप समूह तक बहती है।
2. **एंटलीस गर्म जलधारा**– ब्राजील के साओरॉक अंतरीप के निकट दक्षिणी विषुवतीय धारा दो शाखाओं में बंट जाती है। इसकी उत्तरी शाखा उत्तरी विषुवतीय धारा में मिलकर कैरीबियन सागर तथा मैक्सिको की खाड़ी में प्रवेश करती है। इसका शेषभाग पश्चिमी द्वीप समूह के पूर्वी किनारे पर एंटलीस धारा के नाम से बहती है।
3. **फ्लोरिडा गर्म जलधारा** – उत्तरी तथा दक्षिणी विषुवतीय धाराओं के संयुक्त प्रवाह का कुछ भाग मेक्सिको की खाड़ी में प्रवेश करता है। यहां मिसीसिपी नदी प्रचुर मात्रा में जल गिराती है जिसके फलस्वरूप मेक्सिको की खाड़ी में जलस्तर अटलांटिक महासागर के जलस्तर की अपेक्षा ऊंचा हो जाता है। व्यापारिक पवनों के प्रभाव से यह धारा के रूप में मेक्सिको की खाड़ी के तट के साथ–साथ बहने के बाद फ्लोरिडा के मुहाने से होकर खुले महासागर में निकलती है यहां एंटलीस की धारा भी आकर मिलती है फ्लोरिडा अंतरीप से यह सम्मिलित धारा संयुक्त राज्य अमेरिका के दक्षिणी पूर्वी तट पर बहने लगती है। इसे हेटरस अंतरीप तक फ्लोरिडा गर्म जलधारा कहते हैं।
4. **गल्फ स्ट्रीम गर्म जलधारा** – हेटरस अंतरीप से गैंड बैंक तक इस धारा को गल्फ स्ट्रीम कहते हैं। गल्फ स्ट्रीम धारा को मेक्सिको की खाड़ी से पर्याप्त मात्रा में ऊष्ण जल प्राप्त होता है अतः यह चौड़ी गर्म जलधारा है। आरंभ में यह धारा उत्तरी अमेरिका के तट के साथ–साथ दक्षिण पश्चिम दिशा से उत्तर पूर्वी दिशा में बहती है। हेलीफेक्स के दक्षिण में यह पछुआ पवनों के प्रभाव में आकर पूर्व की ओर मुड़ जाती है। और सेंट लारेंस नदी के मुहाने की ओर चली जाती है। गल्फ स्ट्रीम अपने साथ गर्म जल लेकर आगे बढ़ती है तथा समीपवर्ती भागों के मौसम को प्रभावित करती है। अमेरिका के पूर्वी तट को तथा वायुमंडल की गर्म कर देती है। यह 40° उत्तर अक्षांश के पास पछुआ पवनों तथा पृथ्वी के विक्षेप बल के कारण एकदम पूर्व की ओर मुड़ जाती है। यहीं इसे गल्फ स्ट्रीम डेल्टा कहते हैं क्योंकि यहीं से गल्फ स्ट्रीम कई उप धाराओं में बंट जाती है। जिसमें से एक कैनरी की धारा तथा दूसरी नार्वे धारा कहलाती है। जब यह धारा लेब्राडोर की ठंडी जलधारा से मिलती है तो वहां घना कोहरा उत्पन्न होता है। जिससे जलयानों को काफी परेशानी होती है। यहां पर फाइटो प्लेंक्टन विकसित होते हैं। यहां पर महासागरीय जलीय जीवन बहुत अधिक संपन्न होता है। यहां पर ग्रैंड बैंक और जार्ज बैंक न्यूफाउंड लैंड के पास बहुत बड़े उथले क्षेत्र हैं जो मत्स्य क्षेत्र के लिए विश्व विख्यात हैं इसे उत्तरी अमेरिका का कंबल भी कहते हैं गल्फ स्ट्रीम का अतिरिक्त जल उत्तर–पूर्व की ओर चला जाता है तथा पछुआ पवनें की सहायता से इसकी एक शाखा उत्तर की ओर तथा एक शाखा पूर्व की ओर चली जाती है। उत्तर की ओर जाने वाली धारा को इरमिंगर की धारा कहते हैं और यह गर्म धारा है और दूसरी रेनेल धारा जो पूर्व की ओर चली जाती है।

5. **उत्तरी अटलांटिक महासागरीय गर्म जलधारा** – पछुआ पवनों के प्रवाह से 45° उत्तरी अक्षांश तथा 45° पश्चिम देशांतर के पास गल्फ स्ट्रीम कई शाखाओं में बंट जाती है। इन्हें सम्मिलित रूप से उत्तर अटलांटिक धारा कहते हैं या अटलांटिक पछुआ पवन प्रवाह भी कहते हैं। उत्तरी अटलांटिक धारा दो शाखाओं में विभक्त हो जाती है– उत्तरी शाखा तथा पूर्वी शाखा।

   उत्तरी शाखा की एक उपशाखा उत्तर पूर्व दिशा में प्रवाहित होती है तथा पुनः छोटी–छोटी उप शाखाओं में विभक्त होती है। एक शाखा वीविल थामसन कटक को पार करके नार्वे सागर तक पहुंचती है। दूसरी शाखा इरमिंगर धारा के नाम से आइसलैंड के दक्षिण तक चली जाती है। तथा तीसरी शाखा ग्रीनलैंड के पूर्व तक जाती है तथा ग्रीनलैंड धारा से मिल जाती है। दूसरी पूर्वी शाखा उत्तरी शाखा की अपेक्षा अधिक गर्म होती है तथा पूर्व दिशा में चलकर फ्रांस तथा स्पेन के तट पर पहुंचती है। इसकी भी कई शाखाएं हैं। एक शाखा रूम सागर में प्रवेश करती है, दूसरी शाखा रेनेल धारा के नाम से बिस्के की खाड़ी तक जाती है। यह शाखा भी पुनः कई शाखाओं में विभक्त हो जाती है।

6. **नार्वे की गर्म जलधारा** – अटलांटिक महासागर के पूर्वी भाग में पहुंचकर यह धारा दो भागों में विभक्त हो जाती है इसकी मुख्यधारा ब्रिटिश द्वीप समूह से होती हुई नार्वे के तट तक पहुंचती है। यहां इसे नार्वे की धारा कहते हैं। इसके आगे यह आर्कटिक महासागर में प्रवेश करती है।

7. **कैनरी की ठंडी जलधारा**– उत्तरी अटलांटिक प्रवाह की दूसरी शाखा दक्षिण की ओर मुड़कर कैनरी द्वीप तक पहुंचती है। यह धारा स्पेन, पुर्तगाल, तथा उत्तरी अफ्रीका के पश्चिमी तट के समांतर प्रवाहित होती है। इस धारा की उत्पत्ति का मुख्य कारण व्यापारिक हवाओं के द्वारा तट के निकट का महासागरीय जल बहाकर तट से दूर ले जाया जाना है। जिससे वहां समुद्र की सतह नीची हो जाती है दूसरा– इसकी क्षतिपूर्ति के लिए समुद्र की गहराई का ठंडा जल ऊपर उठ जाता है जिससे ठंडे जल की आपूर्ति होती रहती है। कैनरी की धारा आगे चलकर उत्तरी भूमध्य रेखा में विलीन हो जाती है। उपर्युक्त ठंडी जलधाराओं द्वारा उत्तरी अटलांटिक महासागर का बहुत सा जल आर्कटिक महासागर में चला जाता है। संतुलन बनाए रखने के लिए दो धाराएं आर्कटिक महासागर से दक्षिण की ओर चलने लगती हैं। ध्रुवीय क्षेत्र से आने के कारण ये धाराएं ठंडी हैं। इस प्रकार अटलांटिक महासागर के दक्षिण भाग में धाराओं की चक्राकार प्रणाली पूर्ण हो जाती है।

8. **पूर्वी ग्रीनलैंड की ठंडी जलधारा**– यह ग्रीनलैंड के पूर्वी तट के साथ–साथ उत्तर से दक्षिण की ओर चलती है।

9. **लेब्राडोर की ठंडी जलधारा** – यह धारा बेफिन की खाड़ी तथा डेविस जलडमरू मध्य से लेब्राडोर के पूर्वी तट के साथ उत्तर से दक्षिण की ओर प्रवाहित होती है। ग्रीनलैंड के दक्षिणी किनारों पर पूर्वी ग्रीनलैंड धारा भी इससे आ मिलती है। यह संयुक्त धारा आगे दक्षिण में चलकर गल्फ स्ट्रीम से मिलती है। गर्म तथा ठंडे जल के मिलने से न्यूफाउंडलैंड के पास घना कुहासा छाया रहता है। लेब्राडोर धारा बेफिन की खाड़ी से अपने साथ बड़ी मात्रा में हिम शिलाएं भी बहा कर लाती है।

सारगेसो सागर (Sargasso Sea)

उत्तरी अटलांटिक महासागर में गल्फ स्ट्रीम उत्तरी भूमध्य रेखीय धारा, कैनरी की धारा तथा उत्तरी विषुवत रेखीय धारा के बीच स्थित एक शांत क्षेत्र है इसे सारगेसो सागर कहते हैं। ये सभी धाराएं घड़ी की सुई की दिशा के अनुरूप प्रवाहित होती है। यह वृत्ताकार क्षेत्र शांत है तथा यहां सारगेसम (Sargassum) नामक समुद्री घास पाई जाती है। जिसके कारण वृत्ताकार क्षेत्र का नाम सारगैसो सागर रखा गया है। यह सागर चारों ओर स्थल भाग से घिरा न होकर जल धाराओं से घिरा हुआ है। इस सागर में उच्च तापमान एवं वाष्पीकरण के कारण लवणता की मात्रा 37 प्रतिशत पाई जाती है। इसका क्षेत्रफल 11000 वर्ग किलोमीटर है।

दक्षिणी अटलांटिक महासागर की धाराएं

दक्षिणी अटलांटिक महासागर की धाराओं को निम्नलिखित वर्गों में विभक्त किया गया है–

1. **दक्षिणी विषुवतीय गर्म धारा**– यह धारा विषुवत रेखा के दक्षिण में उसके समांतर पूर्व से पश्चिम की ओर बहती है। दक्षिणी पूर्वी व्यापारिक पवनों के द्वारा दक्षिणी विषुवतरेखीय धारा की उत्पत्ति होती है। इसका विस्तार 4° उत्तर से 20° दक्षिणी अक्षांश तक है। यह उत्तरी विषुवतीय धारा की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली है।
2. **ब्राजील की गर्म जलधारा**– यह दक्षिणी अटलांटिक महासागर में दक्षिणी विषुवत रेखा की एक शाखा है जो साओरोक अंतरीप से दक्षिण की ओर, दक्षिण अमेरिका के पूर्वी तट के साथ–साथ बहती है, 35° अक्षांश पर ब्राजील धारा पूर्व की ओर मुड़ जाती है और पछुआ हवाओं के प्रभाव में दक्षिण अटलांटिक धारा से मिलकर पश्चिम से पूर्व की ओर बहने लगती है तथा पृथ्वी के आवर्तन से उत्पन्न होने वाले विक्षेपक बल के कारण ब्राजील धारा अपनी बाईं ओर मुड़कर पूर्व दिशा में प्रवाहित होने लगती है।
3. **फाकलैंड की ठंडी जलधारा**– यह एक ठंडी जलधारा है जो अंटार्कटिक सागर में उत्पन्न होकर दक्षिणी अमेरिका के पूर्वी तट के साथ–साथ उत्तर दिशा में प्रवाहित होती है। इस धारा की उत्तरी सीमा 30° दक्षिणी अक्षांश रेखा है यह धारा ब्राजील धारा से मिलकर पछुआ हवा के प्रभाव से पूर्व की ओर प्रवाहित होती है। यह धारा अपने साथ अंटार्कटिक प्रदेश से हिम शिलाएं बहा कर लाती है। गर्म और ठंडे जल के मिलने से यहां पर भी कुहासा छाया रहता है।
4. **दक्षिणी अटलांटिक धारा ड्रिफ्ट**– तीव्रगामी पछुआ पवनों के प्रभाव से ब्राजील धारा तथा फॉकलैंड धारा का संयुक्त जल पश्चिम से पूर्व की ओर ड्रिफ्ट के रूप में बहने लगता है। इसे दक्षिणी अटलांटिक ड्रिफ्ट कहते हैं। इसके द्वारा दक्षिणी अटलांटिक महासागर में पाई जाने वाली वामावर्त जल संचार प्रणाली पूरी हो जाती है। (Anticlockwise Circulation)
5. **बेंगुएला की ठंडी जलधारा**– अफ्रीका महाद्वीप के आशा अंतरीप के निकट दक्षिणी अटलांटिक महासागरीय ड्रिफ्ट दो शाखाओं में बंट जाता है। एक शाखा अफ्रीका के दक्षिण में बह जाती है और दूसरी शाखा पश्चिमी तट के साथ दक्षिण

से उत्तर की ओर बहती है यह ठंडे क्षेत्र से गर्म क्षेत्र में जाती है इसलिए बेंगुएला ठंडी धारा कहलाती है। उत्तर की ओर बहती हुई यह धारा अंत में विषुवतरेखीय धारा से मिलकर दक्षिणी अटलांटिक का चक्र पूरा करती है।

प्रशांत महासागर की धाराएं

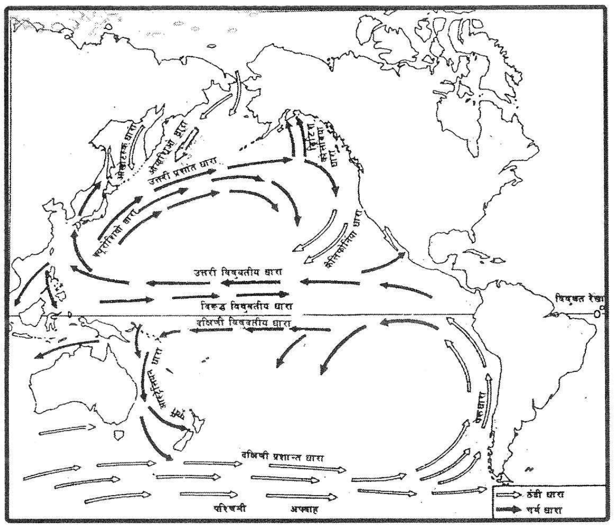

प्रशांत महासागर की धाराएं

धाराओं के अध्ययन के दृष्टिकोण से प्रशांत महासागर की धाराओं को भी तीन भागों में बांटा जा सकता है– 1. उत्तरी विषुवत रेखीय धारा 2. दक्षिणी विषुवत रेखीय धारा 3. प्रति विषुवत रेखीय धारा।

1. **उत्तरी विषुवत रेखीय धारा** (North Equatorial Current) – यह गर्म धारा पूर्व में कैलिफोर्निया धारा और दक्षिण पश्चिम मानसून हवाओं के योग से बनती है। यह पूर्व से पश्चिम की ओर प्रवाहित होती है। इस धारा की उत्पत्ति में उत्तर पूर्वी व्यापारिक पवनों का सबसे अधिक योगदान होता है। विषुवत रेखीय क्षेत्र में प्रशांत महासागर की चौड़ाई अन्य महासागरों की तुलना में अधिक होने के कारण जल की मात्रा भी सबसे अधिक है। उत्तरी विषुवत रेखीय धारा एक अविच्छिन्न श्रृंखला के रूप में प्रवाहित होती है। इसकी उत्तरी तथा दक्षिणी सीमा में मौसमी परिवर्तन देखने को मिलता है। इसकी दक्षिणी सीमा गर्मियों में 9° से 11° उत्तरी अक्षांश तथा शीत ऋतु में 6° से 7° उत्तरी अक्षांश तक रहती है। इस तरह उत्तरी विषुवत रेखीय धारा सदैव विषुवत रेखा के उत्तर में प्रवाहित होती है।

   फिलीपाइन्स द्वीप के पास इसकी दो उप धाराएं हो जाती हैं। एक दक्षिण की ओर मुड़कर पूर्व की ओर प्रवाहित होने लगती है जो प्रति विषुवत रेखीय धारा कहलाती है। दूसरी शाखा उत्तर की ओर फारमूसा द्वीप तक पहुंचती है जो आगे क्यूरोशियो धारा के नाम से जानी जाती है क्यूरोशियो गल्फस्ट्रीम के समान गर्म धारा है इसे जापान में काली धारा कहा जाता है।

2. **दक्षिणी विषुवत रेखीय धारा** (South Equatorial Current) – यह गर्म धारा व्यापारिक हवाओं के प्रभाव से उत्पन्न होकर पूर्व से पश्चिम दिशा में प्रवाहित होती है। यह पश्चिम दिशा में प्रवाहित होती है। यह न्यूगिनी तट से टकराकर दो भागों में विभाजित हो जाती है। जिसकी उत्तरी शाखा प्रति विषुवत रेखीय

धारा से मिलकर पूर्व की ओर बहने लगती है। दक्षिणी विषुवत रेखीय धारा का विस्तार दक्षिणी पूर्वी व्यापारिक पवनों की पेटी लगभग 5° उत्तर से 40° दक्षिणी अक्षांश के मध्य तक पाया जाता है। इस धारा की उत्तरी सीमा 5° उत्तर से 5° दक्षिण अक्षांश के मध्य इसका वेग सर्वाधिक होता है।

3. **प्रति विषुवत रेखीय धारा** (Equatorial Counter Current) – उत्तरी तथा दक्षिणी विषुवत रेखीय धाराओं के मध्य पश्चिम से पूर्व की ओर प्रवाहित होने वाली धारा को प्रति विषुवत रेखीय धारा कहा जाता है। व्यापारिक पवनों के कारण महासागर के पश्चिमी भाग में जल संचयन होने से पश्चिम से पूर्व दिशा की ओर एक सामान्य ढाल प्रवणता (Slope Gradient) का निर्माण हो जाता है जिस ढाल के साथ–साथ जल पश्चिम से पूर्व दिशा को प्रवाहित होने लगता है। यह पश्चिम में मिंडनाओ के निकट उत्पन्न होकर विपरीत धारा पूर्व में पनामा तट तक जाती है।

उत्तरी प्रशांत महासागर की धाराएं

उत्तरी प्रशांत महासागर में गर्म जल धाराओं का समूह है जिसकी तुलना गल्फ स्ट्रीम प्रणाली से की जाती है। ये धाराएं निम्न प्रकार हैं–

1. **क्यूरोशियो की गर्म धारा (Kuroshio Current)**– उत्तरी भूमध्य रेखीय धारा फिलीपाइन द्वीप तक पहुंचने के बाद ताइवान तथा जापान के तट के साथ उत्तरी दिशा में प्रवाहित होने लगती है उसे ही क्यूरोशियो के नाम से जानते हैं यह एक गर्म जलधारा है जो 30° उत्तरी अक्षांश के निकट पहले पूर्व की ओर फिर उत्तर पूर्व की ओर मुड़कर जापान के पूर्वी तट के साथ–साथ 35° उत्तरी अक्षांश तक चली जाती है इसकी तुलना फ्लोरिडा धारा से की जाती है इसका तापमान 8°सेंटीग्रेड और लवणता 35% होती है।
2. **सुशिमा धारा (Tsushima Current)**– यह एक गर्म जलधारा है जो क्यूरोशियो धारा के बाईं ओर से निकलती है जापान के पश्चिमी तट के साथ–साथ प्रवाहित होती है। अपने उच्च तापमान तथा लवणता के कारण सुशिमा धारा तटीय भागों की जलवायु को काफी प्रभावित करती है।
3. **क्यूरोशियो की उत्तरी शाखा (Kuroshio Extension)**– जापान की उत्तरी पूर्वी आकृति के कारण 35° उत्तरी अक्षांश के पास क्यूरोशियो धारा पछुआ हवा के कारण जापान तट छोड़कर पूर्व की ओर मुड़ जाती है तथा दो शाखाओं में बंट जाती है।

   एक शाखा पूर्व दिशा की ओर व दूसरी शाखा उत्तर पूर्व दिशा की ओर मुड़ जाती है यह धारा अटलांटिक महासागर की गल्फ स्ट्रीम के समान होती है। आगे चलकर उत्तर की ओर ओयोशियो धारा से मिल जाती है।
4. **उत्तरी प्रशांत महासागरीय प्रवाह (Northern Pacific Current)**– पछुआ हवा के प्रभाव में क्यूरोशियो पूर्व की ओर निरंतर बढ़ती जाती है तथा उत्तर अमेरिका के पश्चिमी तट तक पहुंचती है। 150° पश्चिम देशांतर के पहले ही इस धारा का मुख्य भाग दक्षिण की ओर मुड़ जाता है और थोड़ा भाग ही अमेरिका तट तथा हवाई द्वीप के बीच प्रवेश कर पाता है। आगे चलकर पुनः यह दो

शाखाओं में बंट जाता है। उत्तरी शाखा आल्युशिन धारा के रूप में प्रवाहित होती है दक्षिणी शाखा का कैलिफोर्निया धारा के रूप में जन्म होता है।

एशियन शाखा पुनः दो भागों में एक उत्तर की ओर बेरिंग सागर तक तथा दूसरी अलास्का की खाड़ी में चली जाती है।

5. **प्रति क्यूरोशियो धारा (Counter Kuroshio Current)**– हवाई द्वीप तथा अमेरिका तट के मध्य क्यूरोशियो में चक्राकार रूप बन जाता है जिस कारण इसकी दिशा पश्चिम हो जाती है। इसे प्रति क्यूरोशियो धारा कहते हैं।
6. **अलास्का की गर्म जलधारा (Alaska Hot Water Current)**– उत्तरी अमेरिका के पश्चिमी तट पर उत्तरी प्रशांत महासागर तट के साथ बहती हुई घड़ी की सुई के विपरीत दिशा में बहती हुई उत्तर की ओर मुड़ जाती है इसे अलास्का की धारा कहते हैं।
7. **ओयाशियो ठंडी धारा (Oyashio Cold Current)**– यह बेरिंग जल डमरू मध्य से शुरू होकर कमचटका प्रायद्वीप के पूर्वी तट के समीप उत्तर से दक्षिण की ओर बहने वाली ठंडी जल की धारा है। इसके द्वारा आर्कटिक महासागर का ठंडा जल प्रशांत महासागर में लाया जाता है। 50 डिग्री उत्तरी अक्षांश के पास इसकी एक शाखा पूर्व की ओर मुड़ जाती है तथा आल्यूशियन एवं क्यूरोशियो धारा से मिल जाती है जहां ओयाशियो धारा और क्यूरोशियो धारा मिलती हैं वहां घना कोहरा उत्पन्न होता है इसकी तुलना लेब्राडोर की ठंडी जलधारा से की जाती है। ओयाशियो ठण्डी धारा को उत्तर में कुरील धारा भी कहते हैं। कमचटका प्रायद्वीप के समीप रहने वाली इस धारा को कमचटका धारा भी कहा जाता है यह धारा होकैडो के पूर्वी तट के निकट क्यूरोशियो धारा की उत्तरी शाखा में विलीन हो जाती है।
8. **ओखोटस्क ठंडी धारा अथवा कुरील धारा (Kuril Current)**– यह ओखोटस्क सागर से शुरू होकर सखालिन द्वीप के पूर्वी तट के साथ–साथ बहती हुई जापान के होकैडो द्वीप के पास ओयाशियो धारा के साथ मिल जाती है। ओयाशियो धारा अंत में क्यूरोशियो धारा से मिलकर उसके गर्म जल के नीचे डूब जाती है।जापान के निकट क्यूरोशियो की गर्म धारा तथा ओयाशियो की ठंडी धारा के जल के मिलने से वहां पर घना कुहासा छाया रहता है।
9. **कैलिफोर्निया की ठंडी धारा (California Cold Current)**– यह एक ठंडी धारा है। यह उत्तरी प्रशांत महासागर धारा उत्तरी अमेरिका के पश्चिम तट पर पहुंचकर दो भागों में बंट जाती है। एक शाखा उत्तर की ओर जबकि दूसरी शाखा दक्षिण की ओर मुड़ जाती है। दक्षिण की ओर मुड़ने वाली शाखा केलिफोर्निया के तट के साथ–साथ बहती है इसलिए इसे कैलिफोर्निया की धारा कहते हैं। क्योंकि यह ठंडे क्षेत्र से गर्म क्षेत्र की ओर बहती है इसलिए इसे कैलिफोर्निया की ठंडी धारा कहते हैं। यह 48° से 23° उत्तर अक्षांश के मध्य प्रवाहित होती है। इसकी तुलना कैनरी की धारा से की जाती है। कैलिफोर्निया के तट पर उत्तरी पूर्वी व्यापारिक पवन महासागर की सतह से भारी मात्रा में जल बहाकर पश्चिम भाग में संचित करती रहती है कैलिफोर्निया धारा इस क्षति की पूर्ति करती है।

दक्षिणी प्रशांत महासागर की धाराएं

दक्षिणी प्रशांत महासागर की धाराओं को निम्न प्रकार से समझाया गया है–

1. **दक्षिणी विषुवत रेखीय धारा (South Equatorial Current)**– यह दक्षिणी विषुवत गरम धारा है जो पूर्व में मध्य अमेरिका के तट के पश्चिम में ऑस्ट्रेलिया के पूर्वी तट तक प्रवाहित होती है दक्षिण विषुवत रेखीय धारा की उत्पत्ति का मुख्य कारण दक्षिणी–पूर्वी व्यापारिक पवनें हैं। यह दक्षिणी प्रशांत महासागर के 5° उत्तरी अक्षांश से 40° दक्षिणी अक्षांश रेखाओं के मध्य प्रवाहित होती है। इस धारा की मुख्य विशेषता है कि इसका विस्तार उत्तरी तथा दक्षिणी दोनों गोलार्द्धों में है जबकि उत्तरी विषुवत रेखीय धारा उत्तरी गोलार्द्ध में ही सीमित है। दक्षिणी प्रशांत महासागर के पश्चिम भाग में अनेक अंतःसमुद्री पठार तथा द्वीपों की उपस्थिति के कारण यह अनेक शाखाओं में बंट जाती है। यह धारा ऑस्ट्रेलिया की धारा को जन्म देती है।

2. **पेरु की ठंडी धारा (Peru Current)**– यह एक ठंडी जलधारा है जो दक्षिणी अमेरिका के पश्चिमी तट के किनारे दक्षिण से उत्तर की ओर तथा उत्तर पश्चिम की ओर प्रवाहित होती है इसे हंबोल्ट धारा भी कहते हैं क्योंकि इस धारा का पता हंबोल्ट महोदय ने किया था। यह धारा चिली तथा पेरू के तट के निकट प्रवाहित होती है इस धारा की उत्पत्ति अंटार्कटिका के समीपवर्ती क्षेत्रों में होती है। पछुवा पवनों के द्वारा अंटार्कटिका क्षेत्र की ठंडी जलराशि पूर्व की ओर जाने पर दक्षिण अमेरिका के बाईं ओर मुड़ जाती है और उत्तर की ओर प्रवाहित होने लगती है। पेरू की तटवर्ती धारा में प्रचलित पवन के कारण समुद्र की गहराइयों से होने वाले उत्स्रवण इसकी अन्य विशेषता है।

   पेरू तथा चिली के तटवर्ती समुद्र में एक प्रति धारा उत्तर से दक्षिण की ओर 100 मीटर से कम गहराई पर प्रवाहित होती है। सतह से ऊपर उठने वाले ठंडे जल के कारण लवणता में कमी पाई जाती है।

   पेरू धारा की उत्तरी सीमा ऋतुओं के अनुसार बदलती रहती है। उत्तरी गोलार्द्ध की ग्रीष्म ऋतु में यह धारा विषुवत रेखा को पार कर जाती है जहां यह विषुवतीय प्रतिधारा से मिल जाती है परंतु शीत ऋतु में विषुवत रेखीय धारा दक्षिण की ओर बढ़ जाती है और इक्वेडोर के निकट प्रवाहित होने लगती है और पेरू की धारा से मिल जाती है। इस प्रकार उत्तरी तथा दक्षिणी प्रशांत महासागर की धाराओं का पूरा चक्र क्रम है।

3. **एल–निनो धारा (El-nino)**– एल–निनो की उत्पत्ति दो मौसमी घटनाओं से है

   1. वाकर परिसंचरण 2. दक्षिणी दोलन।

   जब समुद्र सतह के ऊपर तीव्र गति से पवन प्रवाह होता है तो उस पर पवन के प्रतिफल के कारण सतह का गर्म और अपेक्षाकृत हलका जल पवन की दिशा में प्रवाहित होता है। तदुपरांत उस जल की पूर्ति के लिए महासागर की गहराइयों से ठंडा जल ऊपर उठता है जिसे उत्स्रवण (up welling) कहा जाता है। इस प्रकार के घटनाक्रम का प्रारंभ सतह के गर्म जल के अपने स्थान से दूर जाने के कारण होता है इस तरह से वायुमंडलीय स्थायित्व के फलस्वरूप पवन के वेग में कमी आ जाती है और तूफानी हवाओं में विराम लग जाता है। इन्हें वाकर परिसंचरण कहा जाता है। इस तरह से दक्षिणी अमेरिका के पश्चिमी तट

तथा पेरू के तट से थोड़ी दूर उपर्युक्त प्रकार का घटनाक्रम पाया जाता है पश्चिमी तट के निकट चलने वाली तेज दक्षिणी पूर्वी व्यापारिक हवाओं के द्वारा वहां से सतह का गर्म जल पश्चिम की ओर ले जाया जाता है, जिसके फलस्वरूप आयनवर्ती प्रशांत महासागर के समुद्र तल में ऑस्ट्रेलिया तथा समीपवर्ती क्षेत्रों में 40 सेंटीमीटर तक की वृद्धि हो जाती है और तापमान अपेक्षतया 4 डिग्री से 8 डिग्री सेल्सियस बढ़ जाता है। पूर्वी प्रशांत के सतह जल की क्षतिपूर्ति हेतु शीतल जल का उत्स्रवण होने लगता है जिससे वायुमंडल में स्थायित्व उत्पन्न होता है जिसके फलस्वरूप दक्षिणी पूर्वी व्यापारिक पवनें दक्षिणी प्रशांत महासागर के शीतल जल के ऊपर से होती हुई पश्चिमी प्रशांत महासागर के गर्म जल की ओर प्रवाहित होने लगती हैं। अतः पश्चिमी प्रशांत महासागर से इन पवनों में ऊष्मा और आर्द्रता की मात्रा का संचार होता है। जिससे नीचे से गर्म होने के कारण वायु में स्थायित्व उत्पन्न हो जाता है और हवाएं ऊपर उठकर हेडली कोश का निर्माण करती है। ऊपर उठकर ये हवाएं पूरब की ओर प्रवाहित होकर इस कोश को पूर्ण कर देती हैं। वायुमंडलीय दाब के इस उलटफेर को दक्षिणी दोलन कहा जाता है।

4. **पूर्वी ऑस्ट्रेलिया गर्म धारा (East Australian Current)** – पृथ्वी के घूर्णन के कारण कोरियालिस बल के प्रभाव से दक्षिणी विषुवत रेखीय धारा न्यूगिनी द्वीप के समीप दक्षिण की ओर मुड़ जाती है और ऑस्ट्रेलिया के पूर्वी तट के साथ साथ बहने लगती है। यह गर्म जल की धारा है इसलिए इसे पूर्वी ऑस्ट्रेलिया गर्म जलधारा कहते हैं। यह 40 डिग्री दक्षिणी अक्षांश के निकट पूर्व की ओर प्रशांत धारा में विलीन हो जाती है। इसका मुख्य कारण पछुआ पवन तथा पृथ्वी का विक्षेपक बल है।

5. **ला निनो (La Nino)**– कभी–कभी सामान्य दशाओं का आगमन हो जाता है दक्षिणी अमेरिका के पश्चिमी तट पर अल–निनो से उत्पन्न असमान दशाओं का अंत इतना आकस्मिक होता है कि पुनः महासागर की गहराइयों से पोषक तत्वों से ठंडे जल का उत्स्रवण (upwelling) होने लगता है। पेरू की ठंडी जलधारा तीव्र गति से प्रवाहित होने लगती है तथा दक्षिणी अमेरिका के पश्चिमी तटवर्ती क्षेत्रों में अत्यधिक शरद एवं तूफानी हवाएं चलने लगती हैं इन असाधारण दशाओं को ला–निनो (La-nino) कहा जाता है, जिसका अर्थ 'कन्या' होता है।

6. **पछुआ पवन प्रवाह (West Wind Drift)**– यह पूर्व की ओर बहने वाला प्रवाह है जो तस्मानिया से दक्षिणी अमेरिका तट तक बहता है। महासागर के खुले तथा बाधा रहित विस्तार के कारण यह धारा सुनिश्चित है। इस धारा का वेग गरजते चालीसा से नियंत्रित होता है। पश्चिमी भाग में पूर्वी ऑस्ट्रेलिया की गर्म धारा इसमें मिलती है। दक्षिणी प्रशांत महासागर में 45 डिग्री दक्षिण पर इसकी दो शाखाएं हो जाती हैं– एक शाखा केप हार्न का चक्कर लगाकर अटलांटिक महासागर में मिल जाती है, दूसरी शाखा पेरू तट के साथ–साथ उत्तर की ओर मुड़ जाती है और पीरू की धारा में मिल जाती है।

हिंद महासागर की धाराएं

हिंद महासागर की धाराओं में प्रशांत महासागर तथा अटलांटिक महासागर की तुलना में कुछ भिन्नता पाई जाती है। यह पूर्णतः स्थल से घिरा अर्द्ध महासागर होने के कारण

हिंद महासागर में धाराओं के परिसंचरण की विशेषताएं प्रशांत एवं अटलांटिक महासागर से भिन्न हैं। मानसूनी मौसमी व्यवस्था के अनुसार धाराएं भी एक मौसम से दूसरे मौसम में अपनी दशा और दिशा बदलती रहती है। हिंद महासागर उत्तर में भारतीय प्रायद्वीप पश्चिम में अफ्रीका तथा दक्षिण में ऑस्ट्रेलिया महाद्वीप से घिरा होने के कारण धाराओं का स्थाई क्रम नहीं दे पाता। भूमध्य रेखा के उत्तर में इसका विस्तार बहुत कम है इसलिए इसकी धाराओं पर प्रचलित मानसूनी पवनों का प्रभाव प्रबल होता है शीत और ग्रीष्म ऋतु में इनकी दिशा के उलटने के साथ–साथ धाराओं की दिशाएं भी उल्टी हो जाती हैं। मानसून पवनों द्वारा प्रभावित धाराएं मानसून ड्रिफ्ट अथवा मानसून अपवाह कहलाती हैं।

भूमध्य रेखा के दक्षिण में हिंद महासागर का विस्तार दक्षिणी ध्रुव महासागर तक है। इस विशाल क्षेत्र में धाराओं का क्रम अन्य महासागर जैसा है और वे वामावर्त चक्र (Counter Clockwise) के रूप में परिसंचरण करती हैं। उन पर ऋतु परिवर्तन का प्रभाव नहीं होता पूरे वर्ष एक ही दिशा में प्रवाहित होती रहती हैं।

उत्तरी हिंद महासागर की धाराएं

मानसूनी हवाओं के कारण उत्तरी हिंद महासागर की धाराएं प्रचलित पवनों से नियंत्रित होती है। 10 डिग्री उत्तरी अक्षांश के उत्तर में धाराओं की दिशा ऋतु के साथ परिवर्तित होती रहती है ये धाराएं निम्न हैं–

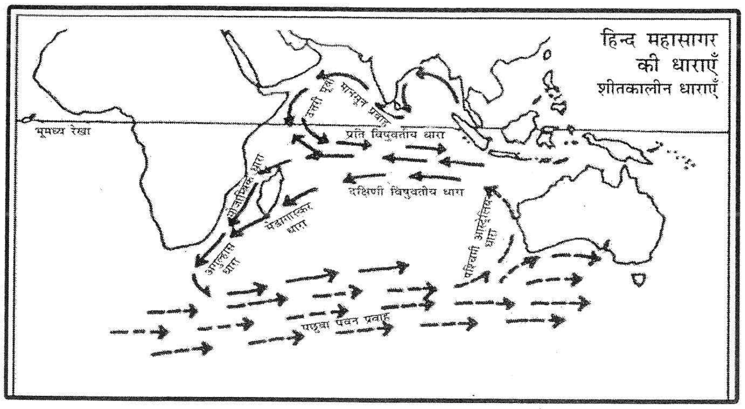

हिन्द महासागर की धाराएं (शीतकालीन धाराएं)

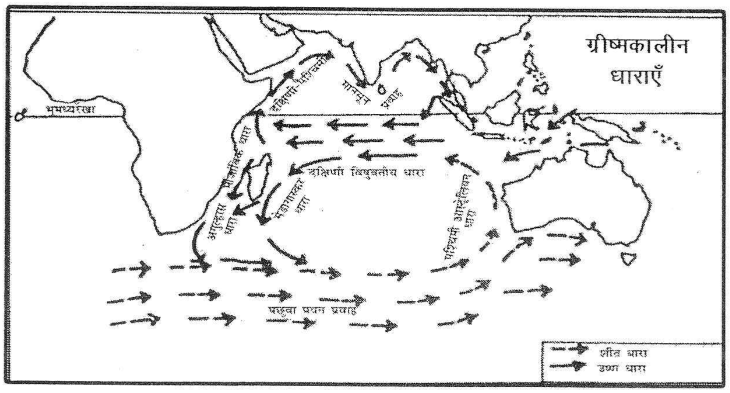

हिन्द महासागर की धाराएं (ग्रीष्मकालीन धाराएं)

टिप्पणी

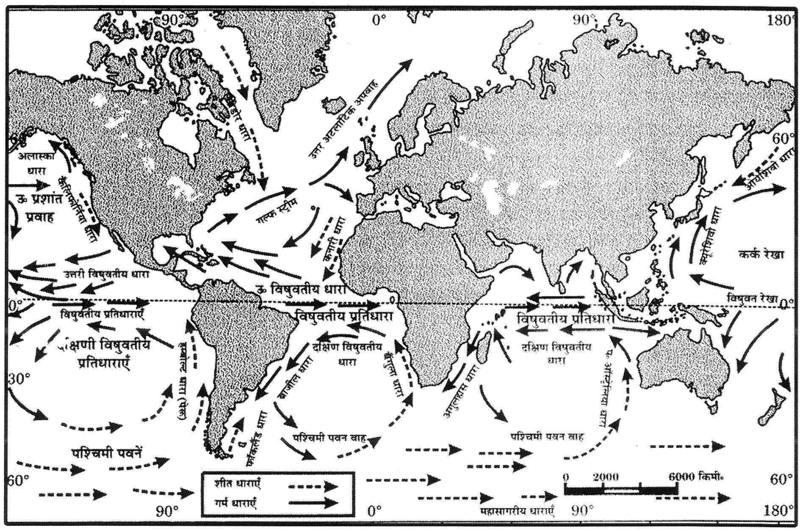

महासागरों में प्रमुख धाराएं

ग्रीष्मकालीन मानसून प्रवाह (South West Monsoon Drift)– इसे दक्षिणी पश्चिमी मानसून धारा भी कहते हैं। ग्रीष्म ऋतु में उत्तरी गोलार्द्ध में मानसून हवाओं की दिशा बदलकर दक्षिण–पश्चिम की ओर हो जाती है। यह धारा अफ्रीका के पूर्वी भाग में उत्पन्न होकर पूर्व दिशा की ओर बहती हुई अरब सागर की परिक्रमा करती है। इस ऋतु में उत्तरी भूमध्य रेखीय धारा तथा विपरीत भूमध्य रेखीय धारा दोनों ही पूर्णतः लुप्त हो जाती हैं। ये धाराएं महासागर की ऊपरी परतों को ही प्रभावित करती हैं। दक्षिणी पश्चिमी मानसून प्रवाह ग्रीष्मकालीन मानसून के साथ अरब सागर तथा बंगाल की खाड़ी में प्रवेश करता है। इन दोनों धाराओं में प्रवाह न्यूनाधिक मात्रा में घड़ी की सुई की दिशा के अनुरूप होता है।

सोमाली धारा (Somali Current)

दक्षिण पश्चिम मानसून की अवधि में उत्तरी हिंद महासागर में पूर्वी अफ्रीका के तट के समांतर सतह से लगभग 200 मीटर की गहराई तक एक सशक्त धारा की उत्पत्ति होती है जो उत्तर पूर्व की ओर चली जाती है।

शीतकालीन मानसून की अपेक्षा ग्रीष्मकालीन मानसून में सोमाली धारा अधिक शक्तिशाली होती है। ग्रीष्मकालीन मानसून की अवधि में यह धारा 7 डिग्री दक्षिणी अक्षांश तक चलकर भूमध्य रेखीय प्रतिधारा में विलीन हो जाती है।

1. **शीतकालीन मानसून प्रवाह** – इसे उत्तर पूर्व मानसून प्रवाह भी कहा जाता है। उत्तरी गोलार्द्ध में शीत ऋतु में एशिया महाद्वीप के विस्तृत भूखंड से हिंद महासागर की ओर उत्तर पूर्वी व्यापारिक पवनें चला करती है। जिस कारण उत्तरी हिंद महासागर में अंडमान तथा पश्चिमी सोमाली के बीच पश्चिमी दिशा में प्रवाहित होने वाली उत्तर पूर्व मानसून धारा का जन्म होता है। यह धारा 5 डिग्री उत्तरी अक्षांश के दक्षिण से होकर प्रवाहित होती है। इसके अलावा बंगाल की खाड़ी तथा अरब सागर में स्वतंत्र धाराओं का आविर्भाव हो जाता है जो दक्षिण पश्चिम दिशा की ओर चलती हैं। शीतकालीन मानसून अरब सागर तथा बंगाल की खाड़ी में नवंबर से मार्च तक इस सागर के ऊपर उत्तर पूर्व से हवाएं चलती हैं जिनके प्रभाव से समुद्री धाराएं भारतीय तट के समांतर दक्षिण की ओर

प्रवाहित होती है तथा 10 डिग्री उत्तरी अक्षांश के निकट पश्चिम की ओर मुड़ जाती हैं। इनकी एक शाखा अदन की खाड़ी तथा दूसरी शाखा सोमाली तट के समांतर प्रवाहित होती हुई उत्तरी भूमध्य रेखीय धारा में मिल जाती है।

2. **विपरीत विषुवतीय धारा** – उत्तर–पूर्वी मानसून शीतकाल में घड़ी की सुई के विपरीत दिशा में धारा का निर्माण होता है जो 2 डिग्री से 8 डिग्री दक्षिण अक्षांशों के मध्य जंजीबार तथा सुमात्रा के बीच प्रवाहित होता है। इस धारा में जल की आपूर्ति उत्तरी पूर्वी मानसून प्रवाह से की जाती है जो अफ्रीका के पूर्वी तट के किनारे दक्षिण की ओर मुड़ जाती है और भूमध्य रेखीय प्रति धारा से मिल जाती है।

दक्षिणी हिंद महासागर की धाराएं

हिंद महासागर में विषुवत रेखा के दक्षिण में चलने वाली धाराएं वर्ष भर एक ही क्रम से चलती हैं अतः इन्हें स्थाई धाराएं कहा जाता है। इन धाराओं का क्रम दक्षिणी अटलांटिक महासागर के धारा क्रम के समान है यह धाराएं निम्न हैं–

1. **दक्षिणी विषुवत रेखीय धाराएं** – यह एक गर्म जलधारा है जो 10 डिग्री से 15 डिग्री दक्षिणी अक्षांशों के मध्य ऑस्ट्रेलिया के पश्चिम से पूर्व की ओर चलती है। 100 डिग्री पूर्वी देशांतर के निकट इसमें पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया की धारा मिलती है। अफ्रीका के तट पर मेडागास्कर के निकट पहुंचकर 10 डिग्री दक्षिणी अक्षांश पर इसकी दो शाखाएं हो जाती हैं प्रमुख शाखा दक्षिण की ओर अगुलहास धारा के रूप में बहती है। 65 डिग्री पूर्वी देशांतर पर इसकी एक शाखा उत्तर की ओर तथा दूसरी शाखा दक्षिण की ओर मुड़ जाती है। ग्रीष्मकालीन मानसून के समय इसका वेग सर्वाधिक होता है।
2. **मेडागास्कर गर्म धारा**– दक्षिण भूमध्य रेखीय धारा की मेडागास्कर द्वीप के पूर्वी तट पर बहने वाली शाखा मेडागास्कर धारा कहलाती है।
3. **मोजांबिक गर्म धारा**– मेडागास्कर द्वीप के निकट पहुंचने पर दक्षिण भूमध्य रेखीय धारा दो शाखाओं में बंट जाती है। एक शाखा मेडागास्कर द्वीप के परे दक्षिण की ओर बह जाती है। और दूसरी मोजांबिक चैनल में प्रविष्ट हो जाती है। मोजांबिक चैनल में होकर बहने वाली धारा मोजांबिक गर्म धारा कहलाती है।
4. **अगुलहास गर्म धारा**– मेडागास्कर द्वीप के परे दक्षिण में मोजांबिक धारा तथा मेडागास्कर धारा मिलकर एक हो जाती है यह संयुक्त धारा अगुलहास धारा है। पछुआ पवन ड्रिफ्ट में समा जाने से पहले यह गर्म जल की धारा रहती है।
5. **पछुआ पवन ड्रिफ्ट अथवा पश्चिमी उपवाह**– दक्षिणी हिन्द महासागर में स्थाई रूप से एक ठंडी धारा पश्चिम से पूर्व की ओर चला करती है। पछुआ पवन पेटियों में चलने वाली इस परिध्रुवीय धारा को ही पछुआ पवन प्रवाह कहते हैं। यह 40 डिग्री अक्षांश के पास (गरजता चालीसा) के प्रभाव से पश्चिम से पूर्व दिशा में बहती है। 110 डिग्री पूर्वी देशांतर के पास इसकी दो शाखाएं हो जाती हैं– एक शाखा उत्तर की ओर मुड़ जाती है तथा ऑस्ट्रेलिया तट के साथ–साथ पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया ठंडी धारा के नाम से जानी जाती है। पछुआ पवन प्रवाह

की दूसरी शाखा दक्षिण की ओर मुड़कर ऑस्ट्रेलिया तट के साथ–साथ प्रवाहित होती है।

6. **पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया ठंडी धारा**– पछुआ पवन ड्रिफ्ट की एक शाखा ऑस्ट्रेलिया के दक्षिण में बहती हुई निकल जाती है और दूसरी शाखा ऑस्ट्रेलिया के पश्चिमी तट के साथ–साथ पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया ठंडी धारा के नाम से प्रवाहित होती है और मकर रेखा के पास पश्चिम तथा उत्तर पश्चिम की ओर मुड़कर 100 डिग्री पूर्वी देशांतर के पास दक्षिण विषुवत रेखीय धारा में मिल जाती है और दक्षिणी हिंद महासागर के धाराओं के चक्र को पूर्ण कर देती है।

महासागरीय धाराओं का प्रभाव (The Influence of Ocean Currents)

जल धाराएं निकटवर्ती समुद्रतटीय क्षेत्रों की जलवायु पर गहरा प्रभाव डालती हैं। ये तापमान, आर्द्रता और वृष्टि को प्रभावित करती हैं। ठंडी धाराएं ध्रुवीय तथा उपध्रुवीय क्षेत्रों से अपने प्लवक लाती हैं और मछलियों के लिए खाद्य पदार्थ की आपूर्ति करती हैं। इसके परिणामस्वरूप इन क्षेत्रों में मछलियों की वृद्धि होती है। महासागरों के व्यावसायिक समुद्री जल मार्ग इन जलधाराओं का अनुसरण करते हैं। इस प्रकार इन धाराओं का मानव जीवन पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। वस्तुतः इन धाराओं के अभाव में हमारा भौतिक पर्यावरण ही सर्वथा भिन्न होगा।

1. **तापमान पर प्रभाव (Effects on Temperature)** – धाराओं का जलवायु पर सम और विषम दोनों प्रकार का प्रभाव पड़ता है। ठंडी धाराओं के समीप के तट महीनों हिम से आच्छादित रहते हैं जिससे वहां का भूखंड वीरान रूप धारण कर लेता है। फॉकलैण्ड, लेब्राडोर आदि जिन भागों में गर्म धाराओं का प्रभाव होता है वहां इसका सर्वोत्तम एवं सम प्रभाव होता है। गर्म धाराएं ऊष्ण प्रदेशों की गर्मी को कुछ अक्षांशों के ठंडे प्रदेशों में पहुंचा कर वहां की जलवायु को संतुलित बनाए रखने में योग देती हैं। उत्तरी अटलांटिक गर्म धारा के कारण नार्वे तट का तापमान ऊंचा रहता है। कैलिफोर्निया, कुरील तथा फॉकलैण्ड की ठंडी धाराओं के कारण तटीय भाग वर्ष में कई मास तक हिमाच्छादित रहते हैं।
2. **वर्षा पर प्रभाव (Effects on Rainfall)** – गर्म धाराओं के ऊपर बहने वाली पवनें ऊष्णार्द्र होती हैं। ये आर्द्र पवनें तटवर्ती भागों में वर्षा प्राप्त करती हैं किंतु ठंडी धाराओं के ऊपर प्रवाहित ठंडी पवनें शुष्क होती हैं। इसके तटवर्ती भाग शुष्क मरुस्थल रह जाते हैं। जैसे कैनरी की ठंडी धारा के तटवर्ती भागों में विश्व का विशालतम सहारा मरुस्थल बेंगुएला के तटवर्ती भाग में कालाहारी मरुस्थल, पेरू के तटीय भाग में आटाकामा मरुस्थल, पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया में विक्टोरिया मरुस्थल, कैलीफोर्निया के तटीय भाग में सोनार मरुस्थल इसी के उदाहरण हैं।

समुद्री जीव पर प्रभाव (Effects on Marine Life)

समुद्र में रहने वाले विभिन्न जीवों के वितरण उनका भोजन जीवित रहने के लिए नितांत आवश्यक है। धाराएं जल तथा पवन संचरण द्वारा समुद्री जीव तथा वनस्पति जगत को प्राणवायु प्रदान करती हैं। प्रवाल जीवों के विकास में जल धाराओं का विशेष योगदान है। ऊष्णकटिबंधीय महासागरों के उन तटों पर प्रवाल भित्तियां पाई जाती हैं जिनके समीप गर्म जल धाराएं प्रवाहित होती हैं। गर्म और ठंडी जलधाराओं के मिलने से

मछलियों की विशिष्ट प्लेंक्टन नामक खाद्य सामग्री उत्पन्न होती है। जापान न्यूफाउंडलैंड व आइसलैंड डागर बैंक ऐसे ही स्थान हैं।

महासागरीय धाराएं तथा तटवर्ती क्षेत्रों की जलवायु (Currents and Coastal Climate)

महासागरीय धाराएं तापीय नियंत्रक होती हैं क्योंकि ये तापमान का स्थानांतरण करती हैं। गर्म धाराएं जब ठंडे क्षेत्र से गुजरती हैं तो यहां का तापमान कम कर देती हैं तथा जब ठंडी जलधाराएं गर्म क्षेत्र से गुजरती हैं तो वहां की जलवायु को मृदुल बना देती हैं। लेब्राडोर, न्यूफाउंडलैंड तथा न्यू इंग्लैंड आदि प्रदेशों की ठंडी जलवायु इन ठंडी धाराओं की देन है। इसी तरह गर्म महासागरीय धाराएं आयनवर्ती क्षेत्रों की ऊष्मा को शीतोष्ण कटिबंध तथा शीत कटिबंध में स्थित क्षेत्रों के प्रदेशों में ले जाकर उनके तापमान को ऊंचा कर देती हैं जैसे अलास्का की गर्म जलधारा, गल्फ स्ट्रीम की गर्म जलधारा। इस तरह से ऊष्मा के वितरण द्वारा महासागरीय धाराएं पृथ्वी के अक्षांतरीय ताप संतुलन को बनाए रखने में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं।

महासागरीय धाराएं एवं समुद्री मार्ग (Currents and Sea Routes)

प्राचीन काल में जहाज पालदार होते थे तब इन्हीं धाराओं के प्रवाह से चलते थे अतः धाराओं का नौ–संचालन पर उल्लेखनीय प्रभाव पड़ता है। दक्षिणी पूर्वी एशिया के समुद्री व्यापार में धाराओं का विशेष योगदान रहता है। पश्चिमी देशों में माल पहुंचाने में शीतकालीन मानसून प्रवाह तथा ग्रीष्म काल में पश्चिमी देशों से माल लेकर ग्रीष्मकालीन प्रभाव से लौटते हैं। यूरोपीय नाविक दक्षिण में व्यापारिक पवनों का अनुसरण करते हुए पश्चिम को जाते थे तथा पछुआ पवनों के द्वारा प्रवाहित गल्फ स्ट्रीम व उत्तरी अटलांटिक प्रवाह का अनुसरण करते यूरोप लौट जाते थे।

व्यापार पर प्रभाव (Effects on Trade)

जहां गर्म धाराएं प्रवाहित होती हैं वहां वर्ष भर बंदरगाह व्यापार के लिए खुले रहते हैं। उदाहरण के लिए अटलांटिक गर्म धारा के कारण उत्तरी पश्चिमी यूरोप के तटीय देश व्यापार के लिए खुले रहते हैं लेकिन इन्हीं अक्षांशों पर साइबेरिया के पूर्वी तट ठंडी कुरील धारा के कारण हिमाच्छादित रहते हैं तथा समुद्री व्यापार ठप्प रहता है।

अपनी प्रगति जांचिए

5. तापमान के आधार पर महासागरीय धाराएं कितने प्रकार की होती हैं?

   (क) दो (ख) तीन

   (ग) चार (घ) पांच

6. उत्तरी अटलांटिक महासागर में घड़ी की सुई की दिशा के अनुरूप प्रवाहित एकाधिक धाराओं के बीच 11000 वर्ग किलोमीटर में फैले शांत समुद्री क्षेत्र का नाम है–

   (क) टीथीज सागर (ख) काला सागर

   (ग) सारगेसो सागर (घ) रूम सागर

5.5 थर्मोहेलाइन लहर और ज्वार

महासागरीय जल कभी भी स्थिर नहीं होता, बल्कि विभिन्न रूपों में निरंतर गतिशील रहता है। यह गतिशीलता सामान्य सागरीय तरंग/लहर, महासागरीय धाराएं, थर्मोहेलाइन तरंग, ज्वार–भाटा तूफान तरंग, सुनामी आदि के रूप में होती है।

महासागरीय जल का शिखर तथा गर्तो के रूप में दोलन या उतार चढ़ाव को महासागरीय तरंगें कहते हैं। महासागरों में उत्पन्न तरंगें उसके पृष्ठ तल पर एक कटक अथवा उभार होता है। जो जल में निरंतर गतिशील होता रहता है। तरंग एक ऐसी परिघटना है जिसके द्वारा विभिन्न प्रकार की वस्तुओं में कंपन द्वारा ऊर्जा का स्थानांतरण किया जाता है।

थर्मोहेलाइन (Thermohaline Waves or Circulation)– गहरे महासागरीय भागों में घनत्व द्वारा चालित महासागरीय धाराओं को थर्मोहेलाइन संचरण कहते हैं। क्योंकि सागरीय जल का घनत्व तापमान (thermo–तापमान) तथा लवणता (haline–लवणता) का प्रतिफल होता है। महासागरीय सतत के नीचे घनत्व तरंगों द्वारा चलित जल राशियों की गतियां सम्मिलित होती हैं। इस तरह गहरी धाराएं घनत्व तरंगों के प्रभाव में गतिशील होती हैं।

गहरी धाराओं में पाइनोक्लाइन परत के नीचे की अपार महासागरीय जल राशियां होती हैं। पाइनोक्लाइन परत महासागरों के 300 से 1000 मीटर की गहराई वाला वह ऊपरी मंडल होता है जिसमें जल के घनत्व में तेजी से परिवर्तन होता है। चूंकि महासागरीय जल का घनत्व उसके तापमान एवं लवणता पर निर्भर होता है। इसलिए गहरी महासागरीय धाराओं को थर्मोहेलाइन धाराएं भी कहते हैं। गहरी महासागरीय तरंगों में समस्त सागरीय जल का 90 प्रतिशत जल रहता है। गहरी महासागरीय तरंगों की उत्पत्ति भारी घनत्व वाले सागरीय जल के नीचे बैठने या (Sinking) अवप्रवाह (Down Welling) से होता है। इस कारण इन्हें अवप्रवाह महासागरीय धाराएं भी कहते हैं। गहरी महासागरीय धाराओं में पाइनोक्लाइन परत के नीचे की भारी जल राशियां गतिशील होती है।

जलराशियां (Water Masses)– समान घनत्व तथा लवणता तथा अपार आयतन एवं संभाग संरचना वाले जल समूह को जलराशि कहते हैं। महासागरीय जल राशियां अत्यंत विस्तृत होती हैं। इनका उत्पत्ति क्षेत्र उच्च अक्षांशों में सागरीय सतह है जहां पर अत्यधिक न्यून तापमान के कारण सागरीय जल का घनत्व अधिक होता है। इस तरह अधिक घनत्व वाली सागरीय सतह का जल नीचे बैठता है (Sink) तथा अधःसागरीय जलराशि का निर्माण करता है। भारी सागरीय जल के नीचे बैठने को अवप्रवाह (Down Welling) कहते हैं। एक बार नीचे जाने के बाद सागरीय जल में तापमान एवं लवणता के संबंध में स्थायित्व (Stability) आ जाता है। अतः सागरीय जल के तापमान और लवणता में समरूपता (Uniformity) आ जाती है।

जल राशियों की विशेषताएं

- सागरीय सतह के नीचे की जल राशियां अत्यंत विस्तृत एवं समान संघटन की होती हैं।
- जलराशि केवल एक ही महासागर तक सीमित नहीं होती। इनका संबंध कई महासागरों से होता है।

- हजारों किलोमीटर की दूरी पर भी तापमान एवं लवणता समान होती है।
- जल राशियों में गहराई के अनुसार तापमान एवं लवणता में भिन्नता होती है।
- जैसे ही उच्च अक्षांशों में सागरीय सतह का ठंडा जल नीचे बैठता है अधःसागरीय जलराशि का रूप धारण करता है।
- किसी भी जलराशि के विभिन्न महासागरों के जल के तापमान एवं लवणता में समरूपता से पता चलता है कि महासागर खुला तंत्र है।
- जलराशि भारी घनत्व वाले ठंडे जल के अप्रवाह तथा कम घनत्व वाले जल के उत्प्रवाह का परिणाम है। इस प्रक्रिया को थर्मोहेलाइन संचरण (Thermohaline Circulation) कहते हैं।

जल राशियों को निम्न तीन वर्गों में विभक्त करते हैं–

1. केंद्रीय जल राशियां (Central Watermass) 100–1000 मीटर तक
2. मध्यवर्ती जल राशियां (Intermediate Watermass) 1000–3000 मीटर
3. गहरी एवं नितलीय जलराशि (Deep and Bottom Watermass) 3000 से महासागरीय तली तक।

जल राशियों के स्रोत– जल राशियों का मुख्य स्त्रोत उच्च अक्षांशों में सागरीय सतह के ठंडे एवं भारी घनतव वाले जल का अवप्रवाह है। नीचे बैठता हुआ अधिक घनत्व वाला सागरीय जल सीधे लंबवत रूप से नीचे गतिशील होता है। जहां पर पाइनोक्लाइन अनुपस्थित रहती है भारी जल का अधोगमन नहीं होता है। जब नीचे बैठता जल ऐसी गहराई तक पहुंचता है जहां पर ऊपर से नीचे आए जल तथा उस गहराई पर स्थित जल के तापमान एवं लवणता में समानता हो जाती है तो ऊपर से नीचे सागरीय जल का लम्बवत अधोगमन क्षैतिज गति में बदल जाता है। इस प्रकार सागरीय सतह के नीचे अधःसागरीय जलराशि का निर्माण हो जाता है।

अधःसागरीय जल राशियों के स्रोत

1. नार्वे सागर का क्षेत्र, 2. दक्षिण पूर्वी ग्रीनलैंड एवं लेब्राडोर सागर के पास इरमिंगर सागर, 3. अंटार्कटिका का वेडेल सागर, 4. अंटार्कटिका बेसिन अंटार्कटिका के उत्तर में स्थित लेजरेव सागर के उत्तर में, 5. अल्यूशियन खड्ड (Trench) के दक्षिण में 45 डिग्री – 50 डिग्री उत्तरी अक्षांशों के मध्य धुर उत्तरी प्रशांत महासागर, 6. प्रशांत– अंटार्कटिक कटक के दक्षिण में दक्षिणी महासागर।

गहरी धाराएं तथा थर्मोहेलाइन संचरण (Deep currents and thermohaline circulation) – पाइनोक्लाइन परत के नीचे अपार महासागरीय जल राशियां होती है। महासागरी सतह के नीचे घनत्व तरंगों द्वारा चलित जल राशियों की गतियां सम्मिलित होती है। जिन्हें गहरी धाराएं या थर्मोहेलाइन संचरण कहते हैं। न्यून तापमान या उच्च लवणता या दोनों के कारण सागरीय जल का घनत्व बढ़ता है तथा सागरीय सतह का भारी घनत्व वाला जल नीचे बैठता है। इस प्रक्रिया को अवप्रवाह कहते हैं। जल की उच्च लवणता के निम्न परिणाम होते हैं–

- सागरीय जल के तापमान में कमी तथा लवणता में वृद्धि द्वारा सागरीय जल के घनत्व में वृद्धि।

- सागरीय जल के अत्याधिक वाष्पीकरण या सागरीय जल के निर्माण की प्रक्रिया द्वारा सागरीय जल के घनत्व में वृद्धि।

गहरी सागरीय धाराओं की विशेषताएं

- गहरी सागरीय धाराएं चक्रीय मार्ग का अनुसरण करती हैं।
- यह चक्रीय मार्ग ठंडे एवं भारी सागरीय सतह के जल के अवप्रवाह के प्रारंभ से महासागरीय नितल से होते हुए उत्प्रवाह द्वारा सागरीय सतह के जल एवं गहराई वाले मिश्रण के साथ पूर्ण होता है।
- इन धाराओं की उत्पत्ति कुछ अक्षांशों में ठंडे भारी जल के अवप्रवाह (Down Welling) के कारण होती है।
- वास्तव में ये गहरी अधःसागरीय जल राशियां होती हैं।
- यह उच्च अक्षांशों से प्रारंभ होकर गहरे सागरीय जल के उत्प्रवाह (Upwelling) के साथ समाप्त हो जाता है।

थर्मोहेलाइन संचरण का चक्रीय प्रतिरूप (Cyclic Pattern of Thermohaline Circulation)– उच्च अक्षांशों में महासागरीय सतह के भारी घनत्व वाले जल के अवप्रवाह (Down Welling) से प्रारंभ होकर महासागरों के नितल से होते हुए उच्च अक्षांशों में महासागर की सतह पर पुनः प्रकट होने की प्रक्रिया को गहरी महासागरीय धाराओं का चक्र कहते हैं। इस प्रकार थर्मोहेलाइन संचरण का एक चक्र पूर्ण होता है। जिसमें लगभग 1000 वर्ष लग जाते हैं क्योंकि अधःसागरीय जल राशियों की गति अत्यंत मंद होती है। (प्रतिवर्ष 10 से 20 किलोमीटर)

अटलांटिक महासागर की जल राशियां तथा थर्मोहेलाइन संचरण (गहरी धाराएं)

अटलांटिक महासागर की जलराशियों की उत्पत्ति के मुख्य दो स्रोत हैं–

1. **नार्वे सागर**– जहां सागरीय जल नीचे जाकर दक्षिणी मार्ग का अनुसरण करता है तथा उत्तरी अंध महासागर की गहरी जलराशि का निर्माण करता है।
2. **वेडेल सागर**– यह अंटार्कटिका तट के उत्तर में जहां भारी घनत्व वाला सागरीय जल अवप्रवाह की प्रक्रिया द्वारा नीचे जाकर अंटार्कटिक गहरी जल राशि तथा अंटार्कटिका मध्यवर्ती जलराशि का निर्माण करता है।

1. **उत्तरी अटलांटिक गहरी जल राशि**– यहां सतही जल का अधिक घनत्व निम्न कारणों से है–

- शीतकाल में न्यूनतम सूर्यातप के कारण सतही जल ठंडा होना।
- हिम निर्माण के कारण लवणता में वृद्धि।

2. **अंटार्कटिक नितलीय जल राशि**– यहां जल के अधिक घनत्व के कारण हैं–

- शीतकाल में न्यूनतम सूर्यातप के कारण तापमान में कमी।
- बेडेल सागर एवं दक्षिणी महासागर में हिम निर्माण से लवणता में वृद्धि।

3. **अंटार्कटिका गहरी जल राशि**– इसका घनत्व अंटार्कटिका नितलीय जलराशि के घनत्व से कम होगा।

टिप्पणी

इन तीन राशियों के अलावा मध्यवर्ती जल राशियां भी हैं, जैसे आर्कटिक मध्यवर्ती जल राशि, अंटार्कटिक मध्यवर्ती जलराशि और रूम सागरीय जलराशि आदि।

प्रशांत महासागर की जल राशियां तथा थर्मोहेलाइन संचरण (गहरी धाराएं)

- आर्कटिक जलराशि का प्रशांत महासागर की जलराशि के साथ मिश्रण अच्छी तरह से नहीं हो पाया क्योंकि आर्कटिक सागर से ठंडी जल राशियों का उत्तरी प्रशांत महासागर में प्रवाह बेरिंग जलडमरूमध्य द्वारा अवरुद्ध हो जाता है।
- प्रशांत महासागर के सुदूर दक्षिण भाग में अंटार्कटिक गहरी जलराशि तथा अंटार्कटिक मध्यवर्ती जलराशि का विकास नहीं हो पाता है।
- उत्तरी प्रशांत महासागर में सतह के जल में निम्न लवणता के कारण ऊपरी सतह के जल का अप्रवाह नहीं हो पाता।

अतः स्पष्ट है कि प्रशांत महासागर में थर्मोहेलाइन संचरण अत्यंत मंद गति से होता है। प्रमुख जलराशि उत्तरी प्रशांत सेंट्रल जल राशि, दक्षिणी प्रशांत सेंट्रल जल राशि, प्रशांत आर्कटिक जल राशि।

हिंद महासागर की जल राशियां एवं थर्मोहेलाइन संचरण या (गहरी धाराएं)–

हिंद महासागर के उत्तरी क्षेत्र में सागरीय सतह के जल का अवप्रवाह (Down Welling) नहीं हो पाता है। अतः जल राशियां दक्षिण की ओर संचलन नहीं कर पाती हैं। हिंद महासागर में अंटार्कटिक मध्यवर्ती जलराशि का विकास भी अच्छी तरह से नहीं हो पाया है। लाल सागर मध्यवर्ती जलराशि में अधिकतम लवणता (40% से अधिक) पाई जाती है। यह जलराशि 3000 मीटर की गहराई के नीचे–नीचे दक्षिण की ओर गतिशील होती है। हिंद महासागर में थर्मोहेलाइन संचरण अच्छी तरह से नहीं हो पाता है क्योंकि इसका अधिकांश भाग दक्षिणी गोलार्द्ध में स्थित है।

हिंद महासागर की मुख्य जल राशियां

1. कॉमन जल राशि– इसका निर्माण अंटार्कटिक नितलीय जलराशि तथा उत्तरी अटलांटिक गहरी जलराशि के मिश्रण से होता है।
2. अंटार्कटिक नितलीय जल राशि– यह अत्यंत विस्तृत जलराशि है बाद में यह अटलांटिक और हिंद महासागर में फैल जाती है।
3. अंटार्कटिक मध्यवर्ती जल राशि– इसका निर्माण अंटार्कटिक अभिसरण मंडल में होता है। बाद में यह अंटार्कटिक और हिंद महासागर में फैल जाती है।
4. अंटार्कटिक मध्यवर्ती जल राशि– इसका निर्माण अंटार्कटिक अभिसरण मंडल में होता है बाद में यह अटलांटिक और हिंद महासागर में फैल जाती है।
5. हिंद महासागरीय केंद्रीय जल राशि– यह विषुवत रेखा के दक्षिण में 1000 मीटर की गहराई पर पाई जाती है। इसका निर्माण 40 डिग्री दक्षिणी अक्षांश के निकट ऊष्णकटिबंधीय अभिसरण मंडल में सतह के जल के अवप्रवाह से होता है।
6. लाल सागर गहरी जलराशि का निर्माण अधिक घनत्व वाले अवप्रवाह के कारण होता है। यहां उच्च लवणता एवं अत्याधिक वाष्पीकरण होता है। 40% लवणता तथा 3000 मीटर की गहराई पर 'बाब अल–मंडब' जलडमरूमध्य से हिंद महासागर में प्रवेश करती है।

7. विषुवतरेखीय छिछली जल राशि– इसकी लवणता एक समान रहती है। इस जलराशि का निर्माण 10 डिग्री दक्षिणी अक्षांश के उत्तर में होता है। लवणता 35 प्रतिशत है।

कन्वेयर बेल्ट संचरण (Conveyor Belt Circulation)

कन्वेयर बेल्ट संचरण का अर्थ अवप्रवाह तथा उत्प्रवाह द्वारा महासागरों की सतह की जल राशियों एवं गहरे सागर की जल राशियों का आपस में विनिमय। महासागरीय सतह के भारी घनत्व वाले जल का ध्रुवीय क्षेत्रों में अवप्रवाह (Down Welling) होता है। जबकि उत्प्रवाह (Upwelling) की प्रक्रिया द्वारा गहराई वाला जल पुनः ऊपर आ जाता है। अतः अवप्रवाह एवं उत्प्रवाह की प्रक्रियाओं को भूमंडलीय महासागरीय संचरण कहते हैं। महासागरों की सतह के गर्म जल एवं गहराई के ठंडे जल के सभी महासागरों से गुजरने वाले परिपथ संचरण को कन्वेयर बेल्ट संचरण कहते हैं।

अवप्रवाह– महासागरीय सतह के भारी घनत्व वाले जल के डूबने (Sinking) की प्रक्रिया को अवप्रवाह कहते हैं (Down Welling)

उत्प्रवाह– महासागरों के गहरे भागों में सागरीय जल के ऊपर की ओर लंबवत गति द्वारा सागरीय सतह पर पुनः प्रकट होने की प्रक्रिया को उत्प्रवाह (Up Welling) कहते हैं।

ज्वार भाटा (Tides & Ebb)

महासागरों एवं सागरों का जल कभी भी शांत नहीं रहता। महासागरीय गतियों में लहरें, तरंगे, धाराएं तथा ज्वार भाटा अधिक महत्वपूर्ण हैं। इसमें ज्वार–भाटा का महत्व सर्वाधिक होता है। ज्वार–भाटा एक प्राकृतिक घटना है। सूर्य तथा चंद्रमा की आकर्षण शक्तियों के कारण सागरीय जल के ऊपर उठने तथा गिरने को ज्वार–भाटा कहते हैं। सूर्य एवं चंद्रमा के गुरुत्वाकर्षण बल के कारण सागरीय जल के ऊपर उठने (rise) एवं नीचे आने (fall) को ज्वार कहते हैं। ज्वार भाटा के कारण समुद्री जल का प्रत्येक भाग सतही जल से लेकर नितल तक का जल प्रभावित होता है। ज्वार–भाटा से उत्पन्न तरंगों को ज्वारीय तरंग भी कहते हैं। सामान्य महासागरीय जल स्तर एवं ज्वार भाटा की स्थिति में जलस्तर के अंतराल को ज्वारीय परिसर कहते हैं। इसी प्रकार 2 ज्वारों के मध्य विद्यमान समय अंतराल है को ज्वारीय अंतराल कहा जाता है।

परिभाषाएं

पी.आर.पिनेट 2000 के अनुसार, "Tides are waves with very long wavelengths much longer than ordinary wind waves that cause sea level to rise and fall with extraordinary regularity. Infact, tides are the most uniformly varying phenomena in the ocean"

उपर्युक्त परिभाषा से स्पष्ट हो जाता है कि ज्वार बाह्य स्रोतों (सूर्य तथा चंद्रमा) से जनित सागर तल के सामयिक उठाव (rise) एवं अवपात (fall) होते हैं।

मारमर के अनुसार, "Twice each day in rhythmic fashion it rises and falls in response to the mighty pulse of tide producing forces.

These stir the sea to its depth and bring about the phenomena which for short are called the tide whose extent to the rise and fall at any place is not constant but varies from day to day"

टिप्पणी

इस प्रकार, आकर्षण के कारण तरंगों के ऊपर उठने की प्रक्रिया ज्वार (Tide) या उच्च ज्वार (High Tide) तथा तरंगों की नीची सतह तक गिरने की प्रक्रिया भाटा (Ebb) या निम्न ज्वार (Low Tide) कहलाती है। यह प्रक्रियाएं नियमित रूप से होती हैं।

प्राचीन काल में हेरोडोटस (Herodotus) 325 ईसा पूर्व, पाइथीस (Pitheas, 235 ईसा पूर्व), प्लनी (Pliny, 77 ईसा पूर्व) आदि ग्रीक एवं रोमन विद्वानों ने ज्वार–भाटों का उल्लेख किया। न्यूटन ने (Newton, 1657) गुरुत्वाकर्षण की खोज के द्वारा यह प्रमाणित किया कि प्रत्येक खगोलकी पिंड अपने द्रव्यमान और परस्पर दूरी के अनुसार आकर्षण उत्पन्न करता है। बड़े द्रव्यमान वाले पिंड की अपेक्षा छोटे द्रव्यमान वाले पिंड अपेक्षाकृत समीप हैं तो अधिक आकर्षण उत्पन्न करेंगे। इसके अलावा लाप्लास (Laplace) ने गतिक ज्वार सिद्धांत (Dynamic Theory of Tides), एयरी (Airy, 1842), नहर सिद्धांत, बीसवीं शताब्दी में अमेरिकी विद्वान हेरिस (Harris), विलियम वेवेल (Willam Whewell, 1833) ने प्रगामी तरंग सिद्धांत का प्रतिपादन किया।

ज्वार भाटा संबंधी विशेषताएं (Characteristics of Tide)

- ज्वारीय तरंगों में शिखर तथा गर्त होते हैं। ज्वार तरंगों की ऊंचाई को ज्वारीय परिसर (Tidal Range) कहते हैं। उच्च ज्वार जल (High Tide Water) तथा निम्न ज्वार तल के बीच लंबवत दूरी को ज्वार तरंग की ऊंचाई या ज्वार परिसर कहते हैं। यह ऊंचाई 2 मीटर से 4 मीटर तक होती है। 1. सूक्ष्म ज्वारीय परिसर 2 मीटर से कम, 2. मध्य ज्वारीय परिसर 2 से 4 मीटर, 3. वृहद ज्वारीय परिसर 4 मीटर से अधिक।
- खुले सागरों तथा महासागरों में जल निर्बाध रूप से बहने के कारण कम ऊंचा ज्वार उत्पन्न होता है किंतु उथले समुद्रों व खाड़ियों में ज्वारीय तरंगें अधिक ऊंची होती है।
- खुले सागरों में ज्वार का वेग अधिक होने पर यह मात्र 2 फीट किंतु उथले समुद्रों का तथा खाड़ियों में स्थल के घर्षण के कारण ज्वार का अंतर अधिक होता है उदाहरण टेम्स नदी की मुहाने पर 7 मीटर जबकि फंडी की खाड़ी (कनाडा) में 20 मीटर से अधिक का अंतर पाया जाता है।
- विभिन्न स्थानों पर ज्वार–भाटे की ऊंचाई में भी अंतर पाया जाता है। तटरेखा का प्रभाव ज्वार की ऊंचाई पर पड़ता है। झीलों में ज्वार की ऊंचाई कुछ इंच तथा भूमध्य सागर व बाल्टिक सागर में मात्र आधा मीटर।
- विभिन्न स्थानों पर ज्वार भाटा आने का समय भी भिन्न होता है।
- ज्वार की अवधि भी प्रत्येक स्थान पर भिन्न होती है।
- प्रत्येक माह में दो बार उच्च ज्वार और दो बार निम्न ज्वार आते हैं।

ज्वारोत्पादक बल (Tide producing Force)

ज्वार उत्पन्न करने में निम्न कारकों का योगदान होता है–

1. गुरुत्वाकर्षण बल (Gravitational Force)

ज्वार भाटा की उत्पत्ति का कारण चंद्रमा, सूर्य तथा पृथ्वी की पारस्परिक गुरुत्वाकर्षण शक्ति है। न्यूटन ने 1687 ईस्वी में अपना संतुलन सिद्धांत प्रस्तुत किया। इस सिद्धांत

के अनुसार सभी खगोलीय पिंड एक दूसरे को परस्पर आकर्षित करते हैं। इस क्रिया में जो बल कार्य करता है, वह उनके परिमाणों का समानुपाती एवं उनकी दूरी वर्ग का व्युत्क्रमानुपाती होता है। इसी आकर्षण बल के कारण खगोलीय पिंडों का संतुलन है। इस सिद्धांत का तात्पर्य यह है कि जो पिंड जितना समीप होगा, उसका आकर्षण बल उतना अधिक होगा। पृथ्वी पर भी ब्रह्मांड के प्रत्येक खगोलीय पिंड के आकर्षण बल का प्रभाव पड़ता है।

गुरुत्वाकर्षण के नियमानुसार दो पिडों का परस्पर आकर्षित करने वाला बल उनके द्रव्यमान तथा पारस्परिक दूरी पर निर्भर करता है अर्थात कोई बड़ा पिंड यदि निकट स्थित है तो अधिक आकर्षित करेगा, उनकी दूरी बढ़ने के साथ–साथ आकर्षण कम होता जाएगा। यदि दो पिंडों के बीच की दूरी दुगनी कर दी जाए तो आकर्षण शक्ति पहले से $\frac{1}{4}$ रह जाएगी।

चंद्रमा से सूर्य का आकार बड़ा है किंतु पृथ्वी से पर्याप्त दूरी पर स्थित होने के कारण चंद्रमा की तुलना में उसका ज्वारीय प्रभाव लगभग आधा है। सूर्य की अपेक्षा चंद्रमा पृथ्वी के अधिक निकट है, चंद्रमा पृथ्वी का उपग्रह है, इसका व्यास 3490 किलोमीटर है। पृथ्वी का व्यास 12,800 किलोमीटर है। पृथ्वी से चंद्रमा की औसत दूरी 3.84 लाख किलोमीटर है। किंतु यह अंडाकार पथ पर पृथ्वी की परिक्रमा करता है। एक समय में यह पृथ्वी के निकट 3.54 लाख किलोमीटर दूर होता है। इस स्थिति को उप–भू (perigee) कहते हैं। दूसरी अवस्था में चंद्रमा पृथ्वी से 4.04 लाख किलोमीटर दूर होता है। यह अप– भू (apogee) की स्थिति होती है। अप–भू की अपेक्षा उप–भू की स्थिति में औसत से 20 प्रतिशत अधिक ज्वार आते हैं। क्योंकि पृथ्वी अपनी धुरी (Axis) पर पश्चिम से पूर्व दिशा में घूर्णन (Rotates) करती है। तथा अंडाकार कक्षा (Orbit) में सूर्य की परिक्रमा करती है। इसी तरह चंद्रमा भी पश्चिम से पूर्व दिशा में घूर्णन करता है तथा अंडाकार कक्षा में पृथ्वी की परिक्रमा करता है। चित्र क्रमांक 22 जिस कारण पृथ्वी एवं चंद्रमा के बीच की दूरी बदलती रहती है। जैसा कि निम्न चित्रों में दर्शाया गया है। चंद्रमा पृथ्वी के परिक्रमण की दिशा में $27\frac{1}{2}$ दिन में पृथ्वी की परिक्रमा करता है। चंद्रमा द्वारा एक चक्कर पूरा कर लेने पर पृथ्वी भी कुछ आगे बढ़ जाती है। चंद्रमा का कक्षा तल (orbit plane) पृथ्वी के कक्षा तल से 5 डिग्री का कोण बनाता है। अतः चंद्रमा के संपूर्ण परिक्रमण मार्ग में केवल 2 स्थानों (nodes) पर दोनों तल एक ही तल पर होंगे। क्योंकि चंद्रमा अपनी धुरी पर भी परिक्रमण (Rotation) करता है अतः पृथ्वी से चंद्रमा का सदैव एक ही भाग दिखाई देता है।

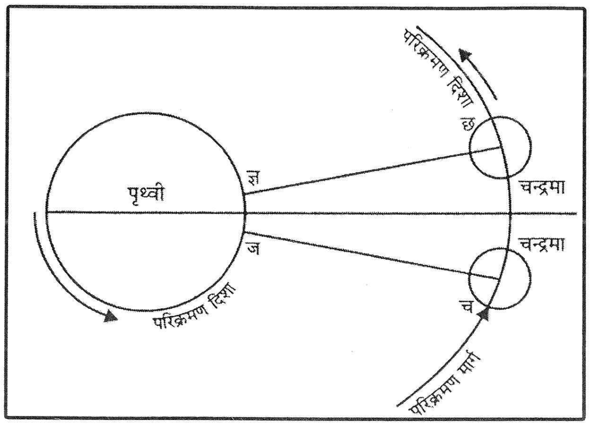

चन्द्रमा तथा पृथ्वी की परिक्रमण दिशा

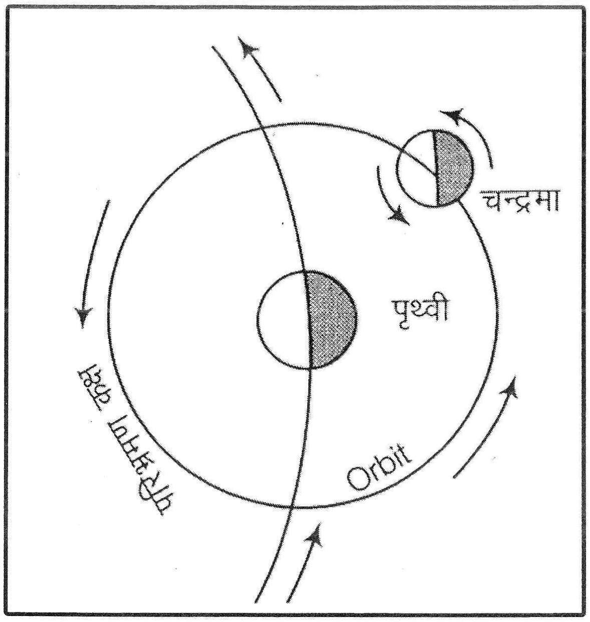

चन्द्रमा तथा पृथ्वी की परिभ्रमण दिशा

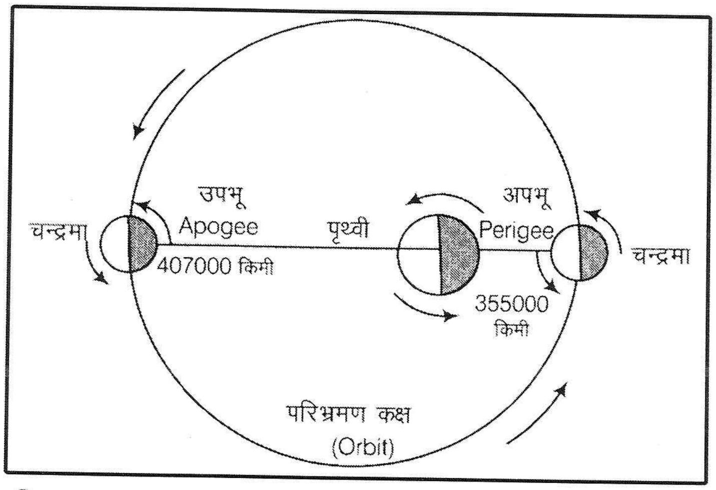

चन्द्रमा व पृथ्वी की सापेक्ष गतियां (अप–भू. उप–भू)

ज्वारोत्पादक शक्तियां केवल ग्रह के गुरुत्व से प्रभावित नहीं होती बल्कि आकाशीय पिंड से सतह एवं केंद्र की आकर्षण शक्ति के अंतर पर भी निर्भर करती हैं। सूर्य का द्रव्यमान चंद्रमा की अपेक्षा 26×10^6 गुना अधिक है किंतु चंद्रमा पृथ्वी के केंद्र से 3.86 लाख किलोमीटर एवं सतह से 3.79 लाख किलोमीटर दूर है जबकि सूर्य पृथ्वी के केंद्र से 14.88 करोड़ किलोमीटर तथा सतह से 14.86 करोड़ किलोमीटर दूर है। चंद्रमा की तुलना में सूर्य पृथ्वी से 389 गुना अधिक दूर है इसलिए सूर्य की अपेक्षा चंद्रमा का आकर्षण अधिक प्रबल है।

इस प्रकार चंद्रमा की ज्वारोत्पादक शक्ति सूर्य की अपेक्षा 2.1 गुना अधिक है चंद्रमा तथा सूर्य की ज्वार उत्पादक शक्ति में 11 : 5 का अनुपात।

2. केंद्रोपसारी तथा गुरुत्व बल (Centrifugal and Gravitational Forces)

सूर्य तथा चंद्रमा के आकर्षण से पृथ्वी के जल में विकृति (Distortion) उत्पन्न होने से ज्वार पैदा होता है। तरल होने के कारण सागर की सतह में उभार पैदा होता है (bulge) यह विकृति सूर्य तथा चंद्रमा के आकर्षण के अतिरिक्त पृथ्वी तथा चंद्रमा की केंद्रोपसारी (centrifugal) शक्ति के कारण होती है। वास्तव में, पृथ्वी तथा चंद्रमा गुरुत्व के एक केंद्र के चारों ओर अपनी धुरी पर परिभ्रमण करते हैं, जिससे दोनों का गुरुत्वाकर्षण उनके घूर्णन (rotation) या परिभ्रमण से उत्पन्न केंद्रोपसारी बल से धरातल की सभी वस्तुएं पृथ्वी से अलग होना चाहती हैं। पृथ्वी के धरातल पर केंद्रोपसारी तथा आकर्षण शक्तियों में असंतुलन पाया जाता है। चंद्रमा के सम्मुख वाले पृथ्वी के भाग में केंद्रोपसारी बल की अपेक्षा आकर्षण शक्ति अधिक होती है और चंद्रमा के विमुख वाले भाग में केंद्रोपसारी बल अधिक होता है। इस प्रकार, पृथ्वी के केंद्र से चंद्रमा को मिलाने वाली रेखा के साथ–साथ दोनों शक्तियां परस्पर विपरीत दिशा में सक्रिय होती हैं। यह दोनों शक्तियां कर्षण (tractive) कहलाती हैं।

3. सूर्य पृथ्वी एवं चंद्रमा की सापेक्ष स्थितियां (Relative Positions of the Sun Earth and the Moon)

अमावस्या (New Moon) तथा पूर्णिमा (Full Moon) के दिन चंद्रमा, सूर्य, पृथ्वी एक सीध में होते हैं तब गुरुत्वाकर्षण बल अधिक होता है फलतः वृहत ज्वार (Spring Tides) उत्पन्न होते हैं। अष्टमी के दिन सूर्य चंद्रमा परस्पर समकोण (Quadrature) की स्थिति में होते हैं तब लघु ज्वार (Neap Tides) उत्पन्न होते हैं। चंद्रमा की स्थिति में (विषुवत रेखा) परिवर्तन होने पर ज्वारीय शक्तियों में भिन्नता के कारण भिन्न–भिन्न ज्वार पैदा होते हैं।

स्पष्ट है कि चंद्रमा की शक्ति पृथ्वी के सामने वाले भाग पर अधिक और पृथ्वी के केंद्र तथा विपरीत भाग पर कम पड़ती है। चंद्रमा के विपरीत भाग पर जल ठीक इसी प्रकार ऊपर उठता है किंतु यहां जल के ऊपर उठने का कारण पृथ्वी का केंद्रोपसारी बल है चूंकि पृथ्वी ठोस होने के कारण पूरी की पूरी एक ओर खिंच जाती है, इससे पृथ्वी और जल की सतह में अंतर पड़ जाता है। इस अंतर को भरने के लिए आसपास का जल एकत्रित हो जाता है, जिससे जल की सामान्य सतह ऊपर उठ जाती है, और वहां ज्वार उत्पन्न हो जाता है। इस तरह चंद्रमा के सम्मुख वाले भाग और विपरीत वाले भाग में एक साथ ज्वार उत्पन्न होता है।

ज्वार भाटे के प्रकार (Types of Tides)– समुद्र में आने वाले ज्वार भाटा के निम्न प्रकार हैं–

1. ज्वार लहर की ऊंचाई के आधार पर
2. ज्वार आने के समय के अनुसार
3. अन्य प्रकार

1. ज्वार लहर की ऊंचाई के आधार पर– समुद्रों में ज्वार के आने का समय एवं आने वाली ज्वार लहरों की ऊंचाई सदैव एक समान नहीं होती। ज्वार लहरों की ऊंचाई के अनुसार ज्वार के दो भेद हैं–

i. **वृहद अथवा दीर्घ ज्वार (Spring Tide)** – सूर्य तथा चंद्रमा की सापेक्ष स्थितियों में परिवर्तन होता रहता है जब सूर्य–पृथ्वी तथा चंद्रमा तीनों एक सीध में होते हैं तो सूर्य और चंद्रमा की संयुक्त आकर्षण शक्ति से वृहद अथवा दीर्घ ज्वार उत्पन्न होता है। सूर्य का प्रभाव कम दिखाई देता है क्योंकि सूर्य, पृथ्वी से 14 करोड़ 98 लाख किलोमीटर दूरी पर स्थित है। जबकि चंद्रमा पृथ्वी से 3.84 लाख किलोमीटर दूर है। सूर्य, चंद्रमा और पृथ्वी एक सीध में पूर्णिमा और अमावस्या को होते हैं। इस स्थिति को 'सिजिगी' (SYZYGY) कहते हैं। इस समय ज्वार 20 प्रतिशत अधिक होता है। जब सूर्य, चंद्रमा तथा पृथ्वी एक क्रम में होते हैं (चंद्रमा बीच में होता है) तो उस युति (Conjunction) को सूर्य ग्रहण की स्थिति कहते हैं, और जब सूर्य तथा चंद्रमा के बीच पृथ्वी की स्थिति होती है तो उसे वियुति (Opposition) कहते हैं। युति की स्थिति अमावस्या (New Moon) तथा वियुति की स्थिति पूर्णमासी (Full Moon) की होती है।

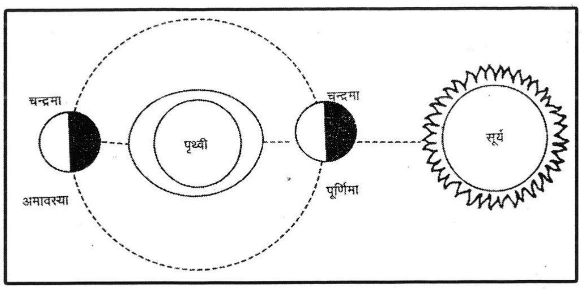

अमावस्या एवं पूर्णिमा को उत्पन्न दीर्घ ज्वार

ii. **लघु ज्वार (Neap Tide)**– ये साधारण ज्वार से 20 प्रतिशत कम ऊंचे होते हैं। मास के दो दिन शुक्ल पक्ष व कृष्ण पक्ष की अष्टमी को जबकि सूर्य, पृथ्वी एवं चंद्रमा समकोण या क्वैडरेचर (Quadrature) की स्थिति में होते हैं, यह ज्वार उत्पन्न होते हैं। इस स्थिति में सूर्य चंद्रमा के आकर्षण बल एक दूसरे के विपरीत कार्य करते हैं जिस कारण निम्न ज्वार अनुभव किया जाता है। इस दिन ज्वार एवं भाटा की ऊंचाई में बहुत कम अंतर होता है। इन तिथियों में भाटे की ऊंचाई अन्य दिवसों से अपेक्षाकृत अधिक रहती है।

टिप्पणी

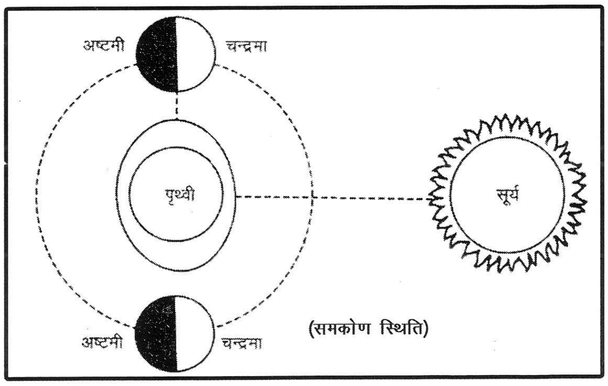

अष्टमी को उत्पन्न लघु ज्वार

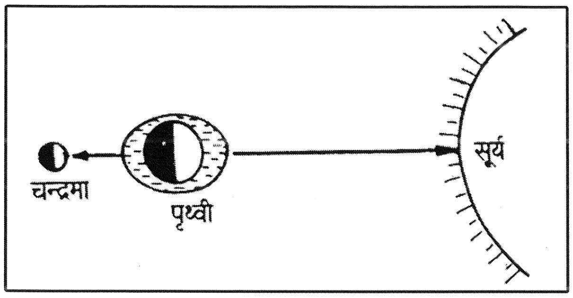

(अ) पूर्णिमा के दिन सूर्य, पृथ्वी तथा चन्द्रमा की स्थितियां

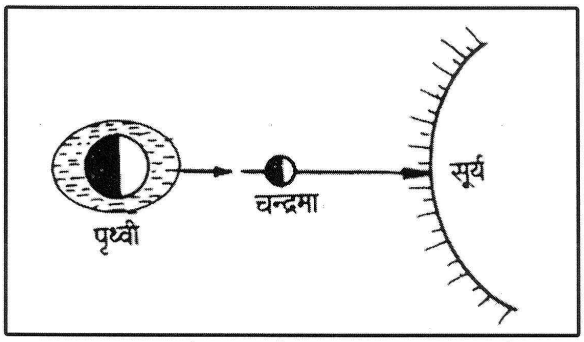

(ब) अमावस्या के दिन सूर्य, पृथ्वी तथा चन्द्रमा की सापेक्ष स्थितियां

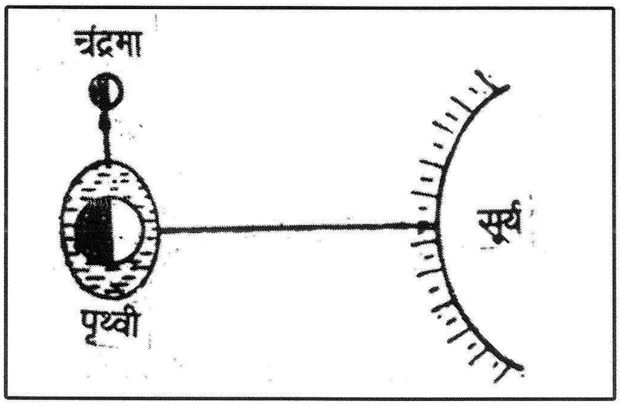

(अ) पूर्णिमा के बाद वाली अष्टमी को सूर्य, पृथ्वी व चन्द्रमा की स्थितियां

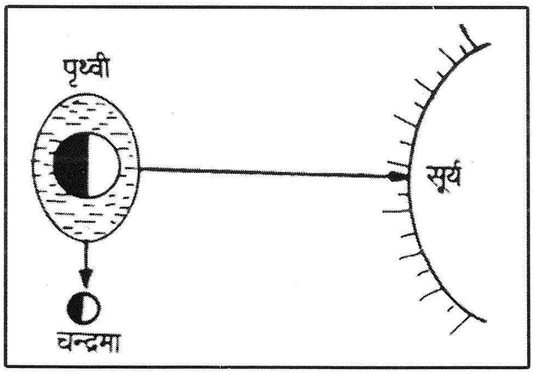

(ब) अमावस्या के बाद वाली अष्टमी को सूर्य, पृथ्वी व चन्द्रमा की स्थितियां

2. ज्वार आने के समय के अनुसार– ज्वार आने के समय के अनुसार ज्वार भाटा के निम्न प्रकार हैं–

i. **दैनिक ज्वार (Diurnal Tides)**– जब किसी स्थान पर दिन में केवल एक बार ज्वार और एक बार भाटा आता है तो उसे दैनिक ज्वार कहते हैं। यह 24 घंटे 52 मिनट के अंतर पर होता है। मेक्सिको की खाड़ी तथा फिलीपींस दीप समूह में दिन में एक बार ज्वार भाटा आता है।

ii. **अर्ध दैनिक ज्वार भाटा (Semidiurnal Tides)**– जब कहीं दिन में दो बार ज्वार भाटा आता है तो उसे अर्ध दैनिक ज्वार भाटा कहते हैं। यह प्रत्येक 12 घंटे 26 मिनट पश्चात आता है।

iii. **मिश्रित ज्वार (Mixed Tides)**– जब किसी समुद्र में दैनिक एवं अर्ध दैनिक ज्वार भाटा आते हैं तो उन्हें मिश्रित ज्वार भाटा कहते हैं। इसमें प्रत्येक बार ज्वार की ऊंचाई में भिन्नता होती है। प्रशांत महासागर और हिंद महासागर में मिश्रित ज्वार भाटा आते हैं।

3. अन्य प्रकार– ज्वार भाटा के कुछ अन्य भेद हैं–

i. **अपसौर तथा उपसौर ज्वार (Aphelion and Perihelion Tides) –** पृथ्वी के परिक्रमा पथ के दीर्घ वृत्तीय होने के कारण सूर्य व पृथ्वी की दो सापेक्ष स्थितियां उत्पन्न होती हैं। जब पृथ्वी सूर्य से सर्वाधिक दूरी पर होती है तो उस स्थिति को अपसौर (Aphelion) की स्थिति कहते हैं। अतः लघु ज्वार उत्पन्न होता है। इसके विपरीत जब पृथ्वी सूर्य से निकटतम होती है तो उस स्थिति को उपसौर (Perihelion) स्थिति कहते हैं। इस स्थिति में सूर्य का आकर्षण पृथ्वी पर अधिक होता है, इस कारण समुद्रों में वृहत ज्वार उत्पन्न होता है। उपर्युक्त चित्र पुनः देखिए।

ii. **अपभू तथा उपभू ज्वार (Apogean and Perigean Tides)**– चंद्रमा अपने अंडाकार कक्ष के साथ–साथ पृथ्वी की परिक्रमा करता है तो घूमता हुआ चंद्रमा जब पृथ्वी से निकटतम स्थिति में होता है तो उसकी ज्वार शक्ति, औसत शक्ति से कहीं अधिक होती है। ऐसी अवस्था में जो ज्वार आता है वह औसत ज्वार से 15–20 प्रतिशत अधिक बढ़ा हुआ होता है। ऐसे ज्वार को भूमि नीच ज्वार या उपभू (Perigean) कहते हैं। जब चंद्रमा पृथ्वी से अधिकतम दूरी अर्थात भूमि उच्च स्थिति में होता है तो उसकी

ज्वार उत्पादक शक्ति 20 प्रतिशत कम हो जाती है, ऐसे ज्वार को भूमि उच्च ज्वार या उपभू (Apogean) कहा जाता है।

iii. **आयन वृत्तीय ज्वार और विषुवत रेखीय ज्वार (Tropical and Equinoctial Tides)**– चंद्रमा की परिक्रमण दिशा पृथ्वी की परिक्रमण दिशा के ही समान है। सूर्य के समान चंद्रमा भी अपने परिक्रमण के समय विषुवत रेखा के उत्तर और दक्षिण को झुक जाता है। चंद्रमा का यह झुकाव सूर्य के वार्षिक झुकाव के बराबर होता है। किंतु चंद्रमा पृथ्वी का परिक्रमण $29\frac{1}{2}$ दिन में पूर्ण कर लेता है। जिसे संयुक्त मास (Synodic Month) कहते हैं। तारे की स्थिति के आधार पर चंद्रमा पृथ्वी की परिक्रमा $27\frac{1}{2}$ दिन में पूरी कर लेता है। जिसे नक्षत्र मास (Sidereal Month) कहते हैं। जब चंद्रमा का झुकाव उत्तर में अधिक होता है तो उसकी किरणें कर्क रेखा पर लंबवत होती है तथा वह कर्क रेखा के साथ–साथ पश्चिम की ओर अग्रसर होता है। इस प्रकार कर्क रेखा के साथ–साथ ज्वार केंद्र तथा उसके विपरीत मकर रेखा के साथ–साथ भी उच्च ज्वार उत्पन्न होते हैं। यह स्थिति माह में 2 बार आती है। इसे आयन वृत्तीय ज्वार (Tropical Tide) कहते हैं। इस प्रकार ज्वार भाटा ऊंचे और नीचे असमान आकार के होते हैं। इस ज्वार भाटा को दैनिक असमानता कहते हैं।

इस तरह से मार्च में दो बार चंद्रमा विषुवत रेखा पर लंबवत होता है तब दो उच्च ज्वार एवं दो निम्न ज्वारों की ऊंचाई समान होती है। इसे विषुव ज्वार (equinoctial tides) कहते हैं।

ज्वार–भाटे के समय में अंतर (Difference of Time Between Tides)

प्रत्येक स्थान पर सामान्यतः दिन में दो बार ज्वार आता है क्योंकि पृथ्वी 24 घंटे में अपने अक्ष पर एक घूर्णन पूरा करती है। इसलिए प्रत्येक स्थान पर 12 घंटे के बाद ज्वार आना चाहिए। एक चंद्रमा के सामने प्रत्यक्ष प्रभाव से और दूसरा 12 घंटे बाद ठीक विपरीत स्थिति में होने पर केंद्रोपसारी बल के प्रभाव से। लेकिन किसी स्थान पर ज्वार प्रतिदिन दोनों बार उसी समय में न आकर 26 मिनट देरी से आता है। अर्थात 12 घंटे 26 मिनट बाद दूसरा ज्वार आता है। इस अंतर का कारण है, पृथ्वी का एक परिक्रमण पूरा पूर्ण होने पर चंद्रमा भी अपने पथ पर आगे बढ़ जाता है। चंद्रमा 27 दिन 7 घंटे 43 मिनट $17\frac{1}{2}$ सेकंड अर्थात $27\frac{1}{2}$ दिन में पृथ्वी की परिक्रमा पूर्ण करता है। 24 घंटे या 1 दिन में यह वृत का $\frac{1}{28}$ भाग तय कर लेता है। पृथ्वी का वह स्थान चंद्रमा के समक्ष पहुंचने में 52 मिनट का समय लेता है। अतः प्रत्येक स्थान पर 12 घंटे 26 मिनट में ज्वार आता है।

$$\frac{24 \times 60 \times 1}{28} = 52 \text{ मिनट}$$

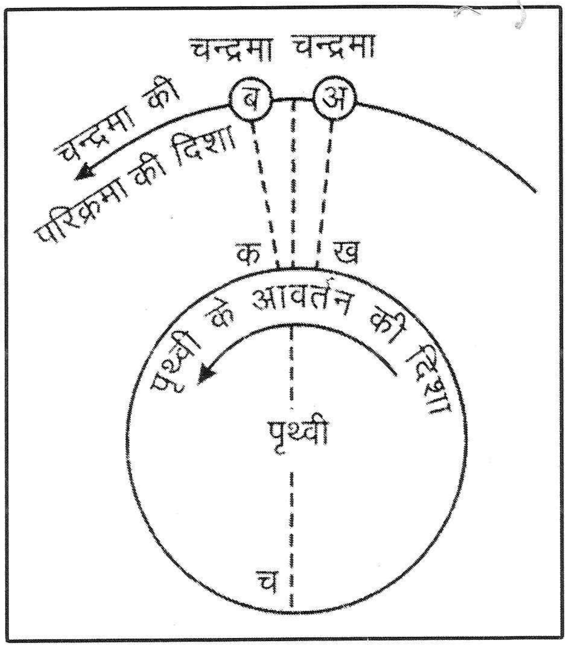

ज्वार भाटा के समय में देरी (अंतर)

ज्वार भाटा की उत्पत्ति के सिद्धांत (Theories of Origin of Tides)– ज्वार की उत्पत्ति के दो मॉडल है– 1. ज्वारों का संतुलन मॉडल, 2. ज्वारों का गतिक मॉडल।

1. संतुलन सिद्धांत (The Equilibrium Theory)– 1687 ईस्वी में सर्वप्रथम प्रयास सर आइजक न्यूटन ने किया था। इन्होंने गुरुत्वाकर्षण सिद्धांत पर बल दिया और बताया, ब्रह्मांड में प्रत्येक वस्तु में आकर्षण है जिससे सदैव संतुलन गुरुत्वाकर्षण बल द्वारा बना रहता है। यद्यपि सूर्य का आकर्षण बल चंद्रमा से अधिक है परंतु पृथ्वी के अत्यधिक नजदीक होने के कारण चंद्रमा के आकर्षण बल का प्रभाव पृथ्वी की सतह पर सूर्य की अपेक्षा अधिक होता है। उनके अनुसार जो पिंड जितना नजदीक होता है उसका आकर्षण बल उतना अधिक होता है। इसी से सागर जल में ज्वार उत्पन्न होते हैं।

पृथ्वी और चंद्रमा एक ही आकर्षण केंद्र की परिक्रमा करते हैं। इससे दो प्रकार के बल उत्पन्न होते हैं– 1. अपकेंद्रीय बल 2. अभिकेंद्रीय बल जो पृथ्वी की ओर कार्य करता है। पृथ्वी पर अपकेंद्रीय बल सर्वत्र समान होता है किंतु चंद्रमा का आकर्षण असमान होता है। चंद्रमा के ठीक सामने स्थित पृथ्वी का भाग उसके केंद्र से 6400 किलोमीटर नजदीक होता है। परिणामस्वरूप वहां पर आकर्षण बल केंद्रोपसारित बल से अधिक होता है। क्योंकि पृथ्वी ठोस तथा द्रव पदार्थों से बनी है अतः इस आकर्षण बल के कारण पृथ्वी का जल खिंच जाता है जिस कारण ज्वार जाता है। दोनों ध्रुवों को मिलाने वाली रेखा पर दोनों बल समान होते हैं परंतु विपरीत स्थान पर केंद्रोपसारित बल अभिकेंद्रीय बल से अधिक होता है। जिस कारण वहां पर ज्वार का अनुभव किया जाता है। इस तरह पृथ्वी पर एक ही समय में दो स्थानों पर ज्वार आ जाता है। एक ज्वार आकर्षण बल के बहिर्मुखी बल से अधिक होने तथा दूसरा ज्वार बहिर्मुखी बल के आकर्षण बल से अधिक होने के कारण आता है। ताकि उनमें संतुलन बना रहे। दो ज्वार वाले स्थानों के मध्य भाटा आता है (Low Tide or Ebb)। इसका कारण एक विशिष्ट कर्षण शक्ति (Tractive Force) है जो पृथ्वी के जल की सतह पर क्षैतिज रूप

से फैलती है। पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण सर्वत्र समान है। चंद्रमा का आकर्षण ध्रुवों से विषुवत रेखा की तरफ बढ़ता जाता है। इन दोनों शक्तियों के फलस्वरूप उत्पन्न कर्षण शक्ति 90 डिग्री पर 0 तथा 135 डिग्री पर सर्वाधिक होती हैं। इसलिए चंद्रमा के सामने एवं विपरीत वाले पृथ्वी के भाग में ज्वार तथा दोनों के मध्य 90 डिग्री कोण पर भाटा उत्पन्न होता है।

सीमाएं

1. पृथ्वी के धरातल पर स्थल व जल का वितरण असमान होने के कारण ज्वारीय तरंगें नियमित एवं संतुलित रूप में उत्पन्न होना संभव नहीं है।
2. पृथ्वी का आकार चौरस न होकर गोल है।
3. समुद्रों में गहराई और नितल की रचना एक जैसी नहीं है जिसका ज्वारीय प्रभाव लहरों की गति पर होता है।
4. ज्वार के समय जल का ऊपर उठना बिना किसी क्षैतिज गति से संभव नहीं है।

2. लाप्लास का गतिक सिद्धांत (Dynamical Theory of Laplace)– लाप्लास (1755) एक गणितक्ष तथा खगोलविद्य थे। उनके मत के अनुसार ज्वार की उत्पत्ति में लंबवत् की अपेक्षा क्षैतिज शक्तियों का योगदान अधिक होता है। उन्होंने गतिकी (Dynamics) के आधार पर महासागरीय गति की व्याख्या की। उन्होंने बताया कि दोलन (Oscillation) के कारण चंद्रमा की ओर जल का क्षैतिज संचालन होने से उसमें उभार पैदा होता है। पृथ्वी के घूर्णन के साथ ही पृथ्वी के विभिन्न भाग क्रमशः चंद्रमा के प्रभाव के अंतर्गत आते हैं और जल के क्षैतिज संचालन में परिवर्तन होता है।

3. विलियम हेवेल का प्रगामी तरंग सिद्धांत (Progressive Wave Theory of William Whewell)– ज्वार भाटा की सक्रियता एवं समय में अंतर से उत्पन्न जटिलताओं एवं विसंगतियों के समाधान हेतु सन् 1833 में विलियन हेवेल ने प्रगामी तरंग सिद्धांत का प्रतिपादन किया। इस सिद्धांत के अनुसार चंद्रमा के ज्वारोत्पादक बल से महासागरों में ज्वारीय तरंगें उत्पन्न होती हैं जिनका शिखर ज्वार तथा द्रोणी भाटा कहलाती है। महासागरों के दक्षिणी भाग में स्थल खंड की अल्पता से ज्वार उत्पादक बल के कारण दो विशाल ज्वारीय तरंगों का उद्‌भव होता है। इनमें से एक तरंग चंद्रमा के साथ–साथ पूर्व से पश्चिम की ओर तथा ठीक इसी समय दूसरी तरंग पृथ्वी की दूसरी ओर 180 डिग्री देशांतर की दूरी पर उद्‌भव होकर पूर्व से पश्चिम की ओर गतिशील होती है। इन दोनों तरंगों को प्राथमिक तरंग कहा जाता है। प्राथमिक तरंगों के उद्‌भव का कारण चंद्रमा का ज्वारोत्पादक बल है।

उन्होंने बताया कि यदि पृथ्वी पर सर्वत्र जल समान होता है तब यह तरंगें निर्बाध रूप से गतिमान होती है किंतु महाद्वीपों की स्थिति इनकी गतियों में अवरोध उत्पन्न करती है। इन अवरोधों के कारण प्राथमिक तरंगों से अपेक्षाकृत कम शक्तिशाली तरंगें उत्पन्न होती हैं जिन्हें गौण तरंगें कहते हैं। ये गौण तरंगें अटलांटिक, प्रशांत तथा हिंद महासागरों में उत्तर की ओर चलती हैं। ये तरंगें भी पूर्व से पश्चिम दिशा की ओर भ्रमण करती हैं। इसी बीच इनमें भी अन्य गौण तरंगें बन जाती हैं जो उत्तर की ओर खिसकती जाती हैं। इस तरह दक्षिण में उत्पन्न होकर ये ज्वारीय तरंगें निरंतर उत्तर की ओर सरकती जाती हैं। यद्यपि इनकी सक्रियता में कमी आती जाती है। प्राथमिक तरंगें चंद्रमा से प्रभावित होती हैं और गौण तरंगें स्वतंत्र रूप से भ्रमण करती हैं। दक्षिण में

उत्पन्न तरंगों के उत्तर में पहुंचने में निरंतर देरी होती जाती है। जिस कारण एक ही देशांतर पर स्थित विभिन्न स्थानों पर ज्वार में अंतर होता है। ये ज्वारीय तरंगें उत्तरी ध्रुव के पास निष्क्रिय हो जाती हैं।

जब इन तरंगों का शिखर तट के पास पहुंचता है तो ज्वार आता है। जब तरंग की द्रोणी आती है तो भाटा आता है। इसी प्रकार, हिंद महासागर, प्रशांत महासागर और अटलांटिक महासागर ज्वार की दृष्टि से दक्षिणी सागर में खाड़ी के समान हैं। दक्षिणी सागर में ज्वारीय तरंगें निर्मित होकर इन महासागरों में निरंतर उत्तर की ओर बढ़ती जाती हैं। इसी कारण इन्हें प्रगामी तरंग कहा जाता है। ज्वार के स्वभाव, समय तथा प्रकार महासागरों की गहराई एवं तट की बनावट से निर्धारित होते हैं।

सीमाएं

1. सामान्य रूप में ज्वार स्थानीय तत्व होते हैं, इनकी उत्पत्ति को दक्षिणी सागर में मान लेना तथा उत्तर की ओर अग्रसर होना न्यायोचित नहीं है।
2. उत्तर तथा दक्षिणी अटलांटिक महासागर में एक समय में दो स्थानों पर वृहद ज्वार देखे गए हैं, जो कि इस सिद्धांत के प्रतिकूल है।
3. एक ही देशांतर पर दक्षिण में स्थित स्थान की अपेक्षा उत्तर में स्थित स्थान पर ज्वार देर से उत्पन्न होना चाहिए किंतु पश्चिमी अटलांटिक महासागर में ह्वार्न अंतरीप तथा फेयरवेल अंतरीप (ग्रीनलैंड) दोनों के ज्वारों का समय लगभग समान है।
4. अनेक महासागरों में एक ही अक्षांश पर दैनिक एवं अर्धदैनिक दोनों प्रकार के ज्वार भाटा देखे गए हैं। अतः ज्वार के विभिन्न प्रकारों का उल्लेख नहीं किया गया।

आर.ए. हैरिस का स्थैतिक तरंग सिद्धांत (Stationary Wave Theory of R. A. Harris)– इस सिद्धांत का मूल उद्देश्य ज्वार भाटा के आधार पर पाई जाने वाली जटिलताओं एवं विसंगतियों का समाधान करना था। इनके अनुसार ज्वार भाटा की उत्पत्ति दक्षिणी महासागर की प्रगामी तरंगों से न होकर बल्कि ये तरंगें प्रत्येक महासागर में स्वतंत्र रूप से उत्पन्न होकर ज्वारों के उद्भव में योग देती हैं। उन्होंने ज्वार को विश्वव्यापी घटना ना मानकर स्थानीय घटना के रूप में स्वीकार किया। हैरिस ने महासागरों को अनेक दोलन क्षेत्रों में वर्गीकृत किया प्रत्येक में निस्पद रेखाओं की कल्पना की।

हेरिस ने अपने सिद्धांत प्रतिपादन के पहले एक प्रयोग किया जिसके निष्कर्षों पर यह सिद्धांत प्रतिपादित किया। एक आयताकार बर्तन में जल भरकर यदि उसके एक किनारे को हिलाया जाए या एक झटका दिया जाए तो बर्तन में एक किनारे के जल की सतह ऊपर उठ जाएगी तथा दूसरे किनारों पर वह नीचे हो जाएगी। इसके कारण जल में एक दोलन या कम्पन प्रारंभ हो जाता है। इस दोलन को स्थाई तरंग कहा गया है। दोलन के कारण जल तल में परिवर्तन एक सीधी रेखा के साथ–साथ होता है जहां पर जल–तल में कोई परिवर्तन नहीं आता। इसे उन्होंने निस्पंद रेखा कहा। एक बर्तन में दोलन की क्रिया को उन्होंने समकेंद्री दोलन प्रणाली कहा।

इसी प्रकार दो निस्पंद रेखाओं वाली दोलन प्रणाली को भी उन्होंने अपने प्रयोग से समझाया जिसमें दो रेखाओं के साथ–साथ जल में गति होती है। इसी तरह विभिन्न प्रकार के बेसिन में एक, दो या दो से अधिक स्थैतिक तरंगें उत्पन्न होती हैं।

टिप्पणी

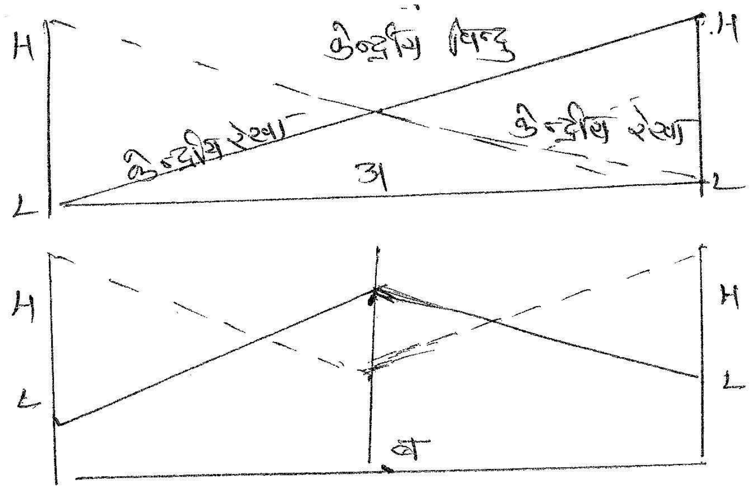

समकेंद्री (ब) द्विकेन्द्रीय दोलन प्रणाली

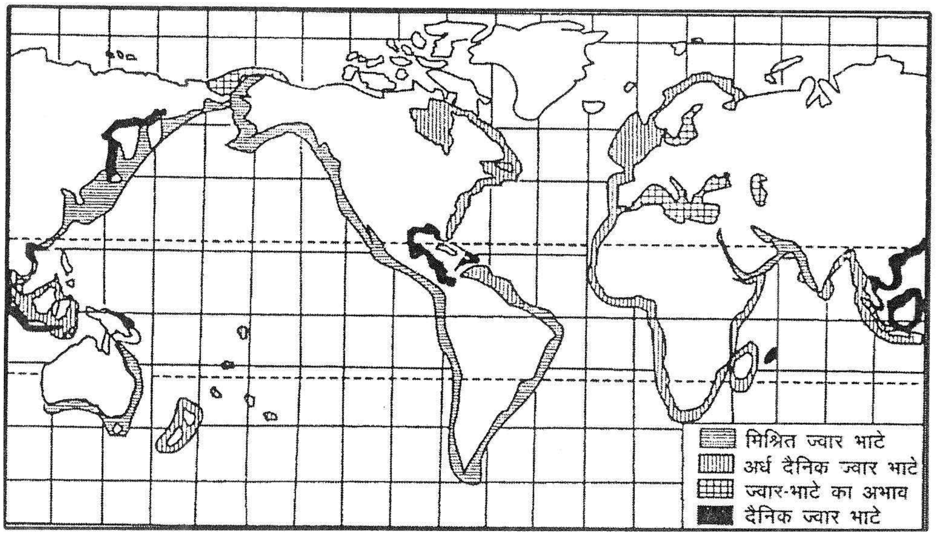

विभिन्न प्रकार के ज्वार भाटे

इस प्रकार प्रयोग के आधार पर हैरिस ने बताया कि पृथ्वी के विभिन्न महासागर जल पूर्ण बर्तन के समान हैं। इनमें चंद्रमा एवं सूर्य के ज्वारीय बल के कारण दोलन आरंभ होता है किंतु यह एक सीधी रेखा के साथ–साथ न होकर एक निस्पंद बिंदु के चारों ओर होता है। इसके दो कारण हैं– पृथ्वी का गोलीय आकार एवं उसकी गतिशीलता अर्थात घूर्णन और परिक्रमण गति।

यह निस्पंदन बिंदु जलीय खंड के केंद्र में होता है जिसके चारों ओर जल दोलन करता है। इससे भंवर बिंदु का निर्माण होता है। बेसिन के समान इस बिंदु पर जल तल समान रहता है जबकि उसके चतुर्दिक तरंगें घड़ी की सुई की विपरीत दिशा में गतिशील होती हैं। इस प्रकार की क्रिया सभी महासागरों में होती है। भंवर बिंदु से उत्पन्न तरंगें जब तट की ओर अग्रसर होती हैं तब आगे बढ़ने के क्रम में महाद्वीपों के प्रायद्वीपीय भाग, खाड़ियां एवं द्वीपों द्वारा अवरोध उत्पन्न होता है। जब ये तरंगें समुद्र तट के निकट पहुंचती हैं तो इनके श्रम के कारण ज्वार तथा द्रोणी से भाटा उत्पन्न होता है। सागर की गहराई घर्षण बल को प्रभावित करती है जिससे ज्वारों की ऊंचाई

प्रभावित होती है। यदि महासागरों की गहराई अधिक है तब घर्षण बल कम होगा और ज्वारों की ऊंचाई अधिक होगी।

यह सिद्धांत आनुभविक है इसके द्वारा विभिन्न महासागरों में ज्वार की उत्पत्ति संबंधी समस्या का समाधान हो जाता है।

ज्वार भाटा का वितरण

दैनिक ज्वार – हिंद महासागर में ऑस्ट्रेलिया के दक्षिणी पश्चिमी भाग में अटलांटिक महासागर में गैंजिस्को की खाड़ी, फ्लोरिडा से पनामा, कैरिबियन, प्रशांत महासागर में श्याम की खाड़ी, सुमात्रा, जावा, न्यू गिनी, जापान सागर आदि ये ज्वार दिन में केवल एक बार आते हैं।

अर्ध दैनिक– यह दिन में दो बार आते हैं और विषुवत रेखा पर तीव्र, ध्रुवों पर न्यून होते हैं। हिंद महासागर में– बंगाल, पाकिस्तान, पूर्वी अफ्रीका। कनाडा हडसन की खाड़ी, वेनेजुएला, ब्राजील तट, यूरोप, अफ्रीका के पूर्वी तट, प्रशांत महासागर, समोआ, न्यूजीलैंड।

मिश्रित ज्वार– हिंद महासागर, अरब सागर, श्रीलंका, मॉरीशस, सुमात्रा, जावा। अटलांटिक– ब्राजील के पूर्वी तट, अर्जेंटीना, फॉकलैंड, प्रशांत महासागर, चीन, कोरिया, मंचूरिया, जापान, ओखोटस्क, बेरिंग सागर, कनाडा, संयुक्त राज्य अमेरिका, पेरू, चिली, ऑस्ट्रेलिया, हवाई द्वीप आदि में आते हैं।

ज्वार भित्ति (Tidal Bore) – जब किसी नदी में ज्वारीय तरंगें प्रवेश करती हैं तब ऐसी स्थिति में समुद्र का जल नदी के प्रवाह में अवरोध पैदा करता है। इस प्रकार नदी में प्रवाहित होने वाला जल से यदि उसकी मात्रा ज्यादा है तो ज्वार की प्रगति में बाधा पड़ती है। फलस्वरूप नदी के उथले और तंग जल में ज्वारीय लहर बहुत ऊंची हो जाती है। इस ऊंची लहर का अग्रभाग दीवार की तरह खड़ा और पृष्ठ भाग लंबा हो जाता है। इसलिए इन ज्वारीय तरंगों को ज्वार भित्ति कहा जाता है। अमेजन नदी में ज्वार भित्तियों को पोरोरोका (Pororoca) सोन नदी में मस्कारे (Mascaret) भारत में हुगली नदी आदि विश्व विख्यात हैं। विश्व की सबसे ऊंची ज्वारीय लहर फंडी की खाड़ी में आती है।

ज्वारीय धाराएं (Tidal Currents) – छिछले सागरों में संकरी खाड़ियां एवं तटीय भागों में ज्वारीय भित्ति के स्थान पर ज्वारीय धाराएं चलती हैं। इनकी गति लहरों से डेढ़ से दोगुनी गति तक तक बढ़कर 10 से 18 किलोमीटर प्रति घंटा तक चलती है। इन्हें तीव्र जल दाब प्रेरित धारा भी कहते हैं।

ज्वार भाटा के प्रभाव (Effects of Tides)– ज्वार भाटा का मानव जीवन पर निम्न प्रभाव पड़ता है–

1. ज्वार भाटा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को सरल, सुगम और निरंतर बनाए रखने का उत्तम साधन है। ज्वार के समय जल की गहराई बढ़ जाती है, जिससे बड़े–बड़े जहाज बंदरगाह तक प्रवेश कर जाते हैं।
2. ज्वार–भाटा महासागरों की महत्वपूर्ण घटना है जिसका प्रभाव मानव एवं पर्यावरण के घटकों पर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से पड़ता है।

3. तटीय क्षेत्रों या बंदरगाहों पर अवसाद निक्षेप को ज्वार द्वारा समुद्रों में पहुंचा दिया जाता है, जिससे सफाई करने की आवश्यकता नहीं पड़ती।
4. विद्युत उत्पादन में ज्वारीय तरंगों का उपयोग किया जा रहा है। भारत की खंभात की खाड़ी, कच्छ का सुंदरवन डेल्टा क्षेत्र आदि में ज्वारीय ऊर्जा उत्पन्न की जा रही है।
5. ज्वार–भाटा के कारण नदियों का स्वच्छ मीठा जल और समुद्र का खारा पानी आपस में मिलते रहते हैं। मीठे पानी और खारे पानी के सहयोग से बर्फ गलाने में सहायता मिलती है। जिससे शीतोष्ण प्रदेशों के बंदरगाह ज्वार–भाटा के कारण इनके प्रभाव से बच जाते हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

7. गहरे महासागरीय भागों में घनत्व द्वारा चालित महासागरीय धाराओं को कहते हैं–

(क) ज्वार–भाटा (ख) थर्मोहेलाइन संचरण

(ग) सूनामी (घ) तूफान

8. सूर्य तथा चन्द्रमा की आकर्षण शक्तियों के कारण सागरीय जल के ऊपर उठने तथा गिरने को कहते हैं–

(क) ज्वार–भाटा (ख) उत्प्रवाह

(ग) अवप्रवाह (घ) कन्वेयर बेल्ट संचरण

5.6 महासागरीय निक्षेप : प्रवाल भितियां

महासागरीय नितल पर अवसादों के जमाव को महासागरीय निक्षेप कहते हैं। इसके अंतर्गत केवल उन निक्षेपों को शामिल किया जाता है, जो असंगठित एवं अव्यवस्थित अवसादों के रूप में होते हैं। इसके अलावा महासागरों में मिलने वाले जीवों, वनस्पतियों आदि के अवशेषों से भी अवसाद प्राप्त होते हैं। महासागर के एक भाग से दूसरे भाग में समुद्री क्षेत्रों में भिन्नता पाई जाती है। चट्टानों के निरंतर अपक्षय एवं अपरदन से उपलब्ध अवसाद से तथा जीवों और वनस्पतियों के अवशेषों से समुद्री निक्षेपों का निर्माण हुआ है। धरातल पर पाई जाने वाली अधिकांश अवसादी शैलों का निर्माण महासागरों के नितल पर संचित निक्षेपों से ही हुआ है। विश्व में वलित पर्वतों की उत्पत्ति के 'टेथिस' (Tethys) नामक उथले, संकरे और लम्बे समुद्र के नितल पर एकत्रित निक्षेपों से ही हुआ है। इसी तरह खनिज तेल महासागरीय निक्षेपों से ही प्राप्त होता है।

अवसादों का निक्षेपण अत्यंत मंद गति से होता है। अतः निक्षेपण की दर, निक्षेपण की मोटाई आदि के वैज्ञानिक विश्लेषण से परा भू–वैज्ञानिक इतिहास का पुनर्निर्माण किया जा सकता है। पृथ्वी की आयु का निर्धारण करने में महासागरीय निक्षेपों से सहायता मिलती है।

ट्वेनहोफेल (Twenhofel) के अनुसार ''निक्षेपों के अध्ययन में इनके स्रोत, उत्पत्ति के स्थान से निक्षेप के स्थान तक परिवहन की विधि तथा उनमें क्षैतिज तथा लंबवत अंतर की जानकारी सम्मिलित है।''

निक्षेपों का अध्ययन सर्वप्रथम ईसा पूर्व यूनानी विद्वान हेरोडोटस ने किया था जो इतिहास के पिता कहलाते हैं। महासागरीय निक्षेप का वैज्ञानिक अध्ययन सर जॉन मरे (Murray 1872), फिप्स (Phipps 1773), रेनार्ड (Renard) द्वारा चेलेंजर (Challenger Expedition) अभियान की रिपोर्ट के प्रकाशन (1891 ई.) के साथ हुआ। अतः महासागरीय निक्षेपों के अध्ययन के दौरान अवसादों के स्रोत को जानना आवश्यक है।

महासागरीय निक्षेप के स्रोत (Sources of Ocean Deposits)

महासागरों में पाए जाने वाले अवसाद विभिन्न स्रोतों से प्राप्त होते हैं–

1. स्थल जनित निक्षेप (Terrigenous Deposits)
2. सागर जनित निक्षेप (Pelagic Deposit)
3. ज्वालामुखी निक्षेप (Volcanic Deposits)
4. गंभीर सागरीय निक्षेप (Pleagie Deposits)
5. अजैविक–अवक्षेप (Inorganic Precipitates)
6. समुद्री जल में रासायनिक परिवर्तन से उत्पन्न पदार्थों के निक्षेप (Deposits from the products of chemical transformation occurring in sea water)

महासागरीय निक्षेपों का वर्गीकरण (Classification of Ocean Deposits)– महासागरीय निक्षेप को उत्पत्ति तथा समुद्र की गहराई के आधार पर दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है– स्थल जनित निक्षेप तथा सागर जनित निक्षेप।

1. **स्थल जनित निक्षेप–** जिनका उद्‌भव स्थल पर हुआ हो। ये निक्षेप मुख्यतः महाद्वीपीय मग्न तट एवं महाद्वीपीय ढाल पर पाए जाते हैं। इन निक्षेपों को लाल मृतिका (Red Clay) कहते हैं समुद्री ज्वालामुखी उदगार से निकले पदार्थों के निक्षेपण से कभी–कभी द्वीपों का निर्माण हो जाता है।

   स्थल जनित निक्षेप निक्षेप मुख्यतः महाद्वीपों के मग्न तटों और मग्न ढालों पर पाए जाते हैं। इन निक्षेप में स्थल से प्राप्त पदार्थों की अधिकता होती है जो आग्नेय एवं अवसादी शैलों के विखंडन एवं वियोजन से प्राप्त होने वाले अवसाद को नदियों, पवनों के द्वारा बहाकर महासागरों में ले जाती है। इनमें मुख्य रूप से वनस्पतियों, जीव जंतुओं, ज्वालामुखी पदार्थों के अवशेष विद्यमान रहते हैं। इनमें फेल्डस्पार, क्वाट्‌र्ज, अभ्रक, एम्फिबोल, पाइराक्सीन एवं अन्य भारी खनिजों के बहुत छोटे कण विद्यमान रहते हैं। इन की संरचना को बजरी (Graveles), रेत (Sand), सिल्ट (Silt), मृतिका (Clay), पंक (Mud) आदि प्रकारों में बांटा जाता है।

2. **सागर जनित निक्षेप** – Pelagic शब्द जर्मन भाषा के Pleagos शब्द से लिया गया है जिसका अर्थ समुद्र होता है। अतः सागर जनित विक्षेप वे निक्षेप होते हैं जो सागरीय जल में उत्पन्न होते हैं। ये निक्षेप दो प्रकार के होते हैं–

   (क) जैविक निक्षेप (Organic Deposits) – इसके अंतर्गत सागरीय जीवों के अस्थि पंजर तथा वनस्पतियों के अवशेष से प्राप्त पदार्थों को सम्मिलित किया जाता है। इन पदार्थों में चूने की मात्रा अधिक होती है केवल कुछ जीवों के खोल सिलिका से बनते हैं। समुद्री जैव पदार्थों का जमाव गर्म समुद्र में पाया जाता है। यह दो वर्गों में रखा जाता है–

   1. **तट तलवासी या नेरेटिक पदार्थ (Neritic Matters)** – यह सामान्यतः महाद्वीपीय मग्न तटों पर पाया जाता है एवं इसके ऊपर भूमिज पदार्थों का

आवरण पाया जाता है। इसके अंतर्गत सागरीय जीव के अस्थि पंजर एवं वनस्पतियों के अपघटित (Undecomposed) अवशेषों को सम्मिलित किया जाता है।

2. **अगाध सागरीय या पेलेजिक पदार्थ (Pelagic)** – इसके अंतर्गत गहन सागरीय निक्षेप आते हैं इसमें समुद्री जीवों के वे अवशेष सम्मिलित किए जाते हैं जो यांत्रिक एवं रासायनिक प्रक्रियाओं द्वारा कीचड़ में परिवर्तित हो चुके हैं। इसे ऊज (Oozes) भी कहा जाता है, यह दो प्रकार के होते हैं–

- **चूना प्रधान और ऊज (Calcareous)**– चुने की अधिकता के कारण ऊज शीघ्र ही घुल जाते हैं। अतः यह पदार्थ अपेक्षाकृत कम गहराई पर पाए जाते हैं प्रमुख जीवों के आधार पर चूना प्रधान को पुनः दो उप भागों में विभाजित किया जाता है।
- **तेरापॉड ऊज (Pteropod Ooze)** – इसमें चूने की मात्रा 80 प्रतिशत होती है। यह अधिकतम 2000 फैदम की गहराई तक जाती है। इसका निर्माण तेरापॉड नामक मोलस्का (Molluscs) द्वारा होता है।
- **ग्लोबिजेरिना ऊज (Globigerina Ooze)**– इसका निर्माण मुख्यतः ग्लोबिजेरिना नामक फोरामेनिफेरा जीव के द्वारा होता है। यह 2000–4000 फैदम के बीच पाया जाता है। इसका निक्षेप मुख्य रूप से निम्न अक्षांशों में पाया जाता है।
- **सिलिका प्रधान ऊज (Siliceous)**– यह जलजात निक्षेप है, कम घुलनशील होने के कारण यह अधिक गहराई में पाया जाता है। इसे पुनः दो भागों में बांटा जाता है–

1. **रेडियोलोरियन ऊज (Radiolarian Ooze)**– इसका निर्माण रेडियोलोरियन नामक जीव के अवशेषों द्वारा होता है जो एक प्रोटोजोआ (Protozoa) जीव है। साथ ही इसमें फोरामेनिफेरा वर्ग के जीवों के अवशेष भी मौजूद रहते हैं। यह ऊज 2000 से 5000 फैदम की गहराई तक पाया जाता है।
2. **डायटम ऊज (Diatom Ooze)**– इसका निर्माण अत्यंत सूक्ष्म पौधों द्वारा होता है। पेलेजिक निक्षेप संपूर्ण महासागर में 75 प्रतिशत भाग में फैला हुआ है।

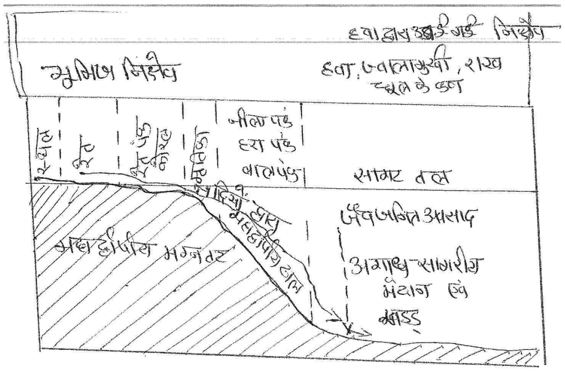

सागरीय तल का सामान्य क्षैतिज निक्षेप

टिप्पणी

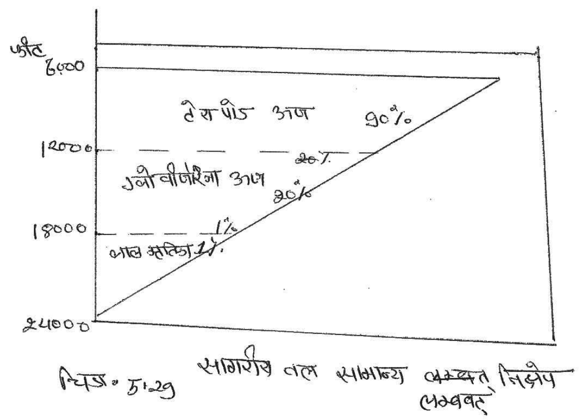

सागरीय तल का सामान्य लम्बवत निक्षेप

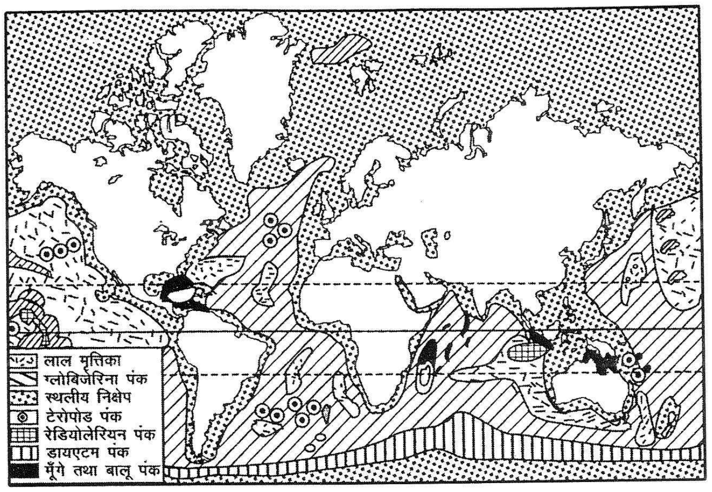

महासागरीय निक्षेपों का वितरण

डायटम में सिलिका तत्व की प्रधानता होती है। यह 600 से 2000 फैदम की गहराई तक होता है, लेकिन ये पौधे कभी–कभी 35000 फैदम की गहराई तक भी देखे जाते हैं।

	पेलेजिक निक्षेप के अवयव	प्रतिशत क्षेत्रफल
1.	लाल चीका	36.1 प्रतिशत
2.	ग्लोबिजेरिना ऊज	29.2 प्रतिशत
3.	डायटम ऊज	6.4 प्रतिशत
4.	रेडियोलोरियन	3.4 प्रतिशत
5.	तेरापॉन्ड	0.4 प्रतिशत

(ख) अजैविक निक्षेप (Inorganic Deposits)– निर्जीव निक्षेपों में निर्जीव तत्वों की मात्रा अधिक होती है, जिनमें मुख्य रुप से मैगनीज, लोहा, सिलिकेट, ऑक्साइड, फास्फेट, डोलोमाइट, पाइराइट, फैल्सफार के कण शामिल है। इन पदार्थों के रासायनिक संगठनों की प्रक्रिया इतनी जटिल होती है कि उन्हें विभाजन करना कठिन होता है। जब तापमान की वृद्धि

या कार्बन डाइऑक्साइड CO_2 की मात्रा में कमी होने के कारण वायुमंडल में परिवर्तन होता है। तो ठोस पदार्थ पृथ्वी की सतह पर गिरते हैं एवं महासागरों में निक्षेपित हो जाते हैं।

लाल चीका– अकार्बनिक पदार्थ में लाल मृतिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि अगाध सागरीय जमावों में यह सबसे अधिक क्षेत्रों में पाई जाती है। इसके निर्माण में एल्युमीनियम के सिलिकेट तथा लोहे के ऑक्साइड की मात्रा सर्वाधिक होती है। 3000 से 5000 फैदम तक ये निक्षेप मिलते हैं।

ब्रह्मांडीय पदार्थ या उल्का धूल (Meteorite Dust) – पृथ्वी पर उल्कापात की घटनाएं हमेशा घटती रहती हैं, जिससे राख सागर तथा स्थल में गिरती है और सागर में जमा हो जाती है।

गहराई के अनुसार महासागरीय निक्षेप

1. तटवर्ती निक्षेप (Littoral Deposits) – इन निक्षेपों में शिलाखंड, शिंगिल, कंकड़, बजरी, बालू आदि हैं।
2. उथले जल के निक्षेप (Shallow Water Deposits) – 100 फैदम की गहराई तक उथले जल के निक्षेप महाद्वीपीय मग्न तट के ब्राह्य किनारों तक विस्तृत होते हैं। इन निक्षेपों में रेत, पंक तथा प्रवाल पाए जाते हैं।
3. गंभीर प्रदेश के निक्षेप (Bathyal Deposits) – महाद्वीपीय ढाल पर पाए जाने वाले निक्षेपों को गंभीर प्रदेश के निक्षेप कहते हैं। इनमें पंक, नीला, हरा, लाल पंक तथा प्रवाल सम्मिलित है।
4. वितलीय निक्षेप (Abyssal Deposits)– गंभीर सागरीय मैदानों, गर्तों तथा द्रोणियों में पाए जाने वाले निक्षेपों को वितलीय निक्षेप कहते हैं। इनमें सिंधु पंक (वेरापोड, ग्लोविजरेना) रेडियो जेरियन डायटम तथा लाल मृतिका सम्मिलित हैं।

3. ज्वालामुखी निक्षेप– ज्वालामुखी उद्‌गार से प्राप्त होने वाले पदार्थ जैसे राख, लावा, प्यूमिस आदि के निक्षेप से इस निक्षेपों का निर्माण होता है। ज्वालामुखी उदगार से निकलने वाले पदार्थों को नदियां, वायु उड़ाकर या बहाकर समुद्रों में जमा करती है।

उल्का धूल– पृथ्वी पर उल्कापात की घटनाएं हमेशा घटती रहती हैं लेकिन अधिकांश उल्काएं वायुमंडल से गुजरते समय समाप्त हो जाती है। इनकी राख सागर एवं स्थल दोनों पर गिरती है। स्थल में गिरने वाली राख मृदा में मिल जाती है, जबकि समुद्र में गिरने वाली राख नितल पर आसानी से दिखाई देती है। उल्का धूल में लोहा एवं अन्य खनिज उपस्थित रहते हैं। इनमें कोन्ड्राइट तथा सिलिकन प्रमुख हैं।

जैविक पदार्थ निक्षेप– जैविक पदार्थों का स्रोत महासागर स्वयं है। इस निक्षेप में महासागर में उपस्थित जलीय जीव, वनस्पतियां प्रमुख हैं। यह दो प्रकार के हैं– नेरेटिक (तट तलवासी) एवं पेलैंजिक पदार्थ। अगाध सागरीय नेरेटिक पदार्थों में वनस्पतियों के सड़े गले पदार्थ, जलीय जीवों के अस्थि पंजर,

शैवाल प्रमुख हैं। ये पदार्थ मग्न तट की अपेक्षा महासागरीय गर्त में पाए जाते हैं। इनका आकार बहुत छोटा होता है।

4. **गंभीर सागरीय निक्षेप**– इसके अंतर्गत समुद्री जीव, वनस्पतियां, कवच, खोलों के अवशेष गहरे समुद्र में पाए जाते हैं। यह पूर्णता चूनामय, सिलिकामय, अवशेषों से निर्मित होते हैं। समुद्री अवसादों में चूना प्रधान तथा सिलिका प्रधान पदार्थों को आसानी से पहचाना जा सकता है। चूना प्रधान अवशेष दो वर्गों में विभक्त किए जाते हैं– पहला समुद्री जीवों के अवशेष तथा दूसरा समुद्र जल में उत्पन्न वनस्पतियों (Phytoplanktons) के अवशेष। इसी प्रकार सिलिका प्रधान अवशेष या तो समुद्र के सूक्ष्मजीवों या वनस्पतियों के होते हैं।

   चूना प्रधान (Calcareous Sediments) अवसाद भी दो वर्गों की वनस्पतियों से प्राप्त होते हैं– 1. कोकोलिथ तथा रेब्डोलिथ के अवशेष 2. चूना प्रधान शैवाल जाति वाली वनस्पतियां (Calcareous Algae) के अवशेष।

5. **अजैविक–अवक्षेप**– इसका निर्माण तब होता है जब किसी पदार्थ का विलेयता गुणनफल अत्यधिक हो जाता है। इसके अंतर्गत रासायनिक प्रक्रियाओं द्वारा समुद्र में निर्मित पदार्थों के निक्षेप को शामिल किया जाता है। उदाहरण के लिए किसी समुद्र अथवा लैगून में वाष्पीकरण की दर अधिक होने पर इन क्षेत्रों का निर्माण होता है। अजैविक निक्षेपों में डोलोमाइट, सिलिका, लोहा, मैगनीज, पाइराइट, फास्फेट आदि पाए जाते हैं। महासागरों के नितल में इन पदार्थों का निक्षेपण होता है।

6. **समुद्री जल में रासायनिक परिवर्तन से उत्पन्न पदार्थों के निक्षेप**– इन निक्षेपों की उत्पत्ति समुद्र जल तथा ठोस कणों की पारस्परिक क्रिया के कारण होती है। अंतर क्रिया विशेष रूप से ज्वालामुखी निसृत पदार्थों तथा समुद्र जल के बीच पाई जाती है। इनमें ग्लॉकोनाइट, फेल्डस्पार, फास्फोराइट मृतिका खनिज (Clay Minerals) उल्लेखनीय हैं।

पंक (Mud) – पंक के कण मृतिका से भी छोटे होते हैं। बजरी रेत की भांति पंक भी धरातल पर विघटन के कारण उत्पन्न होते हैं। पंक का निक्षेप शांत जल में होता है। इनका जमाव 100 से 1000 फैदम की गहराई में पाया जाता है। मर्रे ने रंग के आधार पर पंक को इस प्रकार बांटा है–

1. **नीला पंक (Blue Mud)**– लोहे के सल्फाइड तथा जैविक तत्वों से युक्त चट्टानों के विभिन्न विघटन से प्राप्त पदार्थों में नीले पंक का निर्माण होता है जो कि प्रायः जलमग्न तटों पर पाए जाते हैं। इनमें चूने का अंश 34 प्रतिशत होता है। ये बंद सागर में पाए जाते हैं।

2. **लाल पंक (Red Mud)**– इसमें लोहे के ऑक्साइड की मात्रा अधिक होती है। इसका रंग लाल या बादामी होता है। इसमें कैल्शियम कार्बोनेट का प्रतिशत 32 होता है। इसका निक्षेप पीत सागर, ब्राजील तट और अटलांटिक महासागर के नितल पर पाए जाते हैं ।

3. **हरा पंक (Green Mud)** – नीली पंक के सागरीय रासायनिक अपक्षय से रंग परिवर्तन के कारण हरे पंक का निर्माण होता है। इसमें पोटेशियम का सिलिकेट तथा लोहा पाया जाता है। इसमें सोने का अंश लगभग 50 प्रतिशत रहता है।

ये उत्तरी अमेरिका के प्रशांत महासागर तथा अटलांटिक तटों के पास, जापान ऑस्ट्रेलिया में 100 से 900 फैदम की गहराई में मिलता है।

मर्रे ने उपर्युक्त 3 पंकों के अलावा ज्वालामुखी पंक तथा प्रवाल पंक भी बताए हैं।

4. **ज्वालामुखी पंक (Volcanic Mud)**– यह पंक ज्वालामुखी के उद्गार से प्राप्त राख से बनता है। ज्वालामुखी द्वीपों तथा छिछले समुद्रों में मिलता है।

   (क) **बजरी (Gravel)** – यह मोटे कणों वाले निक्षेप होते हैं। इन के कणों का व्यास 2 से 256 मिलीमीटर तक होता है। बजरी कणों के व्यास के आधार पर इन निक्षेपों को अलग–अलग नाम से पुकारा जाता है। भारी होने के कारण यह अधिक दूर तक नहीं जा सकते। गोलाश्म 256 मिलीमीटर गोलाश्मिका 64 मिलीमीटर, गूटिका 4 मिलीमीटर, कणिका 2 मिलीमीटर।

   (ख) **रेत (Sand)** – गहराई के अनुसार बजरी के बाद रेत का निक्षेप मिलता है। रेत के कणों का व्यास 1 मिलीमीटर से $\frac{1}{16}$ मिली मीटर तक होता है। रेत के निर्माण में सभी प्रकार की चट्टानों के चूर्ण का योग होता है। रेत का आकार छोटा होने के कारण नदियां एवं पवनें उड़ा एवं बहा ले जाती हैं।

   (ग) **सिल्ट (Silt)**–$\frac{1}{17}$ मिली मीटर से $\frac{1}{256}$ मिली मीटर व्यास वाले कण को सिल्ट कहते हैं।

   (घ) **मृतिका (Clay)** –$\frac{1}{8192}$ मिलीमीटर व्यास वाले कण को मृतिका कहते हैं। मृतिका एक संयोजक तत्व होती है।

5. **प्रवाल पंक (Coral Mud)** – यह प्रवाल तथा अन्य चूना युक्त जीवों के अवशेषों से बनता है तथा प्रवाल द्वीपों के निकट पाया जाता है।

प्रवाल भित्तियां (Coral Reefs)– इन्हें मूंगों की चट्टानें भी कहते हैं। सागर में प्रवाल भित्तियों का निर्माण सागरीय जीव मूंगे या कोरल पॉलिव अस्थि पंजरों के समेकन तथा संयोजन द्वारा होता है। इसका अंग अत्यंत कोमल होता है। अपने कोमल शरीर की रक्षा हेतु जल से चूना लेकर कठोर घरोंदे की रचना करता है। प्रवाल एक प्रकार की कैल्केरियस चट्टान है तथा यह चूने पर निर्वाह करते हैं। ये जीव समूहों में रहते हैं। जब इन मूंगों की मृत्यु हो जाती है तो इनके अवशेष के ऊपर दूसरे मूंगे अपना खोल बना लेते हैं। यह प्रक्रिया लंबे समय तक चलती रहती है। जिसके कारण मूंगे के अवशेष से एक भित्ति का निर्माण हो जाता है जिसे प्रवाल भित्ति कहते हैं। ये मुख्यतः बस्तियां बनाकर रहते हैं। जब इन जीवों की एक पीढ़ी मर जाती है तो उनके ऊपर दूसरी पीढ़ी अपना बसेरा बना लेती है। कालांतर में एक बड़ी स्थूल भित्ति का निर्माण हो जाता है। इनका रंग और रूप निर्माण करने वाले जीवों पर निर्भर होता है। जीवों के अलावा करोड़ों शैवाल कैल्शियम कार्बोनेट निक्षेपित करके प्रवाल चट्टान का निर्माण करते हैं। प्रवाल ऊष्णकटिबंधीय महासागरों में पाए जाते हैं। प्रवाल में ऊष्णकटिबंधीय वर्षा वन की तुलना में अधिक विविधता पाई जाती है। इन शैवालों को सामुद्रिक वर्षा वन भी कहा जाता है।

प्रवाल के विकास की आवश्यक दशाएं (Ideal Condition for Coral Growth)– प्रवाल के विकास के लिए निम्न आवश्यक दशाएं हैं–

- **सागरीय जल का तापमान**– प्रवाल मुख्य रूप से ऊष्णकटिबंधीय महासागरों में पाए जाते हैं। क्योंकि इनको जीवित रहने के लिए 20 डिग्री से 21 डिग्री तापमान आवश्यक होता है इसलिए प्रवाल जीव 30 डिग्री उत्तरी एवं 30 डिग्री दक्षिणी अक्षांश पर पाए जाते हैं। प्रवाल ना तो अति ऊष्ण जल और ना ही ठंडे जल में पनप पाते हैं ।
- **सागरीय जल की गहराई** – प्रवाल 200 से 250 फीट (60–77 मीटर) गहराई तक ही मिलते हैं। अधिक गहराई में प्रवाल जीव मर जाते हैं। क्योंकि इतनी गहराई के बाद सूर्य का प्रकाश जल में प्रविष्ट नहीं कर पाता है तथा उनको ऑक्सीजन नहीं मिल पाती है। एम. एस. लैंड तथा जे. ई. हॉट मिस्टर के अनुसार प्रवाल 200 से 300 फीट की गहराई तक ही मिलते हैं। गार्डिनर ने 150–170 फैदम (213–310 मीटर) की गहराई तक प्रवालों को जीवित पाया है।
- **सागरीय जल की लवणता** – अत्याधिक लवणता प्रवाल जीव के लिए हानिकारक होती है क्योंकि इनमें चूने के कार्बोनेट की कमी होती है जबकि चूना प्रवाल का मुख्य भोजन है। प्रवाल के समुचित विकास के लिए 27 प्रतिशत से 30 प्रतिशत तक लवणता उपयुक्त होती है।
- **सागरीय स्वच्छ जल**– पूर्ण स्वच्छ जल भी प्रवाल के लिए हानिकारक होता है। यही कारण है कि नदियों के मुहाने पर प्रवाल जीव नहीं पाए जाते हैं। प्रवाल जीव के लिए पारदर्शक व औसत से कुछ कम खारा पानी विशेष अनुकूल रहता है। लेक के अनुसार नदियों के मुहानों पर कम तलछट निक्षेप होने पर ही प्रवाल का विकास संभव है। इसी कारण ऑस्ट्रेलिया के पूर्वी तट पर ही प्रवाल भित्ति का विकास संभव हुआ।
- **महासागरीय धाराएं तथा तरंगें** – सागरीय तरंगें तथा धाराएं प्रवालों के लिए लाभदायक होती हैं क्योंकि इनके द्वारा प्रवालों के लिए भोजन लाया जाता है। यही कारण है कि खुले सागरों की अपेक्षा बंद सागरों में कम प्रवाल पाए जाते हैं। प्रवाल स्थल स्वरूपों का विकास महाद्वीपों के पश्चिमी तटों के बजाय पूर्वी तटों पर होता है क्योंकि अधिकांश महाद्वीपों के पश्चिमी तटों पर ठंडी जलधाराएं बहती हैं। अतः यहां प्रवालों का अभाव है। पूर्वी तट पर बहने वाली गर्म धाराएं प्रवाल के विकास के लिए अधिक उपयोगी हैं।
- **सागरीय जल का गंदलापन** – प्रवाल के लिए जल स्वच्छ होना चाहिए परंतु जहां पर अवसाद के जल के साथ मिश्रण नियमित रूप से होता है वहां प्रवाल विकसित हो सकता है। परंतु जहां अचानक अवसाद लाया जाता है और जल गंदला हो जाता है वहां पर प्रवाल मर जाते हैं।
- **वर्षा जल** – एटले के अनुसार जहां लवण रहित जल होता है, वहां प्रवाल नहीं पनप पाते। उदाहरण के लिए विषुवत रेखीय क्षेत्रों में अधिक वर्षा के कारण प्रवाल विकसित नहीं हो पाते।
- **मग्न तट चबूतरा** – प्रवाल के विकास के लिए अंतःसागरीय चबूतरों की आवश्यकता पड़ती है जिनके ऊपर प्रवाल अपना घरोंदा बनाते हैं। अतः सागरीय

चबूतरे की स्थिति सागर तल से ऊपर 50 फैदम तक होना चाहिए। प्रवालों का विकास मग्न तटों के साथ–साथ उथले बैंकों में सरलता से होता है। यहां प्रवाल को उपयुक्त भोजन तथा ऑक्सीजन प्राप्त होती है। परंतु लैगून के गंदे जल में प्रवाल विकसित नहीं होते हैं।

- **मानवीय कारक**– मानवीय आर्थिक क्रियाकलापों यथा नगरीकरण औद्योगिकीकरण का विकास, वन विनाश आदि के द्वारा भूमंडलीय तापमान में वृद्धि होने से प्रवालों पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।
- **भूमंडलीय ताप वृद्धि**– संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा गठित 'जलवायु परिवर्तन के अंतर्शासकीय पैनल' की रिपोर्ट के अनुसार भविष्य में होने वाले जलवायु परिवर्तन को अगर रोका नहीं गया तो 30 वर्षों में प्रवाल का अस्तित्व खतरे में पड़ जाएगा।
- **महासागरीय जल का प्रदूषण**– औद्योगिक क्षेत्रों के कचरा एवं अपशिष्ट जल, नगरों से निकले कचरे, जल–मल का सागरों में विसर्जन तथा महासागर परिवहन द्वारा पेट्रोलियम टैंकों का पलटना एवं पेट्रोलियम का जहाजों से रिसना आदि से समुद्री जल प्रदूषित हो रहा है, जिससे भी प्रवाल जीव खतरे की स्थिति में हैं।

प्रवाल भित्तियों के प्रकार (Types of Coral Reefs)– उत्पत्ति एवं संरचना के आधार पर प्रवाल भित्ति के निम्न प्रकार हैं–

1. **अनुतट या अनुतटीय प्रवाल भित्ति (Fromgomg Reef)** – जो भित्ति किसी महाद्वीप अथवा द्वीप के किनारे निर्मित होती है उसे तटीय प्रवाल भित्ति कहते हैं। इनका निर्माण महाद्वीपीय मग्न तटों, खड़े ढालों के साथ–साथ होता है। भित्ति का निर्माण तट से 60 मीटर की गहराई से आरंभ होता है। समुद्र की ओर भित्ति का ढाल तीव्र तथा स्थल की ओर साधारण होता है। ऊपरी सतह असमान तथा उबड़–खाबड़ होती है। भित्ति यद्यपि स्थल भाग से सटी रहती हैं परंतु कभी–कभी इनके स्थल भाग के बीच अंतराल हो जाने से उनमें छोटी लैगून का निर्माण हो जाता है, जिन्हें बोट चैनल कहा जाता है। मग्न तटों पर स्थित ये भित्तियां चबूतरों के समान दिखाई देती हैं। कभी–कभी लहरें तथा पवन क्रिया के द्वारा तलछट एकत्रित हो जाता है तथा वनस्पतियां उग आती हैं। फ्लोरिडा, अंडमान निकोबार, सोसायटी द्वीप, महेशिया द्वीप, न्यू हेब्राइड्स में सकाऊ द्वीपों के साथ–साथ ऐसी भित्तियां पाई जाती हैं।

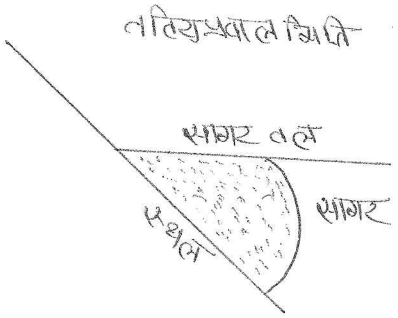

तटीय प्रवाल भित्ति

2. **अवरोधक प्रवाल भित्ति (Barrier Reef)**– जो प्रवाल भित्ति समुद्र तट से कुछ दूर हटकर बनी होती है उन्हें अवरोधक प्रवाल भित्ति कहते हैं। यह सभी प्रकार की भित्तियों से लंबी, विस्तृत, चौड़ी तथा ऊंची होती है। इन की चौड़ाई 300 मीटर तक हो सकती है। इनके बीच अनेक घाटियां भी हो सकती हैं। यह प्रवाल भित्ति स्थल से काफी दूर होती है। अवरोधक प्रवाल भित्ति अविच्छिन्न रूप में नहीं मिलती है वरन स्थान–स्थान पर यह टूटी हुई होती है। जिस कारण लैगून का संबंध खुले सागरों से बना रहता है। इन अंतरालों को ज्वारीय प्रदेश मार्ग (Tidal Inlets) कहते हैं। जिससे होकर जलयान भी जा सकते हैं।

   विश्व की सर्वप्रमुख अवरोधक प्रवाल भित्ति ग्रेट बैरियर रीफ है जो ऑस्ट्रेलिया के पूर्वी तट के साथ–साथ 9 डिग्री से 22 डिग्री दक्षिणी अक्षांशों के मध्य 1200 मील (2000 किलोमीटर) की लंबाई में पाई जाती है। इन भित्तियों का प्रसार बाहर की ओर अधिक नहीं होता। कभी–कभी एक भित्ति के साथ–साथ दूसरी भित्ति भी बन जाती है। न्यू कैलिडोनियन भित्ति संसार की दूसरी बड़ी भित्ति है।

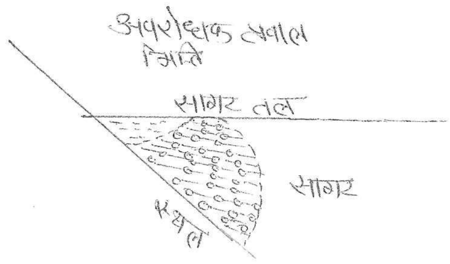

अवरोधक प्रवाल भित्ति

3. **वलयाकार प्रवाल भित्ति (Atoll)**– जिन प्रवाल भित्तियों की रचना घोड़े की नाल या मुद्रिका के आकार की होती है उसे वलयाकार प्रवाल भित्ति कहते हैं। यह स्थल से सैकड़ों मील दूर गहन सागरों में पाई जाती है। इन भित्तियों के मध्य में उथला लैगून स्थित होता है। लैगून की गहराई 80 से 140 मीटर तक पाई जाती है। इन भित्तियों की आकृति कभी–कभी अंडाकार होती है परंतु इसका कोई ना कोई भाग खुला अवश्य रहता है। इसके बीच लैगून होता है। इसकी ऊपरी सतह पर ताड़ के वृक्ष पाए जाते हैं। ये भित्तियां चारों ओर क्रमबद्ध नहीं होती हैं। दक्षिण प्रशांत महासागर में फिजी, ट्रंक, फुनाफूटी, बिकिनी आदि विश्व की वलयाकार प्रवाल भित्तियां हैं। इसके अलावा इंडोनेशिया सागर, चीन सागर, लाल सागर, ऑस्ट्रेलिया सागर में अधिकता से पाए जाते हैं।

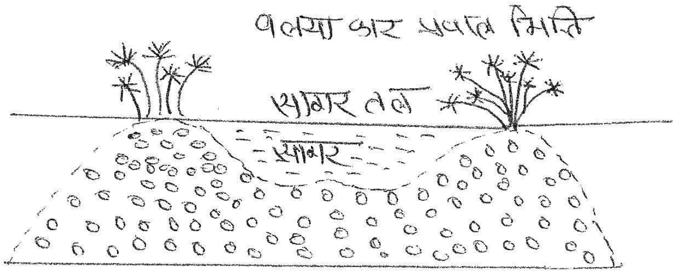

वलयाकार या एटॉल प्रवाल भित्ति

ऐटॉल तीन प्रकार के होते हैं–

1. वे ऐटॉल जिनके बीच द्वीप अनुपस्थित रहता है।
2. दूसरे वे जिन के मध्य में द्वीप पाया जाता है।
3. जिनके मध्य में शुरुआत में तो द्वीप अनुपस्थित होता है परंतु बाद में सागरीय तरंगों के अपरदन से एवं निक्षेपण से द्वीप का निर्माण होता है।

इन तीन प्रकार की भित्तियों के अलावा गौण प्रकार की प्रवाल भित्तियां पाई जाती है।

1. **फैरोस (Faros)**– ये छोटी वृत्ताकार भित्तियां हैं जो देखने में एटॉल जैसी लगती है। ये मलक्पन, फिजी, न्यूगिनी, मालदीव में मिलते हैं।
2. **पैच या पिनाकल भित्ति (Patch or Pinnacle Reef)**– यह प्रवाल के ढेर होते हैं जो एटॉल की लैगून में या प्रवाल रोधिका भित्ति के पीछे विकसित हो जाते हैं। कुछ भित्तियों की दीवारें नहीं होती बल्कि ऊपरी सतह चौरस होती है उन्हें टेबल भित्ति (Table Reefs) कहते हैं।
3. **मैक्वेल (Macwell) द्वारा दिए गए भित्तियों के वर्गानुसार (Classification of Reef according to Macwell)**– महासागरीय भित्ति जो सागर तली से 100 मीटर या इससे अधिक ऊपर होती है तथा दूसरी मग्न तटीय भित्तियां जो छिछले सागर में बनती हैं।
4. **प्रवाल द्वीप (Coral Islands)**– प्रवाल द्वीपों का निर्माण महासागरों में किसी ज्वालामुखी शिखर या द्वीप अथवा अन्य किसी उभरे भाग पर होता है। द्वीपों की रचना में प्रवाल के अतिरिक्त कैल्शियमी जीवों के रेत व गोलाश्म के निक्षेपों का भी योगदान होता है। ये सभी पदार्थ सागरीय लहरों द्वारा प्रवाल भित्तियों के निकट तथा ऊपर एकत्रित होते हैं। पवनों अथवा पक्षियों द्वारा वृक्षों के बीज यहां पहुंच जाते हैं, जिससे इन द्वीपों पर वनस्पति एवं पेड़ उग जाते हैं। कालांतर में इन द्वीपों के किनारे प्रवाल विकसित हो जाते हैं, जैसे लक्षद्वीप, मालद्वीप, कोकोस द्वीप, चोगोस द्वीप आदि प्रवाल निर्मित द्वीप हैं जो हिंद महासागर में स्थित हैं।

प्रवाल भित्तिओं का वितरण (Distribution of Coral Reefs)–

1. **ऊष्णकटिबंधीय प्रवाल पेटी (Tropical Belt)**– ऊष्णकटिबंधीय प्रवाल भित्तियां 25 डिग्री उत्तरी अक्षांश से 25 डिग्री दक्षिणी अक्षांश तक फैली हुई हैं। इन अक्षांशों में प्रवाल का भौगोलिक विकास आसानी से हो जाता है। ये प्रवाल जीव प्रशांत महासागर, अटलांटिक महासागर तथा हिंद महासागर में महाद्वीपों तथा अन्य छोटे–छोटे द्वीपों के निकट पाए जाते हैं। महाद्वीपों के पूर्वी भाग में प्रवाल जीवों का अधिक विकास हुआ है। अटलांटिक महासागर की अपेक्षा प्रशांत महासागर में प्रवाल जीवों का विकास अधिक हुआ है क्योंकि जीवों के लिए अनुकूल दशाएं हैं। ऑस्ट्रेलिया की ग्रेट बैरियर रीफ, इंडोनेशिया के सागरों में पूर्वी प्रशांत महासागर की कैलिफोर्निया की खाड़ी। 25 डिग्री दक्षिणी अक्षांश में भी अनेक प्रवाल भित्तियां स्थित हैं।
2. **सीमांत पेटी (Marginal Belt)**– इस भाग में प्रवालों का विकास 25 डिग्री उत्तर एवं 35 डिग्री उत्तरी तथा दक्षिणी अक्षांशों के मध्य आता है। यहां प्राचीन काल से प्रवाल श्रेणियां थी, लेकिन प्लीस्टोसीन हिम युग में समुद्र में जल सतह

से नीचे हो जाने के कारण ऐसी प्रवाल भित्तियां नष्ट हो गई। ये प्रवाल भित्तियां आज महासागरों में बहुत पुराने द्वीपों के अस्तित्व में पाई जाती हैं। इनमें से बहुत सी प्रवाल भित्तियां महासागरों में जल की सतह से कुछ नीचे काफी बड़े चबूतरे के रूप में दिखाई पड़ती हैं, उदाहरण– बरमूडा द्वीप, हवाई द्वीप आदि।

प्रवाल भित्तिओं की उत्पत्ति के सिद्धांत (Theories of the Origin of the Coral Reefs) – प्रवाल भित्तियों की उत्पत्ति एक जटिल समस्या है। इसके समाधान हेतु विभिन्न सिद्धांतों का प्रतिपादन दो आधारों पर किया गया। 1. प्लीस्टोसीन हिम युग में सागर तल नीचा होना (परिवर्तन) तथा 2. स्थल खंड की स्थिरता। तदनुसार प्रवाल संबंधी साक्ष्यों को 2 वर्गों में रखा गया– 1. अवतलन सिद्धांत 2. स्थिर स्थल सिद्धांत।

प्रवाल भित्तियों के संबंध में अनेक विद्वानों ने अनेक सिद्धांतों का प्रतिपादन किया– अवतलन सिद्धांत, भू–स्थल सिद्धांत, हिमानी नियंत्रण सिद्धांत, डेविस की परिकल्पना आदि।

डार्विन का अवतलन सिद्धांत (Subsidence Theory of Darwin) – चार्ल्स डार्विन ने 1837 में अवतलन सिद्धांत का प्रतिपादन किया एवं 1842 में इस सिद्धांत में कुछ संशोधन किये। अवतलन सिद्धांत का सर्वप्रथम प्रतिपादन कैमिलो ने किया था, परंतु पूर्ण एवं विस्तृत व्याख्या डार्विन द्वारा की गई थी। इसी सिद्धांत का स्वतंत्र रूप से डाना (Dana) महोदय ने भी प्रतिपादन किया। इसलिए इसे डार्विन–डाना अवतलन सिद्धांत भी कहते हैं। डार्विन के अनुसार जिस स्थल पर या द्वीप के साथ प्रवाल भित्ति बनती है, वह स्थिर नहीं होता है वरन उसमें क्रमशः अवतलन होता है। उन्होंने यह भी बताया कि तटीय प्रवाल भित्ति अवरोधक प्रवाल भित्ति तथा एटॉल प्रवाल भित्ति की क्रमिक विकासीय की अवस्थाएं हैं। इस सिद्धांत के अनुसार प्रवाल भित्तियों की उत्पत्ति समुद्री तल के धंसाव के कारण होती है। धसाव तथा प्रवाल भित्तियों की उत्पत्ति के संबंध को तीन अवस्थाओं द्वारा समझा जा सकता है।

प्रथम अवस्था– इस अवस्था में प्रवालों की उत्पत्ति छिछले सागर में होती है। प्रवाल का विस्तार समुद्र की ओर अधिक तथा तट की ओर कम होता है। इसका कारण यह है कि खुले समुद्र में प्रवाल की वृद्धि के कारण पर्याप्त लवणता तथा ऑक्सीजन प्राप्त हो जाता है। तट की और प्रवालों की क्रम वृद्धि के कारण तट तथा प्रवाल के बीच छिछले जल की झील बन जाती है, जिसे लैगून कहते हैं।

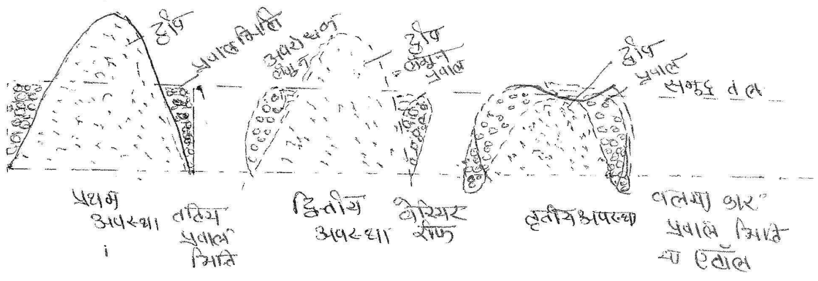

डार्विन डाना का अवतलन सिद्धांत

द्वितीय अवस्था– इस अवस्था में धंसाव आरंभ हो जाता है। धंसाव के कारण आधार के प्रवालों की मृत्यु हो जाती है और ऊपर के प्रवाल समुद्र तल से अधिक नीचे हो जाते हैं। मरे हुए प्रवालों में नए प्रवाल पैदा हो जाते हैं अर्थात ऊपर के प्रवालों की

वृद्धि होती है। प्रवाल की वृद्धि धंसाव की गति पर निर्भर करती है। धंसाव के कारण लैगून चौड़ी हो जाती है और तटीय प्रवाल द्वीप के चारों ओर फैल कर अवरोध प्रवाल भित्ति (Barrier Reef) का रूप धारण कर लेती है।

टिप्पणी

तृतीय अवस्था– तृतीय अवस्था में और भी अधिक धसाव शुरू हो जाता है और द्वीप जलमग्न हो जाता है। अवरोधक प्रवाल भित्ति वलयाकार रूप धारण कर लेती है और इसके अंदर केवल लैगून रह जाती है। कभी–कभी इस लैगून के अंदर छोटा सा द्वीप बन जाता है जिसे प्रवाल दीप कहते हैं। डार्विन के अनुसार प्रवाल द्वीप का निरंतर धंसाव होने से ऐसा होता है। यही कारण है कि प्रवाल दीपों का विकास प्रशांत महासागर के गहरे भागों में अधिक होता है।

अवतलन सिद्धांत के पक्ष (प्रमाण)– डार्विन महोदय ने स्वयं यह निरीक्षण किया था कि प्रवाल रोधिका के तटीय भाग काफी कटे–फटे तथा लहरों द्वारा अपरदित होते हैं। चूंकि गहराई पर समुद्री लहरों का प्रभाव नगण्य ही होता है। अतः ऐसे कटे–फटे तटीय भाग निश्चित ही जिमज्जन की क्रिया के द्वारा अवतलित हुए होंगे।

प्रवाल भित्तियों का आधार समुद्र से इतनी गहराई पर मिलता है जहां प्रवाल कीट जीवित नहीं रह सकता। सन 1896 में फुनाफूटी एटाल में की गई बंधन क्रिया से प्रवाल निर्मित चट्टानों में 1114 फीट मोटी परतें मिली। इसी प्रकार ग्रेट बैरियर रीफ में काफी गहराई पर प्रवाल जीव मिले। 1947 में बिकनी एटॉल में 2556 फीट गहराई तक प्रवाल निर्मित शैलें मिली। इसी तरह से 1954 में एनिविटोक्स एटॉल पर ड्रिलिंग करने पर 4,222 फीट गहराई पर उथले सागर में निर्मित इओसीन युग की चूने की चट्टान के नीचे बेसाल्ट सेल प्राप्त हुआ। इसी तरह से प्लेट विवर्तनिकी के द्वारा अवतलन के सिद्धांत का उत्तर प्राप्त होता है। प्रवाल कीट अवशेषों पर 1 सेंटीमीटर प्रति वर्ष की दर से भित्तियों का निर्माण होता है। अतः उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि सर्वप्रथम प्रवाल भित्तियों का निर्माण उथले सागर के जलमग्न चबूतरों पर हुआ जो कालांतर में अवतलन के कारण अधिक गहराई तक निमज्जित हो गये। जीवित रहने के लिए प्रवाल कीट क्रमशः ऊपर की ओर अपने घरोंदों का विकास करने में जुटे रहे। इस तरह से अवतलन की गति प्रवाल भित्ति के ऊपर की ओर विकसित होने की गति से अधिक तीव्र नहीं होनी चाहिए।

पक्ष में तत्व

1. तटीय और अवतटीय प्रवाल भित्ति से अवरोधक एवं वलयाकार प्रवाल भित्तियों का विकास निमज्जन के बिना संभव नहीं है।
2. लैगून का छिछलापन यथावत बना रहना अवतलन की प्रक्रिया का संकेत देता है।
3. प्रवाल द्वीपों के निकट तटों पर खाड़ियों का पाया जाना अवतलन का सूचक है।
4. हवाई द्वीप एवं इंडोनेशिया के द्वीपों में काफी गहराई तक जल में डूबी प्राचीन प्रवाल भित्तियों का मिलना भी अवतलन को सिद्ध करता है।
5. प्रवाल भित्तियों के आधार की ओर मोटाई क्रमशः बढ़ती जाती है। जिससे यह सिद्ध होता है कि प्रवाल भित्तियों का निर्माण जलमग्न चबूतरे पर हुआ जो क्रमशः धंसता गया।

सीमाएं

1. यदि तटीय प्रवाल भित्ति अवरोधक प्रवाल भित्ति तथा एटॉल, प्रवाल भित्तियों की विकासीय अवस्थाएं हैं तो एक ही द्वीप के साथ–साथ एक ओर तटीय प्रवाल भित्ति तथा दूसरी ओर अवरोधी प्रवाल भित्तियों को साथ–साथ नहीं मिलना चाहिए। परंतु नई खोजों के आधार पर इस तरह के अनेक प्रमाण मिलते हैं।
2. यदि डार्विन के सिद्धांत को मान लिया जाए तो अवतलन के कारण प्रशांत महासागर के अधिकांश द्वीप जल मग्न होकर अदृश्य हो जाएंगे।
3. सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ है कि एटॉल का निर्माण केवल उथले चबूतरों पर हुआ है न कि गहराई में डूबी हुई पर्वतों की चोटियों पर। इस तत्व से इस सिद्धांत का खंडन होता है।

मर्रे का स्थिर स्थल सिद्धांत (Stand Still Theory of Murray)

मर्रे ने स्थिर स्थल सिद्धांत का प्रतिपादन 1880 में किया था। इसके अलावा इस सिद्धांत के समर्थक आगाशीज (Agassiz), गार्डिनर (Gardiner), रीन (Rein), ह्वार्टन (Wharton) तथा सेम्पर (Semper's) आदि विद्वान हैं। इस सिद्धांत की परिकल्पना डार्विन के अवतलन सिद्धांत के खंडन पर आधारित है। यह उमज्जन या अवतलन के बजाय उसकी स्थिरता पर आधारित है। इनकी मान्यता है–

- प्रवाल भित्ति और एटॉल का निर्माण स्थिर सागर तल में अंतःसागरीय चबूतरों पर होता है।
- कतिपय प्रवाल भित्ति और एटॉल का निर्माण सागर तल के अवतलन से प्राप्त चबूतरों पर होता है।

मर्रे का सिद्धांत प्रथम वर्ग के अंतर्गत आता है। इन्होंने बताया कि प्रवाल 30 फैदम (180 फीट) की गहराई तक पनप सकते हैं। प्रारंभ में प्रवाल का विकास ऊपर की ओर तथा आगे चलकर बाहर की ओर होने लगता है। तटीय प्रवाल में निरंतर विकास के कारण अवरोधक प्रवाल भित्ति का निर्माण होता है। उन्होंने बताया सागर तल तथा स्थल स्थिर होते हैं। सागरतल के नीचे अनेक चबूतरे ज्वालामुखी शिखर द्वीप आदि होते हैं, जिनके ऊपर प्रवाल भित्ति का निर्माण होता है। यदि ये प्रवाल की गहराई से ऊपर या नीचे होते हैं तो उन की प्राप्ति निम्न रूपों में होती है–

1. यदि ज्वालामुखी शिखर या प्रवाल द्वीप (सागर तल से 180 फीट) से ऊपर है तो उसका अपरदन तथा घुलन क्रिया द्वारा अवनयन हो जाता है और
2. यदि वह प्रवाल तल से नीचे है तो उस पर अंतःसागरीय पेलेजिक जमाव होता है जिस कारण आवश्यक गहराई 30 फैदम प्राप्त हो जाती है।

स्थल प्रवाल भित्ति के बीच के भाग घुल जाने के कारण लैगून का निर्माण होता है। अतः सागरीय चबूतरों के शीर्ष पर प्रवाल के चतुर्दिक विकास के कारण एटॉल का निर्माण होता है।

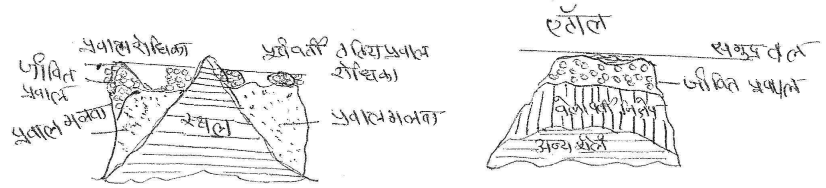

मर्रे के अनुसार प्रवाल भित्ति का निर्माण

मर्रे के सिद्धांत के पक्ष में प्रमाण

1. सभी महासागरों में अनेक जलमग्न ज्वालामुखी चोटियां पाई जाती हैं जिन पर प्रवाल भित्तियों का निर्माण हुआ है। कुछ चोटियों पर अपरदन तथा विलयन के चिह्न पाए गए। सालोमन द्वीप उदाहरण है–
2. मर्रे ने अपने मत में कहा है कि चूने के घुल जाने से लैगून की उत्पत्ति होती है। चूने का पत्थर समुद्री जल में घुल जाता है जिससे प्रवाल तथा तट के बीच लैगून बन जाती है।
3. ऐसी अनेक प्रवाल भित्तियां पाई गईं जिनकी रचना सागर में डूबे हुए पठारों पर हुई है।
4. अधिकांश प्रवाल भित्तियों की मोटाई 60 मीटर से अधिक है।
5. ऐसे अनेक एटॉल पाए गए जिन के निर्माण में अवतलन की कोई भूमिका नहीं है।

सीमाएं

1. मर्रे के अनुसार प्रवाल भित्ति के निर्माण के लिए अनेक अंतःसागरीय शिखर तथा चबूतरे होने चाहिए जो कि संभव नहीं है।
2. यदि स्थल स्थिर है तो लैगून जमाव द्वारा भर जाएगी और उसका अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा।
3. मर्रे के अनुसार प्रवाल की गहराई 180 फीट (30 फैदम) से अधिक नहीं है परंतु इससे अधिक गहराई में भी प्रवाल भित्ति पाई गई हैं।

डेली का हिमानी नियंत्रण सिद्धांत (Glacial Control Theory of Daly's)

डेली ने अपने सिद्धांत का प्रतिपादन 1915 में किया था। प्लीस्टेसीन हिम काल के समय सागरीय जल के हिम में बदल जाने के कारण सागरतल में 33 से 38 फैदम तक अवनयन (Lowering) हो गया। इन्हें पूर्णतः विश्वास था कि प्लीस्टोसीन हिम युग के बाद ही सागरों में प्रवाल भित्तियों का निर्माण हुआ। इनके मतानुसार प्रवाल भित्तियों के विकास एवं समुद्र जल के तापमान में घनिष्ठ संबंध है। इन्होंने इस आधार पर प्रवाल भित्तियों एवं एटॉल की उत्पत्ति संबंधी व्याख्या की।

1909 में हवाई द्वीप की प्रवाल भित्तियों का अध्ययन करते समय डेली के अनुसार– 1. बड़ी मात्रा में प्रवाल भित्तियां संकरी थी एवं मोनाकी पर्वत पर हिमनद के चिन्ह स्पष्ट रूप से दिखाई दिए।

प्लीस्टोसीन हिम युग में वृहद स्तर पर हिमावरण हुआ था जिसके कारण समुद्र जल 30–35 फैदम निम्न हो गया था। साथ ही साथ समुद्र जल के तापमान में गिरावट

आई, जिससे प्रवालों की मृत्यु हो गई। समुद्र जल के अवनयन से अनेक महाद्वीपीय चबूतरों तथा सोपानों का निर्माण हुआ। हिम काल के अवसान के बाद हिम के जल में परिणित हो जाने से सागर तल पुनः 33 से 38 फैदम ऊपर उठ गया। परिणामस्वरूप अपरदित चबूतरे 38 फैदम की गहराई तक डूब गए। जो प्रवाल बचे रह गए वे तथा नए प्रवाल जलमग्न संकरे चबूतरों पर अपना घरौंदा बनाने लगे जिस कारण तटीय प्रवाल भित्ति का निर्माण हुआ।

चौड़े चबूतरों पर अवरोधक प्रवाल भित्ति का निर्माण हुआ। एटॉल का निर्माण एकाकी अंततः सागरीय पठारों के ऊपर हुआ। प्रवाल भित्ति तथा स्थल के मध्य समान गहराई वाले लैगून का निर्माण हुआ। अतः प्रवाल भित्ति का निर्माण तथा सागर तल के उत्थान में घनिष्ठ संबंध है।

सीमाएं

1. यदि सागर तल में अवनयन हुआ होता तो तटों तथा द्वीपीय किनारों पर क्लिफ का निर्माण हुआ होगा, जिन्हें इस समय परिलक्षित होना चाहिए परंतु ऐसे क्लिफ दृष्टिगत नहीं होते हैं। वास्तव में उस समय प्रवाल भित्तियों के कारण ही तटों पर क्लिफ नहीं बन पाए होंगे।
2. जिन अंतःसागरीय चबूतरों पर एटॉल का निर्माण हुआ है उनमें से अधिकांश इतने विस्तृत हैं कि हिम युग में समुद्री अपघर्षण से उनका निर्माण संभव नहीं है।
3. हिम युग में समुद्र के तापमान में कमी तथा जल का गंदलापन हिम अपरदित क्षेत्रों से बहुत दूर तक पाया जाता है, इसमें संदेह है।

डेविस की परिकल्पना (Concept of W.M. Davis) – विलियम मोरिस डेविस ने सन 1914–18 में प्रवाल भित्तियों के निर्माण संबंधी प्राचीन सिद्धांत– अवतलन सिद्धांत को पुनर्जीवित किया तथा अनेक भौतिक प्रमाण प्रस्तुत किए। उन्होंने प्रवाल भित्तियों के संबंध में तत्वों की भू–आकृतियों उनकी विशेषताओं का विश्लेषण करके उनकी उत्पत्ति एवं संरचना के अध्ययन हेतु सर्वथा नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया।

डेविस ने प्रवाल भित्तियों के संदर्भ में निमज्जित घाटियों तथा भृगुओं (Cliffs) को अपने निष्कर्षों का मुख्य आधार बनाया। इन्होंने अपनी पुस्तक (The Coral Reef Problem) में प्रवाल भित्तियों की उत्पत्ति संबंधी 12 सिद्धांतों का विवेचन किया। डेविस के अनुसार प्रवालों का विकास अवतरित होते स्थल के साथ ही होने लगता है क्योंकि स्थल के साथ–साथ क्लिफ नहीं मिलते हैं। कोरल सागर में टेढ़ी–मेढ़ी एवं कटी–फटी तटरेखा अवतलन एवं स्थल के निमज्जन को प्रमाणित करती है। इनकी मान्यता है कि सागरीय अवसादों के कारण ही अधिकांश प्रवाल भित्तियों के लैगून के समान गहराई एवं उनके नितल का चपटापन है जबकि लैगून का छिछलापन अवसादों में लगातार हो रहे निक्षेपण के कारण होता है। इस तरह जलमग्न अंतःसागरीय चबूतरों में अवसाद निक्षेपण होने से लैगून अवसादों से भर जाएगी और जल का बहाव बाहर की ओर होने लगेगा जिससे प्रवाल मर जाएंगे। वहीं दूसरी ओर स्थल का लगातार निमज्जन हो रहा है तो लैगूनों में अवसादों की मात्रा बढ़ जाएगी जिससे लैगून में जल की गहराई यथावत रहेगी।

डेविस महोदय ने अपनी परिकल्पना में हिम युग में सागर तल के उत्थान एवं अवतलन, जल के तापमान में परिवर्तन आदि को भी महत्व दिया। इनके अनुसार प्रवाल

भित्ति एटॉल का अध्ययन करने के लिए मग्न घाटियों, प्रवाल भित्तियों, क्लिफ, अवसाद विसर्जन आदि का सूक्ष्मता से निरीक्षण करना आवश्यक है। डेविस ने डार्विन एवं डाना के विचारों को मान्यता दी तथा कहा अवतलन सिद्धांत तथा हिमानी नियंत्रण सिद्धांत एक दूसरे के पूरक हैं।

प्रवाल विरंजन (Coral Bleaching) – प्रवाल विरंजन से तात्पर्य प्रवाल के प्राकृतिक रंग में समुद्री जल के तापमान में दीर्घकालीन वृद्धि के फलस्वरूप होने वाले परिवर्तन से है। प्रवाल विरंजन का अर्थ होता है शैवाल (Algae) का श्वेत रंग होने से प्रकाश संश्लेषण (Photosynthesis) न होने के कारण शैवाल के अभाव में प्रवाल का मर जाना। भूमंडलीय तापन (Global Warming) को प्रवाल विरंजन का प्रमुख कारण चिन्हित किया गया है। वस्तुतः प्रवाल कीट (Coral Polyps) अपने भीतर ऊर्जा की पूर्ति के लिए सूक्ष्म शैवालों (Zooxanthella) (जूजैन्थेला–जुक्साथलाई शैवाल) पर आश्रित रहते हैं। अर्थात प्रवाल इन्हीं शैवालों से आहार ग्रहण करते हैं। अतः प्रवाल की वृद्धि इन शैवालों की समृद्धि, बहुलता एवं प्राप्ति पर निर्भर करती है। ये सूक्ष्म शैवाल (Algae) प्रवाल जीव के ऊत्तकों (Tissues) में निवास किए रहते हैं। मूंगों के विभिन्न मनमोहक रंग जूजैन्थेलाओं (Zooxanthella) की प्रकाश संश्लेषण (Photosynthesis) की क्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं। जब सागरीय जल के औसत तापमान में 1 डिग्री सेंटीग्रेड से अधिक वृद्धि हो जाती है तो शैवाल का रंग सफेद हो जाता है क्योंकि प्रवाल इन्हीं शैवाल से आहार ग्रहण करते हैं, अतः प्रवाल की वृद्धि शैवालों की समृद्धि, बहुलता एवं प्राप्ति पर निर्भर करती है। हरे रंग के शैवाल प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया द्वारा अपनी वृद्धि करते हैं जब इनका विरंजन (हरे रंग का सफेद रंग में बदलना) हो जाता है तो शैवाल समाप्त होने लगते हैं। परिणामस्वरूप प्रचुर आहार के अभाव में प्रवाल मरने लगते हैं। इस समस्त प्रक्रिया को प्रवाल विरंजन कहते हैं।

प्रवाल जंतु के शरीर के बाह्य भाग में जुक्साथलाई शैवाल रहते हैं। प्रवाल के भिन्न रंग इन्हीं शैवालों के कारण संभव हो पाता है। सागरीय जल के ताप में वृद्धि होने से प्रवाल जंतु इन शैवालों को अपने शरीर से निष्कासित कर देते हैं। परिणामस्वरुप ये प्रवाल रंगहीन हो जाते हैं तथा श्वेत रंग के हो जाते हैं। इस प्रक्रिया को प्रवाल विरंजन कहते हैं। चूंकि प्रवालों के आहार की पूर्ति इन्हीं शैवालों से होती है अतः शैवाल निकल जाने पर प्रवाल भुखमरी से मर जाते हैं।

विरंजित प्रवाल पुनः ठीक हो सकते हैं किंतु इसके लिए निम्न तापमान वाले जल की आवश्यकता होती है। जब तापमान पुनः सामान्य हो जाता है तब कोरल रीफ की सुंदरता लौट आती है।

प्रवाल विरंजन के अन्य कारक

- पराबैंगनी किरणों के विकिरण में वृद्धि
- भारी वर्षा एवं बाढ़
- अवसादों में वृद्धि
- समुद्री प्रदूषण
- प्रवाल में होने वाले संक्रमण रोग
- औद्योगिक प्रतिष्ठानों से निकलने वाला गंदा जल

- कोरल खनन
- आर्द्र–भूमि का भरना
- अल–निनो का प्रभाव

प्रवाल विरंजन के स्तर (Level of Coral Bleaching)

- कैटास्ट्रॉफिक विरंजन– जब 70 प्रतिशत प्रवाल विरंजन से प्रभावित हों जैसे 1997–98 में मालदीव, सिंगापुर, श्रीलंका आदि प्रवाल विरंजन।
- प्रचंड विरंजन (Severe Bleaching) – जब 50 प्रतिशत से 70 प्रतिशत प्रवाल मर जाते हैं, जैसे 1997–98 में केन्या, सेसलीज, थाईलैंड आदि।
- सामान्य विरंजन 20–50 प्रतिशत प्रवालों का पुनर्जीवन संभव।
- नगण्य विरंजन (Insignificant or no Bleaching) का प्रभाव नगण्य होता है क्योंकि प्रवाल इसे बर्दाश्त कर लेते हैं।

प्रवाल विरंजन की घटनाएं – सन 1882–83 में प्रबल एल–निनो–दक्षिणी दोलन (ENSO) परिघटना के कारण ऊष्णकटिबंधीय प्रशांत महासागर के जल के तापमान में वृद्धि होने से व्यापक प्रवाल विरंजन की घटना हुई। अतः 1982–83 में (ENSO) के द्वारा प्रवाल विरंजन परिघटना के कारण प्रवालों की दो प्रजातियों का विलोपन हो गया। 1997–98 में भारत के अंडमान निकोबार द्वीप समूह में बड़े पैमाने में प्रवाल विरंजन की घटना घटी। इसमें 30–70 प्रतिशत तक प्रवाल विरंजन हो गया। इसके अलावा गोवा में स्थित समुद्र विज्ञान संस्थान (NIO) द्वारा किए अध्ययन के अनुसार लक्षद्वीप और कवरत्ति द्वीपों में प्रवालों में बैक्टीरियल रोग द्वारा तथा सागरीय जल के तापमान में वृद्धि के कारण भारी मात्रा में प्रवाल विरंजन हुआ।

अपनी प्रगति जांचिए

9. महासागरीय निक्षेपों का अध्ययन सर्वप्रथम ईसा पूर्व जिस विद्वान ने किया उनका नाम है–

   (क) थूसाईंडाईड्स   (ख) जेनोफेन

   (ग) हेरोडोटस   (घ) टेसिटस

10. प्रवाल के जीवित रहने हेतु आवश्यक तापमान है–

   (क) 15° से 16°   (ख) 20° से 21°

   (ग) 29° से 30°   (घ) 35° से 36°

5.7 सामुद्रिक जैविक पर्यावरण

सामुद्रिक पर्यावरण का आशय विशाल एवं अगाध राशि से परिपूर्ण महासागर हमारे भौतिक पर्यावरण के सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटक हैं। इन्हीं के द्वारा मानव जीवन सबसे अधिक प्रभावित होता है। महासागर एक जलीय पारिस्थितिकी तंत्र है जहां आवास का मुख्य आधार जल होता है, जैसे स्वच्छ जल या अलवणीय जल– जिसमें लवण की मात्रा बहुत कम होती है। कभी–कभी 0.5 ppt से अधिक नहीं होती। यह बहता हुआ

जल झरने नदियां आदि हैं। दूसरा लवणीय या सागरीय परितंत्र– इसको निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

1. **खुला समुद्र**– समुद्र या महासागर का मुख्य भाग जो तटीय रेखा खाड़ी आदि से दूर होते हैं।
2. **मूंगे की चट्टान**– प्रवाल (Coral) एक प्रकार का जंतु है जो जूजेन्थलाई नामक एककोशिकीय शैवाल (Algae) के साथ सहजीविन (Symbiotic) में रहता है। इसमें जूजेन्थलाई भोजन तथा कोरल आवास प्रदान करता है। यह प्रायः गर्म और स्वच्छ समुद्री जल में पाए जाते हैं। प्रवाल की जैव विविधता और पारिस्थितिकी उत्पादकता अत्यधिक होने के कारण ही इन्हें समुद्र का वर्षा वन कहते हैं। प्रवाल एक स्टोन प्रजाति है, जो जूजेन्थलाई के कारण रंगीन होते हैं।
3. **बैरियर रीफ**– सागर में मृदा के अवसाद से इनका निर्माण होता है।
4. **तटरेखा**– तटरेखा यह अत्यंत विविधता वाला क्षेत्र है जो निम्न एवं उच्च ज्वार क्षेत्र के बीच जहां समुद्र एवं महासागर भूमि से मिलते हैं पाया जाता है।

संक्रमण कालीन परितंत्र (Transitional Ecosystem)

संक्रमण कालीन परितंत्र

ज्वारनद मुख | आर्द्र भूमि | मैंग्रोव

1. ज्वारनदमुख (Estuary)

- एक विशिष्ट स्थान है जो ज्वारीय क्रियाओं द्वारा शक्तिशाली तरीके से प्रभावित होता है एवं जहां नदी, समुद्र एवं भूमि मिलकर एक विशेष प्राकृतिक स्थान का निर्माण करते हैं।
- ऊष्णकटिबंधीय वर्षा वनों एवं कोरल रीफ के साथ एश्चुअरी विश्व के सबसे उत्पादक स्थल माने जाते हैं।
- अवसादों एवं प्रदूषकों को अवशोषित कर जल को स्वच्छ बनाना।
- एश्चुअरी में पाए जाने वाले पौधे तटीय कटाव को रोकते हैं एवं समुद्री तूफान के प्रभाव को कम करते हैं।
- भूमिगत जल का पुनर्भरण करता है।

विशेषता– 1. पोषण से भरपूर नदी जल, 2. गर्म एवं हल्का छिछला तटीय जल 3. गहरे समुद्र द्वारा पोषक तत्वों का उत्तप्रवाह, ज्वारों द्वारा भोजन एवं पोषक तत्वों का परिवहन।

2. आर्द्रभूमि (wetland)

दलदल पंक भूमि (Fen) पोत भूमि या जल, कृत्रिम या प्राकृतिक, स्थाई या अस्थाई, स्थिर या गतिमान, जल तथा ताजा खारा व लवण युक्त जल क्षेत्र को आर्द्र भूमि कहते हैं।

समुद्र तटीय

- खाड़ी जलडमरूमध्य
- कोरल रीफ

- एश्चुअरी
- लैगून
- मैंग्रोव

अंतःस्थलीय

- झील
- डेल्टा
- क्रीक
- अनूप / कच्छ
- स्वच्छ जल के झरने

3. मैंग्रोव (Mangrove)

मैंग्रोव विषुवत रेखा के नजदीक ऊष्णकटिबंधीय एवं उपोषण कटिबंधीय क्षेत्रों के तटों, ज्वारनदमुखों, पश्चाजल, लैगून आदि अंतरज्वारीय क्षेत्र में विकसित होने वाले वृक्षों एवं झाड़ियों के ऐसे समूह हैं जिनमें लवणीय जल को सहने की उच्च क्षमता पाई जाती है।

- ये वनस्पतिक उभयचर (Botanical Amphibian) भी कहे जाते हैं एवं इनमें उच्च अनुकूलन क्षमता पाई जाती है।
- पृथ्वी पर ये सबसे ज्यादा उत्पादक (घास एवं समुद्री परितंत्र से भी अधिक) एवं जैविक रूप से जटिल परितंत्र हैं।

मैंग्रोव

- इसमें एक अल्ट्राफिल्ट्रेशन तंत्र पाया जाता है जो अतिरिक्त लवण को बाहर निकाल देता है।
- इसकी उलझी हुई जड़ें अंतरज्वारीय क्षेत्र में जीवित रहने में मदद करती हैं।
- स्तंभ मूल (Prop Roots) मैंग्रोव को जल में खड़ा रहने में एवं श्वसन जड़ें (Pneumatophores) श्वसन में सहायता करती हैं।

मैंग्रोव की प्रजातियां– लाल मैंग्रोव, काली मैंग्रोव एवं सफेद मैंग्रोव।

लाभ– अनेक जीवों हेतु प्राकृतिक शरण स्थल एवं भोजन के स्रोत, प्राकृतिक जल शोधन, तटीय क्षरण को रोकना, बाढ़ नियंत्रण, प्राकृतिक संरक्षणकारी, हरित गृह प्रभाव में कमी, औषधीय उपयोग आदि।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि स्थलीय पर्यावरण की तुलना में सागरीय पर्यावरण को एक रूप माना जाता है। वास्तव में जल की तली में भी विविध प्रकार के पारिस्थितिकी निकेत पाए जाते हैं। तापमान, गहराई, दाब, धाराएं, प्रकाश तथा पोषक तत्वों की विविधता के कारण कुछ प्राणियों का वितरण सीमित पाया जाता है। सागरीय पर्यावरण के कारकों को 3 वर्गों में रखा जा सकता है– 1. भौतिक कारक, 2. रासायनिक कारक, 3. जैविक कारक।

1. **भौतिक कारक (Physical Factors)**– प्रकाश, तापमान, लवणता, वायुदाब, धरातल, धाराएं, लहरें, ज्वार भाटा, आदि मुख्य भौतिक कारक हैं।

- **प्रकाश (Light)**– सागरीय पर्यावरण को प्रभावित करने वाले कारकों में प्रकाश सबसे महत्वपूर्ण कारक है। पौधे प्रकाश संश्लेषण (Photosynthesis) के द्वारा अपना भोजन बनाते हैं तथा इसके अलावा सूर्य से सीधा प्रकाश प्राप्त करते हैं। तथा भौतिक एवं रासायनिक परिवर्तन भी सूर्य प्रकाश के द्वारा संभव है।
- **तापमान (Temperature)**– तापमान का जीवों के वितरण में घनिष्ठ संबंध होता है। निम्न अक्षांशों में जीवन की विविधता पाई जाती है। प्रवाल भित्ति का निर्माण 20 डिग्री सेंटीग्रेड की समताप रेखाओं द्वारा नियंत्रित होता है। जीवों का पुनरोत्पादन तथा विकास भी तापमान पर निर्भर करता है। प्रायः निम्न तापमान में विशालकाय प्राणी तथा उच्च तापमान में जीवन की अवधि कम हो जाती है। प्लेंक्टन तथा नेक्टन समुदाय के प्राणियों की गतिशीलता ताप के परिवर्तनों से होने वाली श्यानता तथा घनत्व की भिन्नता से प्रभावित होती है।
- **लवणता (Salinity)**– लवणता में अंतर आने से जल के सापेक्ष गुरुत्व में बहुत अंतर हो जाता है जिससे सागरीय जीवों को बहुत असुविधा होती है। तापमान की भांति लवणता में भी विभिन्न अक्षांशों एवं विभिन्न गहराई में अंतर पाया जाता है।
- **वायुदाब (Air Pressure)**– वायु के बिना कोई भी जीव जीवित नहीं रह सकता है चाहे जलीय जीव हो या स्थलीय, चाहे वितलीय।
- **धाराएं एवं ज्वार भाटा (Currents and Tides)**– जल में गतियां होती हैं और जल संचरण धाराओं और ज्वार भाटा के कारण होता है। ये धाराएं पोषक पदार्थों को तथा अवसादों को एक स्थान से दूसरे स्थान लाया ले जाया करती हैं। धाराओं के साथ–साथ अनेक प्रकार के जीव पारिस्थितिक अवरोधों को पार करके एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंच जाते हैं।
- **लहरें (Waves)**– ये तटीय भागों एवं ज्वारीय भागों में सक्रिय होती हैं। ये अवसादों को जल में मिश्रित करती हैं तथा वायुमंडल और सागर के बीच गैसों का आदान प्रदान करती हैं।

2. **रासायनिक कारक (Chemical Factors)**– हाइड्रोजन अणु, ऑक्सीजन, पोषक तत्व, कार्बन डाइऑक्साइड मुख्य कारक हैं–

- **हाइड्रोजन अणु का सकेंद्रण (Concentration of Hydrogen Atom)**– सागरीय पर्यावरण में इसका एकरूप वितरण मिलता है इसमें परिवर्तन होने पर भी पर्यावरण पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ता।
- **ऑक्सीजन–अवातनिक (Anaerobic)**– दशाओं में रहने वाले कुछ जीवाणुओं को छोड़कर प्रायः सभी जीवों के लिए ऑक्सीजन आवश्यक है।
- **पोषक तत्व (Nutrients)**– जल में नाइट्रोजन तथा फास्फोरस स्थिर अनुपात में सदैव मौजूद रहते हैं। जीवधारी इनका सेवन करते हैं। कुछ शैवाल (Algae) में फास्फोरस तथा कुछ जीवाणुओं में नाइट्रोजन संकेंद्रित रहती है। हरे पौधे विशेष रूप से उनका सेवन करते हैं। पोटेशियम, आयोडीन, लोहा, स्ट्रोन्शियम, सिलिकन आदि भी डायटम (Diatom) तथा रेडियोलेरियन आदि जीवों के लिए आवश्यक हैं।

- **कार्बन डाइऑक्साइड**– सागरीय जल के पौधों को कार्बन डाइऑक्साइड की आवश्यकता होती है। प्रकाश संश्लेषण (Photosynthesis) में इसकी आवश्यकता होती है। कैलशियम कार्बोनेट के अवक्षेपण (Precipitation) में भी इसकी बहुत आवश्यकता होती है।

3. **जैविक कारक (Biological Factors)**– विसरण तथा प्रवास, भोजन, परभक्षण स्थान आदि जैविक कारक सागरीय पर्यावरण में महत्वपूर्ण होते हैं।

- **भोजन (Foods)**– सागरीय जीवों के लिए भोजन ही सबसे बड़ी आवश्यकता है। उनका अधिकांश समय भोजन की तलाश में बीतता है। एक कोशीय प्राणी अपने भोजन (डायटम, प्लवक) को अपने जीव द्रव्य (Protoplasm) द्वारा ग्रहण करते हैं। बेंथोस तथा नेक्टन समुदाय के प्राणी अपमार्जक (Scavengers) होते हैं जो सड़े–गले पौधों तथा मृत प्राणियों को खाते हैं, मछलियां परभक्षी होती हैं।
- **परभक्षण (Predation)**– प्रायः सभी सागरीय जीव परभक्षी होते हैं जो एक दूसरे को खाते हैं।
- **स्थान (Space)**– सागरों में स्थान के लिए कोई स्पर्द्धा नहीं होती।
- **विसरण एवं प्रवास (Dispersal and Migration)**– किसी वर्ग विशेष के जीवों की विसरण तथा प्रवास क्षमता पर ही सागरीय जल में उसकी अंतरजीविता (Survival) निर्भर करती है। प्लावक लारवे (Larvae), मोलस्क (Mollusk) इकाई नोडर्म, पिलेजिक, मछलियां आदि छिछले जल में ही अंडे देती है बाद में विसरण द्वारा ये विभिन्न स्थानों पर पहुंचते हैं।

सागरीय जीव समुदाय (Marine Biological Communities)– पौधों एवं जंतुओं सहित सागरीय जीव समुदाय को उनके आवास (Habitats) के आधार पर निम्न तीन श्रेणियों में विभाजित किया जाता है – 1. प्लेंक्टन समुदाय 2. नेक्टन समुदाय 3. बेन्थोस या नितलवासी समुदाय। आगे इनका विस्तृत वर्णन किया जा रहा है–

प्लेंक्टन समुदाय (Plankton)– प्लेंक्टन सागरीय समुदाय के अंतर्गत महासागरों की सतह से 200 मीटर की गहराई वाले प्रकाशित मंडल या इपिपैलजिक मंडल में उतराते एवं बहने वाले पौधों एवं जंतुओं को सम्मिलित किया जाता है। पादप पलेंक्टन को फाइटोप्लेंक्टन भी कहते हैं क्योंकि ये सूर्य प्रकाश की सहायता से प्रकाश संश्लेषण द्वारा अपना भोजन स्वयं बना लेते हैं। तो दूसरी तरफ जंतु प्लेंक्टन अपने भोजन के लिए फाइटोप्लेंक्टन पर निर्भर रहते हैं।

• **पादप प्लवक या प्लावी पादप (Phytoplankton)**– प्लावक वे तैरते या उतराते जीव हैं जिनके पास स्वयं गतिशील होने के कोई साधन नहीं हैं। निष्क्रिय रूप में जल धाराओं द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाए जाते हैं। उनमें से अधिकांश छिछले जल में रहते हैं जहां ये सूर्य का प्रकाश तथा पौष्टिक खनिज पदार्थों का अवशोषण करते हैं। ये अधिकांशतः एक कोशीय तथा अति सूक्ष्मदर्शी होते हैं। सबसे बड़ा संघ क्राइसोफाइटा (Chrysophyta) है जिसे पीली हरी शैवाल (Yellow Green Algae) भी कहते हैं इसमें डायटम (Diatom) तथा कोकोलिथोफोर्स (Coccolithophores) मुख्य हैं। इसके अलावा डाइनो फ्लैजलेटस महत्वपूर्ण सदस्य हैं जो महासागरीय जैविक कार्बन का अधिकांश भाग उत्पन्न करते हैं। ये वायुमंडलीय ऑक्सीजन का महत्वपूर्ण स्रोत हैं। सुनहरी भूरी शैवाल तथा प्लेजलेट हरी शैवाल दूसरे महत्वपूर्ण सदस्य हैं।

यद्यपि फाइटोप्लेंक्टन आकार में अत्यंत सूक्ष्म होते हैं तथापि इनमें प्रजनन की अपार क्षमता होती है। फाइटोप्लेंक्टन में अल्पकाल में कई गुना तेजी से वृद्धि हो जाती है। परंतु सागरीय जीव भी इन्हें इतनी ही तेजी से खा पाते हैं। परिणामस्वरूप इनका विस्तार संतुलित होता है।

फाइटोप्लेंक्टन, जंतुप्लेंक्टन एवं कई शाकाहारी नेक्टन समुदाय के तैरने वाले जंतुओं के चारागाह होते हैं। फाइटोप्लेंक्टन के अंतर्गत निम्न को सम्मिलित किया जाता है– 1. शैवाल 2. डाइटम 3. प्लैजलेट्स (डाइनोफ्लैजलेट) 4. कई प्रकार के बैक्टीरिया।

शैवाल तथा डाइटम फाइटोप्लेंक्टन के सबसे महत्वपूर्ण सदस्य हैं। डाइटम अत्याधिक सिलिकामय होते हैं तथा जीव की मृत्यु होने पर इससे सिंधू पंक बनती है। लियाटोमूज (Liatomooze) का आकार कुछ माइक्रोन से लेकर लगभग 1 मिमी. तक होता है। आकृति में भी बहुत विविधता होती है। अधिकांश डायटम शाकाहारी प्राणियों का आहार बनाते हैं। कोकोलिथोफोर्स भी डाइटम जितने आकार के होते हैं, किंतु उनका ढांचा कैल्सीयमी होता है। अतः उनके मरने पर कैल्शियमी सिंधु पंक बनती है (Calcareous Oozes)।

जैविक कटिबंध या जैव क्षेत्र (Bio-Zones)

उन सागरीय परिस्थितिक तंत्रों को सागरीय जैव कटिबंध या बायोम कहा जाता है। जिनमें समस्त सागरीय पौधे, जंतुओं तथा भौतिक पर्यावरण अर्थात सूर्य, प्रकाश, आर्द्रता, घुली ऑक्सीजन तथा कार्बन डाइऑक्साइड, पोषक तत्वों, तापमान, लवणता, घनत्व, आदि में समानता पाई जाती है। इन के अंतर्गत विभिन्न सागरीय जीवों एवं सागरीय पर्यावरण के मध्य पारस्परिक क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है।

महासागरीय जैव कटिबंध बायोम पृथ्वी के समस्त क्षेत्र के लगभग दो तिहाई भाग (71 प्रतिशत) में फैले हुए हैं। महासागरीय क्षेत्र सागरीय पौधों एवं जंतुओं के लिए विभिन्न प्रकार के आवास प्रदान करते हैं। परिणामस्वरूप सागरीय जीव महासागरीय जल की सतह पर (फाइटोप्लेंक्टन तथा जंतुप्लेंक्टन) छिछले एवं गहरे सागरीय तलों में निवास करते हैं।

सर्वप्रथम फॉर्ब्स (Forbes 1934) ने सागरों में जीवों के कटिबंध सीमांकित किए थे। सागरीय पारिस्थितिकी तथा पुरा पारिस्थितिकी की नेशनल रिसर्च काउंसिल कमेटी 1940 में गठित की गई। जिसने 1957 में जैव कटिबंध निर्धारित किए। सागरीय परिमंडल को दो भागों में बांटा गया–

1. सागरीय तटीय जैव कटिबंध
2. खुला सागरीय जैव कटिबंध

1. सागरीय तटीय जैव कटिबंध के अंतर्गत निम्न को सम्मिलित किया गया–
    - लैगून जैव कटिबंध
    - तरभूमि जैव कटिबंध
    - एश्चुअरी जैव कटिबंध
    - लवण कच्छ जैव कटिबंध
2. सागरीय जैव कटिबंधों को खुला सागरीय जैव कटिबंध (Open Sea Biozone) कहते हैं। इनके 2 प्रमुख प्रकार हैं–

- पेलैजिक जैव कटिबंध (Pelagic Biozones)
- नितलस्थ जैव कटिबंध (Benthic Biozones)

पेलैजिक जैव कटिबंध (Pelagic Biozones)– पेलैजिक जैव कटिबंध के अंतर्गत सागर तल से लेकर सागर तली तक की समस्त महासागरीय जलराशि को सम्मिलित किया जाता है। सागरीय पौधों एवं जंतुओं की 235000 प्रजातियों में से मात्र 2 प्रतिशत (4700) ही इस वृहद जैव कटिबंध में रहती हैं। सागरीय तट से दूरी एवं गहराई के आधार पर पेलैजिक जैव कटिबंध को दो भागों में बांटा जा सकता है– (क) नेरिटिक जैव कटिबंध (Neritic), (ख) खुला सागर जैव कटिबंध (Open Sea Biozone)

(क) **नेरिटिक जैव कटिबंध (Neritic Biozone)**– नेरिटिक जैव कटिबंध के अंतर्गत महाद्वीपीय मग्न तटों की सागर तट से महाद्वीपीय ढाल की समस्त जलराशि को सम्मिलित किया जाता है। नेरिटिक पर्यावरण में पोषण तत्व अधिक मिलते हैं क्योंकि इस मंडल में कई ऐसे तटीय आवास सम्मिलित हैं जिनमें ऊर्जा के भंडार हैं। जैसे लैगून, एश्चुअरी, तरभूमि, लवणकच्छ आदि इसमें आते हैं। यहां पर 200 मीटर तक की गहराई तक सूर्य प्रकाश पहुंचता है। इसलिए यहां पर फाइटोप्लेंक्टन पौधे पाए जाते हैं तथा जंतुप्लेंक्टन की प्रजातियां अधिक होती है। नेरेटिक पर्यावरण में तूफानों द्वारा विक्षोभ वाले जल के कारण रासायनिक परिवर्तन, परिवर्तनों तथा धाराओं के द्वारा पोषक तत्वों के भली प्रकार वितरण के कारण उथले जलीय भाग में पर्यावरण में विविध प्रकार का जीवन पाया जाता है तथा दाब की कमी, पर्याप्त प्रकाश भी पाया जाता है।

(ख) **खुला सागर जैव कटिबंध (Open Sea Biozone)**– महासागरीय मग्न तटों के आगे समुद्र लगभग 10000 मीटर से भी अधिक गहराई तक विस्तृत हैं। जल की गहराई के आधार पर पांच जैव कटिबंधों में विभाजित किया जाता है– 1. अधिपेलैजिक 2. मध्य पेलैजिक 3. गहरे पेलैजिक 4. अति गहरे पेलैजिक 5. हैडल पेलैजिक।

- **अधिपेलैजिक जैव कटिबंध (Epipelagic Biozone)** – ऊपरी एपीपिलैजिक प्रकाश कटिबंध है। जो सागर सतह से 200 मीटर की गहराई तक विस्तृत है। इसमें सूर्य प्रकाश की मात्रा गहराई बढ़ने के साथ कम होती जाती है। इस मंडल में तैरने वाले प्लेंक्टन की प्रधानता रहती है (फाइटोप्लेंक्टन)।
- **मध्य पेलैजिक जैव कटिबंध (Mesopelagic Biozone)**– मेसोपेलेजिक 1000 मीटर की गहराई तक विस्तृत है, इस मंडल को मंद प्रकाशित मंडल (Disphotic Zone) कहते हैं। यहां ताप का परिवर्तन होता रहता है परंतु प्रकाश न होने की वजह से पौधे उत्पन्न नहीं होते। यहां रहने वाले प्राणी अपरद (Detritus) पदार्थों पर जीवित रहते हैं।
- **गहरे पेलैजिक जैव कटिबंध (Bathypelagic Biozone)**– इनका विस्तार 3800 मीटर की गहराई तक पाया जाता है। इसमें सूर्य का प्रकाश नहीं पहुंच पाता। इस मंडल को अप्रकाशित मंडल कहते हैं। तापमान स्थिर होता है। गहरी जलीय धाराओं के कारण कुछ परिवर्तन अवश्य हो जाते हैं। यहां प्रकाश मंडल का एक मात्र साधन जीव संदीप्ति (Bioluminescence) है। कुछ सागरीय जीवों से प्रकाश निकलता है।

- **अति गंभीर पेलैजिक जैव कटिबंध (Abyssopelagic Biozone)–** एबिसोपेलिक कटिबंध में अधिक दाब तथा श्यानता के कारण जीवों की गतिशीलता में बाधा होती है। इन की गहराई 4000 मीटर से 6000 मीटर तक होती है। पेलैजिक आवास का 54 प्रतिशत भाग इसी मंडल में है। इसमें पूर्णतया अंधकार रहता है मछलियों का प्रभुत्व रहता है।
- **हैडल पेलैजिक जैव कटिबंध (Hadalpelagic Biozone)–** यह मंडल 6000 मीटर से गहरी सागर तली तक विस्तृत होता है। यह अधिकांशत महासागरीय खंडों में पाया जाता है। इसमें समस्त पेलैजिक राशि का 1 प्रतिशत आता है।

बेंथिक जैवकटिबंध या तलस्थ कटिबंध (Benthic Environment)– बेंथिक परिमंडल को वेलांचत तथा गंभीर सागर क्षेत्र कहते हैं। यह महाद्वीपीय मग्नतट की तली से लेकर अति गहरे तथा हेडल मंडल की तलियों तक फैला है। इसकी जैव विविधता बहुत अधिक होती है। तलस्थ जैव में आवासों की प्रजातियों की 98 प्रतिशत प्रजातियां रहती हैं। 200 मीटर से गहरे सागरीय भागों में सूर्य प्रकाश का आभास नहीं होता है। परिणामस्वरूप प्रकाश संश्लेषण नहीं हो पाता। प्रकाश संश्लेषण के अभाव में सागरीय तल में पादप उत्पादन नहीं होता। तटों से दूर जाने पर बायोमास घटता जाता है और अधिकतर तल वासी जंतु पेलैजिक आवास के प्रकाशित मंडल से आने वाली खाद्य सामग्री की आपूर्ति पर निर्भर रहते हैं। बेंथिक समुदाय निम्न दो स्रोतों से अपना भोजन प्राप्त करते हैं– 1. प्रकाशित मंडल के जंतुओं द्वारा उत्सर्जित मल पदार्थ (Fecal Matter)। 2. प्रकाशित मंडल से फाइटोप्लेंक्टन से मंद गति से गिरने वाले बारीक जैविक अपरद (Organic Detritus) से।

- प्रकाशित मंडल से जंतुप्लेंक्टन से गिरने वाले मोटे जैविक अपरद।
- बड़े आकार के नेक्टन तैराक जंतुओं के शवों तथा कंकाल जैसे डॉल्फिन व्हेल आदि।
- पंक धाराओं द्वारा लाए गए जैविक पदार्थ।
- मौसम वर्षभर समान रहने के कारण गहराई में रहने वाले तल वासी जीव वर्ष पर्यंत प्रजनन करते हैं।

तलस्थ जैव कटिबंधों के प्रकार

- उपनेरिटिक
  - सुप्रावेलांचली
  - वेलांचली
  - उपवेलांचली
    - आंतरिक उपवेलांचली
    - बाह्य उपबेलांचली मंडल
- उपमहासागरीय तलस्थ जीव कटिबंध

टिप्पणी

1. **उपनेरिटिक तलस्थ जीव कटिबंध (Sub Neritic Benthic Biozones)**– महाद्वीपीय मग्न तटों नरटिक जीव कटिबंधों के महासागरीय जल के नीचे स्थित सागर तली के आवासों एवं पर्यावरण को उपनेरिटिक तलस्थ जीव कटिबंध कहते हैं। यह उच्च ज्वार जल से 200 मीटर की गहराई तक पाया जाता है। इनके तीन उपमंडल हैं–
    1. **सुप्रावेलांचली (Supralittoral Zone)**– जब ज्वार आता है तथा तटीय भूमि पर उसका अतिक्रमण होता है तथा सुनामी लहरों के द्वारा यह जल प्लावित हो जाता है और प्रचंड तूफानों से तटीय क्षेत्रों में आक्रमण होने के कारण इसे फुहार जोन कहते हैं।
    2. **वेलांचली मंडल (Littoral Zone)**– इसका विस्तार उच्च ज्वार तथा निम्न ज्वार क्षेत्रों के बीच का भाग है। इस भाग में जल का संचलन होता है जिसके परिणामस्वरूप तल वासी पेलेजिक जीवों को निमज्जन तथा उमज्जन होने से पर्यावरणीय दशाओं के साथ समायोजन करना पड़ता है।
    3. **उपवेलांचली मंडल (Sublittoral Zone)**– इसे मग्न तट भी कहते हैं। यह तट रेखा से 200 मीटर की गहराई तक पाया जाता है। इस के दो भाग हैं– आंतरिक मग्न तट तथा बाह्य मग्न तट। यह कटिबंध तलीय जल के विक्षोभों के कारण भली प्रकार प्रकाशित नहीं होता। भीतरी भाग में उत्पादन (Production) अधिक पाया जाता है। किंतु बाहरी भाग में जीवित पौधों का अभाव पाया जाता है। यहां तलीय जीवों की घनी आबादी मिलती है।
2. **उप महासागरीय तलस्थ जीव कटिबंध (Suboceanic Benthic Biozone)**– मग्न तटों के आगे तलीय पर्यावरण प्रायः स्थिर रहता है। मग्न ढाल तथा उभार के निकट तलछट के स्थानांतरण से अवश्य ही वातावरण कुछ अस्थिर होता है। बेंथाइल पर्यावरण मग्न ढाल, उभार तथा समुद्र की तली तक विस्तृत होता है। यह 200 से 7000 मीटर या उससे अधिक गहराई पर होता है। फोर्ब्स (Forbes) के अनुसार यह अजैविक कटिबंध है, किंतु यहां जीवन के निश्चित प्रमाण प्राप्त हो चुके हैं। इस मंडल को तीन भागों में बांटा जा सकता है।
    - गहरे उपमहासागरी तलस्थ जीव कटिबंध– 200 मीटर से 4000 मीटर तक, महाद्वीपीय ढालों की तली के आवास।
    - अति गहरे उप महासागरी तलस्थ जीव कटिबंध – 4000 से 6000 गहराई तक सागरीय तली पर बारीक मृदा कोमल मृतिका का विस्तार।
    - हैडल उपमहासागरीय तलस्थ जीव कटिबंध – 6000 मीटर से अधिक गहराई जहां जीवन कठिन है, अत्याधिक दाब, निम्न ताप, अंधकार, भोजन की कमी पाई जाती है। अतः यहां मांसभक्षी तथा अपरदकारी जीव पाए जाते हैं। इस कारण इस जीव कटिबंध को हैडल मंडल या नर्क कहा जाता है।

उपर्युक्त तलस्थ जैव कटिबंधों में प्रमुख विशेषताएं

सूर्य प्रकाश का अभाव सतत् अंधकार, गहराई के साथ– न्यून तापमान, जलराशि भार के कारण द्रव स्थैतिक दाब अधिक रहता है। यहां सागरीय जीवों के लिए पर्यावरणीय दशाएं प्रतिकूल होने के बावजूद इस मंडल में सूक्ष्मजीव या बैक्टीरिया सभी गहराइयों पर पाए जाते हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

11. सागरीय पर्यावरण के कारकों को कितने वर्गों में रखा जा सकता है?

    (क) चार (ख) दो

    (ग) पांच (घ) तीन

12. सागरीय तट से दूरी एवं गहराई के आधार पर पेलैजिक जैव कटिबंध को कितने भागों में बांटा जा सकता है?

    (क) दो (ख) तीन

    (ग) चार (घ) पांच

5.8 सागरीय जीवों के प्रकार

समस्त सागरीय जीवन (पौधों एवं प्राणियों को) अनेक वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

1. पोषण स्तर के आधार पर वर्गीकरण–

- फाइटोप्लेंक्टन समुदाय के प्रकाश संश्लेषी प्राथमिक उत्पादक हरे पौधे।
- प्राथमिक उपभोक्ता मांसाहारी जंतुप्लेंक्टन समुदाय।
- द्वितीय उपभोक्ता मांसाहारी सागरीय जंतु
- तृतीय उपभोक्ता सर्वहारी सागरीय जंतु समुदाय।

2. पदानुक्रम के आधार पर वर्गीकरण–

स्थलीय जीवों के समान सागरीय जीवों की भी उच्च श्रेणी से निम्न श्रेणी में 7 पदानुक्रमीय श्रेणियां हैं– जगत (Kingdom), संघ (Phylum), वर्ग (Class), श्रेणी (Order), परिवार (Family), वंश (Genus), प्रजाति (species)।

जीवन शैली तथा आवास के आधार पर वर्गीकरण– सागरीय जीवों के दो प्रमुख आवास हैं– 1. पलैजिक सागरीय जीव 2. बेंथिक सागरीय (नितलीय) जीव।

पाद प्लवक में तीसरा वर्ग 'डाइनोफ्लेजीलेट्स' (Dinoflagellates) का है जो फाइरोफाइट संघ के होते हैं। ये एककोशीय होते हैं तथा इनमें सभी प्रकाश संश्लेषी नहीं होते। ये विविध प्रकार के होते हैं। इनमें गतिशीलता अधिक नहीं होती। इन में खनिज तत्वों का अभाव होता है। परंतु इनमें से कुछ प्रजातियां अपना भोजन जैविक पदार्थों से प्राप्त करते हैं। 'डाइनोफ्लेजीलेट्स' की सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रजाति गोनिओलेक्स (Gonyaulax) तथा जिम्नोडियम (Gymnodium) हैं जिनमें पुनर्जनन प्रस्फोट होता रहता है। इन लाल–भूरे पौधों में बहुत तेजी से वृद्धि होती है। इसे लाल ज्वार (Red Tides) कहते हैं। ये अधिकतर ऊष्णकटिबंधीय क्षेत्र में पाए जाते हैं। परंतु कभी–कभी ये उत्तरी सागर में भी देखे जाते हैं।

पादप प्लवक में सारगेसम (Sargassum) नामक बहु कोशीय पौधा विशिष्ट होता है। यह एक प्रकार की भूरी शैवाल (Brown Algae) है। यह उत्तरी अटलांटिक

महासागर के शांत व स्थिर जल में पाया जाता है। इस प्लवक के नाम से सारगेसम सागर रखा गया जिसमें इसकी अधिकता पाई जाती है। बैक्टीरिया पादप प्लेंक्टन के अंतर्गत कई प्रकार के बैक्टीरिया भी पाए जाते हैं जो शीत एवं ऊष्ण दोनों महासागर में पाए जाते हैं। ये वेलांचली बायोम में प्रकाशित होते हैं। बैक्टीरिया का अपना भोजन जैविक पदार्थों पर निर्भर होता है।

5.8.1 जंतु प्लेंक्टन

पादप प्लेंक्टन की अपेक्षा प्राणी प्लवक की विविधता मिलती है। यद्यपि संख्या तथा जीव भार में ये कम होते हैं। ये प्राथमिक उपभोक्ता होते हैं।

पादप प्लवक की भांति ये भी सूक्ष्म होते हैं। इनको तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है– शाकाहारी जंतु प्लेंक्टन, मांसाहारी जंतुप्लेंक्टन, अपरदहारी जंतु प्लेंक्टन।

समय के आधार पर सागरीय जंतुओं को 2 वर्गों में विभाजित किया जाता है–

1. **होलो जंतु प्लेंक्टन**– जो अपने संपूर्ण जीवन में 200 मीटर मोटी परत में रहते हैं।
2. **मेरो जंतु प्लेंक्टन**– वे सागरीय जंतु प्लेंक्टन होते हैं जो अपनी शैशव अवस्था में प्लेंक्टन समुदाय के साथ रहते हैं और युवा होने पर नेक्टन या तलवासी समुदाय के साथ गहराई में जाकर रहने लगते हैं। इनके भी 2 वर्ग होते हैं–
   - **नेक्टो जंतु प्लेंक्टन**– अपने लारवा एवं शैशव अवस्था में प्लेंक्टन के साथ रहते हैं और बड़े होने पर गहराई में जाकर तैरना सीख जाते हैं और नेक्टन समुदाय में रहने लगते हैं।
   - **बेन्थेजंतु प्लेंक्टन**– सागरीय जंतु जो प्लेंक्टन समुदाय से युवा होने पर अलग होकर गहराई में जाकर सागर तली में निवास करने लगते हैं। जंतु प्लेंक्टन समुदाय में शाकाहारी जंतु प्लेंक्टन जैविक पदार्थों को जंतु प्रोटीन में बदलने के लिए अत्यंत आवश्यक हैं। यह सागरीय सूक्ष्म चारागाहों एवं बड़े सागरीय जंतुओं के बीच सेतु का कार्य करते हैं। किंतु जंतु प्लेंक्टन फाइटोप्लेंक्टन का सेवन करते हैं जबकि मांसाहारी सागरीय जंतु सूक्ष्म जंतु प्लेंक्टन पर निर्भर होते हैं। अधिकांश जंतु प्लेंक्टन स्थाई रूप से अपने जीवन काल में जंतु प्लेंक्टन ही रहते हैं। परंतु कुछ जंतु प्लेंक्टन ऐसे होते हैं जो आरंभ में प्लेंक्टन के रूप में रहते हैं। और बाद में नेक्टन हो जाते हैं, जैसे– मछलियां या बेंथस जंतु (केकड़ा)। संख्या और विविधता की दृष्टि से प्रोटोजोआ तथा आर्थोपोडा (Arthropoda) प्राणी सबसे महत्वपूर्ण होते हैं।

प्रोटोजोआ संघ में फोरामिनीफेरा तथा रेडियोलोरियन प्राणी गहन सागरीय जैविक पंक अवसाद बनने के लिए महत्वपूर्ण हैं। स्पंज (Porifera) स्वयं तो तली में रहते हैं किंतु इनके अंडे प्लावी लाखों की संख्या में पाए जाते हैं।

सीलेंटेराता – संघ में प्रवाल (Coral), एनिमोन (Anemone) तथा जेलीफिश मुख्य है। यह संघ सबसे बड़ा तथा विविधता पूर्ण है।

टीनोफोरा (Ctenophora) प्राणी गहरे अंधकार में भी (चमकीले होने के कारण) दिखाई देते हैं। इनमें कोम्ब जेली मुख्य है।

कृमि संघ में रोटीफेरा (Rotifera), निमेतोड़ा (Nemaroda), चीटोग्नाथा (Chaetognatha) संघ के कृमि छोटे होने पर भी मांस भक्षी होते हैं जो छोटी मछलियों को खा जाते हैं।

मोलस्का संघ में सभी कवचधारी प्राणी सम्मिलित हैं। इसके अंतर्गत हटरोपोडा, टेरोपोड मुख्य मोलस्क हैं जो टेरोपॉड पंक बनने में योगदान देते हैं।

प्लावी प्राणियों में सबसे बड़ा संघ आर्थोपोडा का है। इनमें क्रस्टेशिया (Crustacea) वर्ग सबसे महत्वपूर्ण है। क्रस्टेशिया वर्ग में कार्पोपोड (Copepods) (खोल में रहने वाले जीव) जो फाइटोप्लेंक्टन का भक्षण करते हैं।

महत्वपूर्ण जंतुप्लेंक्टन हैं क्योंकि ये प्रोटीन उत्पन्न करते हैं। कोपपाड कई प्रकार के सागरीय बायोम में रहते हैं। इसका घनत्व इतना अधिक होता है कि ये सर्वत्र एवं सभी ऋतुओं में पाए जाते हैं। सागरीय आहार शृंखला में इनका विशेष महत्व है क्योंकि छोटे मांसाहारी जीव इन्हें खाते हैं। क्रैब्स, लॉब्सटर तथा श्रिम्प सबसे बड़े क्रिस्टेशियन प्राणी हैं।

यूफजिड शाकाहारी जंतु प्लेंक्टन हैं। ये अंटार्कटिक पर्यावरण में झुंडों में रहते हैं। तीर कृमि (Arrow Worm) महत्वपूर्ण मांसाहारी जंतु प्लेंक्टन हैं।

न्यूस्टन वर्ग में सूक्ष्म जंतु प्लेंक्टन को सम्मिलित किया जाता है जो ऊपरी सागरों की सतह पर एक मिलीमीटर पतली परत में भारी संख्या में रहते हैं। असंख्य बैक्टीरिया तथा अन्य सूक्ष्मदर्शी जीव इसमें रहते हैं।

जन्तु प्लेंक्टन के आकार के आधार पर दो भागों में बांटा जा सकता है –

1. सूक्ष्मदर्शी जंतु प्लेंक्टन (Microscopic Zooplanktons)
2. स्थलदर्शी जंतु प्लेंक्टन (Macroscopic Zooplankton)

(1) सूक्ष्मदर्शी जंतु प्लेंक्टन– ये प्राथमिक उपभोक्ता होते हैं। ये अपने आहार स्रोत फाइटोप्लेंक्टन वाली 200 मीटर ऊपरी सागरीय सतह के प्रकाशित मंडल में तैरते रहते हैं। ये निम्न प्रकार के होते हैं–

1. रेडियोलैरिया एक कोशिकीय जंतु प्लेंक्टन
2. फेरामिनीफेरा एक कोशिकीय जंतु प्लेंक्टन
3. कोपपोड – क्रस्टेसियन उपसंघ का श्रिम्प (झींगी) के समान सागरीय जंतु।

(2) स्थूलदर्शी जंतु प्लेंक्टन– स्थूलदर्शी जंतु प्लेंक्टन आकार में बड़े होते हैं। उन्हें बिना माइक्रोस्कोप के देखा जा सकता है। इस वर्ग में क्रिल एवं कोपपोड प्रमुख हैं। ये अंटार्कटिक महासागर में पाए जाते हैं। इन्हें मछलियां खासकर व्हेल इन्हें खाती हैं। इनके अंतर्गत कोलेन्टरेट्स, टूयनीकट्स, जिनम पाइरासोमा, संदीप्तीशील जंतु (स्वयं प्रकाशित होते हैं) आते हैं।

प्राणी प्लवक का वितरण– सागरीय प्राणियों का वितरण भौतिक एवं रासायनिक तथा जैविक कारकों पर निर्भर है। सामान्यतः ये उच्च अक्षांशों पर पाए जाते हैं। ऊष्णकटिबंधीय सागरों में अधिक विविधता पाई जाती है। इनका वितरण तापमान पर आधारित होता है, जहां गर्म जल धाराएं गल्फ स्ट्रीम एवं क्यूरोशियो की धाराएं इन्हें भूमध्य रेखा से ठंडे क्षेत्रों तक ले जाती हैं। इसी तरह से अधिकांश प्राणी प्लवक छिछले सागरों में पाए जाते हैं क्योंकि उन्हें यहां पादप प्लवक आसानी से प्राप्त हो जाते हैं, जो उनका भोज्य पदार्थ होता है।

आकर्टिक प्राणी प्लवक मुख्यतः आर्कटिक सतह पर ही पाए जाते हैं। इसी तरह से तटवर्ती नेरिटिक प्राणी प्लवक खुले सागरों में पाए जाने वाले प्राणियों से भिन्न होते हैं। अधिक गहराई पर पाए जाने वाले प्लवक मछलियां तथा क्रिस्टिेशियन है। सागरीय प्राणी प्लवक जल के साथ कहीं भी पहुंच जाते हैं तथा ये प्रकाश पर निर्भर ना होने के कारण अंधकारमय गहराइयों में भी पाए जाते हैं।

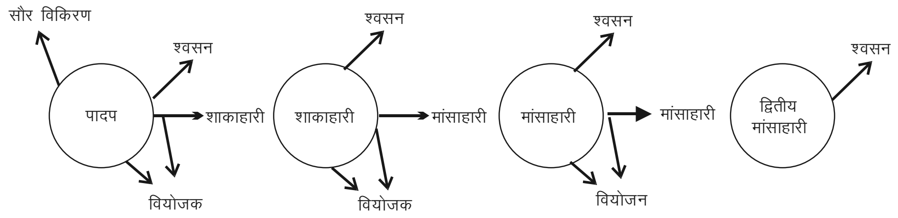

महासागरीय परिस्थितिकी तंत्र ऊर्जा प्रवाह

5.8.2 नेक्टन समुदाय

जल में तैरने वाले जीवों को नेक्टन या तरणक कहते हैं। इनमें मछलियां प्रमुख हैं। अधिकांश नेक्टन प्राणी कोरडाटा समुदाय के होते हैं। जिसमें व्हेल, शार्क, सागरीय क्रूर्म, सागरीय स्तनपाई (Mammal) मुख्य हैं। ये तरणक मुख्यतः प्राणी प्लवकों का आहार करते हैं और समुद्री जल स्तर के नीचे जहां उन्हें पर्याप्त भोजन उपलब्ध होता है निवास करते हैं। उदभिज प्लवक खाने वाले अनेक नेक्टन केवल रात्रि के समय जलीय धरातल पर आते हैं और प्लवक खाते हैं। नेक्टन हमेशा आहार की खोज में या प्रजनन की सुविधा एवं उद्देश्य से, एक जगह से दूसरी जगह भ्रमण करते रहते हैं। कुछ तो ठंडे जल में तैरते हैं और बाकी गर्म जल में या पूरे महासागर में भ्रमण करते हैं। प्लवक और नितल जीव समूह की तुलना में तरणक एक विकसित प्रकार के प्राणी हैं। डॉल्फिन तथा सूंस की गिनती संसार में सबसे अधिक बुद्धिमान प्राणियों में होती है। संसार के कई भागों में डॉल्फिनों को संवाद, डाक तथा औजार एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने का सफल प्रशिक्षण दिया गया है।

मोलास्क तथा बड़े क्रष्टोशियनों में भी तैरने की क्षमता होती है। स्वभाव के अनुसार मछलियों को दो भागों में बांटा जा सकता है– 1. तलमज्जी (Demersal)– ये मछलियां छिछले जल में तली के निकट रहती हैं। 2. पिलेजिक (Pelagic) मछलियों का तली से कोई संबंध नहीं होता।

1. **तलमज्जी मछलियां** (Demersal Fishes)– सागर तलीय वर्ग की मछलियां अत्यधिक गहराई में रहती हैं (प्लेस, कॉड, हैडक)। तेज तैराक रीढ़ विहिन नेक्टन जंतुओं में स्क्विडस सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इनकी रफ्तार कम होने के कारण मछुआरों के जाल में आसानी से फंस जाती है। यह मांसाहारी होती है परंतु ये भी बड़ी मछलियों का शिकार बन जाती हैं ।
2. **पिलेजिक मछलियां** (Pelagic)– पिलेजिक के अंतर्गत वे मछलियां आती हैं जो सागरीय जल के ऊपरी भागों में रहती हैं। वाणिज्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होती है। इनमें हेरिंग, सारडाइन शौड, मैनहैटन, सामन, मैकरेल, टूना आदि।
3. **आदिम मछलियां** (Primitive Fish) साइक्लो वर्ग की मछलियां प्राचीनतम हैं तथा जीवित जीवाश्मों का उदाहरण हैं। शार्क तथा रे (ray) मछलियां भी जीवित

जीवाश्मों का उदाहरण हैं। शार्क मछली मांस भक्षी होती है तथा व्हेल जैसी विशालकाय होती है। इलेक्ट्रिक रे मछली अपने शिकार को बिजली का झटका देती है। स्टिंगरे मछली तैराकों के लिए खतरनाक होती है।

टिप्पणी

4. **अस्थिमय मछलियां** (Bony Fish) – ये वास्तविक मछलियां हैं इसके लगभग 100 परिवार हैं। इनको 3 वर्गों में रखा जाता है– तलवासी (Bottom, Pelagic, Abyssal)।
5. **वितलीय** (Abyssal) – ये विचित्र प्रकार की होती है। लगभग 40 परिवार की मछलियां गहरे सागरों में रहती हैं। इनकी विचित्र विशेषता यह है कि इनके अंग चमकीले प्रकाशमय होते हैं। गहन सागरीय शार्क तथा लेन्टर्न फिश ऐसी ही हैं। गहरे अंधकारमय वितलीय भाग में भोजन की कमी होती है। अतएव इन मछलियों के विचित्र अंग भोजन प्राप्त करने में सहायक होते हैं।

अन्य नेक्टन – आर्थोपोडा संघ में श्रिम्प में तैरने के विशेषता होती है। स्किवड (Squid) मछली जेट गति से तैरती है। इनकी आकृति तारपीडो जैसी होती है।

नेक्टन समुदाय के स्तनपायी (Mammals) सागरीय जंतुओं का विवरण निम्न है–

सागरीय स्थनपायी (Sea Mammals)– सागरीय स्तनपायी जंतु गर्म खून वाले स्तनपायी जंतुओं के समान विशेषता रखने वाले होते हैं। ये हवा में सांस लेने की क्रिया विधि, बच्चे पैदा करना, शरीर पर बाल फर होना आदि का पालन करते हैं।

सागरीय स्थनपायी की 116 प्रजातियां हैं, इन्हें तीन वर्गों में रखा जाता है–

1. **ऑर्डर पिन्नी पीडिया** – सील, वालरस, सागर शेर, फर सील
2. **ऑर्डर साइरेनिया** – सागर गाय, मेना टीज, डमांग
3. **आर्डर सिटोसिया** – व्हेल, डॉल्फिन, सुइंस

सागरों में सरीसृप (Reptiles) भी पाए जाते हैं। अतीत काल के भूवैज्ञानिक इतिहास में सरीसृपों की अधिकता थी किंतु अब केवल सरीसृप सागर कूर्म (Sea Turtles) या कछुआ तथा कुछ सर्प ही शेष हैं।

समुद्री गाय, समुद्री शेर (Sea Lions) फरसील प्रमुख स्तनधारी जीव हैं।

गहरे जल का नेक्टन समुदाय– गहरे पेलैजिक जल के तैराक सागरीय जंतु अधिकतर मछलियां हैं जो गहरे सागरीय जल में रहती हैं। इनके भोजन के दो स्रोत होते हैं–

- पौधे एवं जंतुओं के मृत पदार्थों से, जो सागरों के ऊपरी भाग से नीचे गिरते रहते हैं।
- गहरे जल के अन्य नेक्टन जंतुओं के शिकार से। चूंकि अगाध गहराई में पूर्ण रुप से अंधकार छाया रहता है और मछलियों ने अपने शरीर में ऐसी विशिष्टता विकसित कर ली है कि वे स्वयं प्रकाश उत्पन्न कर लेती है ताकि वह अपने शिकार को आसानी से पकड़ लें। प्रमुख मछलियां हेचेट मछली, लालटेन मछली, स्टोमियात्वायड, गैल्पर आदि हैं।

तलवासी समुदाय (Benthic Community)– बेंथोस जीव समुदाय के अंतर्गत सागरीय जल के नीचे सागरीय तली पर रहने वाले पौधों तथा जंतुओं को सम्मिलित

किया जाता है। इन तल वासी जंतुओं की प्रजातियों में अत्याधिक विविधता पाई जाती है। इनकी कुल प्रजातियों में अत्याधिक विदित विविधता पाई जाती है। इनकी कुल प्रजातियां सागरीय जंतुओं की समस्त प्रजातियों का 16 प्रतिशत है।

टिप्पणी

वास्य क्षेत्र के आधार पर तल वासी जीवों के दो श्रेणियों में रखा जाता है–

1. सागरीय तली या उसके ऊपर रहने वाले पौधे तथा जंतु तथा 2. तली पर स्थित निक्षेपों के अंदर रहने वाले पौधे तथा जंतु।

तल वासी पौधों में सागरीय खर–पतवार प्रमुख है। तल वासी जंतुओं में कड़ी खोल में रहने वाले जंतु (मोलस्क) अधिक संख्या में तथा कई प्रजातियों के होते हैं। इनमें झींगे, केकड़े, घोंघे, मांद बनाने वाले जीव और वे कृमि जो नितल पर रेंगते हैं और छलांग लगाते हैं। चर जीवों के उदाहरण हैं– समुद्री शैवाल तथा शैवाल सदृश घासें, पौधे और प्रवाल (कोरल) स्पंज, बनेक्ल्स, सीप सदृश्य प्राणी अचर जीवों में आते हैं। ये समुद्री नितल से भलीभांति चिपके रहते हैं और स्थाई रूप से अचल तथा स्थिर रहते हैं। अधिकांश नितल जीव समूह छिछले जल में पाए जाते हैं। जहां सूर्य प्रकाश समुद्री नितल तक पहुंचता है, इनमें से कुछ महासागरों के गहरे तलों पर पाए जाते हैं।

5.8.3 बेंथोस पादप

सागर तली में पादप जीवन कम मिलता है इनमें मुख्य नीली हरी शैवाल, खड़े सागरीय जल में सर्वदा मिलते हैं। हरी शैवाल स्वच्छ जल में भूरी शैवाल के केवल सागरीय जल में मिलती है, जो व्यवसायिक महत्व की है। कुछ खाने योग्य जिसमें एल्गी बहुउपयोगी पदार्थ हैं। लाल शैवाल की सर्वाधिक किस्में मौजूद हैं। ऊष्ण कटिबंध में यह सबसे अधिक मात्रा में पाई जाती है। पुष्पी पौधे सागरीय घासों में ऊष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में पाई जाती है। केवल जोस्ट्रिया (Zostria) अलास्का तथा ग्रीनलैंड में मिलती है। ऊष्ण और उपोष्ण ज्वारीय भागों में मैंग्रोव वनस्पति भी पुष्पी पौधे की श्रेणी में आते हैं।

बेंथोस प्राणी – इसमें प्रमुख अकखेरन्की (Invertebrates) होते हैं। बेंथोस के 2 वर्ग हैं। 1. अधि प्राणी जात जो तली के ऊपर रहते हैं 2. अंतः प्राणी जात जो बिलों या छिद्रों में में रहते हैं।

बेंथोस का वितरण

1. जो चट्टानी आधार पर रहते हैं।
2. जो रेतीले या कीचड़ युक्त क्षेत्रों में रहते हैं ।

चट्टानी क्षेत्रों के प्राणियों को ज्वारीय लहरों के प्रहार झेलने पड़ते हैं। अतः वह आधार से चिपके रहते हैं। प्रवाल स्थानबद्ध जीवों को जीवित रहने के लिए शुष्क वायुमंडल दशाओं को सहना पड़ता है। ओयस्टर क्लैम आदि अंतः सागरीय बेंथोस हैं। रेतीले अंतःज्वारीय क्षेत्रों में रहने वाले जीवों की संख्या कम होती है। पौधे भी विरल पाए जाते हैं। ये प्राणी जैविक अपरद पर निर्भर करते हैं।

ज्वार रेखा के नीचे मग्न तट पर सागरीय बेंथोस में विविधता मिलती है। भोजन की कमी के कारण गहन सागरीय बेंथोस प्राणियों की संख्या कम होती है।

अपनी प्रगति जांचिए

13. किस वर्ग के प्राणी गहरे अंधकार में भी (चमकले होने के कारण) दिखाई देते हैं?

(क) सीतेंटराता (ख) प्रोटोजोआ

(ग) टीनोफोरा (घ) रोटीफेरा

14. जल में तैरने वाले जीवों (मछलियां प्रमुख हैं) को कहते हैं–

(क) प्लेंक्टन (ख) नेक्टन

(ग) सारगेसम (घ) हरी शैवाल

5.9 भविष्य हेतु संसाधनों के भंडार के रूप में महासागर

महासागर खनिज (धातु, तेल, प्राकृतिक गैस, रसायन आदि), भोजन (मछली, झींगे, समुद्री झींगे आदि) और उर्जा (लहरें, जल धाराएं, ज्वार आदि) का विशाल भंडार हैं। हम महासागरों को सामग्री लाने ले जाने (जहाज़ों और तेल के टैंकों में) और मनोरंजन के लिए (समुद्र तटों, पानी के खेल आदि) प्रयोग करते रहे हैं। हम महासागरों का प्रयोग नगर के कचरे, औद्योगिक उत्प्रवाही, कृषि में प्रयोग किए गए कीटनाशकों आदि को फेंकने के लिए भी करते रहे हैं, जो बढ़ती जनसंख्या के कारण उत्पन्न होते हैं।

इसके अतिरिक्त, महासागर मौसम और वातावरण को भी नियंत्रित करते हैं और इस प्रकार विशेष रूप से पर्यावरण को भी प्रभावित करते हैं। यहां तक कि हम जिस वायु में सांस लेते हैं उसकी गुणवत्ता भी काफी हद तक समुद्र और वायुमंडल की पारस्परिक क्रिया पर निर्भर करती है। महासागरों ने रोमांच और खोज के माध्यम के रूप में भूमिका निभाई है। समुद्र में दूर तक और समीप तक की जाने वाली जलयात्राओं से हमने समझा है कि हमें जन्म देने वाली पृथ्वी कैसे कार्य करती है, समुद्र तल कैसे बना और कैसे एक लंबे समय में महाद्वीप के हिस्से हज़ारों किलोमीटर की दूरी तक खिसक गए।

इस प्रकार, महासागरों और इनसे प्राप्त होने वाले लाभों का अध्ययन करने के कई कारण हैं।

महासागरों में खनिज, ऊर्जा और खाद्य संसाधनों की विस्तृत श्रेणी मौजूद है। वे पृथ्वी के सबसे बड़े खनिज भंडार हैं, जिनमें तेल और गैस भी शामिल है। हालांकि यह भूमि पर मौजूद हैं संसाधनों के लिए हमारी मांग, तेजी से बढ़ती जनसंख्या द्वारा सुविधाओं और आराम की चाह के कारण बढ़ती जा रही है। इसके अलावा, खनिज संसाधन नवीकरणीय नहीं हैं, एक बार निकाल कर प्रयोग करने के बाद वे समाप्त हो जाते हैं। इनका निर्माण दोबारा करने के लिए कई लाखों वर्ष लग जाते हैं और यही कारण है कि उन्हें 'गैर–नवीकरणीय' संसाधनों के रूप में जाना जाता है। इस संबंध में संयुक्त राष्ट्र ने तीन सम्मेलनों का आयोजन किया था (1967 और 1982 के बीच) और अंततः समुद्र के कानून पर संयुक्त राष्ट्र संधिपत्र पर वर्ष 1982 में हस्ताक्षर किए गए। इस संधिपत्र में आने वाली पीढ़ी के लिए संसाधनों को सुरक्षित रखने के लिए

समुद्री संसाधनों का प्रयोग तर्कसंगत ढंग से करने वाले नियम व कानून बनाए गए। महासागरों को कई अंचलों में विभाजित किया गया है– प्रादेशिक समुद्र (तटरेखा से 12 समुद्री मील (एन.एम.)), विशेष आर्थिक अंचल (तटरेखा से ईईज़ेड) 200 एन.एम. और सीबेड का अंतर्राष्ट्रीय अंचल (ईईज़ेड से आगे)। तटीय राष्ट्रों को उनके संबंधित ईईज़ेड के अंतर्गत रहते हुए समुद्री संसाधनों को खोजने और प्रयोग करने का अधिकार है। अंतर्राष्ट्रीय समुद्री क्षेत्र में आने वाले संसाधन मानव जाति की साझा विरासत हैं।

महासागरों की संसाधन संपन्नता

मैंगनीज़ पिंड : समुद्र–तल का बड़ा हिस्सा काले, आलू के आकार वाले पदार्थ से ढका हुआ है, जिसे मैंगनीज़ पिंड कहते हैं। इसका विकास अविश्वसनीय रूप से धीमी गति (कुछ मिलीमीटर दस लाख वर्षों में) से हो रहा है, इनमें तांबा, निकल, कोबाल्ट, लोहा, मैंगनीज़ आदि धातुएं होती हैं जो समुद्री जल में ऑक्साइड/हाइड्रोक्साइड के रूप में नीचे बैठ जाती हैं। वैज्ञानिकों ने अनुमान लगाया है कि विश्व के समुद्री तल में कई अरबों टन पिंड मौजूद हैं। भारत को संयुक्त राष्ट्र की ओर से केंद्रीय हिंद महासागार के 1,50,000 किमी.^{2} समुद्री क्षेत्र में पिंड संसाधनों को खोजने के विशेषाधिकार दिए गए थे। संयुक्त राष्ट्र ने सर्वेक्षण किए हैं और पिंड संसाधनों को आर्थिक अंचल में 75,000 किमी^{2} के क्षेत्र में Cu, Co और Ni की 9.5 मिलियन टन की सीमा तक स्थापित भी किया है।

भूमिगत ज्वालामुखी में सुमद्री चट्टानों में मौजूद दरार से टपकने वाला शीतल समुद्री जल और मध्य समुद्री रिज क्षेत्र का जल, गर्म हो जाता है और लोहे, मैंगनीज़, तांबे, निकल आदि धातुओं को निथारता है। यह जल उठता है और समुद्र तल से 380 डिग्री के तापमान पर गर्म धाराओं के रूप में बाहर आता है। घुली हुई धातुएं कई बार चट्टानों की दरार में धातु सल्फाइड ओर्स बनाने के लिए नीचे तल में बैठ जाती हैं। अक्सर समुद्र तल पर सल्फाइड धातु की चिमनी मौजूद होती हैं। वहां के गर्म वातावरण में कई प्रकार के जीव भी रहते हैं। इतनी गहराई में जहां सूरज की रोशनी नहीं पहुंचती, वहां जीवन कीमोसिंथेसिस द्वारा सुरक्षित रहता है, जिसमें रासायनिक प्रक्रियाओं द्वारा प्राप्त ऊर्जा का प्रयोग रोगाणु अपने भोजन के रूप में करते हैं। उदाहरण के लिए, थर्मोफिलिक रोगाणु, आमतौर पर समुद्र तल की गर्म धाराओं में पाया जाता है, यह अत्यधिक गर्म तापमान को भी सहन कर सकता है (थर्मो = ताप; फिलिक = प्रेमी)। इन रोगाणुओं को बड़े जीवों द्वारा खाया जाता है और इसके बाद बड़े जीवों को उनसे बड़े जीवों द्वारा खाया जाता है और यही प्रक्रिया चालू रहती है। इसी प्रकार यहां पर खाद्य श्रृंखला बनी है। जल के अंदर गर्म पानी की धाराएं कई नई प्रजातियों का घर हैं, इनके बारे में पहले तो मानव को ज्ञान भी नहीं था। कई बार तो घुली हुई धातुएं पानी के बेड़े के तल में धातु सल्फाइड या ऑक्साइड के रूप बैठ जाती है। समुद्र तल में बैठ जाने पर वे तलछट की परतें बनाती हैं जो कि धातुओं से भरी होती हैं। इस प्रकार की धातु संपन्न तलछट लाल सागर में अधिक पाई जाती है। उनमें से एक में 100 मिलियन टन तलछट होती है, जिसमें 2.5 मिलियन टन Zn, 0.5 मिलियन टन Cu, 9000 टन Au और अन्य धातुएं हैं।

तेल और गैस

समुद्र तलछट में तेल (पेट्रोलियम) और प्राकृतिक गैस के विशाल भंडार जमा हैं। ये तब बनते हैं जब समुद्र तल में मृत सूक्ष्म जीवों के कार्बनिक पदार्थ कीचड़ में दब जाते हैं। उच्च तापमान और गहराई में दबाव के कारण ये कार्बनिक पदार्थ तेल और प्राकृतिक गैस में परिवर्तित हो जाते हैं।

भारत के पास कई समुद्रगामी तेल और गैस क्षेत्र, बोम्बे हाई, कैम्बे की खाड़ी, कावेरी, कृष्णा–गोदावरी और महानदी नदी घाटी के क्षेत्रों में हैं।

गैस हाइड्रेट

निम्न तापमान और उच्च तापमान पर, प्राकृतिक गैस (मीथेन) जल अणुओं में गैस हाइड्रेट बनाती है, यह अपेक्षाकृत एक नया खोजा गया खनिज है, जो महासागर तलछट में बनता है। एक घन मीटर गैस हाईड्रेट को जब सतह पर लाया जाता है तो इससे 164 घन मीटर प्राकृतिक गैस बनानी अपेक्षित होती है। ऐसा किया जा सकता है और इसे भविष्य के संसाधनों के रूप में भी प्रयोग किया जा सकता है।

प्लेसर तलछट

इस प्रकार के भारी खनिज को नदी से अपक्षीण चट्टानों और तलछट से भूमि पर लाया जाता है और उन्हें उनके घनत्व के अनुसार पृथक किया जाता है और समुद्र के किनारों तथा तटों के साथ, तटरेखा से निक्षेपित कर दिया जाता है। इस प्रकार के प्लेसर तलछटों में सोना, टिन, थोरियम, दुर्लभ पृथ्वी तत्व, लोहा, ज़र्कोनियम आदि होता है। संपन्न प्लेसर तलछट केरल, महाराष्ट्र, उड़ीसा, आंध्र प्रदेश और तमिलनाडू की तटरेखा पर पाया जाता है।

फॉस्फोराइट तलछट

समुद्र तल में फॉस्फोराइट तलछट भी मौजूद है, जिसे फॉस्फोरस के अकार्बनिक अवक्षेपण द्वारा या प्रतिस्थापना द्वारा बनाया जाता है। फॉस्फोराइट तलछट भूमि पर भी बनता है, हालांकि पहले यह समुद्र तल पर बना। फॉस्फोराइट को उर्वरक और फॉस्फोरस यौगिकों के निर्माण के लिए प्रयोग किया जाता है।

नमक

मनुष्य द्वारा उपयोग में लाये जाने वाले नमक में समुद्री जल का काफी बड़ा योगदान होता है। आरंभिक काल से मनुष्य द्वारा प्राप्त संसाधनों में नमक प्रमुख है। समुद्री जल के प्रत्येक घन मील का भार लगभग 4.7 बिलियन (दस खरब) टन होता है और इसमें 166 मिलियन (दस लाख) टन ठोस घुले होते हैं जिसमें अन्य नमकों के अलावा 140 मिलियन टन साधारण नमक (सोडयिम क्लोराइड) और 25 मिलियन टन मैग्नीशियम नमक सम्मिलित होते हैं।

महासागर भोजन के एक स्रोत के रुप में

महासागर वास्तव में बड़े तटीय समुदायों के मुख्य भोजन का प्राथमिक स्रोत हैं। पूरे समुद्री तट के किनारों पर श्रिम्प, लोब्स्टर, स्क्वीड, कटलफिश, प्रॉन आदि सहित बड़ी संख्या में फिनफिश और सेलफिश पैदा किए जाते हैं। वैश्विक मत्स्य उत्पादन में हमारा देश अग्रणी पंक्ति में है। देश के उत्पादन की अनुमानित क्षमता 3.93 मिलियन टन मछली और सेलफिश है। भारत समुद्री खाद्य पदार्थ जैसे स्क्वीड, कटलफिश, लोबस्टर

और श्रिम्प के अलावा विविध प्रकार की मछलियों का एक प्रमुख निर्यातक है। 2020–21 में समुद्री उत्पादों का निर्यात 11,49,341 मीट्रिक टन हुआ था जिसका मूल्य 43717 करोड़ रुपये था। हाल के वर्षों में मछलियों की घनी आबादी का पता लगाने के लिए अकाउस्टिक सर्वेक्षण (इको साउन्डर का इस्तेमाल कर) का प्रयोग किया गया है। देश ने 70 मीटर गहरे पानी से परे रह रहे समुद्री जैविक संसाधनों के आंकलन के लिए एक बहु–विषयक और बहु संस्थानिक कार्यक्रम की शुरुआत की है।

मेरीकल्चर

अत्यधिक दोहन या खत्म हो गए भण्डार की उपज को बढ़ाने का एक विकल्प है मेरीकल्चर। कृत्रिम रीफ और समुद्री खेती परियोजना का निर्माण, क्षय हो गए संसाधनों को फिर से पूरा करने के लिए अच्छा है।

महासागर से दवाएं और समुद्री सब्जियां

हमारे पृथ्वी के 30 प्रतिशत जन्तु और पादप प्रजातियां समुद्र में निवास करती हैं। ऐसा माना जाता है कि जीवन की उत्पति महासागर में हुई। समुद्री जीवों से निष्कर्षित कुछ यौगिक एन्टी–वाइरल, एन्टी–ट्यूमर, एन्टी–बायोटिक पाए गए हैं और इन्हें दवओं में विकसित किया जा सकता है। ऐसी दवाओं का अन्वेषण और प्राप्ति हमारे समुद्री अन्वेषण कार्यक्रम का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य है। समुद्री सब्जियों का उपयोग भोजन, जानवरों के चारे, रंग, दवाएं और प्रसाधन सामग्री में होता है। समुद्री घास (शैवाल) में प्रचुर मात्रा में प्रोटीन होता है, यहां तक की मांस से भी ज्यादा और इसमें कैल्शियम भी प्रचुर मात्रा में होता है (दूध से भी ज्यादा)।

ये कैन्सर, रक्त–चाप और अन्य बीमारियों के विरुद्ध संभावित रोक–थाम के लिए भी प्रयुक्त होते हैं। कुछ जानी–मानी समुद्री सब्जियां हैं– अरामे, बैडरलॉक, डल्से, हिजिकि, केल्प, नोरी और वाकामे।

महासागर से उर्जा

समुद्री तापीय उर्जा रुपान्तरण : आज के विकट बिजली–संकट की स्थिति में वैकल्पिक अपारम्परिक ऊर्जा संसाधनों को विकसित करना महत्वपूर्ण हो गया है। महासागर, उर्जा उत्पादन के लिए विविध प्रकार के वातावरण को प्रस्तुत करता है, जो अक्षय और प्रदुषण मुक्त हैं।

ठंठे समुद्री–तल का जल और गर्म सतही जल का प्रयोग कर यह उर्जा उत्पन्न करना संभव है। ऐसे कार्यक्रम को महासागर तापीय ऊर्जा रुपान्तरण (ओटीईसी) कहते हैं। महासागर सौर ऊर्जा का एक बड़ा संग्राहक है जो समुद्री धारा उत्पन्न करने के लिए उत्तरदायी है। भारत बहुत जल्द ही तमिलनाडु में टीटीकोरिन से 60 किमी दूर एक 1 मेगावाट का तैरता हुआ ओटीईसी तकनीक प्रदर्शक पायलट संयंत्र स्थापित करने वाला है।

समुद्री सतह के पार बहने वाली हवा तरंगें पैदा करती हैं। समुद्री तरंगों का उपयोग विद्युतीय ऊर्जा उत्पन्न करने में किया जा सकता है। गर्म सतही जल और ठंडे गहरे जल के बीच के तापीय अंतर का प्रयोग कर यह संभव बनाया गया है। केरल के विजिन्जाम में एक छोटा तरंग ऊर्जा संयंत्र स्थापित किया गया है।

समुद्र का स्तर मुख्यतः सूर्य और चंद्रमा के गुरुत्वीय आकर्षण के कारण बढ़ता और घटता है। इन्हें ज्वार कहते हैं। परिणामस्वरुप प्रत्येक दिन समुद्री जल उच्च ज्वार के दौरान नदी में बहने लगता है और निम्न ज्वार के दौरान वापस समुद्र में आ जाता है। एक बांध का निर्माण कर उच्च ज्वार के दौरान पानी को संग्रहित किया जा सकता है और समुद्र में इसके वापसी के बहाव से बिजली पैदा करने के लिए टरबाइन को चलाया जा सकता है।

अपनी प्रगति जांचिए

15. भविष्य हेतु संसाधनों के भंडार के रूप में महासागरों से निम्न में से क्या उपलब्ध हो सकता है?
    (क) खनिज (ख) ऊर्जा
    (ग) खाद्य संसाधन (घ) उपर्युक्त सभी
16. सूर्य और चंद्रमा के गुरुत्वीय आकर्षण के किस प्रभाव से समुद्र से ऊर्जा प्राप्त की जाती है?
    (क) उच्च ज्वार–निम्न ज्वार (ख) सुनामी
    (ग) चक्रवात (घ) मानसून

5.10 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (क)
2. (ख)
3. (ग)
4. (घ)
5. (क)
6. (ग)
7. (ख)
8. (क)
9. (ग)
10. (ख)
11. (घ)
12. (क)
13. (ग)
14. (ख)
15. (घ)
16. (क)

5.11 सारांश

महासागरीय जल के भौतिक एवं रासायनिक गुण होते हैं, भौतिक गुणों के अंतर्गत तापमान तथा घनत्व को जबकि रासायनिक गुण के अंतर्गत लवणता को शामिल किया जाता है। जल के अणु में परमाणुओं का विन्यास ही इसकी भौतिक एवं रासायनिक विशेषताओं का मूल कारण है। इसके अंतर्गत न केवल सागरीय जल में पाए जाने वाले तत्वों का विश्लेषण किया जाता है अपितु उनकी उत्पत्ति, वायु तथा परिणामों की भी विवेचना की जाती है। सागरीय जल में कई प्रकार के खनिज तत्व एवं गैसें घुलित अवस्था में पाए जाते हैं। सागरीय जीवों तथा सागरीय जीवों की प्रतिक्रियाओं का भी सागरीय रसायनिकी में अध्ययन करते हैं। सागरीय जल के रासायनिक गुणधर्म जल के संचरण (Circulation) तथा गतियों को भी प्रभावित करते हैं। समुद्री जल के भौतिक तथा रासायनिक गुण अक्षांश, गहराई, भूमि से निकटता और ताजे पानी के अनुसार भिन्न होते हैं।

वायुमंडल और महासागर विभिन्न भौतिक एवं रासायनिक प्रक्रियाओं के द्वारा जैसे ऊष्मा प्रवाह, वर्षण, पवन संचरण, वायुमंडलीय तापमान, वायुदाब आदि के द्वारा भिन्न–भिन्न रूप में आपस में अंतर्संबंध होता है। धरातल की भांति महासागरीय क्षेत्रों में जलीय जीवों का वास होता है। अतः उनके लिए भी स्थलीय जीवों की भांति तापमान की आवश्यकता होती है। महासागरीय जल भी भूमि की तरह सौर ऊर्जा से गर्म होता है। किंतु स्थल की तुलना में जल के तापन और शीतलन की प्रक्रिया मंद होती है। अतः वायुमंडल और महासागर के संघटक अंतर्संबंधित होते हैं। उदाहरण के लिए वायुमंडल पवन संचरण के द्वारा महासागरों में सतही धाराओं को जन्म देते हैं तो दूसरी ओर वायुमंडलीय तूफानों से चक्रवातों को जन्म देते हैं। इसी तरह से भूमंडलीय जलीय चक्र महासागरों से वायुमंडल, वायमुंडल से महाद्वीप और महाद्वीप से पुनः महासागरों में जल वापिस कर देते हैं। यह क्रिया निरंतर चलती रहती है। सौर ऊष्मा से सागरीय जल का वाष्पीकरण होता है और वायुमंडलीय हवाओं द्वारा महासागरों की आद्रता को महाद्वीपों के ऊपर वर्षा के रूप में देता है तथा वर्षा का यह जल नदियों के परिवहनों द्वारा पुनः सागरों में उड़ेल देता है। इस तरह यह जल चक्र चलता रहता है।

उत्तरी अटलांटिक महासागर में गल्फ स्ट्रीम उत्तरी भूमध्य रेखीय धारा, कैनरी की धारा तथा उत्तरी विषुवत रेखीय धारा के बीच स्थित एक शांत क्षेत्र है इसे सारगेसो सागर कहते हैं। ये सभी धाराएं घड़ी की सुई की दिशा के अनुरूप प्रवाहित होती है। यह वृत्ताकार क्षेत्र शांत है तथा यहां सारगेसम (Sargassum) नामक समुद्री घास पाई जाती है। जिसके कारण वृत्ताकार क्षेत्र का नाम सारगैसो सागर रखा गया है।

महासागरीय जल का शिखर तथा गर्तो के रूप में दोलन या उतार चढ़ाव को महासागरीय तरंगे कहते हैं। महासागरों में उत्पन्न तरंगें उसके पृष्ठ तल पर एक कटक अथवा उभार होता है। जो जल में निरंतर गतिशील होता रहता है। तरंग एक ऐसी परिघटना है जिसके द्वारा विभिन्न प्रकार की वस्तुओं में कंपन द्वारा ऊर्जा का स्थानांतरण किया जाता है।

महासागरीय नितल पर अवसादों के जमाव को महासागरीय निक्षेप कहते हैं। इसके अंतर्गत केवल उन निक्षेपों को शामिल किया जाता है, जो असंगठित एवं

टिप्पणी

अव्यवस्थित अवसादों के रूप में होते हैं। इसके अलावा महासागरों में मिलने वाले जीवों, वनस्पतियों आदि के अवशेषों से भी अवसाद प्राप्त होते हैं। महासागर के एक भाग से दूसरे भाग में समुद्री क्षेत्रों में भिन्नता पाई जाती है। चट्टानों के निरंतर अपक्षय एवं अपरदन से उपलब्ध अवसाद से तथा जीवों और वनस्पतियों के अवशेषों से समुद्री निक्षेपों का निर्माण हुआ है। धरातल पर पाई जाने वाली अधिकांश अवसादी शैलों का निर्माण महासागरों के नितल पर संचित निक्षेपों से ही हुआ है। विश्व में वलित पर्वतों की उत्पत्ति के 'टेथिस' (Tethys) नामक उथले, संकरे और लम्ब समुद्र के नितल पर एकत्रित निक्षेपों से ही हुआ है। इसी तरह खनिज तेल महासागरीय निक्षेपों से ही प्राप्त होता है।

सागर में प्रवाल भित्तियों का निर्माण सागरीय जीव मूंगे या कोरल पॉलिव अस्थि पंजरों के समेकन तथा संयोजन द्वारा होता है। इसका अंग अत्यंत कोमल होता है। अपने कोमल शरीर की रक्षा हेतु जल से चूना लेकर कठोर घरोंदे की रचना करता है। प्रवाल एक प्रकार की कैल्केरियस चट्टान है तथा यह चूने पर निर्वाह करते हैं। ये जीव समूहों में रहते हैं। जब इन मूंगों की मृत्यु हो जाती है तो इनके अवशेष के ऊपर दूसरे मूंगे अपना खोल बना लेते हैं। यह प्रक्रिया लंबे समय तक चलती रहती है। जिसके कारण मूंगे के अवशेष से एक भित्ति का निर्माण हो जाता है जिसे प्रवाल भित्ति कहते हैं। ये मुख्यतः बस्तियां बनाकर रहते हैं। जब इन जीवों की एक पीढ़ी मर जाती है तो उनके ऊपर दूसरी पीढ़ी अपना बसेरा बना लेती है। कालांतर में एक बड़ी स्थूल भित्ति का निर्माण हो जाता है। इनका रंग और रूप निर्माण करने वाले जीवों पर निर्भर होता है। जीवों के अलावा करोड़ों शैवाल कैल्शियम कार्बोनेट निक्षेपित करके प्रवाल चट्टान का निर्माण करते हैं। प्रवाल ऊष्णकटिबंधीय महासागरों में पाए जाते हैं। प्रवाल में ऊष्णकटिबंधीय वर्षा वन की तुलना में अधिक विविधता पाई जाती है। इन शैवालों को सामुद्रिक वर्षा वन भी कहा जाता है।

सामुद्रिक पर्यावरण का आशय विशाल एवं अगाध राशि से परिपूर्ण महासागर हमारे भौतिक पर्यावरण के सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटक हैं। इन्हीं के द्वारा मानव जीवन सबसे अधिक प्रभावित होता है। महासागर एक जलीय पारिस्थितिकी तंत्र है जहां आवास का मुख्य आधार जल होता है, जैसे स्वच्छ जल या अलवणीय जल– जिसमें लवण की मात्रा बहुत कम होती है।

दलदल पंक भूमि (Fen) पोत भूमि या जल, कृत्रिम या प्राकृतिक, स्थाई या अस्थाई, स्थिर या गतिमान, जल तथा ताजा खारा व लवण युक्त जल क्षेत्र को आर्द्र भूमि कहते हैं।

मैंग्रोव विषुवत रेखा के नजदीक ऊष्णकटिबंधीय एवं उपोषण कटिबंधीय क्षेत्रों के तटों, ज्वारनदमुखों, पश्चाजल, लैगून आदि अंतरज्वारीय क्षेत्र में विकसित होने वाले वृक्षों एवं झाड़ियों के ऐसे समूह हैं जिनमें लवणीय जल को सहने की उच्च क्षमता पाई जाती है।

स्थलीय पर्यावरण की तुलना में सागरीय पर्यावरण को एक रूप माना जाता है। वास्तव में जल की तली में भी विविध प्रकार के पारिस्थितिकी निकेत पाए जाते हैं। तापमान, गहराई, दाब, धाराएं, प्रकाश तथा पोषक तत्वों की विविधता के कारण कुछ प्राणियों का वितरण सीमित पाया जाता है।

प्लेंक्टन सागरीय समुदाय के अंतर्गत महासागरों की सतह से 200 मीटर की गहराई वाले प्रकाशित मंडल या इपिपैलजिक मंडल में उतरने एवं बहने वाले पौधों एवं जंतुओं को सम्मिलित किया जाता हैं। पादप पलेंक्टन को फाइटोप्लेंक्टन भी कहते हैं क्योंकि ये सूर्य प्रकाश की सहायता से प्रकाश संश्लेषण द्वारा अपना भोजन स्वयं बना लेते हैं। तो दूसरी तरफ जंतु प्लेंक्टन अपने भोजन के लिए फाइटोप्लेंक्टन पर निर्भर रहते हैं।

प्लावक वे तैरते या उतराते जीव हैं जिनके पास स्वयं गतिशील होने के कोई साधान नहीं हैं। निष्क्रिय रूप में जल धाराओं द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाए जाते हैं। उनमें से अधिकांश छिछले जल में रहते हैं जहां ये सूर्य का प्रकाश तथा पौष्टिक खनिज पदार्थों का अवशोषण करते हैं। ये अधिकांशतः एक कोशीय तथा अति सूक्ष्मदर्शी होते हैं। सबसे बड़ा संघ क्राइसोफाइटा (Chrysophyta) है जिसे पीली हरी शैवाल (Yellow Green Algae) भी कहते हैं इसमें डायटम (Diatom) तथा कोकोलिथोफोर्स (Coccolithophores) मुख्य हैं। इसके अलावा डाइनो प्लैजलेटस महत्वपूर्ण सदस्य हैं जो महासागरीय जैविक कार्बन का अधिकांश भाग उत्पन्न करते हैं। ये वायुमंडलीय ऑक्सीजन का महत्वपूर्ण स्रोत हैं। सुनहरी भूरी शैवाल तथा प्लेजलेट हरी शैवाल दूसरे महत्वपूर्ण सदस्य हैं।

उन सागरीय परिस्थितिक तंत्रों को सागरीय जैव कटिबंध या बायोम कहा जाता है। जिनमें समस्त सागरीय पौधे, जंतुओं तथा भौतिक पर्यावरण अर्थात सूर्य, प्रकाश, आर्द्रता, घुली ऑक्सीजन तथा कार्बन डाइऑक्साइड, पोषक तत्वों, तापमान, लवणता, घनत्व, आदि में समानता पाई जाती है। इन के अंतर्गत विभिन्न सागरीय जीवों एवं सागरीय पर्यावरण के मध्य पारस्परिक क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है।

पादप प्लवक में सारगेसम (Sargassum) नामक बहु कोशीय पौधा विशिष्ट होता है। यह एक प्रकार की भूरी शैवाल (Brown Algae) है। यह उत्तरी अटलांटिक महासागर के शांत व स्थिर जल में पाया जाता है। इस प्लवक के नाम से सारगेसम सागर रखा गया जिसमें इसकी अधिकता पाई जाती है। बैक्टीरिया पादप प्लेंक्टन के अंतर्गत कई प्रकार के बैक्टीरिया भी पाए जाते हैं जो शीत एवं ऊष्ण दोनों महासागर में पाए जाते हैं। ये वेलांचली बायोम में प्रकाशित होते हैं। बैक्टीरिया का अपना भोजन जैविक पदार्थों पर निर्भर होता है।

जल में तैरने वाले जीवों को नेक्टन या तरणक कहते हैं। इनमें मछलियां प्रमुख हैं। अधिकांश नेक्टन प्राणी कोरडाटा समुदाय के होते हैं। जिसमें व्हेल, शार्क, सागरीय क्रूर्म, सागरीय स्तनपाई (Mammal) मुख्य हैं। ये तरणक मुख्यतः प्राणी प्लवकों का आहार करते हैं और समुद्री जल स्तर के नीचे जहां उन्हें पर्याप्त भोजन उपलब्ध होता है निवास करते हैं। उदभिज प्लवक खाने वाले अनेक नेक्टन केवल रात्रि के समय जलीय धरातल पर आते हैं और प्लवक खाते हैं। नेक्टन हमेशा आहार की खोज में या प्रजनन की सुविधा एवं उद्देश्य से, एक जगह से दूसरी जगह भ्रमण करते रहते हैं। कुछ तो ठंडे जल में तैरते हैं और बाकी गर्म जल में या पूरे महासागर में भ्रमण करते हैं। प्लवक और नितल जीव समूह की तुलना में तरणक एक विकसित प्रकार के प्राणी हैं। डॉल्फिन तथा सूंस की गिनती संसार में सबसे अधिक बुद्धिमान प्राणियों में होती है। संसार के कई भागों में डॉल्फिनों को संवाद, डाक तथा औजार एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने का सफल प्रशिक्षण दिया गया है।

महासागर खनिज (धातु, तेल, प्राकृतिक गैस, रसायन आदि), भोजन (मछली, झींगे, समुद्री झींगे आदि) और उर्जा (लहरें, जल धाराएं, ज्वार आदि) का विशाल भंडार हैं। हम महासागरों को सामग्री लाने ले जाने (जहाज़ों और तेल के टैंकों में) और मनोरंजन के लिए (समुद्र तटों, पानी के खेल आदि) प्रयोग करते रहे हैं। हम महासागरों का प्रयोग नगर के कचरे, औद्योगिक उत्प्रवाही, कृषि में प्रयोग किए गए कीटनाशकों आदि को फेंकने के लिए भी करते रहे हैं, जो बढ़ती जनसंख्या के कारण उत्पन्न होते हैं।

महासागरों में खनिज, ऊर्जा और खाद्य संसाधनों की विस्तृत श्रेणी मौजूद है। वे पृथ्वी के सबसे बड़े खनिज भंडार हैं, जिनमें तेल और गैस भी शामिल है। हालांकि यह भूमि पर मौजूद हैं, संसाधनों के लिए हमारी मांग, तेजी से बढ़ती जनसंख्या द्वारा सुविधाओं और आराम की चाह के कारण बढ़ती जा रही है। इसके अलावा, खनिज संसाधन नवीकरणीय नहीं हैं, एक बार निकाल कर प्रयोग करने के बाद वे समाप्त हो जाते हैं। इनका निर्माण दोबारा करने के लिए कई लाखों वर्ष लग जाते हैं और यही कारण है कि उन्हें 'गैर—नवीकरणीय' संसाधनों के रूप में जाना जाता है।

महासागर वास्तव में बड़े तटीय समुदायों के मुख्य भोजन का प्राथमिक स्रोत हैं। पूरे समुद्री तट के किनारों पर श्रिम्प, लोबस्टर, स्क्वीड, कटलफिश, प्रॉन आदि सहित बड़ी संख्या में फिनफिश और सेलफिश पैदा किए जाते हैं। वैश्विक मत्स्य उत्पादन में हमारा देश अग्रणी पंक्ति में है। देश के उत्पादन की अनुमानित क्षमता 3.93 मिलियन टन मछली और सेलफिश है। भारत समुद्री खाद्य पदार्थ जैसे स्क्वीड, कटलफिश, लोबस्टर और श्रिम्प के अलावा विविध प्रकार की मछलियों का एक प्रमुख निर्यातक है।

आज के विकट बिजली—संकट की स्थिति में वैकल्पिक अपारम्परिक ऊर्जा संसाधनों को विकसित करना महत्वपूर्ण हो गया है। महासागर, उर्जा उत्पादन के लिए विविध प्रकार के वातावरण को प्रस्तुत करता है, जो अक्षय और प्रदुषण मुक्त हैं।

समुद्र का स्तर मुख्यतः सूर्य और चंद्रमा के गुरुत्वीय आकर्षण के कारण बढ़ता और घटता है। इन्हें ज्वार कहते हैं। परिणामस्वरुप प्रत्येक दिन समुद्री जल उच्च ज्वार के दौरान नदी में बहने लगता है और निम्न ज्वार के दौरान वापस समुद्र में आ जाता है। एक बांध का निर्माण कर उच्च ज्वार के दौरान पानी को संग्रहित किया जा सकता है और समुद्र में इसके वापसी के बहाव से बिजली पैदा करने के लिए टरबाइन को चलाया जा सकता है।

5.12 मुख्य शब्दावली

- **विलेयक** : घोलने की क्षमता युक्त।
- **श्यानता** : बहने की विशेषता।
- **पार्थिव** : निश्चेष्ट।
- **रूमसागर** : भूमध्य सागर।
- **सारगेसम** : समुद्री घास।
- **घूर्णन** : अपने अक्ष पर घूमना।

- **परिक्रमण** : पथानुरूप घूमना।
- **निक्षेप** : अवसाद का जमाव।
- **प्लीस्टोसीन** : अत्यंत नूतन।
- **विरंजन** : रंग उड़ना।

5.13 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. समुद्री जल की भौतिक एवं रासायनिक विशेषताएं बताइए।
2. समुद्री जल के तापमान का महत्व प्रतिपादित कीजिए।
3. वायुमंडलीय दाब से क्या अभिप्राय है? संक्षेप में प्रकाश डालिए।
4. वायुमंडलीय परिसंचरण के महत्व को संक्षेप में विवेचित कीजिए।
5. महासागरीय सतह की धाराओं पर प्रकाश डालिए।
6. महासागरीय निक्षेप को परिभाषित कीजिए।
7. प्रवाल भित्ति क्या है? संक्षेप में बताइए।
8. कुछ समुद्री जैव क्षेत्रों के नाम बताइए।
9. समुद्री जीवों के प्रकारों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
10. भविष्य में समुद्र से प्राप्त हो सकने वाले कुछ संसाधनों के नाम बताइए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. समुद्री जल के संघटकों का विस्तार से निरूपण कीजिए।
2. सागरीय एवं वायुमंडलीय परिसंचरण तंत्र में अंतर्सबंध विवेचित कीजिए।
3. सौर विकिरण या सूर्यातप के विषय पर से प्रकाश डालिए।
4. महासागरीय धाराओं की उत्पत्ति के कौन–कौन से प्रमुख कारक हैं? विस्तार से प्रतिपादित कीजिए।
5. महासागरीय विक्षेपों एवं प्रवाल भित्तियों के सभी संबद्ध पक्षों की व्याख्या कीजिए।
6. विभिन्न समुद्री जैविक पर्यावरणों, जैव क्षेत्रों का विश्लेषण कीजिए।
7. समुद्री जीवों एवं पादपों के बारे में विस्तारपूर्वक बताइए।
8. भविष्य हेतु संसाधनों के भंडार के रूप में महासागरों की भूमिका का विवेचन कीजिए।
9. टिप्पणी लिखिए–

   (क) ऊष्ण कटिबंधीय परिसंचरण

   (ख) मध्य अक्षांशीय परिसंचरण

   (ग) ध्रुवीय परिसंचरण

5.14 सहायक पाठ्य सामग्री

1. सिंह सविंद्र, 2020, समुद्र विज्ञान, प्रवालिका पब्लिकेशन्स, प्रयागराज।
2. नेगी बी. एस., जलवायु विज्ञान तथा समुद्र विज्ञान, केदारनाथ रामनाथ, मेरठ।
3. सिंह सविंद्र, 2020, जलवायु विज्ञान, प्रवालिका पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद।
4. लाल डी. एस. 2013, जलवायु एवं समुद्र विज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज।
5. गौतम अलका, 2017, जलवायु एवं समुद्र विज्ञान, रस्तोगी पब्लिकेशन्स, मेरठ।
6. तिवारी अनिल कुमार एवं शर्मा बी. एल., 2008, जलवायु विज्ञान के मूल तत्व, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर।
7. कुमार अमित, 2011, जलवायु विज्ञान, विश्व भारती पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
8. वर्णवाल महेश कुमार, 2016, भूगोल एक समग्र अध्ययन, कॉ समॉस पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
9. खुल्लर डी. आर., 2014, भूगोल मुख्य परीक्षा, मैक्ग्रा–हिल प्रा. लि., नई दिल्ली।
10. भारती नीरज, अली अब्बास, मैकाबुक भारत एवं विश्व का भूगोल, अरिहंत पब्लिकेशन्स (इण्डिया) लिमिटेड, मेरठ।
11. ओझा एन. एस., 2016, वैकल्पिक भूगोल, क्रोनिकल पब्लिकेशंस प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।
12. मामोरिया चतुर्भुज सिसोदिया एम.एस., जलवायु विज्ञान एवं समुद्र विज्ञान, एस. बी. पी.डी. पब्लिकेशन हाउस आगरा।
13. हुसैन माजिद, संक्षिप्त भूगोल, टाटा मैकग्रा हिल एजुकेशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।
14. कुमार संजीत, कुमार अजीत, नेट/जे.आर.एफ./सेत भूगोल, पेपर–2, अरिहंत पब्लिकेशंस इंडिया लिमिटेड नई दिल्ली।
15. चतुर्भुज मामोरिया, सिंह कोमल, 2020, भूगोल बी.ए. तृतीय वर्ष, एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन आगरा ।
16. खन्ना सी.एल., यूनिफाइड भूगोल, बी.ए. तृतीय वर्ष, शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी, इंदौर।
17. न्याती जानकीलाल खन्ना, सी.एल., यूनिफाइड भूगोल, तृतीय सेमेस्टर शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी, इंदौर।
18. गर्ग एच. एस., सिंह कोमल, 2019–20, भूगोल, NCERT एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन आगरा।
19. सिंह राजेश कुमार, 2014, विश्व का भूगोल, लुसेंट पब्लिकेशन, पटना, बिहार।
20. खुल्लर डी.आर., 1996, भूगोल, सरस्वती हाउस प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली।